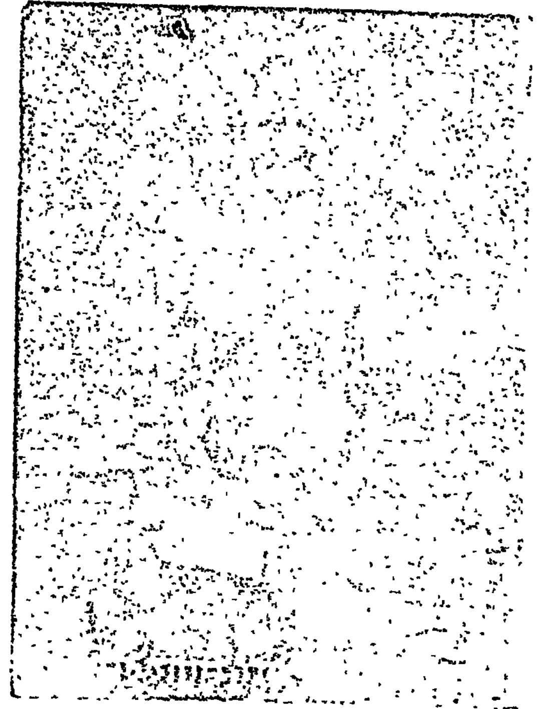
❀ सन्मति पुस्तकालय : जयपुर ❀



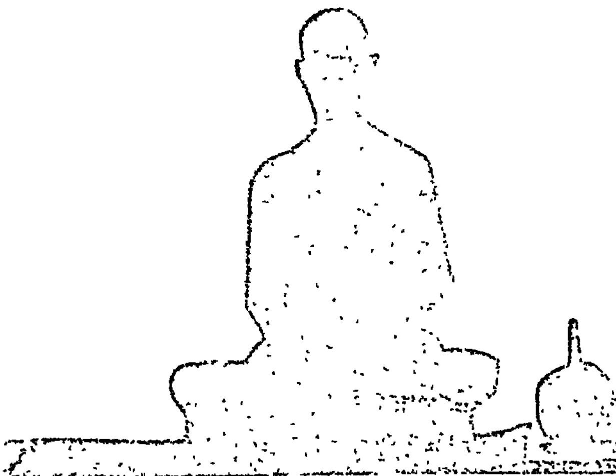
दिगम्बर जैन मुनि स्व० चन्द्रसागर जी

स्वर्गीय दि० जैनाचार्य श्री वीरसागरजी



स्व० ब्र० दीपचन्द जी बडजात्या

वर्तमान दि० जैनाचार्य श्री शिवसागर जी








समर्पण




हमारे पूज्य पिता शेठ दीपचंदजी बडज़ात्या 'नागोर' वासी
जिन चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर महाराज के
सं० १९८४ में सद् दर्शन से श्री सम्मेद शिखर में
सद् धर्म मार्ग के गाढ श्रद्धालु बने, उनके,
जिनके सदुपदेश से सं० १९९६ में सवाईमाधोपुर (राज०) में
दूसरी व्रत प्रतिमाके व्रत धारण कर नैष्ठिक श्रावक बने
ऐसे दिगम्बर मुनि चंद्रसागरजी महाराजके,
जिनके दिव्य धर्मामृतका पान कर नागौर वि० सं० २००६ में
सप्तम श्रावक बने ऐसे आचार्य वीरसागरजी महाराज के
और
जिनके चरण सानिध्य में लाडनू सं० २०१६ में समाधिमरण
पूर्वक नर देह को छोड कर स्वर्ग वासीं बने ऐसे
वर्तमान आचार्य शिवसागरजी महाराज के
कर–कमलों में
तत्त्व प्ररूपक आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित यह

पंचास्तिकाय प्राभृत

समर्पित है

विनीत–चांदमल नेमिचंद बडजात्या नागौर (राजस्थान)



सप्तम प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी स्वर्गीय सेठ दीपचन्द जी बडजात्या का संक्षिप्त जीवन परिचय

मारवाडके बीकानेर जिला में जसरासर नामका एक ग्राम है। यहां खंडेलवाल जातीय दिगम्बर जैन श्रावकों के अनेक घर हैं। यहां बडजात्या गोत्र में सेठ चुन्नीलालजी बडजात्या सुप्रतिष्ठित सरल स्वभावी श्रावक रहते थे। उनके चार पुत्र और तीन पुत्री संतान थीं, सबसे बडे पुत्र श्रीमान सेठ लछमनदासजी, द्वितीय पुत्र श्रीमान सेठ दीपचन्द जी, (चरित्रनायक इनका जन्म संवत १९४४ वैसाख वदी ४ को हुआ) तीसरे पुत्र श्रीमान सेठ ज्ञानीलाल जी, चौथे पुत्र श्रीमान सेठ हीरालालजी बडजात्या।

बडे पुत्र श्रीमान् सेठ लछमन दासजी ने केवल २१ साल की ही उम्र पाई और अपने पीछे छह मास का एक पुत्र और धर्मपत्नी छोड गये, पुत्र का नाम केशरीमल जी बडजात्या था। इन्होंने विक्रम संवत १९०६ में परम पूज्य दिगम्बर जैनाचार्य स्वर्गीय श्री १०८ वीर सागर जी महाराजके सदुपदेश से संगमरमर का ६३ फुट ऊंचा सुन्दर मानस्तंभ नवीन मंदिरजी में बनवाया और उसकी बिम्ब प्रतिष्ठा विक्रम संवत् २०११ में धूमधाम से कराई।

श्रीमान सेठ चुन्नीलालजी विक्रम सं० १९७२ में जसरासर ग्रामसे नागौर शहर में सपरिवार आकर बस गये और सं० १९७३ में धर्मध्यान पूर्वक समाधिमरण कर स्वर्ग सिधार गये।

श्रीमान सेठ दीपचंदजी, अपने दोनों भाई ज्ञानीलालजी, हीरालाल जी तथा बडे भाई लछमनदास जी के पुत्र केशरीमलजी के साथ सम्मिलित रूपसे बंगाल में व्यापार करते थे। आप सब सरल स्वभावी धार्मिक प्रवृत्तिवाले उदारहृदय गुरुभक्त दानी होनेके कारण परस्पर प्रेमसे रहते थे अतः लक्ष्मीकी कृपा भी आप लोगों पर दिन दिन बढती गई।

चरित्रनायक शुरूसेही विशेष धार्मिक परिणति के थे आप गृहस्थीमें रहकर भी वैराग्य परिणति से दान पूजन व्रतादि में संलग्न रहते थे। सं० १९८४ में जब परमपूज्य आचार्य श्री १०८ शांतिसागर जी महाराज संघसहित सम्मेदशिखरजी पधारे उनके दर्शन से उपदेश से और भी धर्म साधन में विशेष रुचि हो गई। प्रत्येक चतुर्मास में जहां संघ का चतुर्मास होता था, चौका लेकर पहुंचते, आहारदान व उपदेश श्रवण आदि कार्यों में—संलग्न रहकर कल्याण करते। सं० १९९६ में परमपूज्य स्व० मुनिराज श्री १०८ चंद्रसागर जी महाराज के सदुपदेशसे प्रभावित होकर दूसरी प्रतिमा का व्रत सवाई माधोपुरमें ग्रहण किया, वि० सं० १९९७ में पूज्य श्री १०८ चंद्रसागर जी महाराजको इन्दौर से संघ सहित विहार कराकर बडवानी होते हुये मांगीतुंगी होकर संघ को गजपंथा करीब ४०० मील विहार कराकर ले गये। इसीतरह परमपूज्य मुनिराजों के सानिध्य में रहकर विहारकी व्यवस्थामें, चौमासे में संघ में रह कर आहारदान वैयावृत्ति में तन मन धन लगाते थे। वि० सं० २००६ में परमपूज्य १०८ आचार्य महाराज श्रीवीरसागर जी के संघ को साथ में रहकर विहार कराकर नागौर लेगये वहां खूब ठाट बाट से आचार्यसंघ का चतुर्मास हुवा वहीं पर सप्तम प्रतिमा का व्रत ग्रहण करके विशेष धर्म साधन में चित्त लगाया।

इसी समय आचार्य श्रीवीरसागर जी महाराज के उपदेशसे श्री आदिनाथ दि० जैन मन्दिर जी के मूल वेदी पर विशाल संगमरमर का शिखर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई। इस तरह चतुर्मास में तन मन धन लगाकर संघ की वैयावृत्ति व व्यवस्था में लगे रहे।

फुलेरा में सं० २००८ में बिम्बप्रतिष्ठा हुई। परमपूज्य वीरसागर जी महाराज संघ सहित वहां विराजमान थे वहां पर आहारदान के लिये चौका लगाया। पूज्य श्री आचार्य महाराज का चौके में आहार हुवा उससमय आचार्य महाराजने नागौर में स्त्री समाज में धार्मिक शिक्षा प्रचारार्थ—कन्या पाठशाला खोलने के लिये प्रेरणा की, उसीसमय अपनी धर्मपत्नी स्व० सोना बाई के नामसे कन्या पाठशाला खोलने के लिये स्थाई रूपसे चलाने के लिये २५०००) का दान घोषित किया और कन्या पाठशाला चालू की जोकि सोनाबाई दि० जैन कन्या पाठशाला के नाम से आज भी चल रही है। जिसमें ७०-८० कन्यायें धार्मिक शिक्षा बराबर प्राप्त कर रही हैं।

७ वीं प्रतिमा लेनेके बाद आपने व्यापार से सर्वथा मुख मोड लिया। वे (ब्रह्मचारी दीपचंदजी) प्राय: पूज्य मुनिराजों के सानिध्य से रहने लगे। संसार शरीर भोगों से उदासीन रहकर धर्म साधन-व्रतोंका पालन करते रहे। जब परमपूज्य आचार्य श्री १०८ वीरसागर महाराजने संघसहित खानिया (जयपुर) में अस्वस्थता के कारण ३ चतुर्मास लगातार किये उस समय भी प्राय: संघमें रहकर धर्म साधन करते रहे संघके सभी पूज्य मुनिराजों का, आर्यिका माताजीका उनको आर्शीर्वाद प्राप्त था। परम पूज्य आ० वीरसागरजी महाराजके स्वर्गारोहण के बाद संघ को व परमपूज्य आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्ति महाराजके संघको नागौर पधारनेके लिये प्रार्थना की और पूज्यश्री १०८ महावीरकीर्ति महाराज का सं २०१५ में नागौर में चतुर्मास करवाया। वहां पर खूब ठाट बाट से चतुर्मास हुवा। संघका विहार कराकर पौष वि० सं० २०१६ में पौत्री पुष्पा के विवाह के समय कलकत्ता गये और जब यह जाना कि लाडनू में बिम्बप्रतिष्ठा माहसुदी में है और उस समय परमपूज्य आचार्य श्री १०८ शिवसागर जी महाराजका संघ भी वहीं विराजमान रहेगा तो फौरन लाडनू चले आये।

ज्ञान कल्याणक के दिन फागन वदी १ को आपको बुखार (ज्वर) आगया। ३-४ दिन बुखार नहीं उतरनेसे उनकी भावना समाधिपूर्वक स्वर्गारोहण की होगई वे पूज्य श्री आचार्यश्री को व संघस्थ पूज्य मुनिराजों को आर्यिका माताजीओंको यही प्रार्थना करते रहे कि-मैं कलकत्ता से चलाकर आपके चरणों में आया हूँ मेरी भावना आपके चरण सानिध्य में ही समाधिमरण करनेकी इच्छा बहुत दिनों से थी सो मेरे पुण्योदयसे वह समय आगया है। अब मेरे परिणामों को सम्हालते रहें और मेरा समाधिमरण करावें मुझे न तो अब किसीसे मोह है, न कोई इच्छा है, एक ही भावना है कि समाधि मरण निर्विघ्न हो जावे। पूज्य गुरुवों की उनपर विशेष कृपा थी, सभी ने उनको आशीर्वाद दिया कि-आपकी जैसी उत्कृष्ट भावना है उसी के अनुसार आपका समाधि पूर्वक ही मरण होगा। फागुन वदी ६ को सायंकाल सभी पूज्य मुनिराज और आर्यिका माताजी उनके पास आये। सबको बडी भक्ति से उन्होंने नमोस्तु वंदना इच्छामि की। सब ने उनको आशीर्वाद दिया। रातको ब्र० कालूरामजी ब्र० वासुदेवजी व धर्मचंदजी उनके पास रहे, रात्री भर उनको धर्मध्यान पाठ स्वाध्याय सुनाते रहे। वे बडी भक्ति से उत्साह से सुनते रहे, सब चीजोंका परिग्रहका त्याग कर दिया।

उस समय आपके दोनों पुत्र कलकत्ता थे बिना खबर अनायास ही नेमीचंद जी फागुन वदी ५ की सामको नागौर पहुँचे और पिताजी को बुखार की खबर मिलते ही उसी समय मोटर करके रातको १२ बजे लाडनूं पहुँच गये और उनसे जब ब्रह्मचारीजी ने समाधि की चर्चा की तो उन्होंने भी बडी तत्परता के साथ ब्र० जी के समझाने से निर्मोही होकर समाधि में सहयोग दिया और फागुन वदी ६ को सारी रात धर्म ध्यान में परिणाम रहें इसलिये पाठ णमोकार मंत्र वगैरह सुनाने में दत्तचित्त रहे अन्त तक परिणामों को संभालते रहे।

सुबह ६ बजे ब्र० जी ने सामायिक ग्रहण की। उसी समय परम पूज्य आचार्य श्री व माताजी वगैरह सभी संघ को आपके पुत्र नेमीचंदजी बुला लाये इस तरह सबके समक्ष सामायिक में ६ बजकर २०. मिनट पर मिती फागुण बदी ७ शुक्रवार को आपकी आत्मा नश्वर शरीर का त्याग करके स्वर्गारोहण कर गई। आपने अन्त समय २१००० इकीस हजार रुपये का दान घोषित किया।

इस प्रकार सेठ ब्रह्मचारी दीपचंदजी ने अपना जीवन धर्म साधन करते हुये व्रतों को निरतीचार पालन करते हुये अन्तमें समाधि मरण करके मनुष्य भवको सफल बना लिया आपके छोटे भाई सेठ ग्यानीलाल जी का सं० २००६ में स्वर्गवास होगया था सबसे छोटे श्रीमान सेठ हीरालाल जी मोजूद हैं जो सरल स्वभावी हैं धर्मध्यान साधन में संलग्न है। श्रीमान सेठ केशरीमलजी (चरित्रनायक के भतीजे) का भी गत वर्ष २०२० में वियोग होगया।

आप (ब्र० सेठ दीपचन्दजी) के दो सुपुत्र हैं। उनका नाम सेठ चांदमलजी, सेठ नेमिचन्द जी बडजात्या है सेठ चांदमल जी बडजात्या कलकत्ता में भंवरीलाल चांदमल नामसे जूटका थोक व्यापार करते हैं। आपके एक पुत्र पारसमल है जो गुरुभक्त पितृभक्त धर्मात्मा है। सेठ नेमिचंदजी नागौरमें व्यापार करते हैं। आपके २ पुत्र हुकमचन्द प्रकाशचंद हैं, जो धार्मिक स्वभाव के हैं यहां एक बात और कह देना उचित है कि-आपकी दोनों पुत्रवधू भी धार्मिक मुनिभक्त आहार दान में प्रवीण सास ससुर जेठ देवर में अति भक्ति स्नेह वाली हैं यही कारण है कि ब्र० दीपचन्दजी आहार दानादि धार्मिक क्रियाओंको बडे, सुखसे पालन करते रहे। इसतरह ब्र० सेठ दीपचंदजीने अपने पूर्वोपार्जित पुण्योदय से मनुष्य पर्याय की समस्त सुविधाएं प्राप्त कीं। श्रेष्ठ सदाचारी आज्ञाकारी भ्राता स्त्री पुत्र पौत्र पुत्रवधू कन्या आदि से सुशोभित कुटुम्ब पाया. न्यायोपार्जित लक्ष्मी की प्राप्ति कर उसका सदुपयोग चारों प्रकार के दानों में किया- अपने नश्वर शरीर से रत्नत्रय. (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र) का आराधन कर अविनश्वर पद प्राप्त करने में आगे कदम बढाया।

अनुकरणीय पितृभक्ति और ज्ञान दान

सेठ दीपचंदजी के आज्ञाकारी धर्माचरण में सुयोग्य दो पुत्र चांदमल जी और नेमिचंदजी बडजात्या हैं। आप लोग निर्ग्रन्थ दि० जैन मुनिराजों की भक्तिमें सदा तन मन धनसे तत्पर रहते हैं। सालमें एक बार अवश्य ही श्री आचार्य संघ में जाकर कुछ दिनोंतक वैयावृत्य आहारदान आदि किया करते हैं छोटे पुत्र सेठ नेमिचंदजी बडजात्या तो शास्त्र चर्चाओं मे साधार भाग लिया करते हैं अच्छी शंका प्रशंकाए किया करते हैं। दोनों भाई परस्पर एक मत से सब काम किया करते हैं। यही कारण है कि- अपने पूज्य पिताजी की स्मृति चिरस्थायी बनाने के लिये साढे चार हजार ४५०० रु० का दान श्री शांतिसागर जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था (श्री महावीरजी) को दिया है जिससे प्रथम वार

पंचास्तिकाय प्राभृत का

प्रकाशन किया है। इसकी न्योछावर लागत मात्र अति अल्प रखी गई है। "संस्थाका एक नियम है कि-कोई दानी पुरुष अपने वा परिवारके किसी मनुष्यकी स्मृति चिरस्थायी करने के लिये दि० जैन ग्रन्थों के प्रकाशन में द्रव्य लगादेगा और उन ग्रंथोंकी विक्रीसे जो द्रव्य वापिस आवेगा उससे दूसरी वार

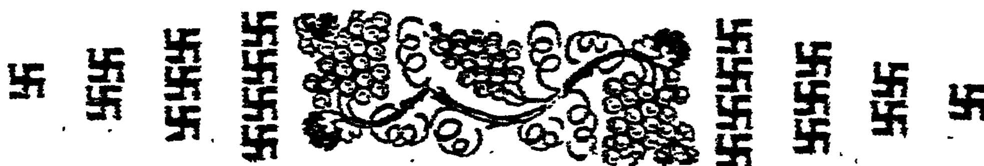
दोसरी वार आदि बराबर ग्रन्थ छपाना चाहेगा तो संस्था ग्रन्थ प्रकाशन तथा विक्रयका प्रबन्ध कर देगी और उनका हिसाव किताव उनकी द्रव्यसे छपे ग्रन्थ के नामसे रखेगी । इस द्रव्यको दाता वापिस न लेसकेंगे, केवल ग्रन्थ प्रकाशन ही होता रहेगा।

इसी नियमके अन्तर्गत इस श्री पंचास्तिकाय प्राभृत का प्रकाशन किया गया है जिससे सदा ग्रंथ प्रकाशन होता रहेगा और सेठ ब्र० दीपचन्द जी की स्मृति स्थिर बनी रहेगी।

इस ग्रंथकी लागतका हिसाव

कागज रीम ७०	दर २८)	=	१९६०)
छपाई फार्म ५५	दर ३०)	=	१६५०)
पक्की सुनहरी कपड़े की			
जिल्द का दाम		=	६५०)
कार्यालय खर्च	दर १०) फार्म	=	५५०)
फोटो छपाई			५०)
कमीशन जो दी जायेगी १२॥) प्रतिशत उसका दाम			६२५)
	कुल जोड		५७७५)

ग्रंथ और प्रतिलिपि(प्रूफ) संशोधन निः स्वार्थ किया गया अतः कीमत लागतसे कम रखी गई ५) पांचरुपया मात्र



वक्तव्य

श्री १००८ वर्धमान वीर भगवान्के सिद्ध होजाने के लगभग ६०० छह सौ वर्ष वीत जाने पर मगध विहार में भयंकर दुर्भिक्ष पडा और जो महाव्रती निर्ग्रंथ साधु उस दुर्भिक्ष के संकट से वचने के लिये सुभिक्ष देश दक्षिण में विहार कर गये, वे तो अपने अठाईस मूल गुणों को श्री वीरवाणी के अनुसार निर्दोष पालन करने में समर्थ हुए और जो मगध में ही रह गये वे अति भयंकर दुर्भिक्ष की मार न सह सके और निर्ग्रंथ से सग्रंथ होगये। उन्होंने श्रीमहावीर भगवानका उपदिष्ट अचेलकत्व (दिगम्बरपना) छोड दिया, वस्त्र धारण कर लिये तथा वीतराग जिनवाणी में भी मान कषाय वश कुछ परिवर्तन कर शास्त्रों को विकृत कर दिया। ऐसे ही समय में आचार्य कुन्दकुन्द देव का आविर्भाव हुआ और उन्होंने अपने ज्ञान और तपके प्रभाव से महावीर भगवान के मूल उपदिष्ट धर्मका अध्ययन किया, दक्षिण से उत्तर विहार कर दिगम्बर जैन धर्मका प्रसार किया। उस समय की प्रचलित भाषा प्राकृत में अनेक ग्रंथोंकी रचना श्रीमहावीर भगवान की दिव्यध्वनि अनुसार की।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को धारण कर भव्यजन अपना कल्याण कर परमात्मा वन सकें इसलिये समयप्राभृत, पंचास्तिकाय संग्रह (प्राभृत) प्रवचनसार इन तीन ग्रंथोंकी प्रधानतया रचना की तथा इनके सहायक अन्य प्राभृतों (मोख पाहुड–मोक्ष प्राभृत आदि) की रचना की।

सर्वज्ञ वीतराग ने जिन तत्त्वोंका वर्णन किया है उनका ज्ञान कर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। कोई मनुष्य जिनेंद्र वाणीका ज्ञान तो कर ले परन्तु उसका श्रद्धान न करे, तो कोई कार्य की सिद्धि नही होती, यही कारण है कि–ग्यारह अंग नौ पूर्व तक जिन वाणी का पाठी भी संसार में ही रुलता रहता है और 'तुष माष भिन्न' मात्र अल्प ज्ञानका श्रद्धानी संसार से पार हो जाता है। इसी लिये तत्त्वज्ञान की श्रद्धा रूप सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।

सर्वज्ञ भगवान के उपदिष्ट तत्त्व कौन कौन से हैं इसका ज्ञान करना भी आवश्यक है कारण तत्त्वोंका ज्ञान विना किये श्रद्धान किसका करे? अल्पज्ञ कषाययुक्त व्यक्तियों के उपदिष्ट असत् पदार्थोंका श्रद्धान करलेने से भी आत्माका हित नहीं होता, आचार्य कुन्दकुन्द देवने इस पंचास्तिकाय प्राभृत में सर्वज्ञ वीतराग भगवान द्वारा उपदिष्ट सात तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय और काल द्रव्यका विशद वर्णन किया है।

इसका स्वाध्याय करना सर्वसाधारण को सुलभ हो जाय और आचार्य का अभिप्राय सही सही समझ में आजाय इसलिये दो संस्कृत टीकाएं और उनका हिंदी शब्दार्थ इसमें छपाया गया है।

प्रतिलिपि संशोधन में दृष्टि दोषसे अशुद्धि रह जाना संभव है इसलिये त्रुटि परिमार्जन कर स्वाध्याय करें। मूल और शब्दार्थ का मिलान सिद्धांतभूषण पं० रतनचंदजी मुख्तार साहव ने निस्वार्थ भावसे परिश्रम पूर्वक किया है इसके लिये उन्हें धन्यवाद है।

निवेदक–

गृहविरत ब्रह्मचारी श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ

महामंत्री—संस्था

श्रीशांतिवीर नगर

श्रीमहावीर जी

कार्तिक, वीर सं० २४६१

पंचास्तिकाय प्राभृत की विषय सूची

स मा प्त

श्री पंचास्तिकाय प्राभृतस्थ मूल गाथाएं।

इंदसदवंदियाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं । अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं १
समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं । एसो पणमिय सिरसा समयमिमं सुणह वोच्छामि
समवाओ पंचण्हं समउ त्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं। सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं
जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं । अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता
जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं । ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं ॥ ५ ॥
ते चेव अत्थिकाया तेकालियभावपरिणदा णिच्चा । गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ६
अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स । मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति
सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया । भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥८॥
दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं । दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो ९
दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं । गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥ १० ॥
उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो । विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया
पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि । दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति
दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि । अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा॥ १३ ॥
सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं । दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि
भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो । गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति
भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो । सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा
मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा । उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो
सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो । उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसु त्ति पज्जाओ ॥ १८ ॥
एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो । तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो ॥ १९ ॥
णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा । तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो २०
एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च । गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो २१
जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा । अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स
सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च । परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो २३
ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य। अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति
समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती। मासोदुअयणसंवच्छरो त्ति कालो परायत्तो

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता। पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो ॥ २६ ॥

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता। भोत्ता य देहमेत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो
कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता। सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं
जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य। पप्पोदि सुहमणंतं अव्वाबाधं सगममुत्तं २६
पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं। सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥ ३० ॥

अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे। देसेहिं असंखादा सिय लोगं सव्वमावण्णा॥
केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा। विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा
जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं। तह देही देहत्थो सदेहमित्तं पभासयदि ३३
सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो। अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ॥ ३४ ॥

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स। ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा
ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो। उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥ ३६ ॥

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च। विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥ ३७ ॥

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को। चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण
सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं। पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा
उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो। जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि
आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि। कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥ ४१ ॥

नीचे लिखीं छह गाथाएं आचार्य जयसेन कृत तात्पर्यवृत्तिमें अधिक हैं—

मदिणाणं पुण तिविहं उवलद्धी भावणं च उवओगो। तह एव चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं ॥ १ ॥
सुदणाणं पुण णाणी भणंति लद्धीय भावणा चेव। उवओगणयवियप्पं णाणेण य वत्थु अत्थस्स ॥ २ ॥
ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च। तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं ॥ ३ ॥
विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं। एदे संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स ॥ ४ ॥
णाणं णेयणिमित्तं केवलणाणं ण होदि सुदणाणं। णेयं केवलणाणं णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो ॥५॥
मिच्छत्ता अण्णाणं अविरदिभावो य भावआवरणा। णेयं पडुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च ॥ ६ ॥

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं। अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पएणत्त'॥ ४२॥

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि। तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहिं॥ ४३॥

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे। दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति
अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णत्त'। णिच्छंति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं॥
ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा। ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते॥
णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं। भण्णंति तह पुधत्त' एयत्त' चावि तच्चण्हू॥ ४७॥

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स। दोण्हं अचेदणत्त' पसजदि सम्मं जिणावमदं
ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी। अण्णाणीति च वयणं एगत्तप्पसाधगं होदि॥ ४९॥

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य। तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धि त्ति णिद्दिठ्ठा
वएणरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसेहिं। दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति॥
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि। ववदेसदो पुधत्त' कुव्वंति हि णो सभावादो
जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो। सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पधाणा य॥
एवं सदो विणासो असदो जीवस्स होइ उप्पादो। इदि जिणवरेहिं भणिदं अण्णोण्णविरुद्ध-मविरुद्धं॥ ५५॥

णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी। कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं
उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे। जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु विच्छिण्णा॥ ५६॥

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं। सो तस्स तेण कत्ता हवदि त्ति य सासणे पढिदं
कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा। खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं
भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता। ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं॥ ५९॥

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि। ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं॥ ६०॥

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स। ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं
कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं। जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं। किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च
देदि फलं ॥ ६३ ॥
ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो। सुहमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविधेहिं
अत्ता कुणदि सभावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं। गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा
जह पुग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहि खंधणिव्वत्ती। अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि ॥
जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा। काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुञ्जन्ति
तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स। भोत्ता हु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं
एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं। हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥ ६९ ॥
उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो। णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि
धीरो ॥ ७० ॥
एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो होदि। चदुचंकमणो भणिदो पंचग्गगुणप्पधाणो य
छक्कापक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभङ्गसब्भावो। अट्ठासओ णवट्ठो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को। उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति
खंधा य खंधदेसा खंधपदेसा य होंति परमाणू। इति ते चदुव्वियप्पा पुग्गलकाया मुणेयव्वा ॥
खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसो त्ति। अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेव अविभागी ॥
बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पुग्गलो त्ति ववहारो। ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं ॥
सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू। सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ॥
आदेसमेत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु। सो णेयो परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो ७८
सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो। पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादिगो णियदो ७९
णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेदा। खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं
एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं। खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि ॥ ८१ ॥
उवभोज्जमिंदिएहिं य इन्दियकाया मणो य कम्माणि। जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पुग्गलं जाणे*
धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं। लोगागाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं ॥ ८३ ॥
अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं। गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं
उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहकरं हवदि लोए। तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणाहि
जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं। ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव
जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी। दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य

---

* नीचे लिखी एक गाथा आचार्य जयसेन कृत तात्पर्य वृत्तिमें अधिक है—
पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय कम्मपाओग्गा। कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति ८२(अ)

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स। हवदि गदिस्स प्पसरो जीवाणं पुग्गलाणं च ८८

विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि। ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च। जं देदि विवरमखिलं तं लोगे हवदि आगासं जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा। तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि। उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठन्ति किध तत्थ जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं। तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थि त्ति जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं। पसजदि अलोगहाणी लोगस्स च अंतपरिवड्ढी तम्हा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं। इदि जिणवरेहिं भणिद लोगसहावं सुणंताणं धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा। पुधगुवलद्धिविसेसा करिंति एगत्तमण्णत्तं ९६ आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा। मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ९७ जीवा पुग्गलकाया तह सक्किरिया हवंति ण य सेसा। पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु ९८

जे खलु इन्दियगेज्झा विसया जीवेहिं होंति ते मुत्ता। सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो। दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो। उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥१०१॥ एदे कालागासा धम्माधम्मा य पुग्गला जीवा। लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता। जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्जदो णिहदमोहो। पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरापरो जीवो अभिवंदिदूण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं। तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं। मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥१०६॥ सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं। चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं १०७ जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं। संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठा १०८ जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा। उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा १०९ पुढवी य उदगमगणी वाउ वणप्फदि जीवसंसिदा काया। देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥ ११० ॥

नीचे लिखी एक गाथा आचार्य जयसेन कृत तात्पर्य वृत्तिमें अधिक है—

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावदो भावे। पुरिसस्साभिणिवोधे दंसणसद्दो हवदि जुत्ते ॥ १ ॥

ति त्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा। मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया
एदे जीवणिकाया पंचविधा पुढविकाइयादीया। मणपरिणामविरहिदा जीवा एगेंदिया भणिया
अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया। जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया
संबुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी। जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवा
जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छयादिया कीडा। जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा ११५
उद्दंसमसयमक्खियमधुकरिभमरा पतंगमादीया। रूवं रसं च गंधं फासं पुण ते विजाणंति ११६
सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू। जलचरथलचरखचरा वलिया पंचेंदिया जीवा
देवा चउणिणकाया मणुया पुन कम्मभोगभूमीया। तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा
खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे च ते वि खलु। पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा
एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा। देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा ये
ण हि इन्दियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता। जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवंति ॥ १२१ ॥

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो। कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥ १२२ ॥

एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं। अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं
आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा। तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा १२४
सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं। जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ॥ १२५ ॥

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य। पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू १२६
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं। जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ १२७ ॥
जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो। परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते। तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि। इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा
मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि। विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥ १३१ ॥

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति हवदि जीवस्स। दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो
जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं। जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि
मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि। जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि

रागो जस्स पसत्थो अनुकंपासंसिदो य परिणामो । चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥ १३५ ॥
अरहंतसिद्ध साहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा । अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥ १३६ ॥
तिसिदं वुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो । पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥ १३७ ॥
कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज । जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं वुधा वेंति
चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु । परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि
सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अत्तरुद्दाणि । णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति
इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठु मग्गम्हि । जावत्तावत्तेहिं पिहियं पावासवच्छिद्दं
जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु । णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥ १४२ ॥
जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स । संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स
संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे वहुविहेहिं । कम्माणं णिज्जरणं वहुगाणं कुणदि सो णियदं
जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं । मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं
जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो । तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायए अगणी ॥ १४६ ॥
जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा । सो तेण हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण
जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो । भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो
हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं । तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण वज्झंति १४९
हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो । आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो ॥ १५० ॥
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य । पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं १५१
दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं । जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स
जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि । ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो
जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं । चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं
जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ । जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥ १५५ ॥

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं । सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो
आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण । सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवंति
जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण । जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो
चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा । दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो
धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं । चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति १६०
णिच्छयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा । ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति ॥ १६१ ॥

जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं । सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि ॥१६२॥

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि । इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥ १६३ ॥

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि । साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥ १६४ ॥

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो । हवदि त्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो ॥ १६५ ॥

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो । बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि
जस्स हिदयेणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो । सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि
धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं । रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥ १६८ ॥

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो । सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि ॥ १६९ ॥

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स । दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपओत्तस्स १७०
अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण । जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि
तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि । सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि
मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया । भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं १७३

समाप्त



❀ श्री सर्वज्ञवीतरागाय नमः ❀

श्रीमद्भगवत्-कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत

श्रीपंचास्तिकाय प्राभृत

श्रीमद् अमृतचंद्रसूरि—विरचित समयव्याख्या,
तथा श्रीजयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति नामक
दो संस्कृतटीका और उनका हिंदी अनुवाद



[१]

षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय वर्णन

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचिता समयव्याख्या

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे ।
नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने परमात्मने ॥ १ ॥

मूल गाथाओं का तथा समयव्याख्या नामक टीका का

हिन्दी अनुवाद

प्रथम ही श्रीमदाचार्य अमृतचन्द देव पाप विनाशक सुख विधायक मंगलाचरण करते हुए परमात्मा को नमस्कार करते हैं—

(श्लोकार्थः—) जिसमें सहज-सदा साथ रहने वाले आनन्द और चैतन्य का पूर्ण प्रकाश—तेज प्रकट होगया है, जो सबसे महान है तथा अनेकान्त में स्थित जिसकी महिमा है, उस परमात्मा को नमस्कार हो। (१)

दुर्निवारनयानीकविरोधध्वंसनौषधिः ।
स्यात्कारजीविता जीयाज्जैनी सिद्धान्तपद्धतिः ॥ २ ॥
सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया ।
अथातः समयव्याख्या संक्षेपेणाऽभिधीयते ॥ ३ ॥
पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणम् ।
पूर्वं मूलपदार्थानामिह सूत्रकृता कृतम् ॥ ४ ॥
जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम् ।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता ॥५॥
ततस्तत्त्वपरिज्ञानपूर्वेण त्रितयात्मना ।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा ॥ ६ ॥

(अब टीकाकार आचार्यदेव श्लोक द्वारा जिनवाणी की स्तुति करते हैं:)

(श्लोकार्थः— स्यात्कार जिसका जीवन है, जो नयसमूह के दुर्निवार विरोध का नाश करनेवाली औषधि है ऐसी जैनी (जिनभगवान की) सिद्धान्तपद्धति जयवन्त हो ! (२)

(अब टीकाकार आचार्य इस पंचास्तिकायप्राभृत नामक शास्त्र की टीका रचनेकी प्रतिज्ञा करते हैं:)

(श्लोकार्थः——) अब यहां से, जो सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योतिकी जननी है ऐसी द्विनयाश्रित (दो नयों का आश्रय करनेवाली) समयव्याख्या (समयव्याख्या नामक टीका) संक्षेप से कही जाती है। (३)

(अब, तीन श्लोकों द्वारा टीकाकार आचार्यदेव अत्यन्त संक्षेप में यह बतलाते हैं कि इस पंचास्तिकायप्राभृत नामक शास्त्रमें किन—किन विषयोंका निरूपण है)

(श्लोकार्थः——) यहां प्रथम सूत्रकर्ता ने मूल पदार्थों का पंचास्तिकाय एवं षड्द्रव्य के प्रकार से प्ररूपण किया है। (४)

(श्लोकार्थः—) पश्चात् (दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप नव पदार्थों की—कि जिनके वर्त्म अर्थात् कार्य भिन्न—भिन्न प्रकार के हैं उनकी—व्यवस्था प्रतिपादित की है। (५)

(श्लोकार्थः—) पश्चात् (दूसरे अधिकारके अन्तमें), तत्त्वके परिज्ञान पूर्वक [पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य तथा नव पदार्थों के यथार्थ ज्ञानपूर्वक) त्रयात्मक मार्ग से [सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक मार्ग से) कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्षप्राप्ति कही है। (६)

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः ।

स्वसंवेदनसिद्धाय जिनाय परमात्मने ।
शुद्धजीवास्तिकायाय नित्यानंदचिदे नमः ॥ १ ॥

अथ श्रीकुमारनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्यैः प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा वीतरागसर्वज्ञश्रीमंदरस्वामितीर्थकरपरमदेवं दृष्ट्वा तन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवाणीश्रवणावधारितपदार्थाच्छुद्धात्मतत्त्वादिसारार्थं गृहीत्वा पुनरप्यागतैः श्रीमत्कुन्डकुन्दाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैरन्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वगौणमुख्यप्रतिपत्त्यर्थं, अथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्यार्थव्याख्यानं कथ्यते ।

(उपोद्घातः) तद्यथा–प्रथमतस्तावत् "इंदसयवंदियाणं" मित्यादिपाठक्रमेणैकादशोत्तरशतगाथाभिः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनरूपेण प्रथमो महाधिकारः, अथवा स एवामृतचन्द्रटीकाभिप्रायेण त्र्यधिकशतपर्यन्तश्च । तदनन्तरं "अभिवंदिऊण सिरसा" इत्यादि पञ्चाशद्गाथाभिः सप्ततत्त्वनवपदार्थव्याख्यानरूपेण द्वितीयो महाधिकारः, अथ स एवामृतचन्द्रटीकाभिप्रायेणाष्टाचत्वारिंशद्गाथापर्यन्तश्च । अथानन्तरं जीवस्वभावो इत्यादि विंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गमोक्षस्वरूपकथनमुख्यत्वेन तृतीयो महाधिकार इति समुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिर्महाधिकारत्रयं ज्ञातव्यं । तत्र महाधिकारे पाठक्रमेणान्तराधिकाराः कथ्यन्ते । तद्यथा–एकादशोत्तरशतगाथामध्ये "इंदसय" इत्यादि गाथामादिंकृत्वा गाथासप्तकं समयशब्दार्थपीठिकाव्याख्यानमुख्यत्वेन, तदनन्तरं चतुर्दशगाथाद्रव्यपीठिकाव्याख्यानेन, अथ गाथापञ्चकं कालद्रव्यमुख्यत्वेन, तदनन्तरं त्रिपञ्चाशद्गाथा जीवास्तिकायकथनरूपेण, अथ गाथादशकं पुद्गलास्तिकायमुख्यत्वेन, तदनन्तरं गाथासप्तकं धर्माधर्मास्तिकायव्याख्यानेन, अथ गाथासप्तकमाकाशास्तिकायकथनमुख्यत्वेन, तदनन्तरं गाथाष्टकं चूलिकोपसंहारव्याख्यानमुख्यत्वेन कथयतीत्यष्टभिरन्तराधिकारैः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रथममहाधिकारे समुदायपातनिका । तत्राष्टान्तराधिकारेषु मध्ये प्रथमतः सप्तगाथाभिः समयशब्दार्थपीठिका कथ्यते–तासु सप्तगाथासु मध्ये गाथाद्वयेनेष्टाधिकृताभिमतदेवतानमस्कारो मङ्गलार्थः, अथ गाथात्रयेण पञ्चास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं, तदनन्तरं एकगाथया कालसहितपञ्चास्तिकायानां द्रव्यसंज्ञा, पुनरेकगाथया संकरव्यतिकरदोषपरिहारमिति समयशब्दार्थपीठिकायां स्थलत्रयेण समुदायपातनिका ॥

तात्पर्यवृत्ति । हिंदी अनुवादक कृत मंगलाचरण ।

वंदों वीर महाप्रभु, सन्मति सुख दातार । वर्द्धमान अतिवीरको, महावीर गुण धार ॥ १ ॥
वृषभ आदि तेईस जिन, भरत तीर्थ कर्तार । तिनके वंदों युग चरण, पावन परम उदार ॥ २ ॥
सर्व सिद्ध सुखकार हैं, स्वातम तत्त्व मंझार । सुधा–सिंधुमें नित मगन, वन्दों वारम्वार ॥३॥
आचारज उवझाय मुनि, संगरहित शम धार । क्षमा आदि धारक सतत, निज गुण मगन अपार
कुन्दकुन्द मुनिराजके, चरण ध्यान दातार । समयसारमें रति करैं, सुमरों सुमति प्रचार ॥५॥

प्राकृत गाथामें रच्यो, ग्रन्थ काय पंचास्ति । जयसेनाचारज कियो, संस्कृतवृत्ति प्रशस्ति ॥६॥
बालबोध भाषा नहीं, मर्म न समझो जाय । तातें उद्यम हम किया, जिन चरणाम्बुज ध्याय ७

भावार्थ- अपने स्वानुभवके द्वारा सिद्धिको प्राप्त, कर्म विजयी, शुद्ध जीवमई व नित्य आनंदको भोगनेवाले परमात्माको मैं नमस्कार करता हूं।

उत्थानिका-यह कथा प्रसिद्ध है कि श्री कुमारनंदि सिद्धांतदेवके शिष्य श्रीमत् कुन्दकुन्दाचार्य देव जिनके पद्मनंदि आदि (ऐलाचार्य, वक्रग्रीव, गृद्धपिच्छ) नाम भी प्रसिद्ध हैं पूर्वविदेहमें गए। वहां वीतराग सर्वज्ञ श्रीमंदरस्वामी तीर्थंकर परमदेवके दर्शन किये तथा उनके मुखकमलसे प्रगट दिव्यवाणीको सुन करके व उससे पदार्थोंको समझकर शुद्ध आत्मीकतत्त्व सार अर्थ ग्रहण किया फिर लौटकर उन्होंने अंतरंगतत्त्व और बहिरंगतत्त्वको गौण या मुख्यपने बतानेके लिये अथवा शिवकुमार महाराजको आदि लेकर संक्षेप रुचिके धारक शिष्योंको समझानेके लिये इस पंचास्तिकाय प्राभृत शास्त्रको रचा। इसी ग्रन्थका तात्पर्य अर्थरूप व्याख्यान यथाक्रमसे अधिकारोंकी शुद्धिके साथ किया जाता है।

उपोद्‌घात-पहले ही "इंदसयवंदियाणं" इत्यादि पाठके क्रमसे १११ गाथाओंसे पंचास्तिकाय छः द्रव्यको कहते हुए प्रथम महा अधिकार है अथवा यही अधिकार श्री अमृतचन्द्रकी टीकाके अभिप्रायसे एकसौ तीन १०३ गाथा पर्यंत है। इसके पीछे "अभिवंदिऊण सिरसा" इत्यादि ५० पचास गाथाओंसे सात तत्त्व नव पदार्थके व्याख्यान रूपसे दूसरा महा अधिकार है अथवा यही श्री अमृतचन्द्रकी टीकाके अभिप्रायसे ४८ गाथा पर्यंत ही है। इसके पीछे "जीवस्वभावो" इत्यादि वीस गाथाओंसे मोक्षमार्ग व मोक्षका स्वरूप कहनेकी मुख्यतासे तीसरा महा अधिकार है। इस तरह समुदायसे एकसौ इक्यासी गाथाओंके द्वारा तीन महा अधिकार जानने चाहिये। अब इस प्रथम महा अधिकारमें पाठके क्रमसे अंतर अधिकार कहे जाते हैं। एक सौ ग्यारह गाथाओंके मध्यमें "इन्दसय" इत्यादि गाथा सात तक समय शब्दका अर्थ पीठिकाके व्याख्यानकी मुख्यतासे है फिर चौदह गाथाओंमें द्रव्योंका स्वरूप पीठिकाके व्याख्यान द्वारा किया है। फिर पांच गाथा कालद्रव्यकी मुख्यतासे हैं। पीछे त्रेपन गाथाएं जीवास्तिकायको कथन करती हैं। फिर दस गाथाओंमें पुद्गलास्तिकायकी मुख्यता है। पश्चात् सात गाथाएं धर्म अधर्म अस्तिकायके कथनकी व्याख्यानरूपसे हैं फिर सात गाथाएं आकाश अस्तिकायके कथनकी मुख्यतासे हैं। पश्चात् आठ गाथाएं चूलिकारूप संक्षेप व्याख्यानकी मुख्यतासे कही हैं। इस तरह आठ अंतर अधिकारोंसे पंचास्तिकाय छः द्रव्यको कहते हुए प्रथम महाअधिकारमें समुदाय पातनिका हुई।

अथ सूत्रावतार:-

अथात्र 'नमो जिनेभ्यः' इत्यनेन जिनभावनमस्काररूपमसाधारणं शास्त्रस्यादौ मङ्गलमुपात्तम्।

गाथा—१

इंदसदवंदियाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥ १ ॥

इन्द्रशतवन्दितेभ्यस्त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः।
अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः ॥ १ ॥

अनादिना संतानेन प्रवर्त्तमाना अनादिनैव संतानेन प्रवर्त्तमानैरिन्द्राणां शतैर्वन्दिता ये इत्यनेन सर्वदैव देवाधिदेवत्वात्तेषामेवासाधारणनमस्कारार्हत्वमुक्तम्। त्रिभुवनमूर्ध्वाधोमध्यलोकवर्ती समस्त एव जीवलोकस्तस्मै निर्व्याबाधविशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भोपायाभिधायित्वाद्धितं, परमार्थरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरं, निरस्तसमस्तशंकादिदोषास्पदत्वाद्विशदं वाक्यं दिव्यो ध्वनिर्येषामित्यनेन समस्तवस्तुयाथात्म्योपदेशित्वात् प्रेक्षावत्प्रतीक्ष्यत्वमाख्यातम्। अन्तमतीतः क्षेत्रानवच्छिन्नः कालानवच्छिन्नश्च परमचैतन्यशक्तिविलासलक्षणो गुणो येषामित्यनेन तु परमाद्भुतज्ञानातिशयप्रकाशनादवाप्तज्ञानातिशयानामपि योगीन्द्राणां वन्द्यत्वमुदितम्। जितो भव आजवंजवो यैरित्यनेन तु कृतकृत्यत्वप्रकटनात्त एवान्येषामकृतकृत्यानां शरणमित्युपदिष्टम्। इति सर्वपदानां तात्पर्यम् ॥ १ ॥

अब इन आठ अंतर अधिकारोंमेंसे पहले ही सात गाथाओंसे समय शब्दके अर्थकी पीठिका कहते हैं। इन सात गाथाओंमेंसे दो गाथाओंमें इष्ट व मान्य व अधिकारप्राप्त देवताको नमस्काररूप मंगलाचरण है। फिर तीन गाथाओंसे पंचास्तिकायका संक्षेप व्याख्यान है। फिर एक गाथासे काल सहित पंचास्तिकायोंको द्रव्यसंज्ञा है। फिर एक गाथासे संकर व्यतिकर दोषका त्याग है। इस तरह समय शब्दार्थकी पीठिकामें तीन स्थलके द्वारा समुदायपातनिका कही है।

गाथा १—

अन्वयार्थ:— (इन्द्रशतवन्दितेभ्यः) जो सौ इन्द्रों से वन्दित हैं, (त्रिभुवन—हितमधुरविशद-वाक्येभ्यः) तीन लोक को हितकर, मधुर एवं विशद (निर्मल, स्पष्ट) जिनकी वाणी, है, (अन्तातीत-गुणेभ्यः) अन्त से अतीत (रहित) अनन्त गुण जिन में हैं और (जितभवेभ्यः) जिन्होंने भव (संसार) पर विजय प्राप्त की है, ऐसे (जिनेभ्यः) जिनों को (नमः) नमस्कार हो।

समयटीकानुवाद-यहां (इस गाथा में) "जिनों को नमस्कार हो" ऐसा कहकर शास्त्रके आदि में जिनको भावनमस्काररूप असाधारण मंगल कहा है। "जो अनादि प्रवाह से प्रवर्तते [चले आरहे] हुये अनादि प्रवाह से ही प्रवर्तमान (-चले आ रहे) सौ इन्द्रों से वन्दित हैं-ऐसा कहकर सदैव देवाधिदेवपनेके कारण वे ही [जिनदेव ही] असाधारण नमस्कार के योग्य हैं-ऐसा कहा। 'जिनकी वाणी अर्थात् दिव्यध्वनि तीन लोक को-ऊर्ध्व-अधो-मध्य लोकवर्ती समस्त जीवसमूहको निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहनेवाली होने से हितकर है, परमार्थरसिक जनों के मनको हरनेवाली होने से मधुर है और समस्त शंकादि दोषों के स्थान दूर कर देने से विशद [निर्मल, स्पष्ट] है"—ऐसा कहकर [जिनदेव] समस्त वस्तुके यथार्थ-स्वरूप के उपदेशक होने से विचारवंत बुद्धिमान पुरुषोंके बहुमानके योग्य हैं [अर्थात् जिनका उपदेश विचारवंत बुद्धिमान पुरुषों को बहुमानपूर्वक विचारना चाहिये ऐसे हैं) ऐसा कहा। अनन्त—क्षेत्र से अंत रहित और काल से अंत रहित परमचैतन्यशक्तिके विलासस्वरूप गुण जिनके वर्तते हैं ऐसा कहकर [जिनों को] परम अद्भुत ज्ञानातिशय प्रगट होनेके कारण ज्ञानातिशय को प्राप्त योगीन्द्रों से भी वंद्य हैं ऐसा कहा। 'भव अर्थात् संसार पर जिन्होंने विजय प्राप्त की है" ऐसा कहकर कृतकृत्यपना प्रगट हो जाने से वे ही (जिन ही) अन्य अकृतकृत्य जीवोंको शरणभूत हैं, ऐसा उपदेश दिया।—ऐसा सर्व पदों का तात्पर्य है।

तात्पर्यवृत्तिः

अथ प्रथमत इन्द्रशतवन्दितेभ्य इत्यादिना जिनभावनमस्काररूपमसाधारणं शास्त्रस्यादौ मंगलं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति,—"णमो जिणाणं" मित्यादिपदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते, णमो जिणाणं—नमः नमस्कारोऽस्तु। केभ्यः ? जिनेभ्यः। कथंभूतेभ्यः ? इंदसदवंदियाणं—इन्द्रशत वन्दितेभ्यः। पुनरपि कथंभूतेभ्यः ? तिहुवणहिदमहुरविसदवक्काणं—त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः। पुनरपि किंविशिष्टेभ्यः। अंतातीदगुणाणं—अन्तातीतगुणेभ्यः। पुनरपि किंविशिष्टेभ्यः ? जिदभवाणं—जितभवेभ्यः इति क्रियाकारकसंबन्धः। इन्द्रशतवन्दितेभ्यः त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः। "पदयोर्विवक्षितः संधिर्न समासान्तरगयो" रिति परिभाषासूत्रबलेन विवक्षितस्य संधिर्भवतीति वचनात्प्राथमिकशिष्यप्रतिसुखबोधार्थमत्र ग्रन्थे संधेर्नियमो नास्तीति सर्वत्र ज्ञातव्यं। एवं विशेषणचतुष्टययुक्तेभ्यो जिनेभ्यो नमः इत्यनेन मंगलार्थमनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारोऽस्त्विति संग्रहवाक्यं। अथैव कथ्यते-इन्द्रशतैर्वन्दिता इन्द्रशतवन्दितास्तेभ्य इत्यनेन पूजातिशयप्रतिपादनार्थं। किमुक्तं भवति—त एवेन्द्रशतनमस्काराही नान्ये। कस्मात् ? तेषां देवासुरादियुद्धदर्शनात्। त्रिभुवनाय शुद्धात्मस्वरूपप्राप्त्युपायप्रतिपादकत्वाद्धितं, वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंजातसहजापूर्वपरमानन्दरूपपारमार्थिकसुखरसास्वादपरमसमरसीभावरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरं चलितप्रतिपत्तिगच्छत्तृणस्पर्शशुक्तिकारजतविज्ञानरूपसंशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन शुद्धजीवास्तिकायादिसप्ततत्त्वनवपदार्थषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकत्वात् अथवा पूर्वापरविरोधादिदोषरहितत्वात् अथवा कर्णाटमागधमालवलाटगौडगुर्जरप्रत्येकं त्रयमित्यष्टादशमहाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषातदन्तर्भेदगतबहुभाषारूपेण युगपत्सर्वजीवानां स्वकी-

यस्त्वकीयभाषाया: स्पष्टार्थप्रतिपादकत्वात्प्रतिपत्तिंकारकत्वात् सर्वजीवानां ज्ञापकत्वात् विशदं स्पष्टं व्यक्तं वाक्यं दिव्यध्वनिर्येषां त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्यास्तेभ्यः । तथा चोक्तं– "यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्ठद्वयं, नो वांछाकलितं न दोषमलिनं नोच्छ्वासरुद्धक्रमं । शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभिस्तन्नः सर्वविदो विनष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥ १ ॥" इत्यनेन वचनातिशयप्रतिपादनेन तद्वचनमेव प्रमाणं न चैकान्तेनापौरुषेयवचनं न चित्रकथाकल्पितपुराणवचनं चेतीत्युक्तं भवति । अन्तातीतद्रव्य क्षेत्रकालभावपरिच्छेदकत्वादन्तातीतं केवलज्ञानगुणः स विद्यते येषां तेऽन्तातीतगुणास्तेभ्य इत्यनेन ज्ञानातिशयप्रतिपादनेन बुद्ध्यादिसप्तर्द्धिमतिज्ञानादिचतुर्विधज्ञानसंपन्नानामपि गणधरदेवादियोगीन्द्राणां वंद्यास्ते भवन्तीत्युक्तं । जितो भवः पञ्चप्रकारसंसार आजवंजवो यैस्ते जितभवास्तेभ्य इत्यनेन घातिकर्मापायातिशयप्रतिपादनेन कृतकृत्यत्वप्रकटनादन्येषामकृतकृत्यानां त एव शरणं नान्य इति प्रतिपादितं भवति । एवं विशेषणचतुष्टययुक्तेभ्यो नमः, इत्यनेन मंगलार्थमनंतज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारः कृतः । इदं विशेषणचतुष्टयं अनेकभवगहनविषयव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः इति व्युत्पत्तिपक्षे श्वेतशंखवत्स्वरूपकथनार्थं अव्युत्पत्तिपक्षे नामजिनव्यवच्छेदनार्थं । एवं विशेष्यविशेषणसंबंधरूपेण शब्दार्थः कथितः । अनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपभावनमस्कारोऽशुद्धनिश्चयनयेन, नमो जिनेभ्य इति वचनात्मकद्रव्यनमस्कारोऽप्यसद्भूतव्यवहारनयेन, शुद्धनिश्चयनयेन स्वस्मिन्नेवाराध्याराधकभाव इति नयार्थोऽप्युक्तः । त एव नमस्कारार्हा नान्ये चेत्यादिरूपेण मतार्थोऽप्युक्तः । इन्द्रशतवन्दिता इत्यागमार्थः प्रसिद्ध एव । अनन्तज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इति भावार्थः । अनेन प्रकारेण शब्दनय मतागमभावार्थः सूचितः अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थं व्याख्यानकाले सर्वत्र योजनीयमिति संक्षेपेण मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारः कृतः । मंगलमुपलक्षणं निमित्तहेतुपरिमाणनामकर्तृरूपाः पञ्चाधिकाराः यथासंभवं वक्तव्याः । इदानीं पुनर्विस्तररुचिशिष्याणां व्यवहारनयमाश्रित्य यथाक्रमेण मंगलादिषडधिकाराणामियत्ता परिमितविशेषणव्याख्यानं क्रियते—

"मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं ।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरिओ ॥ २ ॥"

" वक्खाणउ—व्याख्यातु । स कः कर्ता । आइरिओ—आचार्यः । किं । सत्थं—शास्त्रं पच्छा—पश्चात् । किंकृत्वा पूर्वं । वागरिय—व्याकृत्य व्याख्याय । कान् । छप्पि—षडपि मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं—मंगलनिमित्तहेतुपरिमाणनामकर्तृत्वाधिकाराणीति । तद्यथा—मलं पापं गालयति विध्वंसयतीति मंगलं, अथवा मंगं पुण्यं सुखं तल्लाति आदत्ते गृह्णाति वा मंगलं । चतुष्टयफलं समीह्यमाणा ग्रन्थकाराः शास्त्रस्यादौ त्रिधा देवतायास्त्रेधा नमस्कारं कुर्वन्ति मंगलार्थं ॥ "नास्तिक्यपरिहारस्तु शिष्टाचारप्रपालनम् । पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः ॥ ३ ॥" त्रिधा देवता कथ्यते । इष्टाधिकृताभिमतभेदेन । आशीर्वस्तुनमस्क्रियाभेदेन नमस्कारस्त्रिधा । तच्च मंगलं द्विविधं मुख्यामुख्यभेदेन । तत्र मुख्यमंगलं कथ्यते "आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः । तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं तदविघ्नप्र-

प्रसिद्धये ॥ ४ ॥" तथा चोक्तं । "विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु न क्षुद्रदेवाः परिलंघयन्ति । अर्थान् यथे-ष्टांश्च सदा लभन्ते जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ॥ ५ ॥" "आई मंगलकरणे सिस्सा लहु पारगा हवंतित्ति । मज्झे अव्वुच्छीत्ति विज्जा विज्जाफलं चरिमे ॥६॥" अमुख्यमंगलं कथ्यते—"सिद्धत्थ पुण्णकुंभो वंदणमाला य पंडुरं छत्तं । सेदो वण्णो आदस्स णाय कण्णा य जत्तरसो ॥७॥ वयणियमसंजमगुणेहिं साहिदो जिणव-रेहिं परमट्ठो । सिद्धासण्णा जेसिं सिद्धत्था मंगलं तेण ॥ ८ ॥ पुण्णा मणोरहेहि य केवलणाणेण चावि संपुण्णा । अरहंता इदि लोए सुमंगलं पुण्णकुम्भो दु ॥ ९ ॥ णिग्गमणपवेसम्हि य इह चउवीसंपि वंदणी-ज्जा ते । वंदणमालेत्ति कया भरहेण य मंगलं तेण ॥ १० ॥ सव्वजणणिव्वुदियरा छत्तायारा जगस्स अर-हंता । छत्तायारं सिद्धित्ति मंगलं तेण छत्तं तं ॥ ११ ॥ सेदो वण्णो झाणं लेस्सा य अघाइसेसकम्मं च । अरुहाणं इदि लोए सुमंगलं सेदवण्णो दु ॥ १२ ॥ दीसइ लोयालोओ केवलणाणे तहा जिणिंदस्स । तह दीसइ मुकुरे बिंबु मंगलं तेण तं मुणह ॥१३ ॥ जह वीयराय सव्वण्हु जिणवरो मंगलं हवइ लोए । हयराय-बालकण्णा तह मंगलमिदि विजाणाहि ॥ १४ ॥ कम्मारिजिणेविणु जिणवरेहिं मोक्खु जिणाहिवि जेण । जं चउरंगअरिबलजिणइ मंगलु वुच्चइ तेण ॥ १५ ॥" अथवा निबद्धानिबद्धभेदेन द्विविधं मंगलं तेनैव ग्रन्थ-कारेण कृतं । निबद्धमंगलं यथा—मोक्षमार्गस्य नेतारमित्यादि । शास्त्रान्तरादानीतो नमस्कारोऽनिबद्धमङ्गलं यथा जगत्त्रयनाथायेत्यादि । अस्मिन्प्रस्तावे शिष्यः पूर्वपक्षं करोति—किमर्थं शास्त्रादौ शास्त्रकाराः मंगलार्थं परमेष्ठिगुणस्तोत्रं कुर्वन्ति यदेव शास्त्रं प्रारब्धं तदेव कथ्यतां मंगलमप्रस्तुतं । न च वक्तव्यं,मंगलनमस्कारेण पुण्यं भवति पुण्येन निर्विघ्नं भवति इति । कस्मान्न वक्तव्यमिति चेत् ? व्यभिचारात् । तथाहि—क्वापि नमस्का-रदानपूजादिकरणेपि विघ्नं दृश्यते, क्वापि दानपूजानमस्काराभावेपि निर्विघ्नं दृश्यत इति । आचार्याः परिहा-रमाहुः । तदयुक्तं, पूर्वाचार्या इष्टदेवतानमस्कारपुरस्सरमेव कार्यं कुर्वन्तिः यदुक्तं भवता-नमस्कारे कृते पुण्यं भवति पुण्येन निर्विघ्नं भवति इति न च वक्तव्यं तदप्ययुक्तं । कस्मात् ? देवतानमस्कारकरणे पुण्यं भवति तेन निर्विघ्नं भवतीति तर्कादिशास्त्रे सुव्यवस्थापितत्वात् । पुनश्च यदुक्तं त्वया व्यभिचारो दृश्यते तदप्ययुक्तं । कस्मा-दिति चेत् ? यत्र देवतानमस्कारदानपूजादिधर्मे कृतेपि विघ्नं भवति तत्रेदं ज्ञातव्यं पूर्वकृतपापस्यैव फलं तत्, न च धर्मदूषणं, यत्र पुनर्देवतानमस्कारदानपूजादिधर्माभावेपि निर्विघ्नं दृश्यते तत्रेदं ज्ञातव्यं पूर्वकृतधर्मस्यैव फलं तत्, न च पापस्य । पुनरपि शिष्यो ब्रूते—शास्त्रं मंगलममंगलं वा ? मंगलं चेत्तदा मंगलस्य मंगलं किं प्रयोजनं, यद्यमंगलं, तर्हि तेन शास्त्रेण किं प्रयोजनं । आचार्याः परिहारमाहुः—भक्त्यर्थं मंगलस्यापि मंगलं क्रियते । तथा चोक्तं—"प्रदीपेनार्चयेदर्कमुदकेन महोदधिम् । वागीश्वरीं तथा वाग्भिर्मंगलेनैव मंगलम् ॥१६॥" किं च । इष्टदेवतानमस्कारकरणे प्रत्युपकारं स्मृतं कृतं भवति । तथाचोक्तं—"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसा-दात्परमेष्ठिनः । इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥ १७ ॥" "अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः, स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् । इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्न हि कृतमुप-कारं साधवो विस्मरन्ति ॥ १८ ॥" इति संक्षेपेण मंगलं व्याख्यातं । निमित्तं कथ्यते—निमित्तं कारणं वीतरागसर्वज्ञदिव्यध्वनिशास्त्रे प्रवृत्ते किं कारणं ? भव्यपुण्यप्रेरणात् । तथा चोक्तं "छद्दव्वणवपयत्थे सुय-

णाणाइच्चदिव्वतेएण। परसंतु भव्वजीवा इय सुअरविणो हवे उदओ ॥ १९ ॥" अथ प्राभृतग्रंथे शिवकुमारमहाराजो निमित्तं अन्यत्र द्रव्यसंग्रहादौ सोमाश्रेष्ठ्याद्रि ज्ञातव्यं। इति संक्षेपेण निमित्तं कथितं। इदानीं हेतुव्याख्यानं। हेतुः फलं, हेतुशब्देन फलं कथं भण्यत इति चेत्, फलकारणात्फलमुपचारात्। तच्च फलं द्विविधं प्रत्यक्षपरोक्षभेदात्। प्रत्यक्षफलं द्विविधं साक्षात्परंपराभेदेन। साक्षात्प्रत्यक्षं किं? अज्ञानविच्छित्तिः संज्ञानोत्पत्त्यसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरा इत्यादि। परंपराप्रत्यक्षं किं? शिष्यप्रतिशिष्यपूजाप्रशंसाशिष्यनिष्पत्त्यादि। इति संक्षेपेण प्रत्यक्षफलं। इदानीं परोक्षफलं भण्यते। तच्च द्विविधं-अभ्युदयनिःश्रेयससुखभेदात्। अभ्युदयसुखं कथ्यते। राजाधिराज महाराज अर्धमंडलीक मंडलीक महामंडलीक अर्धचक्रवर्ति सकलचक्रवर्ति, इन्द्र, गणधर देव, तीर्थंकर-परमदेव कल्याणत्रय पर्यंतमिति। राजादिलक्षणं कथ्यते-कोटि प्राकारि अष्टादशश्रेणीनां पतिः स एव मुकुटधरः कथ्यते मुकुटबद्धपंचशताधिपतिरधिराजा, तस्माद् द्विगुणद्विगुणक्रमेण सकलचक्रिपर्यन्त इति अभ्युदयसुखं। अथ निश्रेयससुखं कथ्यते-अर्हंतपदं कथ्यते "खविदघणघाइकम्मा चउतीसातिसया पंचकल्लाणा। अट्ठ महापाडिहेरा अरहंता मंगलं मज्झं ॥ २० ॥ सिद्धपदं कथ्यते "मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का। मंगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदसंसारा ॥२१॥ इति संक्षेपेण अभ्युदयनिश्रेयससुखं कथितं। इदमत्र तात्पर्यं यः कोपि वीतरागसर्वज्ञप्रणीतपंचास्तिकायसंग्रहादिकं शास्त्रं पठति श्रद्धत्ते तथैव च भावयति स च इत्थंभूतं सुखं प्राप्नोतीत्यर्थः। इदानीं परिमाणं प्रतिपाद्यते। तच्च द्विविधं-ग्रंथार्थभेदात्। ग्रन्थपरिमाणं ग्रन्थपरिसंख्या यथासंभवं, अर्थपरिमाणमनन्तमिति नाम द्विधा अन्वर्थयदृच्छभेदेन। अन्वर्थनाम किं? यादृशं नाम तादृशोर्थः यथा तपतीति तपन आदित्य इत्यर्थः, अथ च पंचास्तिकाया यस्मिन् शास्त्रे ग्रन्थे स भवति पंचास्तिकायः, द्रव्याणां संग्रहो द्रव्यसंग्रह इत्यादि। यदृच्छं काष्ठाभारेणेश्वर इत्यादि। कर्ता कथ्यते—स च त्रिधा। मूलतन्त्रकर्ता उत्तरतन्त्रकर्ता उत्तरोत्तरतन्त्रकर्तांभेदेनेति। मूलकर्ता कालापेक्षया श्रीवर्धमानस्वामी अष्टादशदोषरहितोऽनन्तचतुष्टयसंपन्न इति, उत्तर कर्ता श्रीगौतमस्वामी गणधरदेवश्चतुर्ज्ञानधरः सप्तर्द्धिसंपन्नश्च, उत्तरोत्तरा कर्तारो बहवो यथासंभवं। कर्ता किमर्थं कथ्यते? कर्तृप्रामाण्याद्वचनप्रमाणमिति ज्ञापनार्थं। इति संक्षेपेण मंगलाद्यधिकारषट्कं प्रतिपादितं व्याख्यातं एवं मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारगाथा गता ॥ १ ॥

हिंदी तात्पर्यवृत्ति

आगे प्रथम ही शास्त्रकी आदिमें "इन्द्रशतवन्दितेभ्यः" इत्यादि जिनेन्द्रको भाव नमस्कार रूप असाधारण मंगल करूँगा ऐसा अभिप्राय मनमें धरकर आचार्य प्रथम सूत्र कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(इंदसदवंदियाणं) सौ इन्द्रोंसे वन्दनीक, (तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं) तीन जगतको हितकारी मधुर और स्पष्ट वचन कहनेवाले, (अंतातीदगु-

णाणं) अनंतगुणोंके धारी तथा (जिदभवाणं) संसारको जीतनेवाले (जिणाणं) अरहंतोंको (णमो) नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—यहां मंगलके लिये अरहंतोंको नमस्कार किया गया है । अरहंतोंके अनन्त-ज्ञान आदि गुणोंका स्मरण रूप भाव नमस्कार कहलाता है । सौ इन्द्रोंने अरहंतोंको नमस्कार किया ऐसा कहनेसे अरहंतके पूज्यपनेके माहात्म्यको प्रगट किया गया है तथा यह बताया है कि सौ इन्द्रोंसे नमस्कार करनेके योग्य ये ही अरहंत देव हैं और नहीं । श्री अरहंतके वचन शुद्धात्माके स्वरूपकी प्राप्तिका उपाय दिखलानेके कारणसे हित रूप हैं, वीतराग और विकल्प रहित समाधिसे उत्पन्न जो स्वाभाविक अपूर्व परम आनन्द वही है निश्चय सुख, उसके रसका स्वाद वही है परम समतारसमई भाव, उसके रसिक जो मनुष्य हैं उनके मनको मोहित करनेवाले हैं, और वे स्पष्ट तथा व्यक्त हैं, क्योंकि उन वचनोंमें संशय विमोह विभ्रम नहीं है । यह सीप है या चांदी है ऐसे चंचल ज्ञानको संशय कहते हैं । पगमें तृणोंका स्पर्श होते हुए कुछ होगा ऐसे निश्चय करनेकी इच्छा न रखनेवाले भावको विमोह कहते हैं । सीपको चांदी जान लेना सो विभ्रम है तथा ये वचन इसलिये भी स्पष्ट हैं, क्योंकि शुद्ध जीवास्तिकायको आदि लेकर सात तत्त्व, नव पदार्थ, छः द्रव्य, और पांच अस्तिकायका स्वरूप बतानेवाले हैं अथवा उन वचनोंमें पूर्वापर विरोध नहीं हैं इससे भी स्पष्ट है । अथवा अरहंतोंकी उस दिव्यध्वनिको सर्व जीव अपनी अपनी भाषामें सुनके उससे स्पष्ट अर्थ समझ जाते हैं । कर्णाटक, मागध, मालवा लाट, गौड और गुर्जर इनमेंसे प्रत्येकके तीन भेद ऐसी १८ महाभाषा और सातसौ छोटी भाषाको आदि लेकर अनेक भाषाओंमें यह वाणी एक ही समयमें सबको सुनाई देती है इससे भी वह विशद है ।

अरहंतकी वाणीके सम्बन्धमें ऐसा अन्य ग्रन्थमें कहा है—

सर्व आपत्तियोंसे रहित श्री सर्वज्ञ भगवानका वह अपूर्व वचन हमारी रक्षा करे जो सर्व आत्माओंका हितकारी है अक्षर रूप नहीं है, दोनों ओठोंके हलन विना प्रगट होता है, इच्छा-रहित होता है, दोषोंसे मलीन नहीं है, न उसमें श्वासोश्वासके रुकनेका क्रम है, जिसको क्रोधरूपी विष को शांत किए हुए पशुगण भी अपने कानोंसे सुनसकते हैं ॥ १ ॥ इस तरह वचनके माहात्म्य द्वारा प्रगट जो अरहंतका वचन वही प्रमाण है । एकांत करके अपौरुषेय

वचन जो किसी पुरुषका न कहा हुआ हो और न नाना कथाओंसे रचित पुराणवचन प्रमाण-भूत है। भावार्थ—— वचन वही प्रमाणभूत है जो अनेकांत या स्याद्वाद द्वारा वर्णन करे व जो किसी सर्वज्ञ पुरुषकी परम्परासे कहा हुआ हो। जिन अरहंतों के अनन्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको जान लेनेसे अनंतकेवलज्ञान आदि गुण पाए जाते हैं, ऐसा कहनेसे यह बताया है कि वे अरहंत उन गणधर देवको आदि लेकर योगीश्वरोंसे भी नमस्कार योग्य हैं, जो बुद्धि आदि सात ऋद्धि व मतिज्ञान आदि चार ज्ञानके धारी हैं तथा जिन अरहंतोंने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पंच परावर्तनरूप संसारको जीत लिया है। ऐसा कहनेसे यह बताया है कि उन्होंने घातिया कर्मोंके नाशके माहात्म्यसे कृतकृत्यपना अपनेमें प्रगट कर लिया है। इसीसे जो कृतकृत्य नहीं हैं ऐसे जो अल्पज्ञानी संसारी जीव उनके लिये वे अरहंत ही शरणरूप हैं और कोई नहीं। इस तरह चार विशेषणों सहित श्री जिनेन्द्रोंको नमस्कार किया है। इस तरह मंगलके लिये अनन्तज्ञान आदि गुणोंका स्मरणरूप भाव नमस्कार किया गया। जो अनेक भवरूपी वन और इन्द्रिय विषय व आपत्तिमें डालनेके कारण कर्मरूपी शत्रु हैं उनको जीतनेवाला है वह जिन है, उसीके ये चार विशेषण इसी न्यायसे किये गये हैं। जैसे यह कहना कि संख श्वेत है। केवल संख कहनेसे भी उसकी सफेदीका बोध होजाता है वैसे केवल जिन शब्दकी व्युत्पत्ति से ही उनके अनन्त गुणोंका बोध होजाता है, तो भी विशेपता बतानेके लिये तथा नाम मात्र जिन कहलानेवालेको नमस्कार नहीं किया गया है ऐसा बतानेके लिए विशेषण दिये हैं। ऐसा भाव विशेषण व विशेष्यका जानना चाहिये। इस तरह शब्दार्थ कहा गया।

अनन्तज्ञानादि गुणोंका स्मरणरूप भाव नमस्कार अशुद्ध निश्चय नयसे जानना "नमो जिनेभ्यः" ऐसा वचनरूप द्रव्य नमस्कार है सो असद्भूत व्यवहारनयसे जानना तथा शुद्ध निश्चय नयसे अपने आत्मामें ही आराध्य और आराधकभाव समझना कि यह आत्मा ही आराधने योग्य व यही आराधनेवाला है ऐसा अभेदभाव रूप होना। इस तरह नयोंके द्वारा अर्थ कहा गया। ये ही अरहंत देव नमस्कारके योग्य हैं अन्य कोई रागी द्वेषी अल्पज्ञ नहीं, ऐसा कहनेसे जिनमतका अर्थ भी झलकाया गया। सौ इन्द्रोंसे बन्दनीक हैं ऐसा कहनेसे परंपरा आगमका अर्थ प्रसिद्ध किया गया। तथा इस मंगलाचरणका भावार्थ यह है कि अनन्तज्ञानादिगुणोंसे

युक्त शुद्ध जीवास्तिकाय ही ग्रहण करने योग्य है। इस तरह शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ जानना चाहिये। इसी तरह जहां कहीं व्याख्यान हो वहां सर्व ठिकाने शब्द, नय, मत, आगम तथा भाव इन पांचोंके अर्थ लगाना चाहिये। इस तरह संक्षेपमें मंगलके लिये इष्ट-देवताको नमस्कार किया गया, मंगल यह उपलक्षणपद है जहां मङ्गल किया जावे उसके साथ पांच बातें यथासंभव और भी कहनी चाहिये अर्थात् ग्रन्थ का निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्त्ता।

अब यहांपर विस्तार रुचिसे सुननेवाले शिष्योंके लिये व्यवहारनय के आश्रयको लेकर यथाक्रमसे मङ्गल आदि छः अधिकारों का विशेष व्याख्यान किया जाता है। यह आर्ष वाक्य है:-

आचार्य महाराज ग्रन्थकर्ता पहले मङ्गल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्त्ता इन छः को कहकर फिर शास्त्रका व्याख्यान करे। २। सोही आगे दिखाते हैं —

(१) मं अर्थात् मल या पापको जो गालयति अर्थात् गलावे सो मङ्गल है अथवा मंग जो पुण्य तथा सुख उसे जो लाति—अर्थात् देवे वह मङ्गल है। ग्रन्थकार शास्त्रकी आदिमें मङ्गलके लिये चार प्रकार फलको चाहते हुए तीन प्रकार देवताका तीन प्रकार नमस्कार करते हैं। चार प्रकार फलके लिये कहा है—

भावार्थ—नास्तिकपनेके त्यागके लिये अर्थात् ग्रन्थकर्ता आस्तिक है यह बतानेके लिये, शिष्टाचार जो परंपरासे चला आया विनयका नियम उसको पालनेके लिये, पुण्यकी प्राप्तिके लिये तथा विघ्नके दूर करनेके लिये इन चार बातोंको चाहते हुए ग्रन्थकी आदिमें इष्टदेवकी स्तुति की जाती है। ३। तीन प्रकार देवताका भाव यह है, कि जिसको नमस्कार किया जावे वह अपनेको इष्ट अर्थात् प्रिय हो, अधिकृत हो अर्थात् जिसका यहां अधिकार हो तथा अभिमत हो अर्थात् जो माननीय हो। नमस्कार भी तीन प्रकार है- एक आशीर्वादरूप, दूसरे वस्तुस्वरूप कथनरूप, तीसरे नमस्काररूप। यह मङ्गल दो प्रकारका है—एक मुख्य, दूसरा गौण। मुख्य मंगल जिनेन्द्र—गुण स्तवन है। जैसा कहा है:—

भावार्थ—बुद्धिमानोंने कहा है कि आदि, मध्य तथा अन्तमें मङ्गल करना चाहिये जिससे विघ्नोंका नाश हो। वह मंगल श्री जिनेन्द्रके गुणोंका स्तोत्र है ॥ ४ ॥ और भी कहा है—

भावार्थ-श्री जिनेन्द्रोंका गुणगान करनेसे विघ्नोंका नाश होता है, कभी भय नही लगता है, न नीच देव उल्लंघन करते हैं तथा अपने इच्छित पदार्थोंका सदा लाभ होता है ॥ ५ ॥ और भी कहा है-

भावार्थ-आदिमें मंगल करनेसे शिष्य विद्याके पारगामी होते हैं, मध्यमें मंगल करनेसे विद्या विना विघ्नके आती है व अंतमें मंगल करनेसे विद्याका फल प्राप्त होता है ॥६॥

आगे गौण मंगलको कहते हैं-

भावार्थ-सिद्धार्थ, पूर्णकुम्भ, वंदनमाला, श्वेतछत्र, श्वेतवर्ण, आदर्श या दर्पण, नाथ (राजा), कन्या और जयपना ॥ ७ ॥ जिन जिनवरोंने व्रतनियम संयमादि गुणोंके द्वारा परमार्थ साधन किया है और जिनकी सिद्ध संज्ञा है इसलिये वे सिद्धार्थ मंगल हैं ॥ ८ ॥ जो सर्व मनोरथोंसे और केवलज्ञानसे पूर्ण हैं ऐसे अरहंत इस लोकमें पूर्णकुम्भ मंगल हैं ॥९॥ भरत चक्रीकृत वंदनमालामें किसी द्वारसे निकलते या प्रवेश होते जो चौवीस तीर्थंकर वंदनीक होजाते हैं इसलिये वंदन-मालाको मंगल कहा है ॥१०॥ जगके प्राणियोंके लिये अरहंत भगवान सुखके कर्ता हैं व छत्रके समान रक्षक हैं इसलिये श्वेतछत्रको मंगल कहा है ॥११॥ जिन अरहंतोंके श्वेतवर्ण शुक्लध्यान है व शुक्ललेश्या है और जिनके चार अघातिया कर्म शेष हैं ऐसे अरहंतोंको श्वेत वर्ण मंगल कहा है ॥१२॥ जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब झलकता है वैसे जिन जिनेन्द्रोंके केवलज्ञानमें लोक अलोक दिखता है इसलिये आदर्श मंगल है ॥ १३ ॥ जैसे वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र मंगलरूप हैं वैसे जगतमें राजा और बालकन्याको भी मंगल जानना चाहिये ॥ १४ ॥ जिन्होंने कर्म शत्रुओंको जीतकर मोक्ष प्राप्त करली है ऐसे चारों घातिया-रूपी शत्रुके दलको जीतनेसे जयरूप मंगल है ॥ १५ ॥

अथवा मंगल दो प्रकार है-एक निबद्ध मंगल, दूसरा अनिबद्ध मंगल। जो मंगल उस ही ग्रन्थकारने किया हो वह निबद्ध मंगल है जैसे 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' इत्यादि । जो दूसरे ग्रन्थसे लाकर नमस्कार किया गया हो वह अनिबद्ध मंगल है जैसे "जगत्त्रयनाथाय" इत्यादि।

इस सम्बन्धमें कोई शिष्य यह पूर्वपक्ष उठाकर तर्क करता है कि-किसलिये शास्त्रके प्रारम्भमें शास्त्रकार मंगलके लिये परमेष्ठीके गुणोंका स्तोत्र करते हैं। जो शास्त्र शुरू किया हो उसी हीको कहना चाहिये, मंगलकी जरूरत नही है। यह भी कहना नहीं चाहिये कि मंग-

स्वरूप नमस्कारसे पुण्य होता है तथा पुण्यसे कार्य्य विघ्नरहित होता है, क्योंकि ऐसा कहनेसे व्यभिचार आता है। कहींपर तो नमस्कार, दान, पूजा आदि करते हुए भी विघ्न होता दिखाई देता है तथा कहींपर दान, पूजा, व नमस्कार न करते हुए भी निर्विघ्न काम दिखाई पडता है ? इसका समाधान आचार्य करते हैं कि–हे शिष्य ! तुम्हारा यह कहना योग्य नहीं है। पूर्वकालमें आचार्योंने इष्टदेवताको नमस्कार पहले करके ही कार्य शुरू किये थे। तुमने कहा कि ऐसा न कहना चाहिये कि नमस्कारसे पुण्य होता है व पुण्यसे विघ्न नहीं होता है। सो यह भी तुम्हारा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यह तर्कशास्त्र आदिमें सिद्ध किया गया है कि देवताको नमस्कार करनेसे पुण्य होता है और पुण्यसे निर्विघ्न कार्य होता है। फिर जो तुमने कहा कि ऐसा माननेसे व्यभिचार आता है सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि जहां देवताको नमस्कार दान पूजा आदि धर्मके करते हुए भी विघ्न हो जाता है वहां यह समझना चाहिये कि पूर्वमें किये हुए पापका ही फल हैं, इस धर्मसाधनका दोप नहीं है। तथा जहां देवताको नमस्कार दान पूजादि धर्मके विना भी निर्विघ्न कार्य होता देखा जाता है वहां यह समझना चाहिये कि यह पूर्वमें किये हुए धर्महीका फल है, यह पापका फल नहीं है। फिर शिष्य कहता है कि–शास्त्र स्वयं मंगलरूप है या अमंगल है। यदि शास्त्र मंगलरूप है तब मंगलका मंगल करनेसे क्या प्रयोजन है और यदि शास्त्र अमंगलरूप है तब ऐसे शास्त्रसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? आचार्य महाराज इसका भी समाधान करते हैं कि–भक्तिके लिये मंगलका भी मंगल किया जाता है। जैसा कि कहा है—

भावार्थ–दीपकसे सूर्यको, जलसे समुद्रको, वाणीसे जिनवाणी अर्थात् सरस्वतीको लोग पूजते हैं, इसी तरह मंगलसे ही मंगलकी पूजा करते हैं॥ १६ ॥ और भी यह है कि इष्टदेवताको नमस्कार करनेसे उनके प्रति उपकारकी स्वीकारता होती है, जैसा कहा है–

भावार्थ—मोक्षमार्गकी सिद्धि परमेष्ठी भगवानके प्रसादसे होती है इसलिये मुनियोंमें मुख्य शास्त्रकी आदिमें उनके गुणोंकी स्तुति करते हैं ॥ १७॥ और भी कहा है:–

भावार्थ–इष्टफलकी सिद्धिका उपाय सम्यग्ज्ञान है। सो सम्यग्ज्ञान यथार्थ आगमसे होता है। उस आगमकी उत्पत्ति आप्त (देव) से है इसलिये वह आप्त देव पूजनीय है जिसके प्रसादसे तीव्र बुद्धि होती है, निश्चयसे साधु लोग अपने ऊपर किए गए उपकारको नहीं भूलते हैं॥ १८ ॥ इस तरह संक्षेपसे मंगलका कथन किया गया। आगे जिसके निमित्त यह शास्त्र

बना उस निमित्त कारणको कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ भगवानके द्वारा दिव्यध्वनि प्रगट होनेमें कारण भव्य जीवोंके पुण्यकी प्रेरणा है। जैसा कहा है:-

भावार्थ-भव्य जीव श्रुतज्ञान रूप सूर्यके दिव्यतेज द्वारा छः द्रव्य व नव पदार्थोंका ज्ञान श्रद्धान करें इसलिये श्रुतज्ञानरूपी सूर्यका उदय होता है ॥ १६ ॥

यहां इस प्राभृत ग्रन्थके होनेमें निमित्त शिवकुमार महाराज हैं। जैसे द्रव्यसंग्रह आदिमें सोमा सेठ आदि निमित्त थे ऐसा जानना चाहिये। इस तरह संक्षेपसे निमित्त बताया, अब हेतुका व्याख्यान करते हैं-हेतुको ही फल कहते हैं क्योंकि वह फलका कारण है इस लिये उपचारसे फल कहते हैं। वह फल दो प्रकार है-एक प्रत्यक्ष फल, दूसरा परोक्षफल। प्रत्यक्ष फल भी दो प्रकार है-एक साक्षात् दूसरा परम्परा। साक्षात् प्रत्यक्ष फल यह है कि इस शास्त्रसे अज्ञानका नाश होकर सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होती है तथा असंख्यात गुण श्रेणीरूप कर्मोंकी निर्जरा होती है इत्यादि। परम्परा प्रत्यक्ष फल यह है कि शिष्य प्रति शिष्य द्वारा पूजा व प्रशंसा होती है तथा शिष्योंकी प्राप्ति होती है। भावार्थ-पढकर अनेक जन लाभ उठाते हैं। इस तरह संक्षेपसे प्रत्यक्ष फल कहा। अब परोक्ष फल कहते हैं। वह भी दो प्रकार है-एक सांसारिक ऐश्वर्य सुखकी प्राप्ति, दूसरा मोक्ष-सुखका लाभ। अब ऐश्वर्य्य सुखको कहते हैं। राजाधिराज, महाराजा, अर्धमंडलीक, मंडलीक, महामंडलीक, अर्धचक्रवर्ती, चक्रवर्ती, इन्द्र, गणधर देव, तीर्थंकर परमदेव इति १८ श्रेणी सेनाका पति मुकुटधर होता है। पांचसौ मुकटधर का अधिपति अधिराजा इससे दूने दूने दलके स्वामी सकल चक्रवर्ती तक होना सो ऐश्वर्य्य सुख है। अब मोक्ष या परम कल्याणमय सुखको कहते हैं-वह अरहंत और सिद्ध पदका लाभ है। अर्हंतका स्वरूप कहते हैं-

जिन्होंने चार घातिया कर्मोंका नाशकर चौतीस अतिशय, ८ प्रातिहार्य्य व पंच कल्याणक प्राप्त किये हैं वे अरहंत हैं सो मेरे लिये मंगलरूप हैं ॥ २० ॥ सिद्धका स्वरूप कहते हैं-

जो मूल व उत्तर कर्मप्रकृतियोंके बंध, उदय सत्तासे रहित हैं, आठ गुण सहित हैं व संसारसे पार हो गए हैं वे मंगलमई सिद्ध भगवान हैं ॥ २१ ॥ इस तरह ऐश्वर्य व मोक्षसुखको संक्षेपमें कहा गया। तात्पर्य यह है कि जो कोई वीतराग सर्वज्ञकी परम्परासे कहे हुए इस पंचास्तिकाय प्राभृत आदि शास्त्रको पढ़ता है, श्रद्धामें लाता है तथा वारंवार विचारता है वह इस प्रकार सुखको पाता है। अब परिमाण कहते हैं, वह दो प्रकार है-ग्रन्थ परिमाण और अर्थपरि-

माण। ग्रन्थ परिमाण तो ग्रन्थकी गाथा या श्लोक संख्या यथासंभव जाननी। अर्थपरिमाण अनन्त है, इस तरह संक्षेपसे परिमाण कहा। अब नाम कहते हैं। नाम दो प्रकार हैं—एक अन्वर्थ, दूसरा इच्छित। जैसा ग्रन्थका नाम हो वैसाही अर्थ हो सो अन्वर्थ है जैसे जो तपै सो तपन या सूर्य है। इसी तरह पांच अस्तिकाय जिस शास्त्रमें कहे गए हों सो पंचास्तिकाय है, अथवा जिसमें द्रव्योंका संग्रह हो वह द्रव्यसंग्रह है इत्यादि। इच्छित नाम जैसे काष्ठका भार ढोनेवालेको ईश्वर कहना इत्यादि। अब ग्रन्थका कर्त्ता कहते हैं। कर्त्ता तीन प्रकारसे हैं—मूलतंत्रकर्ता, उत्तरतंत्रकर्ता तथा उत्तरोत्तर तंत्रकर्त्ता। इनमें मूल तंत्रकर्त्ता तो इस कालकी अपेक्षासे अंतिम तीर्थंकर अठारह दोषरहित, अनंत चतुष्टय सहित श्री वर्द्धमानस्वामी हैं। उत्तरतंत्रकर्ता चार ज्ञानधारी व सात ऋद्धिपूर्ण श्री गौतमस्वामी गणधर हैं। उत्तरोत्तर कर्ता यथासंभव बहुत हैं। भावार्थ—यहां इस ग्रन्थके कर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य हैं। कर्त्ता इसलिये कहते हैं कि कर्ताकी प्रमाणतासे उसके वचनोंकी प्रमाणता होती है। इस तरह संक्षेपसे मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्त्ता इन छः भेदोंका वर्णन किया गया। इस तरह मंगलके लिये इष्टदेवताके नमस्कार सम्बन्धी गाथा पूर्ण हुई।

समय-व्याख्या गाथा २

समयो ह्यागमः। तस्य प्रणामपूर्वकमात्मनाभिधानमत्र प्रतिज्ञातम्।

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा समयमिमं सुणह वोच्छामि ॥ २ ॥

श्रमणमुखोद्गतार्थं चतुर्गतिनिवारणं सनिर्वाणम्।
एष प्रणम्य शिरसा समयमिमं शृणुत वक्ष्यामि ॥ २ ॥

युज्यते हि स प्रणन्तुमभिधातुं चाप्तोपदिष्टत्वे सति सफलत्वात्। तत्राप्तोपदिष्टत्वमस्य श्रमणमुखोद्गतार्थत्वात्। श्रमणा हि महाश्रमणाः सर्वज्ञवीतरागाः। अर्थः पुनरनेकशब्दसंबन्धेनाभिधीयमानो वस्तुतयैकोऽभिधेयः। सफलत्वं तु चतसृणां नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवत्वलक्षणानां गतीनां निवारणत्वात् पारतंत्र्यनिवृत्तिलक्षणस्य निर्वाणस्य शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भरूपस्य परम्परया कारणत्वात् स्वातंत्र्यप्राप्तिलक्षणस्य च फलस्य सद्भावादिति ॥ २॥

हिन्दी समयव्याख्या गाथा—२

अन्वयार्थः- (श्रमणमुखोद्गतार्थं) श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय (सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे हुए पदार्थों का कथन करनेवाले) (चतुर्गतिनिवारणं) चार गति का निवारण करने वाले और (सनिर्वाणम्) निर्वाण सहित (-निर्वाण के कारणभूत) [इमं समयं] ऐसे इस समय को [शिरसा प्रणम्य] शिर झुका कर प्रणाम करके (एष वक्ष्यामि) मैं उसका कथन करूंगा [शृणुत]उसे तुम लोग सुनो

टीका:—समय अर्थात् आगम, उसे प्रणाम करके मैं उसका कथन करूंगा ऐसी यहां प्रतिज्ञा की है। वह (समय) प्रणाम करने एवं कथन करने योग्य है, क्योंकि वह आप्त द्वारा उपदिष्ट होने से सफल है। वहां, उसका आप्त द्वारा उपदिष्टपना इसलिये है कि वह श्रमण (सर्वज्ञ) के मुख से निकला हुआ अर्थ-मय (पदार्थ का कथन करने वाला) है। 'श्रमण' अर्थात् महाश्रमण-सर्वज्ञ वीतराग देव, और 'अर्थ' अर्थात अनेक शब्दोंके सम्बन्धसे कहा जानेवाला, वस्तुरूप से एक ऐसा पदार्थ।

पुनश्च, उसकी (समयकी) सफलता इसलिये है कि वह समय (१) नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व तथा देवत्वस्वरूप चार गतियों का निवारण करने के कारण और [२] परतंत्रतानिवृत्ति स्वतंत्रताप्राप्ति जिसका लक्षण है—ऐसे शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप निर्वाण का परम्परारूप कारण होने से फलसहित है ॥ २॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—२

अथ द्रव्यागमरूपं शब्दसमयं नत्वा पंचास्तिकायरूपमर्थसमयं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापूर्वकाधिकृताभिमतदेवतानमस्कारकरणेन संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचयामीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति,-पणमिय-प्रणम्य। स कः कर्ता। एसो-एषोऽहं। केन ? सिरसा उत्तमाङ्गेन। कं। समयं शब्दसमयं इणं-इमं प्रत्यक्षीभूतं। किंविशिष्टं। समणमुहुग्गदं-सर्वज्ञवीतरागमहाश्रमणमुखोद्गतं। पुनः किंविशिष्टं ? अट्ठं-जीवादिपदार्थं। पुनरपि किंरूपं। चदुगदिविणिवारणं-नरकादिचतुर्गतिविनिवारणं। पुनश्च कथंभूतं। सणिव्वाणं-सनिर्वाणं सकलकर्मविमोचनलक्षणनिर्वाणं इत्थभूतं शब्दसमयं कथभूतम् ?

गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं, कण्ठोष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतं।
स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकं दूरासन्नसमं समं निरुपमं जैनं वचः पातु नः ॥१॥

तथा चोक्तं—

येनाज्ञानतमस्ततिर्विघटते ज्ञेये हिते चाहिते हानादानमुपेक्षणं च समभूत्तस्मिन् पुनः प्राणिनः।
येनेयं दृगपैति तां परमतां वृत्तं च येनानिशं, तज्ज्ञानं मम मानसाम्बुजमुदे स्तात्सूर्यवर्योदयः ॥

इत्यादि गुणविशिष्टवचनात्मकं नत्वा किं करोमि। वोच्छामि—वक्ष्यामि। कं। अर्थसमयं। सुणुह-शृणुत यूयं हे भव्या इति क्रियाकारकसंबंधः। अथवा द्वितीयव्याख्यानं। श्रमणमुखोद्गतं पञ्चास्तिकायल-

लक्षणार्थसमयप्रतिपादकत्वादर्थपरंपरया चतुर्गतिनिवारणं चतुर्गतिनिवारणत्वादेव सनिर्वाणं एपोऽहं ग्रंथकरणोद्यतमनाः कुन्दकुन्दाचार्यः प्रणम्य-नमस्कृत्य नत्वा। केन। शिरसा मस्तकेनोत्तमाङ्गेन। कं प्रणम्य? पूर्वोक्तश्रमणमुखोद्गतादिविशेषणचतुष्टयसंयुक्तं समयं शब्दरूपं द्रव्यागममिमं प्रत्यक्षीभूतं तं शब्दसमयं प्रणम्य पश्चात् किं करोमि। वक्ष्यामि कथयामि प्रतिपादयामि शृणुत हे भव्या यूयं। कं वक्ष्यामि। तमेव शब्दसमयवाच्यमर्थसमयं शब्दसमयं नत्वा पश्चादर्थसमयं वक्ष्ये ज्ञानसमयप्रसिद्धयर्थमिति।

वीतरागसर्वज्ञमहाश्रमणमुखोद्गतं शब्दसमयं कश्चिदासन्नभव्यः पुरुषः शृणोति शब्दसमयवाच्यं पश्चात्पञ्चास्तिकायलक्षणमर्थसमयं जानाति तदन्तर्गते शुद्धजीवास्तिकायलक्षणार्थे वीतरागनिर्विकल्पे समाधिना स्थित्वा चतुर्गतिनिवारणं करोति, चतुर्गतिनिवारणादेव निर्वाणं लभते स्वात्मोत्थमनाकुलत्वलक्षणं निर्वाणफलभूतमनन्तसुखं च लभते जीवस्तेन कारणेनायं द्रव्यागमरूपशब्दसमयो नमस्कर्तुं व्याख्यातुं च युक्तो भवति। इत्यनेन व्याख्यानक्रमेण संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचितानि भवन्ति। कथमिति चेत्? विवरणरूपमाचार्यवचनं व्याख्यानम्, गाथासूत्रं व्याख्येयमिति व्याख्यानव्याख्येयसंबन्धः। द्रव्यागमरूपशब्दसमयोऽभिधानं वाचकः तेन शब्दसमयेन वाच्यः पंचास्तिकायलक्षणोऽर्थसमयोऽभिधेय इति अभिधानाभिधेयलक्षणसंबन्धः, फलं प्रयोजनं चाज्ञानविच्छित्त्यादि निर्वाणसुखपर्यन्तमिति सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि भवन्तीति भावार्थः॥ २॥

एवमिष्टाभिमतदेवतानमस्कारमुख्यतया गाथाद्वयेन प्रथमस्थलं गतं।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा—२

उत्थानिका-आगे द्रव्य शास्त्ररूप शब्दागमको नमस्कार करके पंचास्तिकायरूप अर्थ-समयको कहूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करते हुए अधिकारमें प्राप्त अपने माननीय देवताको नमस्कार करनेसे सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजनको सूचित करता हूं ऐसा अभिप्राय मनमें धारकर आगे का सूत्र कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(एसो) यह मैं जो हूँ कुन्दकुन्दाचार्य सो (समणमुहुग्गदम्) वीतराग सर्वज्ञ महाश्रमणके मुखसे प्रगट (चदुग्गदिणिवारणं) नरकादि चारों गतियोंको दूर करनेवाले, (सणिव्वाणं) व सर्व कर्मोंके क्षय रूप निर्वाणको देनेवाले (अट्ठं) जीवादि पदार्थ-समूहको (सिरसा) उत्तम अंग मस्तकसे (पणमिय) नमस्कार करके (इणं समयं) इस शब्द आगम पंचास्तिकायको (वोच्छामि) कहूंगा (सुणह) हे भव्यजीवो उसको सुनो।

भावार्थ-यह जिनेन्द्रका वचन जो गंभीर है, मीठा है, अतिमनहरण करनेवाला है, दोष-रहित है, हितकारी है, कंठ, ओठ आदि वचनके कारणोंसे रहित है, पवनके रोकनेसे प्रगट नहीं

है, स्पष्ट है, परम उपकारी पदार्थोंका कहनेवाला है, सर्व भाषामई है, दूर व निकटको समान सुनाई देता है, समता रूप है व उपमारहित है सो हमारी रक्षा करो।

भावार्थ-जिससे अज्ञान अंधकारका पसारा दूर हो जाता है तथा जिससे जाननेयोग्य हितकारी और अहितकारी पदार्थोंको जानलेनेपर अहितका त्याग, हितका ग्रहण तथा परम वैराग्य प्राणीको प्राप्त होता है जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन प्रगट हो, परमतकी श्रद्धा दूर हटती है व जिसके द्वारा रात्रि दिन मिथ्या चारित्र दूर रहता है ऐसे ज्ञानरूपी परम सूर्यका उदय मेरे मनरूपी कमलके विकसित करनेको होवे अथवा दूसरा व्याख्यान इस प्रकार है-ग्रन्थ करनेमें उद्यमशील यह जो मैं कुन्दकुन्दाचार्य सो श्रमण मुख से प्रगट तथा पंचास्तिकाय लक्षणवाले अर्थ समय को कहनेवाले और परम्परा चतुर्गति को दूर करनेसे निर्वाण को देनेवाले प्रत्यक्षीभूत शब्दरूप द्रव्य आगमको नमस्कार करके ज्ञानसमयकी प्रसिद्धि के लिये अर्थ समयको कहूँगा। कोई निकट भव्य पुरुष वीतराग सर्वज्ञप्रणीत शब्दागमको सुनता है फिर उससे कहने योग्य पंचास्तिकाय लक्षणरूप अर्थ आगमको जानता है। फिर उस पदार्थसमूहमें गर्भित शुद्ध जीवास्तिकायरूप पदार्थमें थिर होकर चारों गतियोंका निवारण करता है। चारोंगतियोंको दूर करनेसे पंचमगति निर्वाणको पाता है। वहां अपने आत्मासे ही उत्पन्न निराकुल लक्षण निर्वाणके फलरूप अनंत सुखको अनुभव करता है इसीलिये इस द्रव्यागमरूप शब्द समय या शब्दागमको नमस्कार करना ठीक है। इस व्याख्यानके क्रमसे सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन इस तरह सूचित किये गए हैं। व्याख्यानरूप जो आचार्यके वचन हैं वह व्याख्यान है। गाथा सूत्र व्याख्यान करनेयोग्य हैं इससे व्याख्येय हैं। यह व्याख्यान और व्याख्येयका सम्बन्ध है। द्रव्यागम रूप शब्द समय या आगम अभिधान है-कहनेवाला है। इस शब्द समयसे पंचास्तिकायरूप अर्थ समय या आगम अभिधेय है-कहने योग्य है। यह अभिधान अभिधेय रूप सम्बन्ध है। फल या प्रयोजन यह है कि अज्ञानके नाशको आदि लेकर निर्वाणसुख पर्यंतकी प्राप्ति है। इस तरह सम्बन्ध अभिधेय प्रयोजन जानने। इस तरह अपने इष्ट माननीय देवताको नमस्कारकी मुख्यतासे दो गाथाओंसे प्रथम स्थल पूर्ण हुआ ॥२॥

समय व्याख्या गाथा—३

अत्र शब्दज्ञानार्थरूपेण त्रिविधाऽभिधेयता समयशब्दस्य लोकालोकविभागश्चाभिहितः।

समवाओ पंचण्हं समउ त्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं ।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं ॥ ३ ॥

समवादः समवायो वा पंचानां समय इति जिनोत्तमैः प्रज्ञप्तम् ।
स च एव भवति लोकस्ततोऽमितोऽलोकः खम् ॥ ३ ॥

तत्र च पंचानामस्तिकायानां समो मध्यस्थो रागद्वेषाभ्यामनुपहतो वर्णपदवाक्यसन्निवेशविशिष्टः पाठो वादः शब्दसमयः शब्दागम इति यावत् । तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयोच्छेदे सति सम्यगवायः परिच्छेदो ज्ञानसमयो ज्ञानागम इति यावत् । तेषामेवाभिधानप्रत्ययपरिच्छिन्नानां वस्तुरूपेण समवायः संघातोऽर्थसमयः सर्वपदार्थसार्थ इति यावत् । तदत्र ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थं शब्दसमयसंबन्धेनार्थसमयोऽभिधातुमभिप्रेतः । अतः तस्यैवार्थसमयस्य द्वैविध्यं लोकालोकविकल्पात् । स एव पञ्चास्तिकायसमवायो यावांस्तावांल्लोकस्ततः परममितोऽनन्तो ह्यलोकः, स तु नाभावमात्रं किन्तु तत्समवायातिरिक्तपरिमाणमनन्तक्षेत्रं खमाकाशमिति ॥ ३ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा—३

अन्वयार्थः—(पंचानां समवादः) पांच अस्तिकाय का समभावपूर्वक निरूपण (वा) अथवा (समवायः) उनका समवाय (—पंचास्तिकायका सम्यक् बोध अथवा समूह) (समयः) वह समय है (इति) ऐसा (जिनोत्तमैः प्रज्ञप्तम्) जिनवरोंने कहा है । (सः च एव लोकः भवति) वही लोक है (—पांच अस्तिकाय के समूह जितना ही लोक है) (ततः) उससे आगे (अमितः अलोकः) असीम अलोक (खम्) आकाशस्वरूप है ।

टीका—यहाँ (इस गाथा में) शब्दरूपसे, ज्ञानरूपसे और अर्थरूपसे (—शब्दसमय, ज्ञानसमय और अर्थसमय)—ऐसे तीन प्रकारसे "समय" शब्दका अर्थ कहा है तथा लोक—अलोकरूप विभाग कहा है ।

वहाँ, (१) 'सम' अर्थात् मध्यस्थ यानी जो रागद्वेषसे विकृत नहीं हुआ, 'वाद' अर्थात् वर्ण (अक्षर), पद (शब्द) और वाक्यके समूहवाला पाठ । पांच अस्तिकाय का 'समवाद' अर्थात् मध्यस्थ (—रागद्वेषसे विकृत नहीं हुआ) पाठ (—मौखिक या शास्त्रारूढ़ निरूपण) वह शब्दसमय है अर्थात् शब्दागम वह शब्दसमय है । (२) मिथ्यादर्शनके उदयका नाश होने पर, उस पंचास्तिकायका ही सम्यक् अवाय अर्थात् सम्यक् ज्ञान वह ज्ञानसमय है, अर्थात् ज्ञानागम वह ज्ञानसमय है । (३) कथनके निमित्तसे ज्ञात हुए उस पंचास्तिकायका ही वस्तुरूपसे समवाय अर्थात् समूह वह अर्थसमय है, अर्थात् सर्वपदार्थसमूह

वह अर्थसमय है। इसमें, यहाँ ज्ञानसमयकी प्रसिद्धिके हेतु शब्दसमयके संबंधसे अर्थसमयका कथन (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) करना चाहते हैं।

अब, उसी अर्थसमयका लोक और अलोकके भेदके कारण द्विविधपना है। वही पंचास्तिकायसमूह जितना है उतना लोक है। उससे आगे अमाप अर्थात् अनन्त अलोक है। वह अलोक अभावमात्र नहीं है किन्तु पंचास्तिकायसमूह जितना क्षेत्र छोड़कर शेष अनन्तक्षेत्रवाला आकाश है ॥ ३ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा—३

अथ गाथापूर्वार्द्धेन शब्द-ज्ञानार्थ-रूपेण त्रिधाभिधेयतां समयशब्दस्य, उत्तरार्द्धेन तु लोकालोकविभागं च प्रतिपादयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं कथयति । एवमग्रेपि वक्ष्यमाणं विवक्षिताविवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्य, अथवास्य सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवतीत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणमनेन क्रमेण यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्, —समवाओ पंचण्हं—पंचानां जीवाद्यर्थानां समवायः समूहः, समयमिणं–समयोयमिति जिणवरेहिं पण्णत्तं—जिनवरैः प्रज्ञप्तः कथितः । सो चेव हवदि लोगो–स चैव पंचानां मेलापकः समूहो भवति, स कः, लोकः, तत्तो— ततस्तस्मात्पंचानां जीवाद्यर्थानां समवायाद्बहिर्भूतः अमओ–अमितोऽप्रमाणः अथवा 'अमओ' अकृत्रिमो न केनापि कृतः. न केवलं लोकः, अलोयक्खं— अलोक इत्याख्या संज्ञा यस्य स भवत्यलोकाख्यः, अलोय खं इति भिन्नपदपाठान्तरे च अलोक इति कोर्थः खं शुद्धाकाशमिति संग्रहवाक्यं । तद्यथा—समयशब्दस्य शब्दज्ञानार्थभेदेन पूर्वोक्तमेव त्रिधा व्याख्यानं क्रियते,—पंचानां जीवाद्यस्तिकायानां प्रतिपादको वर्णपदवाक्यरूपो वादः पाठः शब्दसमयो द्रव्यागम इति यावत्, तेषामेव पंचानां मिथ्यात्वोदयाभावे सति संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन सम्यगवायो बोधो निर्णयो निश्चयो ज्ञानसमयोऽर्थपरिच्छित्तिर्भावश्रुतरूपो भावागम इति यावत् तेन द्रव्यागमरूपशब्दसमयेन वाच्यो भावश्रुतरूपज्ञानसमयेन परिच्छेद्यः पंचानामस्तिकायानां समूहोऽर्थसमय इति भण्यते । तत्र शब्दसमयाधारेण ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थमर्थसमयोत्र व्याख्यातुं प्रारब्धः । स चैवार्थसमयो लोको भण्यते । कथमिति चेत् ? यद् दृश्यमानं किमपि पंचेन्द्रियविषययोग्यं स पुद्गलास्तिकायो भण्यते, यत्किमपि चिद्रूपं स जीवास्तिकायो भण्यते, तयोर्जीवपुद्गलयोर्गतिहेतुलक्षणो धर्मः, स्थितिहेतुलक्षणोऽधर्मः, अवगाहनलक्षणमाकाशं, वर्तनालक्षणः कालश्च, यावति क्षेत्रे स लोकः । तथा चोक्तं–लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः तस्माद्बहिर्भूतमनन्तशुद्धाकाशमलोक इति सूत्रार्थः ॥ ३ ॥

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा—३

उत्थानिका–आगे आधी गाथासे समय शब्दको शब्द, ज्ञान व अर्थ रूपसे तीन प्रकार कहते हुए आगेकी आधी गाथासे लोक अलोकका विभाग कहता हूँ ऐसा अभिप्राय मनमें धारकर अगला सूत्र कहते हैं। इसी तरह आगे भी कहे जानेवाले विवक्षित या अविवक्षित सूत्रके अर्थ

को मनमें धारकर अथवा इस सूत्रके आगे यह सूत्र उचित है ऐसा निश्चय करके यह सूत्र कहते हैं ऐसी पातनिकाका लक्षण इसी क्रमसे यथासंभव सर्व ठिकाने इस ग्रन्थमें जानना चाहिये।

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(पंचण्हं) पांच जीवादि द्रव्योंका (समवाओ) समूह (समउत्ति) समय है ऐसा (जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं) जिनेन्द्रोंने कहा है। (सो चेव) वही पांचोंका मेल या समुदाय (लोओ हवदि) लोक है। (तत्तो) इससे बाहर [अमिओ] अप्रमाण [अलोओ] अलोक (खं) मात्र शुद्ध आकाशरूप है॥

विशेषार्थ—यहां समय शब्दका शब्द, ज्ञान, अर्थके भेदसे पहले ही तीन प्रकार व्याख्यान कहते हैं। पांच जीवादि अस्तिकायोंको प्रतिपादन करनेवाला वर्ण पद वाक्यरूप जो पाठ है उसको शब्दसमय या द्रव्यागम कहते हैं। मिथ्यादर्शनके उदयका अभाव होते हुए उन ही पांचोंका संशय विमोह विभ्रम रहित यथार्थ अवाय, निश्चय, ज्ञान, या निर्णय उसे ज्ञानसमय, अर्थज्ञान भावश्रुत या भावागम कहते हैं तथा उस द्रव्यागमरूप शब्दसमयसे कहने योग्य जो भावश्रुतरूप ज्ञानसमय उससे जानने योग्य जो पांच अस्तिकायोंका समूह सो अर्थसमय है, यहां शब्दसमयके आधारसे ज्ञानसमयकी प्रसिद्धिके लिये अर्थसमयके व्याख्यानका प्रारंभ है। इस ही अर्थसमयको लोक कहते हैं। वह इस तरह पर है कि जो कुछ भी पांचों इन्द्रियोंके ग्रहण योग्य दिखलाई पडता है वह सब पुद्गलास्तिकाय कहलाता है। जो कोई भी चैतन्य रूप है उसे जीवास्तिकाय कहते हैं। इन जीव और पुद्गलकी गतिमें निमित्तरूप धर्म है तथा स्थितिमें निमित्त रूप अधर्म है, अवगाहना देनेका निमित्त आकाश है तथा वर्तनामें निमित्तरूप काल है। जितने क्षेत्रमें ये हैं सो ही लोक है। एसा ही कहा है—जहां जीवादि पदार्थ दिखलाई पडें सो लोक है, इसके बाहर अनन्त शुद्ध आकाश है सो अलोक है, ऐसा सूत्रका अर्थ है॥३॥

उत्थानिका—आगे पांच अस्तिकायोंकी विशेष संज्ञा और उनमें सामान्य या विशेष अस्तित्व तथा कायत्व को प्रगट करते हैं—

समयव्याख्या गाथा ४

अत्र पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा सामान्यविशेषास्तित्वं कायत्वं चोक्तम्।

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता॥ ४॥

जीवाः पुद्गलकाया धर्माधर्मौ तथैव आकाशम्।
अस्तित्वे च नियता अनन्यमया अणुमहान्तः ॥ ४ ॥

तत्र जीवाः पुद्गलाः धर्माधर्मौ आकाशमिति तेषां विशेषसंज्ञा अन्वर्थाः प्रत्येयाः। सामान्यविशेषास्तित्वञ्च तेषामुत्पादव्ययध्रौव्यमय्यां सामान्यविशेषसत्तायां नियतत्वाद्व्यवस्थितत्वादवसेयम्। अस्तित्वे नियतानामपि न तेषामन्यमयत्वम्, यतस्ते सर्वदैवानन्यमया आत्मनिर्वृत्ताः। अनन्यमयत्वेऽपि तेषामस्तित्वनियतत्वं नयप्रयोगात्। द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। तत्र न खल्वेकनयायत्ता देशना किंतु तदुभयायत्ता। ततः पर्यायार्थादेशादस्तित्वे स्वतः कथंचिद्भिन्नेऽपि व्यवस्थिता द्रव्यार्थादेशात्स्वयमेव सन्तः सतोऽनन्यमया भवन्तीति। कायत्वमपि तेषामणुमहत्त्वात्। अणवोऽत्र प्रदेशा मूर्ताऽमूर्ताश्च निर्विभागांशास्तैः महान्तोऽणुमहान्तः प्रदेशप्रचयात्मका इति सिद्धं तेषां कायत्वम्। अणुभ्यां महान्त इति व्युत्पत्त्या द्व्यणुकपुद्गलस्कन्धानामपि तथाविधत्वम्। अणवश्च महान्तश्च व्यक्तिशक्तिरूपाभ्यामिति परमाणूनामेकप्रदेशात्मकत्वेऽपि तत्सिद्धिः। व्यक्त्यपेक्षया शक्त्यपेक्षया च प्रदेशप्रचयात्मकस्य महत्त्वस्याभावात्कालाणूनामस्तित्वनियतत्वेऽप्यकायत्वमनेनैव साधितम्।
अत एव तेषामस्तिकायप्रकरणे सतामप्यनुपादानमिति ॥ ४ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ४

अन्वयार्थः—(जीवाः) जीव, (पुद्गलकायाः) पुद्गलकाय, (धर्माधर्मौ) धर्म, अधर्म, (तथा एव) तथा (आकाशम्) आकाश (अस्तित्वे नियताः) अस्तित्वमें नियत, (अनन्यमयाः) (अस्तित्वसे) अनन्यमय [च] और (अणुमहान्तः) अणुमहान (प्रदेशमें बडे) हैं।

टीकाः—यहाँ (इस गाथामें) पाँच अस्तिकायोंकी विशेषसंज्ञा, सामान्य-विशेष-अस्तित्व तथा कायत्व कहा है।

वहाँ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश-यह उनकी विशेष संज्ञाएं अन्वर्थ जानना।

वे उत्पाद-व्यय, ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्तामें नियत—व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होनेसे उनके सामान्यविशेष—अस्तित्व भी है ऐसा निश्चित करना चाहिये। वे अस्तित्वमें नियत होने पर भी अस्तित्वसे अन्यमय नहीं हैं, क्योंकि सदैव अनन्यमय पनेसे उनकी निष्पत्ति है "अस्तित्वसे अनन्यमय" होने पर भी उनका "अस्तित्वमें नियतपना" नयप्रयोगसे है। भगवानने दो नय कहे हैं-द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ कथन एक नयके आधीन नहीं होता किन्तु दो नयोंके आधीन होता है। इसलिये वे

पर्यायार्थिक कथनसे जो अपनेसे कथंचित् भिन्न भी है ऐसे अस्तित्वमें व्यवस्थित (निश्चित स्थित) हैं और द्रव्यार्थिक कथनसे स्वयमेव सत् (-विद्यमान) होनेके कारण अस्तित्वसे अनन्यमय हैं।

उनके कायपना भी है, क्योंकि वे अणुमहान हैं। यहाँ अणु अर्थात् प्रदेश मूर्त और अमूर्त निर्विभाग [छोटेसे छोटे] अंश, 'उनके द्वारा (बहु प्रदेशों द्वारा) महान हो' वह अणुमहान, अर्थात् प्रदेशप्रचयात्मक (-प्रदेशोंके समूहमय) हो वह अणुमहान है। इसप्रकार उन्हें (उपरोक्त पांच द्रव्योंको) कायत्व सिद्ध हुआ। [ऊपर जो अणुमहानकी व्युत्पत्ति की उसमें अणुओंके अर्थात् प्रदेशोंके लिये बहुवचन का उपयोग किया है और संस्कृत भाषाके नियमानुसार बहुवचनमें द्विवचनका समावेश नहीं होता इसलिये अब व्युत्पत्तिमें किंचित् भाषाका परिवर्तन करके द्वि-अणुक स्कन्धोंको भी अणुमहान बतलाकर उनका कायत्व सिद्ध किया जाता है:) 'दो अणुओं (दो प्रदेशों) द्वारा महान हो' वह अणुमहान-ऐसी व्युत्पत्तिसे द्वि-अणुक पुद्गलस्कन्धोंको भी (अणुमहानपना होनेसे) कायत्व है। [अब, परमाणुओंको अणुमहानपना किसप्रकार है वह बतलाकर परमाणुओंको भी कायत्व सिद्ध किया जाता है :] व्यक्ति और शक्तिरूपसे अणु तथा महान होनेसे (अर्थात् परमाणु व्यक्तिरूपसे एकप्रदेशी तथा शक्तिरूपसे अनेकप्रदेशी होनेके कारण) परमाणुओंको भी, उनके एकप्रदेशात्मकपना होने पर भी, (अणुमहानपना सिद्ध होनेसे) कायत्व सिद्ध होता है। कालाणुओंको व्यक्ति-अपेक्षासे तथा शक्ति-अपेक्षासे प्रदेशप्रचयात्मक महानपने का अभाव होनेसे, यद्यपि वे अस्तित्वमें नियत हैं तथापि, उनके अकायत्व है-ऐसा इसीसे (इस कथनसे ही) सिद्ध हुआ। इसीलिये, यद्यपि वे सत् (विद्यमान) हैं तथापि, उन्हें अस्तिकायके प्रकरणमें नहीं लिया है ॥४॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—४

अथ पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञाः सामान्यविशेषास्तित्वकायत्वं च प्रतिपादयति,-जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मं तहेव आयासं-जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानीति पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अन्वर्था ज्ञातव्या अत्थित्तम्हि य णियदा—अस्तित्वे सामान्यविशेषसत्तायां नियताः स्थिताः। तर्हि सत्तायाः सकाशात्कुण्डे वदराणीव भिन्ना भविष्यन्ति। नैवं। अणण्णमइया—अनन्यमया अपृथग्भूताः यथा घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः स्तम्भेसार इत्यनेन व्याख्यानेनाधाराधेयभावेप्यविनास्तित्वं भणितं भवति। इदानीं कायत्वं चोच्यते। अणुमहंता—अणुमहान्तः अणुना परिच्छिन्नत्वादणुशब्देनात्र प्रदेशा गृह्यन्ते, अणुभिः प्रदेशैर्महान्तोऽणुमहांतः। द्वयणुकस्कन्धापेक्षया द्वाभ्यामणुभ्यां महान्तोऽणुमहान्तः इति कायत्वमुक्तं। एकप्रदेशाणोः कथं कायत्वमिति चेत्? स्कन्धानां कारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं भवति। कालाणूनां पुनर्बन्धकारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेरभावादुपचारेणापि कायत्वं नास्ति। शक्त्यभावोपि कस्मात्? अमूर्तत्वादिति पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अस्तित्वं कायत्वं चोक्तं। अत्र गाथासूत्रेऽनन्तज्ञानादिरूपः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इति भावार्थः ॥ ४ ॥

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा-४

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(जीवा) अनंतानंत जीव (पुग्गलकाया) अनन्तानत पुद्गलास्तिकाय [धम्माधम्मा] एक धर्मास्तिकाय एक अधर्मास्तिकाय (तहेव) तैसे ही (आयासं) एक अखंड आकाश ये सब [अत्थितम्हि] अपने अस्तित्वमें या अपनी सत्तामें [णियदा] निश्चित हैं (य) और [अणण्णमइया] अपनी सत्तासे अपृथग्भूत हैं या एकमेक हैं, और [अणुमहंता] प्रदेशोंमें अनेक हैं या बहु प्रदेशी हैं।

विशेषार्थ-सत्ताके दो भेद हैं-एक सत्तासामान्य या महासत्ता, दूसरे सत्ताविशेष या अवान्तरसत्ता। ये जीवादि पांचों अस्तिकाय इन दोनों प्रकारकी सत्तामें स्थित हैं सो इस तरह नहीं हैं जैसे एक कूंडीमें बोर फल अलग अलग हों किंतु वे पांचों अपनी २ सत्तासे एकमेक या अनन्य हैं। जैसे घटमें रूपादि व्यापक हैं या शरीरमें हाथ पग आदि हैं या खंभेमें उसका सार या गूदा है। इस कथनसे यह दिखाया कि आधार और आधेयके विना भी सत्ताका इनके साथ एकमेकपना कहा जाता है। अणुसे जानने योग्य प्रदेश होता है इसलिये यहां अणुशब्दसे प्रदेश लेना चाहिये, सो ये पांचों ही द्रव्य या अस्तिकाय अपने प्रदेशोंकी अपेक्षा बडे हैं अतः अणुमहन्तः हैं। दोअणुक स्कन्ध दो अणुओं के द्वारा महान है अतः अणुमहन्त हैं। इसलिये इनमें कायपना कहा गया। एक प्रदेशी परमाणुको कायपना इस अपेक्षासे है कि वे परमाणु अपने स्निग्ध या रूक्ष गुणके कारणसे स्कंध बननेके कारण हैं इसलिये उपचार या व्यवहारसे उनको कायपना है। कालाणुओंमें परस्पर बंधके कारण स्निग्ध या रूक्षपनेकी शक्ति नहीं है इसलिये उपचारसे भी उनमें कायपना नही है। इनमें इस शक्तिका अभाव इसीलिये है कि सर्व कालाणु अमूर्तीक हैं। इस तरह इस गाथामें पांच अस्तिकायोंके विशेष नाम व उसका अस्तित्व व कायपना बताया गया। इस सूत्रसे यह तात्पर्य लेना चाहिये कि इनमें एक शुद्ध जीवास्तिकाय ही ग्रहण करने योग्य है॥ ४॥

समय व्याख्या गाथा—५

अत्र पंचास्तिकायानामस्तित्वसंभवप्रकारः कायत्वसंभवप्रकारश्चोक्तः।

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।

ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं ॥५॥

येषामस्ति स्वभावः गुणैः सह पर्ययैर्विविधैः ।

ते भवन्त्यस्तिकायाः निष्पन्नं यैस्त्रैलोक्यम् ॥५॥

अस्ति ह्यस्तिकायानां गुणैः पर्यायैश्च विविधैः सह स्वभावो आत्मभावोऽनन्यत्वम् । वस्तुनो विशेषा हि व्यतिरेकिणः पर्याया गुणास्तु त एवान्वयिनः । तत एकेन पर्यायेण प्रलीयमानस्यान्येनोपजायमानस्यान्वयिना गुणेन ध्रौव्यं बिभ्राणस्यैकस्याऽपि वस्तुनः समुच्छेदोत्पादध्रौव्यलक्षणमस्तित्वमुपपद्यत एव । गुणपर्यायैः सह सर्वथान्यत्वे त्वन्यो विनश्यत्यन्यः प्रादुर्भवत्यन्यो ध्रुवत्वमालम्बत इति सर्वं विप्लवते । ततः साध्वस्तित्वसंभवप्रकारकथनम् । कायत्वसंभवप्रकारस्त्वयमुपदिश्यते । अवयविनो हि जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशपदार्थास्तेषामवयवा अपि प्रदेशाख्याः परस्परव्यतिरेकित्वात्पर्यायाः उच्यन्ते । तेषां तैः सहानन्यत्वे कायत्वसिद्धिरुपपत्तिमती । निरवयवस्यापि परमाणोः सावयवत्वशक्तिसद्भावात् कायत्वसिद्धिरनपवादा । न चैतदाशङ्क्यम्—पुद्गलादन्येषाममूर्तत्वादविभाज्यानां सावयवत्वकल्पनमन्याय्यम् । दृश्यत एवाविभाज्येऽपि विहायसीदं घटाकाशमिदमघटाकाशमिति विभागकल्पनम् । यदि तत्र विभागो न कल्पेत तदा यदेव घटाकाशं तदेवाघटाकाशं स्यात् । न च तदिष्टम् । ततः कालाणुभ्योऽन्यत्र सर्वेषां कायत्वाख्यं सावयवत्वमवसेयम् । त्रैलोक्यरूपेण निष्पन्नत्वमपि तेषामस्तिकायत्वसाधनपरमुपन्यस्तम् । तथा च—त्रयाणामूर्ध्वाऽधोमध्यलोकानामुत्पादव्ययध्रौव्यवन्तस्तद्विशेषात्मका भावा भवन्तस्तेषां मूलपदार्थानां गुणपर्याययोगपूर्वकमस्तित्वं साधयन्ति । अनुमीयते च धर्माधर्माकाशानां प्रत्येकमूर्ध्वाऽधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणमनात्कायत्वाख्यं सावयवत्वम् । जीवानामपि प्रत्येकमूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणमनाल्लोकपूरणावस्थाव्यवस्थितव्यक्तेस्सदा सन्निहितशक्तेस्तदनुमीयत एव । पुद्गलानामप्यूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपपरिणतमहास्कन्धत्वप्राप्तिव्यक्तिशक्तियोगित्वात्तथाविधा सावयवत्वसिद्धिरस्त्येवेति ॥ ५ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ५

अन्वयार्थः—[येषाम्] जिन्हें [विविधैः] विविध (गुणैः) गुणों और (पर्ययैः) पर्यायों के (सह) साथ [स्वभावः] अपनत्व (अस्ति) है (ते) वे (अस्तिकायाः भवन्ति) अस्तिकाय हैं [यैः]

कि जिनसे (त्रैलोक्यम्) तीन लोक (निष्पन्नम्) निष्पन्न हैं।

टीका:—यहां, (इस गाथाद्वारा) पांच अस्तिकायोंको अस्तित्व किसप्रकार है और कायत्व किसप्रकार है वह कहा गया है।

वास्तवमें अस्तिकायोंको विविध गुणों और पर्यायोंके साथ स्वपना—अपनापन—अनन्यपना है। वस्तुके व्यतिरेकी विशेष वे पर्यायें हैं और अन्वयी विशेष वे गुण हैं। इसलिये एक पर्यायसे प्रलयको प्राप्त होनेवाली, अन्य पर्यायसे उत्पन्न होनेवाली और अन्वयी गुणसे ध्रुव रहनेवाली एक ही वस्तुको व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य लक्षण अस्तित्व घटित होता ही है। और यदि गुणों तथा पर्यायों के साथ (वस्तुमें) सर्वथा अन्यत्व हो तब तो अन्य कोई विनाशको प्राप्त होगा, अन्य कोई प्रादुर्भावको (उत्पादको) प्राप्त होगा और कोई अन्य ध्रुव रहेगा—इसप्रकार सब विप्लव को प्राप्त हो जायगा। इसलिये (पांच अस्तिकायोंको) अस्तित्व किसप्रकार है तत्सम्बन्धी यह (उपर्युक्त) कथन सत्य—योग्य-न्याययुक्त है।

अब, (उन्हें) कायत्व किसप्रकार है उसका उपदेश किया जाता है:—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश यह पदार्थ अवयवी हैं उनके प्रदेश नामके जो अवयव हैं वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होनेसे पर्यायें कहलाते हैं। उनके साथ उन (पांच) पदार्थोंको अनन्यपना होनेसे कायत्वसिद्धि घटित होती है। परमाणु (व्यक्ति अपेक्षा से) निरवयव होने पर भी उनको सावयवपनेकी शक्तिका सद्भाव होनेसे कायत्वसिद्धि निरपवाद है। वहां ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है कि पुद्गलके अतिरिक्त अन्य पदार्थ अमूर्तपनेके कारण अविभाज्य होनेसे उनके सावयवपनेकी कल्पना न्यायविरुद्ध (अनुचित) है। आकाश अविभाज्य होने पर भी उसमें 'यह घटाकाश है, यह अघटाकाश (पटाकाश) है' —ऐसी विभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है। यदि वहां (कथंचित्) विभागकी कल्पना न की जाये तो जो घटाकाश है वही (सर्वथा) अघटाकाश हो जायेगा, और वह तो इष्ट (मान्य) नहीं है। इसलिये कालाणुओंके अतिरिक्त अन्य सर्वमें कायत्वनामका सावयवपना निश्चित करना चाहिये।

उनकी जो तीनलोकरूप निष्पन्नता (—रचना) कही, वह भी उनका अस्तिकायपना (—अस्तिपना तथा कायपना) सिद्ध करनेके साधनरूपसे कही है। वह इसप्रकार है:—

(१) ऊर्ध्व-अधो-मध्य तीनलोकके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले भाव—जो कि तीनलोकके विशेषस्वरूप हैं—भवते हुए (परिणमित होते हुए) अपने मूल पदार्थों का गुणपर्याययुक्त अस्तित्व सिद्ध करते हैं।

(२) पुनश्च, धर्म, अधर्म और आकाश—यह प्रत्येक पदार्थ ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोकके (तीन) विभागरूप से परिणमित होनेसे उनके कायत्व नामका सावयवपना है ऐसा अनुमान किया जासकता है। प्रत्येक जीवके भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे तीन लोकके (तीन) विभागरूपसे परिणमित लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्तिकी शक्तिका सदैव सद्भाव होनेसे जीवोंको भी कायत्व नामका सावयवपना है ऐसा अनुमान किया ही जासकता है पुद्गल भी ऊर्ध्व—अधो—मध्य ऐसे लोकके (तीन) विभागरूप परिणत

महास्कन्धपनेकी प्राप्तिकी व्यक्तिवाले अथवा शक्तिवाले होनेसे उन्हें भी वैसी (कायत्व नामकी) साव-यवपनेकी सिद्धि ही है ॥४॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा ५

अथ पूर्वोक्तमस्तित्वं कायत्वं च केन प्रकारेण संभवतीति प्रज्ञापयति,—जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जयेहि विविहेहिं ते होंति अत्थि-येषां पंचास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते। स कः। स्वभावः सत्ता अस्तित्वं तन्मयत्वं स्वरूपमिति यावत्। कैः सह। गुणपर्यायैः। कथंभूतैः। विचित्रैर्नानाप्रकारैस्ते अस्ति भवन्ति इत्यनेन पंचानामस्तित्वमुक्तमिति वार्तिकं। तथा कथ्यते—अन्वयिनो गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायाः, अथवा सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायास्ते च द्रव्यात्सकाशात् संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन भिन्नाः प्रदेशरूपेण सत्तारूपेण वा चाभिन्नाः। पुनरपि कथंभूताः विचित्रा नानाप्रकाराः। केन कृत्वा। स्वेन स्वभावविभावरूपेणार्थव्यंजनपर्यायरूपेण वा। जीवस्य तावत्कथ्यन्ते। केवलज्ञानादयः स्वभावगुणा मतिज्ञानादयो विभावगुणाः, सिद्धरूपः स्वभावपर्यायः, नरनारकादिरूपा विभावपर्यायाः। पुद्गलस्य कथ्यन्ते। शुद्धपरमाणौ वर्णादयः स्वभावगुणाः द्व्यणुकादिस्कन्दे वर्णादयो विभावगुणाः, शुद्धपरमाणुरूपेणावस्थानं स्वभावद्रव्यपर्यायः वर्णादिभ्यो वर्णान्तरादिपरिणमनं स्वभावगुणपर्यायः, द्व्यणुकादिस्कन्दरूपेण परिणमनं विभावद्रव्यपर्यायाः तेष्वेव द्व्यणुकादिस्कन्देषु वर्णान्तरादिपरिणमनं विभावगुणपर्यायाः। एते जीवपुद्गलयोर्विशेषगुणाः कथिताः। सामान्यगुणाः पुनरस्तित्ववस्तुत्वप्रमेयत्वागुरुलघुत्वादयः सर्वद्रव्य-साधारणाः। धर्मादीनां विशेषगुणपर्यायाः अग्रे यथास्थानेषु कथ्यन्ते। इत्थंभूतगुणपर्यायैः सह येषां पञ्चास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते तेस्ति भवन्तीति। इदानीं कायत्वं चोच्यते। कायाः काया इव काया बहुप्रदेशप्रचयत्वाच्छरीरवत्। किंकृतं तैः पंचास्तिकायैः "णिप्पण्णं जेहि तेल्लोक्कं" निष्पन्नं यैः पंचास्तिकायैः। किं निष्पन्नं। त्रैलोक्यं। अनेनापि गाथाचतुर्थपादेनास्तित्वं कायत्वं चोक्तं। कथमितिचेत्? त्रैलोक्ये ये केचनोत्पादव्ययध्रौव्यवन्तः पदार्थास्ते उत्पादव्ययध्रौव्यरूपमस्तित्वं कथयन्ति। तदपि कथमिति चेत्? उत्पादव्ययध्रौव्यरूपं सदिति वचनात् ऊर्ध्वाधोमध्यभागरूपेण जीवपुद्गलादीनां त्रिभुवनाकारपरिणतानां सावयवत्वात्सांशकत्वात् सप्रदेशत्वात् कालद्रव्यं विहाय कायत्वं च विद्यते, न केवलं पूर्वोक्तप्रकारेण, अनेन च प्रकारेणास्तित्वं कायत्वं च ज्ञातव्यं। तत्र शुद्धजीवास्तिकायस्य यानन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्धपर्यायसत्ता च शुद्धासंख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपादेयमिति भावार्थः॥ ५॥

एवं गाथात्रयपर्यन्तं पंचास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं द्वितीयस्थलं गतं।

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा ५

उत्थानिका—आगे यह प्रकाश करते हैं कि पहली गाथा में जिस अस्तित्व व कायत्व को कहा गया है, वह किस प्रकार संभव है?

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(जेसिं) जिन पांच अस्तिकायोंका (विविहेहिं) नाना प्रकार

के (गुणेहिं पज्जएहिं सह) गुण और पर्यायोंके साथ [अत्थि सहाओ] अस्तित्वभाव है (ते) वे [अत्थिकाय] अस्तिकाय (होंति) होते हैं। (जेहिं) जिन्होंके द्वारा (तिइलुक्कं) यह तीन लोक (णिप्पण्णं) रचा है।

विशेषार्थ-यहां अस्तिस्वभावको सत्ता, तन्मयपना या स्वरूप कहते हैं। विचित्र नाना प्रकार के गुण पर्यायों के साथ वे रहते हैं। इस प्रकार पांचों के अस्तित्व का कथन हुआ। यह वार्तिक है। अन्वयी गुण होते हैं और व्यतिरेक पर्याय होती हैं। अथवा जो द्रव्यके साथ २ रहें उनको गुण कहते हैं। जो अलग २ क्रमसे हों उनको पर्याय कहते हैं। ये गुण और पर्याय अपने द्रव्यके साथ संज्ञा, लक्षण, संख्या, प्रयोजनादिकी अपेक्षा भेद रखते हुए भी प्रदेश रूपसे या सत्ता रूपसे भिन्न नहीं हैं, अभेद हैं। ये गुण और पर्याय नाना प्रकारके होते हैं। जैसे स्वभाव गुण, विभाव गुण या स्वभाव पर्याय, विभाव पर्याय तथा अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय।

जीवके सम्बन्धमें कहते हैं कि-केवलज्ञान आदि जीवके स्वभाव गुण हैं, मतिज्ञान आदि जीवके विभाव गुण हैं। सिद्धरूप स्वभाव पर्याय है। नरनारकादि रूप विभाव पर्याय है। पुद्गल के सम्बन्धमें कहते हैं-शुद्ध (अबंध) परमाणुमें जो वर्णादि हैं वे स्वभाव गुण हैं, दो अणुके स्कंध आदिमें जो वर्णादि हैं वे विभाव गुण हैं। शुद्ध परमाणु रूपसे रहना सो स्वभाव द्रव्य पर्याय है। शुद्ध परमाणु का वर्णादिसे अन्य वर्णादि रूप परिणमना सो स्वभाव गुण पर्याय है। परमाणुओंका दो अणु आदिके स्कंध रूप परिणमना सो विभाव द्रव्य पर्याय है उन ही द्विअणुकादि स्कंधोंमें वर्णादिसे अन्य वर्णादि रूप पलटना सो विभाव गुण पर्याय है। ये जीव पुद्गलके विशेष गुण कहे गए। सामान्य गुण अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व आदि हैं जो सर्व द्रव्योंमें साधारण पाए जाते हैं। धर्मादिद्रव्योंके विशेष गुण व पर्याय आगे जहां उनका कथन होगा, कहेंगे। इस तरहके गुण पर्यायोंके साथ जिन पांच अस्तिकायोंकी सत्ता है इससे वे अस्ति रूप हैं। अब कायपनेको कहते हैं। शरीरके समान जो हों उसे काय कहते हैं अर्थात् जिसमें बहुतसे प्रदेशोंका समूह हो। इन ही पांच अस्तिकायोंके द्वारा तीन लोककी रचना है। तीन लोकमें जो कोई उत्पाद, व्यय ध्रौव्यवान पदार्थ हैं वे ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप अस्तिपनेको सूचित करते हैं। क्योंकि सूत्रमें यह वचन है "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" जीव पुद्गल आदि तीन लोकमें भरे हुए तीन लोकके आकार परिणमन करनेवाले हैं। ये ऊपर, मध्य

व अधो तीनों भागमें है । ये जीव और पुद्गल आदि पांच द्रव्य अवयव या अंश या प्रदेश सहित हैं। इसलिये इनमें कायपना इस रूपसे भी जानना चाहिये, केवल पूर्व कहे प्रमाण ही नहीं, काल द्रव्य एक प्रदेशी है इसलिये इसमें कायपना नहीं है । इस तरह अस्तित्व और कायत्व जानना चाहिये । इनमें जो शुद्ध जीवास्तिकायके अनंतज्ञानादि गुणोंकी सत्ता व उसकी सिद्धपर्यायकी सत्ता व उसका शुद्ध असंख्यात प्रदेश रूप कायपना है सो ग्रहण करना योग्य है ।५।

इस तरह तीन गाथातक पंचास्तिकायका संक्षेप व्याख्यान करते हुए दूसरा स्थल पूर्ण हुआ ॥ ३–४–५ ॥

समय व्याख्या गाथा—६

अत्र पञ्चास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यत्वमुक्तम् ।

ते चेव अत्थिकाया तेकालियभावपरिणदा णिच्चा ।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥ ६ ॥

ते चैवास्तिकायाः त्रैकालिकभावपरिणता नित्याः ।
गच्छन्ति द्रव्यभावं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्ताः ॥ ६ ॥

द्रव्याणि हि सहक्रमभुवां गुणपर्यायाणामनन्यतयाधारभूतानि भवन्ति । ततो वृत्तवर्तमानवर्तिष्यमाणानां भावानां पर्यायाणां स्वरूपेण परिणतत्वादस्तिकायानां परिवर्तनलिंगस्य कालस्य चास्ति द्रव्यत्वम् । न च तेषां भूतभवद्भविष्यद्भावात्मना परिणममानामनित्यत्वम् यतस्ते भूतभवद्भविष्यद्भावावस्थास्वपि प्रतिनियतस्वरूपापरित्यागान्नित्या एव । अत्र कालः पुद्गलादिपरिवर्तनहेतुत्वात्पुद्गलादिपरिवर्तनगम्यमानपर्यायत्वाच्चास्तिकायेष्वन्तर्भावार्थं स परिवर्तनलिंग इत्युक्त इति ॥ ६ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ६

अन्वयार्थः—(त्रैकालिकभावपरिणताः) जो तीन कालके भावोंरूप परिणमित होते हैं तथा (नित्याः) नित्य हैं [ते च एव अस्तिकायाः) ऐसे वे ही अस्तिकाय, (परिवर्तनलिङ्गसंयुक्ताः) परिवर्तनलिंग (काल) सहित, (द्रव्यभावं गच्छन्ति) द्रव्यत्व को प्राप्त होते हैं (अर्थात् वे छहों द्रव्य हैं।)

टीकाः—यहां पांच अस्तिकायोंको तथा कालको द्रव्यपना कहा है।

द्रव्य वास्तवमें सहभावी गुणोंको तथा क्रमभावी पर्यायोंको अनन्यरूप से आधारभूत हैं।। इसलिये जो वर्त चुके हैं, वर्त रहे हैं और भविष्यमें वर्तेंगे उन भावों—पर्यायोंरूप परिणमित होनेके कारण (पाँच) अस्तिकाय और परिवर्तनलिंग काल (वे छहों) द्रव्य हैं। भूत, वर्तमान और भावी भावोंस्वरूप परिणमित होनेसे वे कहीं अनित्य नहीं हैं, क्योंकि भूत, वर्तमान और भावी भावरूप अवस्थाओंमें भी प्रतिनियत (—अपने-अपने निश्चित) स्वरूपको नहीं छोड़ते इसलिये वे नित्य ही हैं।

यहां काल पुद्गलादिके परिवर्तनका हेतु होनेसे तथा पुद्गलादिके परिवर्तन द्वारा उसकी पर्यायें गम्य (ज्ञात) होती हैं इसलिये उसका अस्तिकायोंमें समावेश करनेके हेतु उसे 'परिवर्तनलिंग' कहा है।

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—६

अथ पंचास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यसंज्ञां कथयति,—

'ते चेव अत्थिकाया तिकालियभावपरिणदा णिचा' ते चैव पूर्वोक्ताः पंचास्तिकायाः यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन त्रैकालिकभावपरिणतास्त्रिकालविषयपर्यायपरिणताः संतः क्षणिका अनित्या विनश्वरा भवन्ति तथापि द्रव्यार्थिकनयेन नित्या एव। एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यां नित्यानित्यात्मकाः संतः गच्छंति 'दविय भावं' द्रव्यभावं गच्छन्ति द्रव्यसंज्ञां लभन्ते। पुनरपि कथंभूताः संतः "परियट्टणलिंगसंजुत्ता" परिवर्तनमेव जीवपुद्गलादिपरिणमनमेवाग्नेर्धूमवत् कार्यभूतं लिंगं चिन्हं गमकं ज्ञापकं सूचनं यस्य स भवति परिवर्तनलिङ्गः कालाणुद्रव्यकालस्तेन संयुक्ताः। ननु कालद्रव्यसंयुक्ता इति वक्तव्यं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्ता इति अव्यक्तवचनं किमर्थमिति। नैवं, पंचास्तिकायप्रकरणे कालस्य मुख्यता नास्तीति पदार्थानां नवजीर्णपरिणतिरूपेण कार्यलिङ्गेन ज्ञायते यतः कारणात् तेनैव कारणेन परिवर्तनलिङ्ग इत्युक्तं। अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रहादिसमस्तपरद्रव्यालम्बनोत्पन्नसंकल्पविकल्पशून्यशुद्धजीवास्तिकायश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजापूर्वपरमानन्दरूपेण स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं भरितावस्थं शुद्धनिश्चयनयेन स्वकीयदेहान्तर्गतं जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः ॥ ६ ॥

इति कालसहितपंचास्तिकायानां द्रव्यसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा—६

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(ते चेव) ये ही ऊपर कहे (अत्थिकाया) पांच अस्तिकाय (परियट्टणलिंगसंजुत्ता) द्रव्योंका परिवर्तन करना है चिन्ह जिसका ऐसे काल सहित (तेकालियभावपरिणदा) तीनकाल सम्बन्धी पर्यायोंमें परिणमन करते हुए च (णिच्चा) अविनाशी रहते हुए (दवियभावं) द्रव्यपनेको (गच्छंति) प्राप्त होते हैं।

विशेषार्थ-पर्यायार्थिक नयसे वे ही पूर्वोक्त पंचास्तिकाय त्रैकालिक पर्यायों से परिण

होते हुए क्षणिक अनित्य विनश्वर हैं तथापि द्रव्यार्थिक नय से नित्य हैं इस प्रकार द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयसे नित्यानित्यात्मक हैं। जैसे धूम अग्निके बतानेके लिये कार्यरूप लिंग है वैसे ही जीव पुद्गलादि द्रव्योंका परिणमना या पलटना ही काल द्रव्यका चिन्ह, गमक, ज्ञायक तथा सूचनारूप है। अर्थात् द्रव्योंके पलटनेमें कोई भी जो निमित्त कारण है वही परिवर्तन लिंग कालाणु या द्रव्यकाल है। यहांपर कोई शंका करता है कि 'कालद्रव्यसंयुक्ता' ऐसा क्यों नहीं कहा, परिवर्तनलिंगसंयुक्ता ऐसा अस्पष्ट वचन क्यों कहा ? इसका समाधान यह है कि पंचास्तिकायके प्रकरणमें कालकी मुख्यता नही है। क्योंकि पदार्थोंका नएसे पुरानापना होता है इस परिणतिरूप कार्य लिंगसे ही कालका जानपना होता है इसीलिये ही इस बातकी सूचनाके लिये परिवर्तनलिंग ऐसा कहा है।

इन छःद्रव्योंके मध्यमें देखे, सुने, अनुभव, किये हुए आहार, भय, मैथुन, परिग्रह आदिकी इच्छारूप सर्व परद्रव्योंके आलम्बनसे उत्पन्न जो संकल्प विकल्प उनसे शून्य जो शुद्ध जीवास्तिकाय है उसका श्रद्धान, ज्ञान, व आचरणरूप अभेद रत्नत्रयमई जो विकल्प रहित समाधि या समभाव उससे उत्पन्न जो वीतराग सहज अपूर्व परमानंद, उसरूप स्वसंवेदन ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य व अनुभवने योग्य अथवा उससे भरपूर शुद्ध निश्चयनयसे अपने ही शरीरके भीतर प्राप्त जो जीव द्रव्य है वही ग्रहण करने व अनुभवने योग्य है।

इस तरह काल सहित पांच अस्तिकायोंको द्रव्यसंज्ञा है ऐसा कथन करते हुए गाथा पूर्ण हुई ॥६॥

उत्थानिका—आगे कहते हैं कि ये छहों द्रव्य परस्पर अत्यन्त मिलाप रखते हुए भी अपने अपने स्वरूपसे गिरते नही हैं।

समयव्याख्या गाथा ७

अत्र षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरेऽपि प्रतिनियतस्वरूपादप्रच्यवनमुक्तं।

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥ ७ ॥

अन्योऽन्यं प्रविशन्ति ददन्त्यवकाशमन्योऽन्यस्य ।

मिलन्त्यपि च नित्यं स्वकं स्वभावं न विजहन्ति ॥ ७ ॥

अत एव तेषां परिणामवत्त्वेऽपि प्राग्नित्यत्वमुक्तम् । अत एव च न तेषामेकत्वापत्तिर्न च जीव-कर्मणोर्व्यवहारनयादेशादेकत्वेऽपि परस्परस्वरूपोपादानमिति ॥ ७ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ७

अन्वयार्थः-(अन्योन्यं प्रविशन्ति) वे एक-दूसरेमें प्रवेश करते हैं, (अन्योन्यस्य) अन्योन्य को (अवकाशम् ददन्ति) अवकाश देते हैं, (मिलन्ति) परस्पर (क्षीरनीरवत्) मिल जाते हैं, (अपि च) तथापि (नित्यं) सदा (स्वकं स्वभावं) अपने-अपने स्वभावको (न विजहन्ति) नहीं छोडते ।

टीका:—यहाँ छह द्रव्योंको परस्पर अत्यंत संकर होने पर भी वे प्रतिनियत (-अपने अपने निश्चित) स्वरूपसे च्युत नहीं होते ऐसा कहा है । इसीलिये (-अपने-अपने स्वभावसे च्युत नहीं होते इसीलिये), परिणामवाले होने पर भी वे नित्य हैं-ऐसा पहले (छठी गाथामें) कहा था, और इसीलिये वे एकत्वको प्राप्त नहीं होते, और यद्यपि जीव तथा कर्मको व्यवहारनयके कथनसे एकत्व (कहा जाता) है तथापि वे (जीव तथा कर्म) एक-दूसरेके स्वरूपको ग्रहण नहीं करते ॥ ७ ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—७

अथ षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरे स्वकीयस्वकीयस्वरूपादच्यवनमुपदिशति,—अण्णोण्णं पविसंता-अन्यक्षेत्रात्क्षेत्रान्तरं प्रति परस्परसंबंधार्थमागच्छन्तः, देंता ओगासमण्णमण्णस्स—आगतानां परस्परमवकाशदानं ददतः, मेलंतावि य णिच्चं-अवकाशदानानन्तरं परस्परमेलापकेन स्वकीयावस्थानकालपर्यन्तं युगपत्प्राप्तिरूपः संकरः परस्परविषयगमनरूपव्यतिकरः ताभ्यां विना नित्यं सर्वकालं तिष्ठन्तोपि 'सगसब्भावं ण विजहंति' स्वस्वरूपं न त्यजन्तीति । अथवा अन्योन्यं प्रविशन्तः सक्रियवन्तः जीवपुद्गलापेक्षया, आगतानामवकाशं ददतः इति सक्रियनिःक्रियद्रव्यमेलापकापेक्षया, नित्यं सर्वकालं मेलापकेन तिष्ठन्त इति धर्माधर्माकाशकालनिःक्रियद्रव्यापेक्षया, इति षड्द्रव्यमध्ये ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतकृष्णनीलकापोताशुभलेश्यादिसमस्तपरद्रव्यालम्बनोत्पन्नसंकल्पविकल्पकल्लोलमालारहितं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानन्दरूपसुखरसास्वादपरमसमरसीभावस्वभावेन स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं सालम्बं आधारं भरितावस्थं शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति पाठः । निश्चयनयेन स्वकीयदेहान्तर्गतं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः । यत्पुनरन्येषामेकान्तवादिनां रागद्वेषमोहसहितानामपि वायुधारणादिसर्वशून्यध्यानव्याख्यानमाकाशध्यानं वा तत्सर्वं निरर्थकमेव । संकल्पविकल्पयोर्भेदः कथ्यते-बहिर्द्रव्ये चेतनाचेतनमिश्रे ममेदमित्यादिपरिणामः "संकल्पः" अभ्यन्तरे सुख्यहं दुःख्यहं इत्यादिहर्षविषादपरिणामो "विकल्प" इति संकल्पविकल्पलक्षणं ज्ञातव्यं वीतरागनि-

विकल्पसमाधौ वीतरागविशेषणमनर्थकमित्युक्ते सति परिहारमाह—आर्तरौद्ररूपस्य विषयकषाय-निमित्तस्याशुभध्यानस्य वर्जनार्थत्वात् हेतुहेतुमद्भावव्याख्यानत्वाद्वा कर्मधारयसमासत्वाद्वा भावनाग्रन्थे पुनरुक्तदोषाभावत्वाद्वा स्वरूपस्य विशेषणत्वाद्वा दृढीकरणार्थत्वाद्वा। एवं वीतरागनिर्विकल्पसमाधि-व्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यं। वीतरागसर्वज्ञनिर्दोषिपरमात्मशब्दादिष्वप्यनेनैव प्रकारेण पूर्वपक्षे कृते यथासंभवं परिहारो दातव्यः इति। अत एव कारणाद्वीतरागस्तत एव कारणान्निर्विकल्पसमाधिः इति हेतुहेतुमद्भावशब्दस्यार्थः॥ ७॥

संकरव्यतिकरदोषपरिहारेण गाथा गता एवं स्वतन्त्रगाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतं। इति प्रथममहाधिकारे सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण समयशब्दार्थपीठिकाभिधानः प्रथमोन्तराधिकारः समाप्तः॥ "अथ सत्ता सव्वप-यत्था" इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण चतुर्दशगाथाभिर्जीवपुद्गलादिद्रव्यविवक्षारहितत्वेन सामान्यद्र-व्यपीठिका कथ्यते। तत्र चतुर्दशगाथासु मध्ये सामान्यविशेषसत्तालक्षणकथनरूपेण "सत्ता सव्वपयत्था" इत्यादि प्रथमस्थले गाथासूत्रमेकं, तदनन्तरं सत्ताद्रव्ययोरभेदो द्रव्यशब्दव्युत्पत्तिकथनमुख्यत्वेन च "दवि-यदि" इत्यादि द्वितीयस्थले सूत्रमेकं, अथ द्रव्यस्य लक्षणत्रयसूचनरूपेण "दव्वं सलक्खणीयमित्यादि" तृतीय-स्थले सूत्रमेकं, तदनन्तरं लक्षणद्वयप्रतिपादनरूपेण "उप्पत्ती य विणासो" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ तृतीय-लक्षणकथनेन "पज्जयरहिय" इत्यादि गाथाद्वयं। एवं समुदायेन गाथात्रयेण द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकपरस्पर-सापेक्षनयद्वयसमर्थनमुख्यतया चतुर्थस्थलं। अथ पंचमस्थले सर्वैकान्तमतनिराकरणार्थं प्रमाणसप्तभङ्गव्या-ख्यानमुख्यत्वेन "सियअत्थि" इत्यादि सूत्रमेकं। एवं चतुर्दशगाथासु मध्ये स्थलपंचकसमुदायेन प्रथमसप्तकं गतं, अथ द्वितीयसप्तकमध्ये प्रथमस्थले बौद्धमतैकान्तनिराकरणार्थं द्रव्यस्थापनमुख्यत्वेन "भावस्स णत्थि णासो" इत्याद्यधिकारगाथासूत्रमेकं तस्य विवरणार्थं गाथाचतुष्टयं, तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये तस्यैवाधिकारसू-त्रस्य द्रव्यगुणपर्यायव्याख्यानमुख्यत्वेन 'भावा जीवादीया' इत्यादि सूत्रमेकं, अथ मनुष्यादिपर्यायस्य विना-शोत्पादकत्वेपि ध्रुवत्वेन विनाशो नास्तीति कथनरूपेण 'मणुअत्तणेण' इत्यादि सूत्रमेकं, अथ तस्यैव दृढी-करणार्थं 'सो चेव' इत्यादि सूत्रमेकं, अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सदसतोर्विनाशोत्पादौ न स्तः पर्यायार्थिकनयेन पुनर्भवत इति नयद्वयव्याख्यानोपसंहाररूपेण 'एवं सदो विणासो' इत्यादि उपसंहारगाथासूत्रमेकं इति द्वितीयस्थले समुदायेन गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरं तृतीयस्थले सिद्धस्य पर्यायार्थिकनयेनासदुत्पादमुख्यतया "णाणावरणादीया" इत्यादि सूत्रमेकं, अथैवं चतुर्थस्थले द्रव्यरूपेण नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन संसारिजी-वस्य देवत्वाद्युत्पादव्ययकर्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन द्रव्यपीठिकासमाप्त्यर्थं वा "एवं भावं" इत्यादि गाथासूत्रमेकं, इति स दायेन चतुर्भिः स्थलैर्द्वितीयसप्तकं गतं। एवं चतुर्दशगाथाभिर्नवभिरन्तरस्थलैर्द्रव्य-पीठिकायां समुदायपातनिका। तद्यथा। अथास्तित्वस्वरूपं निरूपयति, अथवा सत्तामूलानि द्रव्याणीति कृत्वा पूर्वं सत्तास्वरूपं भणित्वा पश्चात् द्रव्यव्याख्यानं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपा-दयति भगवान्:—

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा-७

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(अण्णोण्णं पविसंता) अन्य क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें परस्परसम्बंध के लिये प्राप्त हुए [अण्णम् अण्णस्स] एक दूसरेको (ओगासं) परस्पर अवकाश (दिंता) देते हुए [णिच्चं मिलंता वि य] और सर्वकाल परस्पर मिलते हुए भी (सग सब्भावं) अपने अपने स्वभावको [ण विजहंति] नहीं छोडते हैं।

विशेषार्थ-ये छः द्रव्य परस्पर अवकाश देते हुए अपने २ ठहरनेके काल पर्यंत ठहरते हैं, परन्तु उनमें संकर व्यतिकर दोष नहीं आता है। एकमेक होजानेको संकर दोष कहते हैं, परस्पर विषय गमकरूप व्यतिकर दोष होता है अर्थात् एक द्रव्यका विषय दूसरे द्रव्यमें चला जावे जैसे जीवका गुण पुद्गलमें। इस गाथामें एक दूसरेमें प्रवेश करना जो वाक्य है वह क्रियावान या हलन चलन करनेवाले जीव और पुद्गलोंकी अपेक्षासे है, आए हुओंको अवकाश देना यह वाक्य सक्रिय द्रव्य जीव पुद्गलोंका निःक्रिय द्रव्य के मिलापकी अपेक्षासे है, नित्य सर्व काल मिलके रहते हैं, यह वाक्य निःक्रिय द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और कालकी अपेक्षासे है। इस तरह छःद्रव्यके मध्यमें अपनी प्रसिद्धि, पूजा व लाभ व देखे सुने अनुभवे हुए कृष्ण, नील, कापोत तीन अशुभलेश्याको आदि लेकर सर्व परद्रव्योंके आलम्बन से उत्पन्न जो संकल्पविकल्प की तरंगमाला उनसे रहित तथा वीतराग निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न परमानन्दरूप सुखरसका आस्वाद ऐसा जो परम समतारसमई भाव उस स्वभावसे ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य व उससे पूर्ण शुद्ध पारिणामिक परमभावको ग्रहण करने वाले शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे या निश्चयनय से अपने ही शरीरके भीतर प्राप्त जो शुद्ध जीवास्तिकायरूप जीव द्रव्य है सो ही ग्रहण करने योग्य है तथा दूसरे एकांतवादी जो राग, द्वेप, मोहसहित हैं उनके यहां वायुको रोकनेरूप इत्यादि जो सर्व शून्य ध्यानका व्याख्यान है या आकाशका ध्यान है सो सर्व व्यर्थ ही है।

यहां संकल्पविकल्पका भेद कहते हैं-

वाहरी चेतन व अचेतन या मिश्र द्रव्यमें यह परिणाम करना कि यह मेरे हैं सो संकल्प है। भीतर हर्ष या विषादका यह परिणाम करना कि मैं सुखी दुःखी हूं सो विकल्प है। ऐसा संकल्प विकल्पका लक्षण जानना चाहिये। यहां कोई कहे कि वीतराग निर्विकल्पसमाधिमें वीतराग का विशेषण निरर्थक है उसका समाधान करते हैं कि वीतराग विशेषण नीचे लिखे कारणोंसे

निरर्थक नहीं हैं। एक तो इससे यह बताया है कि आर्त या रौद्रध्यानरूप जो विषय कषायके निमित्त अशुभ ध्यान हैं उनका यहां निषेध है। दूसरे इससे हेतु व हेतुमद्भावका कथन किया गया। तीसरे कर्मधारय समास है। चौथे भावनाके ग्रन्थमें पुनरुक्त दोषको नहीं गिनते हैं। पांचवे स्वरूपका विशेषण है। छठे दृढ करनेका अभिप्राय है। ऐसा जहां कहीं वीतराग निर्विकल्पसमाधिका व्याख्यान हो वहां यही भाव सर्व स्थानोंमें जानना चाहिये। यदि वीतराग सर्वज्ञ निर्दोष परमात्मा शब्द ऐसे ही और शब्द कहीं आवें और कोई ऐसा ही पूर्व पक्ष करे तो उसका समाधान इसी तरह करना योग्य है। हेतु हेतुमद् भावका यह अर्थ है कि जिस कारणसे वीतराग है उस ही कारणसे निर्विकल्प समाधि है ॥ ७ ॥

इस तरह संकर व्यतिकर दोषको हटाते हुए गाथा पूर्ण हुई। इस तरह स्वतंत्र दो गाथाओंसे तीसरा स्थल पूर्ण हुआ। इस तरह पहले महाअधिकारमें सात गाथाओंके द्वारा व तीन स्थलोंसे समय शब्दके अर्थकी पीठिकाका विधानरूप प्रथम अन्तर अधिकार पूर्ण हुआ।

आगे 'सत्ता सव्वपयत्था' इस गाथाको आदि लेकर चौदह गाथाओं तक पाठक्रमसे जीव पुद्गलादि द्रव्योंकी विवक्षा न करके सामान्य द्रव्यकी पीठिका कही जाती है। इन १४ गाथाओंके मध्यमें सामान्य व विशेष सत्ताका लक्षण कहते हुए 'सत्ता सव्वपयत्था' इत्यादि प्रथम स्थलमें गाथा सूत्र एक है फिर सत्ता और द्रव्यका अभेद है व द्रव्यशब्दकी कथनकी-मुख्यतासे 'दवियदि' इत्यादि दूसरे स्थलमें सूत्र एक है। फिर द्रव्यके तीन लक्षण कहते हुए 'दव्वं सल्लक्खणीयं' इत्यादि तीसरे स्थलमें सूत्र एक है। फिर दो लक्षण कहते हुए 'उप्पत्तीय विणासो' इत्यादि सूत्र एक है। फिर तीसरा लक्षण कहते हुए 'पज्जय रहिय' इत्यादि गाथा दो हैं इस तरह समुदायसे तीन गाथाओंके द्वारा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक परस्पर अपेक्षा सहित दोनों नयोंके समर्थनकी मुख्यतासे चौथा स्थल है। पांचवें स्थलमें सर्व एकान्त मतोंके निराकरणके लिये प्रमाण सप्तभंगीके व्याख्यानकी मुख्यतासे "सिय अत्थि" इत्यादि सूत्र एक है। इस तरह चौदह गाथाओंमेंसे पांच स्थलके समुदायसे पहली सात गाथाएं हैं। फिर दूसरे सप्तकके मध्यमें पहले स्थलमें बौद्धमतका एकांत हटाते हुए द्रव्यके स्थापनकी मुख्यतासे "भावस्स णत्थि णासो" इत्यादि अधिकारकी गाथा सूत्र एक है। फिर इसीका विस्तार

करनेके लिये चार गाथाएं हैं। इन चार गाथाओंके मध्यमें उसी ही अधिकार सूत्रके द्रव्यगुण-पर्यायके व्याख्यानकी मुख्यतासे 'भावा जीवादीया' इत्यादि सूत्र एक है। फिर मनुष्यादि पर्यायके विनाश व जन्म होनेपर भी ध्रुवपनेकी अपेक्षा विनाश नहीं है ऐसा कहते हुए 'मणु-अत्तणेण' इत्यादि सूत्र एक है। फिर इसीके ही दृढ़ करनेके लिये 'सो चेव' इत्यादि सूत्र एक है फिर इस तरह द्रव्यार्थिकनयसे सत्का विनाश व असत्का उत्पाद नहीं है, पर्यायार्थिक नयसे है। इस तरह दो नयोंके व्याख्यानके संकोचरूप 'जावं सदो विणासो' इत्यादि उपसंहार गाथा सूत्र एक है। इस तरह दूसरे स्थलमें समुदायसे गाथाएं चार हैं। फिर तीसरे स्थलमें सिद्धको पर्यायार्थिकनयसे असत् उत्पाद है इसकी मुख्यतासे 'णाणावरणादीया' इत्यादि सूत्र एक है। आगे इसी तरह चौथे स्थलमें द्रव्यरूपसे नित्यपना होनेपर भी पर्यायार्थिक नयसे संसारीजीवके देवपना आदिके जन्म व नाशका कर्तापना है इस व्याख्यानके संकोचकी मुख्यतासे अथवा द्रव्यकी पीठिकाको समाप्त करते हुए 'एवं भावं' इत्यादि गाथासूत्र एक है। इस तरह समुदायसे चार स्थलोंमें दूसरा सप्तक है। ऐसे चौदह गाथाओंसे व नव अंतर स्थलोंसे द्रव्यकी पीठिकामें समुदाय पातनिका पूर्ण हुई। इसीका वर्णन करते हैं–

समय व्याख्या गाथा—८

अत्रास्तित्वस्वरूपमुक्तम् ।

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥ ८॥

अस्तित्वं हि सत्ता नाम सतो भावः सत्त्वम् । न सर्वथा नित्यतया सर्वथा क्षणिकतया वा विद्यमानमात्रं वस्तु । सर्वथा नित्यस्य वस्तुनस्तत्त्वतः क्रमभुवां भावानामभावात्कुतो विकारवत्त्वम् । सर्वथा क्षणिकस्य च तत्त्वतः प्रत्यभिज्ञानाभावात् कुत एकसंतानत्वम् । ततः प्रत्यभिज्ञानहेतुभूतेन केनचित्स्वरूपेण ध्रौव्यमालम्ब्यमानं काभ्यां-चित्क्रमप्रवृत्ताभ्यां स्वरूपाभ्यां प्रलीयमानमुपजायमानं चैककालमेव परमार्थतस्त्रितयीमवस्थां बिभ्राणं वस्तु सदवबोध्यम् । अत एव सत्ताप्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मिकाऽवबोद्धव्या, भावभाव-

यतो: कथंचिदेकस्वरूपत्वात् । सा च त्रिलक्षणस्य समस्तस्यापि वस्तुविस्तारस्य सादृश्यसूचकत्वादेका । सर्वपदार्थस्थिता च त्रिलक्षणस्य सदित्यभिधानस्य सदिति प्रत्ययस्य च सर्वपदार्थेषु तन्मूलस्यैवोपलम्भात् । सविश्वरूपा च विश्वस्य समस्तवस्तुविस्तारस्यापि रूपैस्त्रिलक्षणैः स्वभावैः सह वर्तमानत्वात् अनन्तपर्याया चानन्ताभिर्द्रव्यपर्यायव्यक्तिभिस्त्रिलक्षणाभिः परिगम्यमानत्वात् । एवंभूतापि सा न खलु निरंकुशा किन्तु सप्रतिपक्षा । प्रतिपक्षो ह्यसत्ता सत्तायाः, अत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणायाः, अनेकत्वमेकस्याः, एकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थितायाः, एकरूपत्वं सविश्वरूपायाः, एकपर्यायत्वमनन्तपर्यायाया इति । द्विविधा हि सत्ता महासत्तावान्तरसत्ता च । तत्र सर्वपदार्थसार्थव्यापिनी सादृश्यास्तित्वसूचिका महासत्ता प्रोक्तैव । अन्या तु प्रतिनियतवस्तुवर्तिनी स्वरूपास्तित्वसूचिकाऽवान्तरसत्ता । तत्र महासत्ताऽवान्तरसत्तारूपेणाऽसत्ताऽवान्तरसत्ता च महासत्तारूपेणाऽसत्तेत्यसत्ता सत्तायाः । येन स्वरूपेणोत्पादस्तत्तथोत्पादैकलक्षणमेव, येन स्वरूपेणोच्छेदस्तत्तथोच्छेदैकलक्षणमेव, येन स्वरूपेण ध्रौव्यं तत्तथा ध्रौव्यैकलक्षणमेव, तत उत्पद्यमानोच्छिद्यमानावतिष्ठमानानां वस्तुनः स्वरूपाणां प्रत्येकं त्रैलक्षण्याभावादत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणायाः । एकस्य वस्तुनः स्वरूपसत्ता नान्यस्य वस्तुनः स्वरूपसत्ता भवतीत्यनेकत्वमेकस्याः । प्रतिनियतपदार्थस्थिताभिरेव सत्ताभिः पदार्थानां प्रतिनियमो भवतीत्येकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थितायाः । प्रतिनियतैकरूपाभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतैकरूपत्वं वस्तूनां भवतीत्येकरूपत्वं सविश्वरूपायाः । प्रतिपर्यायनियताभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतैकपर्यायाणामानन्त्यं भवतीत्येकपर्यायत्वमनन्तपर्यायायाः । इति सर्वमनवद्यं सामान्यविशेषप्ररूपणप्रवणनयद्वयायत्तत्वात्तद्देशनायाः ॥ ८ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा—८

अन्वयार्थः—(सत्ता) सत्ता (भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका) उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक, (एका) एक, (सर्वपदार्था) सर्वपदार्थस्थित, (सविश्वरूपा) सविश्वरूप, (अनन्तपर्याया) अनंतपर्यायमय और (सप्रतिपक्षा) सप्रतिपक्ष (भवति) है।

टीकाः—यहाँ इस गाथाद्वारा अस्तित्वका स्वरूप कहा है।

अस्तित्व अर्थात् सत्ता सत्का भाव अर्थात् सत्त्व।

विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है और न सर्वथा क्षणिकरूप होती है। सर्वथा

नित्यवस्तुको वास्तवमें क्रमभावी भावोंका अभाव होनेसे विकार (-परिवर्तन, परिणाम) कहाँ से होगा ? और सर्वथा क्षणिक वस्तुमें वास्तवमें प्रत्यभिज्ञान का अभाव होनेसे एकप्रवाहपना कहाँसे रहेगा ? इसलिये प्रत्यभिज्ञानके हेतुभूत किसी स्वरूपसे ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपोंसे नष्ट होती हुई तथा उत्पन्न होती हुई—इसप्रकार परमार्थतः एकही कालमें तिगुनी [तीनअंशवाली] अवस्थाको धारण करती हुई वस्तु सत् जानना। इसीलिये 'सत्ता' भी 'उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक [त्रिलक्षणा] जानना, क्योंकि भाव और भाववानका कथंचित् एक स्वरूप होता है। और वह (सत्ता) 'एक' है, क्योंकि वह त्रिलक्षणवाले समस्त वस्तु विस्तारका सादृश्य सूचित करती है। और वह [सत्ता] 'सर्व-पदार्थस्थित' है क्योंकि उसके कारण ही (-सत्ताके कारण ही) सर्व पदार्थोंमें त्रिलक्षणकी (-उत्पादव्यय-ध्रौव्यकी), 'सत्' ऐसे कथनकी तथा 'सत्' ऐसी प्रतीतिकी उपलब्धि होती है। और वह (सत्ता) 'सवि-श्वरूप' है, क्योंकि वह विश्वके रूपों सहित अर्थात् समस्त वस्तुविस्तारके त्रिलक्षणवाले स्वभावों सहित वर्तती है। और वह (सत्ता) 'अनंतपर्यायमय' है, क्योंकि वह त्रिलक्षणवाली अनंत द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियोंसे व्याप्त है। (इस प्रकार सामान्य-विशेषात्मक सत्ताका उसके सामान्य पक्षकी अपेक्षासे अर्थात् महासत्तारूप अपेक्षासे वर्णन हुआ।)

ऐसी होने पर भी वह वास्तवमें निरंकुश नहीं है किन्तु सप्रतिपक्ष है। [१] सत्ताको असत्ता प्रतिपक्ष है, (२) त्रिलक्षणाको अत्रिलक्षणपना प्रतिपक्ष है, (३) एकको अनेकपना प्रतिपक्ष है, [४] सर्वपदार्थस्थितको एकपदार्थस्थितपना प्रतिपक्ष है, (५) सविश्वरूपको एकरूपपना प्रतिपक्ष है, [६] अनंतपर्यायमयको एकपर्यायमयपना प्रतिपक्ष है।

(उपरोक्त सप्रतिपक्षपना स्पष्ट समझाया जाता है:-) सत्ता द्विविध है : महासत्ता और अवान्तर सत्ता। उनमें, सर्वपदार्थसमूहमें व्याप्त होनेवाली, सादृश्यअस्तित्वको सूचित करनेवाली महासत्ता (सामान्यसत्ता) तो कही जा चुकी है। दूसरी प्रतिनिश्चित (-एक एक निश्चित) वस्तुमें रहनेवाली, स्वरूप—अस्तित्वको सूचित करनेवाली अवान्तरसत्ता (विशेषसत्ता) है। (१) वहाँ, महासत्ता अवान्तर सत्तारूपसे असत्ता है और अवान्तरसत्ता महासत्तारूपसे असत्ता है इसलिये सत्ताको असत्ता है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होनेसे 'सत्ता' है वही अवान्तरसत्तारूप भी होनेसे 'असत्ता' भी है) (२) जिस स्वरूपसे उत्पाद है उसका (-उसस्वरूपका) उसप्रकारसे उत्पाद एक ही लक्षण है, जिस स्वरूपसे व्यय है उसका (-उस स्वरूपका) उसप्रकारसे व्यय एक ही लक्षण है और जिस स्वरूपसे ध्रौव्य है उसका (-उस स्वरूपका) उसप्रकारसे ध्रौव्य एक ही लक्षण है इसलिये वस्तुके उत्पन्न होनेवाले, नष्ट होनेवाले और ध्रुव रहनेवाले स्वरूपोंमेंसे प्रत्येकको त्रिलक्षणका अभाव होनेसे त्रिलक्षणा (सत्ता) को अत्रिलक्षणपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होनेसे 'त्रिलक्षणा' है वही

यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होनेसे 'अत्रिलक्षणा' भी है।) (३) एक वस्तुकी स्वरूपसत्ता अन्य वस्तुकी स्वरूपसत्ता नही है इसलिये एक (सत्ता) को अनेकपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेपात्मक सत्ता महासत्तारूपसे होनेसे 'एक' है वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'अनेक' भी है।) (४) प्रतिनिश्चित (-व्यक्तिगत निश्चित) पदार्थमें स्थित सत्ताओं द्वारा ही पदार्थोंका प्रतिनिश्चितपना (-भिन्न भिन्न निश्चित व्यक्तित्व) होता है इसलिये सर्वपदार्थस्थित (सत्ता) को एकपदार्थस्थितपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेपात्मक सत्ता महासत्तारूप होनेसे 'सर्वपदार्थस्थित' है वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होनेसे 'एकपदार्थस्थित' भी है।) (५) प्रतिनिश्चित एक-एक रूपवाली सत्ताओं द्वारा ही वस्तुओंका प्रतिनिश्चित एक-एकरूप होता है इसलिये सविश्वरूप (सत्ता) को एकरूपपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होनेसे 'सविश्वरूप' है वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होनेसे 'एकरूप' भी है।) (६) प्रत्येक पर्यायमें स्थित (व्यक्तिगत भिन्नभिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायोंका अनंतपना होता है इसलिये अनंतपर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेपात्मक सत्ता महासत्तारूप होनेसे 'अनंतपर्यायमय' है वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होनेसे 'एकपर्यायमय' भी है।)

इस प्रकार सब निरवद्य है (अर्थात् ऊपर कहा हुआ सर्व स्वरूप निर्दोप है, निर्बाध है, किंचित् विरोधवाला नहीं है) क्योंकि उसका (सत्ताके स्वरूपका) कथन सामान्य और विशेषकी प्ररूपणाकी ओर ढलते हुए दो नयोंके आधीन है॥ ८॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा— ८

हवदि भवति। का कर्त्री। सत्ता सत्ता। कथंभूता। सव्वपदत्था सर्वपदार्था। पुनरपि कथंभूता। सविस्सरूवा-सविश्वरूपा। पुनरपि किं विशिष्टा। अणंतपज्जाया-अनंतपर्याया। पुनरपि किं विशिष्टा। भंगुप्पादधुवत्ता-भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका। पुनश्च किं विशिष्टा? एक्का-महासत्तारूपेणैका। एवं पंचविशेषणविशिष्टा सत्ता किं निरंकुशा निःप्रतिपक्षा भविष्यति? नैवं। सप्पडिवक्खा-सप्रतिपक्षैवेति वार्तिकं। तथाहि-स्वद्रव्यादिचतुष्टयरूपेण सत्तायाः परद्रव्यादिचतुष्टयरूपेणासत्ता प्रतिपक्षः, सर्वपदार्थस्थितायाः सत्तायाः एकपदार्थस्थिता प्रतिपक्षः, मूर्तो घटः सौवर्णो घटः ताम्रो घट इत्यादिरूपेण सविश्वरूपाया नानारूपाया एकघटरूपा सत्ता प्रतिपक्षः, अथवा विवक्षितैकघटे वर्णाकारादिरूपेण विश्वरूपायाः सत्ताया विवक्षितैकगन्धादिरूपा प्रतिपक्षः, कालत्रयापेक्षायानन्तपर्यायायाः सत्ताया विवक्षितैकपर्यायसत्ता प्रतिपक्षः, उत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण त्रिलक्षणायाः सत्ताया विवक्षितैकस्योत्पादस्य वा व्ययस्य वा ध्रौव्यस्य वा सत्ता प्रतिपक्षः, एकस्या महासत्ताया अवान्तरसत्ता प्रतिपक्ष इति शुद्धसंग्रहनयविवक्षायामेका महासत्ता अशुद्धसंग्रहनयविवक्षायां व्यवहारनयविवक्षायां वा सर्वपदार्थसविश्वरूपाद्यवान्तरसत्ता। सप्रतिपक्षव्याख्यानं सर्वं नैगमनयापेक्षया ज्ञातव्यं। एवं नैगमसंग्रहव्यवहारनयत्रयेण योजनीयं, अथवैका महासत्ता

शुद्धसंग्रहनयेन; सर्वपदार्थावान्तरसत्ता व्यवहारनयेनेति नयद्वयव्याख्यानं कर्तव्यं। अत्र शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञस्य शुद्धजीवद्रव्यस्य या सत्ता सैवोपादेया भवतीति भावार्थः ॥ ८॥

इति प्रथमस्थले सतालक्षणमुख्यत्वेनव्याख्यानेन गाथा गता।

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा—८

उत्थानिका—अब अस्तित्वका स्वरूप कहते हैं अथवा सत्ता रूप मूलगुणको रखनेवाले द्रव्य हैं ऐसा समझ कर पहले सत्ताका स्वरूप कह कर फिर द्रव्यका व्याख्यान करेंगे ऐसा अभिप्राय मनमें रखकर भगवान् कुन्दकुन्द आगेका सूत्र कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(सत्ता) अस्तिरूप सत्ता (सव्वपयत्था) सर्व पदार्थोंमें रहने वाली है, (सविस्सरूवा) नाना स्वरूपको रखनेवाली है, (अणंत पज्जाया) अनंत पर्यायोंको धारनेवाली है (भंगुप्पादधुवत्ता) उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है (एक्का) एक है अर्थात् महासत्ताकी अपेक्षा एक है तथा (सप्पडिवक्खा) अपने प्रतिपक्ष सहित (हवदि) है।

विशेषार्थ—पांच विशेषणोंसे युक्त सत्ता अपने प्रतिपक्ष भावोंको रखनेवाली है। वह इस तरहपर है कि स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा जो सत्ता है उसीका प्रतिपक्ष या विरोध परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा असत्ता है। सर्व पदार्थोंमें रहनेवाली महासत्ताकी विरोधी एक पदार्थमें रहनेवाली अवान्तरसत्ता है। वह महासत्ता मूर्तीक घट, सुवर्णका घट, तामेका घट इत्यादि रूपसे नाना रूप है, उसीका विरोध एक घट रूप अवान्तर सत्ता है। अथवा किसी एक घटमें जो वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादिरूप अनेक तरहकी सत्ता है उसका प्रतिपक्ष विशेष एक गन्धादिरूप सत्ता है। तीनकालकी अपेक्षा अनन्त पर्यायरूप महासत्ताका प्रतिपक्ष एक विशेष पर्यायकी सत्ता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूपसे तीनलक्षणवाली सत्ताका प्रतिपक्ष विशेष एक उत्पादकी या एक व्ययकी या एक ध्रौव्यकी सत्ता है। एक महासत्ताकी अवान्तरसत्ता प्रतिपक्ष है। इस तरह शुद्ध संग्रहनयकी अपेक्षासे एक महासत्ता है, अशुद्ध संग्रहनयकी अपेक्षासे या व्यवहारनयकी अपेक्षासे सर्व पदार्थोंमें रहनेवाली नानारूप अवान्तरसत्ता है। यह सर्व प्रतिपक्ष सहित व्याख्यान नैगमनयकी अपेक्षासे जानना चाहिये। इस तरह संग्रह व्यवहार व नैगमनय इन तीन नयोंके द्वारा सत्ताका व्याख्यान समझना चाहिये। अथवा शुद्ध संग्रहनयसे एक महासत्ता है तथा व्यवहारनयसे सर्व पदार्थोंमें रहनेवाली अवान्तर सत्ता है ऐसे दो नयोंसे

व्याख्यान करना योग्य है। यहां शुद्ध जीवास्तिकाय का शुद्ध द्रव्यकी सत्ता ही उपादेय या ग्रहण योग्य है ऐसा भावार्थ है ॥ ८ ॥

समय व्याख्या गाथा—९

अत्र सत्ताद्रव्ययोरर्थान्तरत्वं प्रत्याख्यातम्।

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो ॥ ९ ॥

द्रवति गच्छति तांस्तान् सद्भावपर्यायान् यत्।
द्रव्यं तत् भणन्ति-अनन्यभूतं तु सत्तातः ॥ ९ ॥

द्रवति गच्छति सामान्यरूपेण स्वरूपेण व्याप्नोति तांस्तान् क्रमभुवः सहभुवश्च सद्भावपर्यायान् स्वभावविशेषानित्यनुगतार्थया निरुक्त्या द्रव्यं व्याख्यातम्। द्रव्यं च लक्ष्यलक्षणभावादिभ्यः कथञ्चिद् भेदेऽपि वस्तुतः सत्ताया अपृथग्भूतमेवेति मन्तव्यम्। ततो यत्पूर्वं सत्त्वमसत्त्वं त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकत्वमनेकत्वं सर्वपदार्थस्थितत्वमेकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वं च प्रतिपादितं सत्तायास्तत्सर्वं तदनर्थान्तरभूतस्य द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यम्। ततो न कश्चिदपि तेषु सत्ताविशेषोऽवशिष्येत यः सत्तां वस्तुतो द्रव्यात्पृथक् व्यवस्थापयेदिति ॥ ९ ॥

हिन्दी समयव्याख्या गाथा—९

अन्वयार्थः—(तान् तान् सद्भावपर्यायान्) उन-उन सद्भावपर्यायोंको (यत्) जो (द्रवति) द्रवित होता है—(गच्छति) प्राप्त होता है, (तत्) उसे (द्रव्यं भणन्ति) (सर्वज्ञ) द्रव्य कहते हैं—(सत्तातः अनन्यभूतं तु) जो कि सत्तासे अनन्यभूत है।

टीकाः—यहां सत्ताको और द्रव्यको अर्थान्तरपना (भिन्नपदार्थपना) अन्य होनेका खंडन किया गया है।

'उन-उन क्रमभावी और सहभावी सद्भावपर्यायोंको अर्थात् स्वभावविशेषोंको जो द्रवित होता है-प्राप्त होता है—सामान्यरूप स्वरूपसे व्याप्त होता है, वह 'द्रव्य है'—इसप्रकार अनुगत अर्थवाली निरुक्तिसे द्रव्यकी व्याख्या की गई। और यद्यपि लक्ष्यलक्षण भावादिक द्वारा द्रव्यको सत्तासे कथंचित् भेद है तथापि वस्तुतः द्रव्य सत्तासे अपृथक् ही है ऐसा मानना। इसलिये पहले (८ वीं गाथामें) सत्ताको

जो सत्पना, असत्पना, त्रिलक्षणपना, अत्रिलक्षणपना, एकपना, अनेकपना, सर्वपदार्थस्थितपना, एकपदार्थस्थितपना, विश्वरूपपना, एकरूपपना, अनंतपर्यायमयपना और एकपर्यायमयपना कहा गया वह सब सत्तासे अनर्थान्तरभूत (-अभिन्नपदार्थभूत, अनन्यपदार्थभूत) द्रव्यके ही देखना चाहिये अर्थात् मानना चाहिये इसलिये उनमें (-उन सत्ताके विशेषोंमें) कोई सत्ताविशेष शेष नहीं रहता जो कि सत्ताको वस्तुतः (परमार्थतः) द्रव्यसे पृथक् स्थापित करे ॥ ९ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा—९

अथ सत्ताद्रव्ययोरभिन्नत्वं प्रत्याख्याति:—दवियदि—द्रवति । द्रवति कोर्थः । गच्छदि-गच्छति । क । वर्तमानकाले । द्रोष्यति गमिष्यति भाविकाले, अदुद्रुवत् गतं भूतकाले । कान् । ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं—तांस्तान् सद्भावपर्यायान् स्वकीयपर्यायान् । जं-यत् । कर्तृ । दवियत्तं भण्णंति-हि तद्द्रव्यं भणन्ति सर्वज्ञा हि स्फुटं । अथवा द्रवति स्वभावपर्यायान्, गच्छति विभावपर्यायान् । इत्थंभूतं द्रव्यं किं सत्ताया भिन्नं भविष्यति ? नैवं । अणण्णभूदं-तु सत्तादो अनन्यभूतमभिन्नं । कस्याः सत्तायाः निश्चयनयेन । यत एव संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयनयेन सत्ताया द्रव्यमभिन्नं तत एव पूर्वगाथायां यत्सत्तालक्षणं कथितं सर्वपदार्थस्थितत्वं एकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वंत्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकरूपत्वमनेकरूपत्वं चेति तत्सर्वं लक्षणं सत्ताया अभिन्नत्वात् द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यमिति सूत्रार्थः ॥ ९ ॥ एवं द्वितीयस्थले सत्ताद्रव्ययोरभेदस्य द्रव्यशब्दस्य व्युत्पत्तिश्चेति कथनरूपेण गाथा गता ।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा—९

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(जं) जो (ताइं ताइं) अपने अपने (स्वभावपज्जयाइं) स्वभावरूप पर्यायोंको (दवियदि) द्रवण करै (गच्छदि) प्राप्त करै (तं) उसको (दवियं) द्रव्य (भण्णंते) कहते हैं (तु) परन्तु वह द्रव्य (सत्तादो) सत्तासे (अणण्णभूदं) अभिन्न है ।

विशेषार्थ—जो अपनी ही अवस्थाओंमें भूतकालमें परिणमन कर चुका है, वर्तमानकालमें परिणमन करता है तथा भविष्यमें परिणमन करेगा उसको द्रव्य कहते हैं । स्वभाव पर्यायों की अपेक्षा द्रवति और विभाव पर्यायों की अपेक्षा गच्छति कहा गया है । यह द्रव्य अपनी सत्तासे निश्चयनयसे एकरूप है, क्योंकि संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजनादिकी अपेक्षासे सत्ता और द्रव्यका भेद होनेपर भी निश्चयनयसे सत्ता और द्रव्यका अभेद है इसीलिये इससे पहली गाथामें जो सत्ताका लक्षण कहा गया है वह सब लक्षण सत्तासे अभिन्न द्रव्यका भी

जानना चाहिये। अर्थात् द्रव्यमें सर्व पदार्थ स्थितपना है, एक पदार्थ स्थितपना है, सर्वरूपपना है, एकरूपपना है, अनंत पर्यायपना है, एक पर्यायपना है, तीन लक्षणपना है, एक लक्षणपना है, एकरूपपना है, अनेकरूपपना है ॥ ९ ॥

इस तरह दूसरे स्थलमें सत्ता और द्रव्यका अभेद व द्रव्यशब्दकी व्युत्पत्ति कथन करते हुए गाथा पूर्ण हुई।

संस्कृत समय गाथा १०

अत्र त्रेधा द्रव्यलक्षणमुक्तम्।

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
गुणपज्जयासयं वा जंतंभण्णंति सव्वण्हू ॥ १० ॥

द्रव्यं सल्लक्षणकं उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम् ।
गुणपर्यायाश्रयं वा यत्तद् भणन्ति सर्वज्ञाः ॥ १० ॥

सद्द्रव्यलक्षणम्। उक्तलक्षणायाः सत्ताया अविशेषाद् द्रव्यस्य सत्स्वरूपमेव लक्षणम्। न चानेकान्तात्मकस्य द्रव्यस्य सन्मात्रमेव स्वरूपं यतो लक्ष्यलक्षणविभागाभाव इति। उत्पादव्ययध्रौव्याणि वा द्रव्यलक्षणम्। एकजात्यविरोधिनि क्रमभुवां भावानां संताने पूर्वभावविनाशः समुच्छेदः, उत्तरभावप्रादुर्भावश्च समुत्पादः, पूर्वोत्तरभावोच्छेदोत्पादयोरपि स्वजातेरपरित्यागो ध्रौव्यम्। तानि सामान्यादेशादभिन्नानि विशेषादेशाद् भिन्नानि युगपद्भावीनि स्वभावभूतानि द्रव्यस्य लक्षणं भवन्तीति। गुणपर्याया वा द्रव्यलक्षणम्। अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनोऽन्वयिनो विशेषा गुणा व्यतिरेकिणः पर्यायास्ते द्रव्ये यौगपद्येन क्रमेण च प्रवर्तमानाः कथंचिद्भिन्नाः कथंचिदभिन्नाःस्वभावभूताः द्रव्यलक्षणतामापद्यन्ते। त्रयाणामप्यमीषां द्रव्यलक्षणानामेकस्मिन्नभिहितेऽन्यदुभयमर्थादेवापद्यते। सच्चेदुत्पादव्ययध्रौव्यवच्च गुणपर्यायवच्च। उत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेत्सच्च गुणपर्यायवच्च। गुणपर्यायवच्चेत्सच्चोत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेति। सद्धि नित्यानित्यस्वभावत्वाद् ध्रुवत्वमुत्पादव्ययात्मकतां च प्रथयति, ध्रुवत्वात्मकैर्गुणैरुत्पादव्ययात्मकैः पर्यायैश्च सहैकत्वं चाख्याति। उत्पादव्ययध्रौव्याणि तु नित्यानित्यस्वरूपं परमार्थं सदावेदयन्ति,

गुणपर्यायांश्चात्मलाभनिबन्धनभूतान् प्रथयन्ति । गुणपर्यायास्त्वन्वयव्यतिरेकित्वाद् ध्रौव्योत्पत्तिविनाशान् सूचयन्ति, नित्यानित्यस्वभावं परमार्थं सच्चोपलक्षयन्तीति ॥ १० ॥

अत्रोभयनयाभ्यां द्रव्यलक्षणं प्रविभक्तम् ।

हिंदी समयव्याख्या गाथा १०

अन्वयार्थः—(यत्) जो (सल्लक्षणकम्) 'सत्' लक्षणवाला है, (उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम्) जो उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्त है (वा) अथवा (गुणपर्यायाश्रयम्) जो गुणपर्यायोंको आश्रय आधार है, (तद्) उसे (सर्वज्ञाः) सर्वज्ञ (द्रव्यं) द्रव्य (भणन्ति) कहते हैं।

टीकाः—यहाँ तीन प्रकारसे द्रव्यका लक्षण कहा है।

'सत्' द्रव्यका लक्षण है। पूर्वोक्त लक्षणवाली सत्तासे द्रव्य अभिन्न होनेके कारण 'सत्' स्वरूप ही द्रव्यका लक्षण है। और अनेकान्तात्मक अनेक धर्मों वाले द्रव्यका सतमात्र ही स्वरूप नहीं है कि जिससे लक्ष्यलक्षणके विभागका अभाव हो।

अथवा, उत्पादव्ययध्रौव्य द्रव्यका लक्षण है। एक जाति का अविरोधक ऐसा जो क्रमभावी भावोंका प्रवाह उसमें पूर्व भावका विनाश सो व्यय है, उत्तर भावका प्रादुर्भाव सो उत्पाद है और पूर्व-उत्तर भावोंके व्यय-उत्पाद होने पर भी स्वजातिका अत्याग सो ध्रौव्य है। वे उत्पाद-व्यय—ध्रौव्य-जो कि सामान्य आदेशसे (द्रव्यसे) अभिन्न हैं विशेष आदेशसे भिन्न हैं, युगपद् वर्तते हैं और स्वभावभूत हैं वे—द्रव्यका लक्षण है।

अथवा, गुणपर्यायें द्रव्यका लक्षण हैं। अनेकान्तात्मक वस्तुके अन्वयी विशेष वे गुण हैं और व्यतिरेकी विशेष वे पर्यायें हैं। वे गुण और पर्यायें जो कि द्रव्यमें एक ही साथ तथा क्रमशः प्रवर्तते हैं, द्रव्यसे कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न हैं तथा स्वभावभूत हैं वे—द्रव्यका लक्षण हैं।

द्रव्यके इन तीनों लक्षणोंमेंसे एकका कथन करने पर शेष दोनों (बिना कथन किये) अर्थसे ही आ जाते हैं। यदि द्रव्य सत् हो, तो वह (१) उत्पादव्ययध्रौव्यवाला और (२) गुणपर्यायवाला होगा, यदि उत्पादव्ययध्रौव्यवाला हो, तो वह (१) सत् और [२] गुणपर्यायवाला होगा, यदि गुणपर्यायवाला हो, तो वह (१) सत् और (२) उत्पादव्ययध्रौव्यवाला होगा। वह इस प्रकारः-सत् नित्यानित्यस्वभाववाला होनेसे (१) ध्रौव्यको और उत्पादव्ययात्मकताको प्रगट करता है तथा [२] ध्रौव्यात्मक गुणों और उत्पादव्ययात्मक पर्यायोंके साथ एकत्व दर्शाता है। उत्पादव्ययध्रौव्य (१) नित्यानित्यस्वरूप पारमार्थिक सत्को बतलाते हैं तथा (२) अपने स्वरूपकी प्राप्तिके कारणभूत गुणपर्यायोंको प्रगट करते हैं। गुणपर्यायें अन्वय और व्यतिरेकवाले होनेसे (१) ध्रौव्यको और उत्पादव्ययको सूचित करते हैं तथा (२) नित्यानित्यस्वभाववाले पारमार्थिक सत्को बतलाते हैं ॥ १० ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—१०

अथ त्रेधा द्रव्यलक्षणमुपदिशति,–दव्वं सलक्खणीयं द्रव्यं सत्तालक्षणं द्रव्यार्थिकनयेन बौद्धं प्रति उप्पादव्वयधुवत्तासंजुत्तं उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तं पर्यायार्थिकनयेन गुणपज्जयासयं वा गुणपर्यायाधारभूतं वा सांख्यनैयायिकं प्रति जं तं भण्णंति सव्वण्हू यदेवं लक्षणत्रयसंयुक्तं तद्द्रव्यं भणंति सर्वज्ञा इति वार्तिकं। तथाहि-सत्तालक्षणमित्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुण पर्यायवत्त्वलक्षणं च नियमेन लभ्यते। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमित्युक्ते सत्तालक्षणं गुणपर्यायत्वलक्षणं च नियमेन लभ्यते। गुणपर्यायवदित्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणत्वं सत्तालक्षणं च नियमेन लभ्यते। एकस्मिंल्लक्षणेऽभिहिते सत्यन्यलक्षणद्वयं कथं लभ्यत इति चेत्? त्रयाणां लक्षणानां परस्पराविनाभावित्वादिति। अथ मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धसत्तालक्षणं अगुरुलघुत्वगुणषड्ढानि वृद्धिरूपेण शुद्धोत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं अकृतज्ञानाद्यनन्तगुणलक्षणं सहजशुद्धसिद्धपर्यायलक्षणं च शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः। क्षणिकैकान्तरूपं बौद्धमतं नित्यैकान्तरूपं सांख्यमतं उभयैकान्तरूपं नैयायिकमतं मीमांसकमतं च सर्वत्र मतान्तरव्याख्यानकाले ज्ञातव्यं। क्षणिकैकान्ते किं दूषणं? येन घटादिक्रिया प्रारब्धा स तस्मिन्नेव क्षणे गतः क्रियानिष्पत्तिर्नास्तीत्यादि। नित्यैकान्ते च योसौ तिष्ठति स तिष्ठत्येव सुखी सुख्येव दुःखी दुःख्येवेत्यादिटंकोत्कीर्णनित्यत्वे पर्यायान्तरं न घटते, परस्परनिरपेक्षद्रव्यपर्यायोभयैकान्ते पुनः पूर्वोक्तदूषणद्वयमपि प्राप्नोति। जैनमते पुनः परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायत्वान्नास्ति दूषणं॥ १०॥ इति तृतीयस्थले द्रव्यस्य सत्तालक्षणत्रयसूचनमुख्यत्वेन गाथा गता।

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा—१०

उत्थानिका–आगे द्रव्यका लक्षण तीन प्रकार कहते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थः–(जं) जो (सल्लक्खणियं) सत् लक्षणवाला है, (उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं) उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित है, (वा) अथवा (गुणपज्जयासयं) गुण और पर्यायोंका आश्रयरूप है, (तं) उसको अर्थात् उक्त तीन लक्षण वाले को (सव्वण्हू) सर्वज्ञ भगवान [दव्वं] द्रव्य (भण्णंति) कहते हैं।

विशेषार्थ–द्रव्यका लक्षण सत् रूप द्रव्यार्थिक नयसे किया गया है। इससे बौद्धमतका निषेध है जो सब वस्तुको असत् मानते हैं। पर्यायार्थिक नयसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य या गुणपर्यायवान लक्षण किया गया। इससे कूटस्थ नित्य माननेवाले सांख्य और नैयायिकका निषेध है। सत्ता लक्षण द्रव्य है ऐसा कहनेसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण या गुण पर्यायवान लक्षण

नियमसे प्राप्त होता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है ऐसा लक्षण करनेसे सत्ता लक्षण या गुण-पर्यायवान लक्षण नियमसे प्राप्त होता है। गुणपर्यायवान लक्षण करनेसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण या सत्ता लक्षण नियमसे प्राप्त होता है। एक कोई लक्षणको कहते हुए अन्य दो लक्षण किस तरह प्राप्त होते हैं ? इसका उत्तर यह है कि इन तीनों लक्षणोंमें परस्पर अविनाभाव है अर्थात् सब एक दूसरेमें गर्भित है। यहां यह भावार्थ है कि शुद्ध जीवद्रव्य उपादेय है जिसका शुद्ध सत्ता लक्षण है क्योंकि उसमें मिथ्यात्व व रागद्वेषादि नही हैं। उसीका पर्याय दृष्टिसे अगुरुलघु गुणके द्वारा षड्गुणी हानि वृद्धि होते हुए शुद्ध उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण है तथा अकृत्रिम ज्ञानादि अनन्तगुण रूप व सहज शुद्ध सिद्ध पर्यायरूप लक्षण है ऐसे तीन लक्षणोंको धारनेवाला शुद्ध जीवास्तिकाय है। इस व्याख्यानसे क्षणिक एकान्त मतके माननेवाले बौद्धका, नित्य एकान्त मतको माननेवाले सांख्यका, नित्य तथा अनित्य दोनोंका एकान्त माननेवाले नैयायिक और मीमांसक मतका निराकरण है। ऐसा ही कथन सर्व जगह अन्य मतके व्याख्यानके समय जानना चाहिये। क्षणिक एकान्तमतको क्यों दूषण देते है ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि जिसने घट आदि बनानेकी क्रिया प्रारंभ की वह उस ही क्षणमें नष्ट होगया तब उससे घटकी क्रिया पूर्ण नहीं होसक्ती इत्यादि इसी तरह नित्य एकांत माननेमें यह दूषण है कि जो बैठा है उसे बैठा ही रहना चाहिये, जो सुखी है वह सुखी ही रहेगा, जो दुःखी है वह दुःखी ही रहेगा इत्यादि टंकोत्कीर्ण कूटस्थ नित्य पदार्थ होनेसे उसमें अन्य पर्याय नहीं हो सकेगी इसी तरह परस्पर अपेक्षा विना द्रव्यपर्याय दोनोंका एकांत माननेसे पूर्वमें कहे हुए दोनों ही दोष प्राप्त होंगे। जैनमतमें परस्पर सापेक्ष द्रव्यपर्याय माननेसे कोई दूषण नहीं आसक्ता है ॥ १० ॥

इस तरह तीसरे स्थलमें द्रव्यका सत्तादिलक्षण तीन प्रकार है इस सूचनाकी मुख्यतासे गाथा पूर्ण हुई।

संस्कृत समय व्याख्या गाथा ११

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया ॥ ११ ॥

उत्पत्तिर्वा विनाशो द्रव्यस्य च नास्त्यस्ति सद्भावः।
विगमोत्पादध्रुवत्वं कुर्वन्ति तस्यैव पर्यायाः ॥ ११ ॥

द्रव्यस्य हि सहक्रमप्रवृत्तगुणपर्यायसद्भावरूपस्य त्रिकालावस्थायिनोऽनादिनिधनस्य न समुच्छेदसमुदयौ युक्तौ । अथ तस्यैव पर्यायाणां सहप्रवृत्तिभाजां केषांचित् ध्रौव्यसंभवेऽप्यपरेषां क्रमप्रवृत्तिभाजां विनाशसंभवसंभावनमुपपन्नम् । ततो द्रव्यार्थार्पणायामनुत्पादमनुच्छेदं सत्स्वभावमेव द्रव्यं, तदेव पर्यायार्थार्पणायां सोत्पादं सोच्छेदं चावबोद्धव्यम् । सर्वमिदमनवद्यञ्च द्रव्यपर्यायाणामभेदात् ॥ ११ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ११

अन्वयार्थः—(द्रव्यस्य च) द्रव्यका (उत्पत्तिः) उत्पाद (वा) या (विनाशः) विनाश (न अस्ति) नहीं है, (सद्भावः अस्ति) सद्भाव है। (तस्य एव पर्यायाः) उसीकी पर्यायें (विगमोत्पादध्रुवत्वं) विनाश, उत्पाद और ध्रुवता (कुर्वन्ति) करती हैं।

टीकाः—यहाँ दोनों नयों द्वारा द्रव्यका लक्षण विभक्त किया है।

सहवर्ती गुणों और क्रमवर्ती पर्यायोंके सद्भावरूप, त्रिकाल-अवस्थायी (त्रिकाल स्थित रहनेवाले) अनादि-अनंत द्रव्यके विनाश और उत्पाद उचित नहीं हैं। परन्तु उसीकी पर्यायों का जो सहवर्ती हैं, ध्रौव्य होने पर भी अन्य क्रमवर्ती पर्यायों का विनाश और उत्पाद होना घटित होते हैं। इसलिये द्रव्य द्रव्यार्थिक आदेशसे (-कथनसे) उत्पादरहित, विनाशरहित, सत् स्वभाववाला ही जानना चाहिये और वही (द्रव्य) पर्यायार्थिक आदेशसे उत्पादवाला तथा विनाशवाला जानना चाहिये।

—यह सब निरवद्य (-निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायोंका अभेद (-अभिन्नपना) है ॥ ११ ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा-११

अथ गाथापूर्वार्द्धेन द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यलक्षणं उत्तरार्द्धेन पर्यायार्थिकनयेन पर्यायलक्षणं प्रतिपादयति। उप्पत्ती य विणासो दव्वस्स य णत्थि—अनादिनिधनस्य द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेनोत्पत्तिश्च विनाशो वा नास्ति। तर्हि किमस्ति ? अत्थि सब्भावो—अस्ति विद्यते। स कः। सद्भावः सत्तास्तित्वं इत्यनेन पूर्वगाथाभणितमेव क्षणिकैकान्तमतनिराकरणं समर्थितं। वयमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया—तस्यैव द्रव्यस्य व्ययोत्पादध्रुवत्वं कुर्वन्ति। के कर्तारः। पर्यायाः। अनेन किमुक्तं भवति-द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यस्यैवोत्पादव्ययध्रौव्याणि न भवन्ति किं तु पर्यायार्थिकनयेन भवन्ति। केन दृष्टान्तेन। सुवर्णगोरसमृत्तिकाबालवृद्धकुमारादिपरिणतपुरुषेषु भंगत्रयरूपेण, इत्यनेन पूर्वगाथाभणितमेव नित्यैकान्तमतनिराकरणं दृढीकृतं। अत्र

सूत्रे शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नरनारकादिविभावपरिणामोत्पत्तिविनाशरहितमपि पर्यायार्थिकनयेन वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंभवेन सहजपरमानन्दरूपसुखरसास्वादेन स्वसंवेदनज्ञानरूपपर्यायेण परिणतं सहितं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यमेवोपादेयमिति सूत्रतात्पर्यं ॥ ११ ॥ एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकलक्षणनयद्वयव्याख्यानेन सूत्रं गतं ।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा ११

उत्थानिका—आगे आधी गाथा पूर्वार्द्धसे द्रव्यार्थिकनयके द्वारा द्रव्यका लक्षण तथा दूसरी आधी उत्तरार्द्धसे पर्यायार्थिकनयके द्वारा पर्यायका लक्षण कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(दव्वस्स) द्रव्यका (उप्पत्ती व विणासो) उपजना और विनसना (णत्थि) नहीं होता है (य) किन्तु (सब्भावो) उसका सत्तामात्र अस्तिपना [अत्थि] है। (तस्सेव) उसहीकी (पज्जाया) पर्यायें (विगमुप्पादधुवत्तं) व्यय उत्पाद तथा ध्रुवपना (करेंति) करती हैं।

विशेषार्थ—द्रव्य अनादि निधन है उसमें द्रव्यार्थिक नयसे उत्पत्ति और विनाश नहीं होता है, वह अपने अस्तित्वसे सदा बना रहता है। इतना कहनेसे द्रव्य क्षणिक है इस एकान्त मतका निराकरण किया। उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना पर्यायोंका पर्यायार्थिक नयसे होता है। उसके दृष्टांत अनेक हैं। जैसे सुवर्ण एक द्रव्य है उसके कुंडल बनाए तब कुंडलका उत्पाद, सुवर्णकी पूर्व अवस्थाका व्यय व सुवर्णके सामान्य गुणोंका ध्रुवपना रहा, गोरस एक द्रव्य है उसकी मलाई बनाई तब मलाईका उत्पाद, पतले दूधपनेका व्यय व गोरसके सामान्य गुणोंका ध्रुवपना है। मिट्टी एक द्रव्य है उसका घडा बनाया तब घडेका उपजना घडेकी पूर्वदशाका व्यय तथा मिट्टीपनेका ध्रुवपना है जो सर्व दशाओंमें बना रहता है। पुरुष एक व्यक्ति है वह बालकसे कुमार हुआ। कुमारसे युवान व युवानसे वृद्ध हुआ, इन अवस्थाओंमें जब आगेकी अवस्था पैदा हुई तब पिछली अवस्थाका व्यय हुआ, पुरुषपना ध्रुव रहा। इससे नित्य एकांत मतका निराकरण दृढ किया गया। इस सूत्रमें शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे जो जीवद्रव्य नर नारक आदि विभाव पर्यायोंकी उत्पत्ति और विनाशसे रहित है वही पर्यायार्थिक नयसे वीतराग निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न जो सहज परमानन्द रूप सुखरसका आस्वादन रूप जो

स्वसंवेदन ज्ञानमई पर्याय उसमें परिणमन करते हुए जो शुद्ध जीवास्तिकाय नामधारी शुद्ध जीव द्रव्य है वही उपादेय या ग्रहण योग्य है, यह सूत्रका तात्पर्य है।

इस तरह द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयोंकी अपेक्षासे द्रव्यके लक्षणका व्याख्यान करते हुए गाथा पूर्ण हुई।॥ ११ ॥

समय व्याख्या गाथा—१२

अत्र द्रव्यपर्यायाणामभेदो निर्दिष्टः ।

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि ।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ॥ १२ ॥

पर्ययवियुतं द्रव्यं द्रव्यवियुक्ताश्च पर्याया न सन्ति ।
द्वयोरनन्यभूतं भावं श्रमणाः प्ररूपयन्ति ॥ १२ ॥

दुग्धदधिनवनीतघृतादिवियुतगोरसवत्पर्यायवियुतं द्रव्यं नास्ति । गोरसवियुक्तदुग्धदधिनवनीतघृतादिवद् द्रव्यवियुक्ताः पर्याया न सन्ति । ततो द्रव्यस्य पर्यायाणां चादेशवशात्कथंचिद् भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति ॥ १२ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा १२

अन्वयार्थ-(पर्ययवियुतं) पर्यायोंसे रहित (द्रव्यं) द्रव्य (च) और (द्रव्यवियुक्ताः) द्रव्यरहित (पर्यायाः) पर्यायें (न सन्ति) नहीं होती, (द्वयोः) दोनों का (अनन्यभूतं भावं) अनन्यभाव (-अनन्यपना) (श्रमणाः) श्रमण [प्ररूपयन्ति] प्ररूपित करते हैं।

टीकाः—यहाँ द्रव्य और पर्यायोंका अभेद दर्शाया है।

जिसप्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादिसे रहित गोरस नहीं होता उसीप्रकार पर्यायोंसे रहित द्रव्य नहीं होता, जिसप्रकार गोरससे रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते उसीप्रकार द्रव्यसे रहित पर्यायें नहीं होती। इसलिये, यद्यपि द्रव्य और पर्यायोंका आदेशवशात् विवक्षा वश कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्वमें नियत [दृढरूपसे स्थित] होनेके कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ती इसलिये वस्तुरूपसे उनका अभेद है ॥ १२ ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—१२

अथ द्रव्यपर्यायाणां निश्चयनयेनाभेदं दर्शयति:-

पज्जयरहियं दव्वं-दधिदुग्धादिपर्यायरहितगोरसवत्पर्यायरहितं द्रव्यं नास्ति। दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि-गोरसरहितदधिदुग्धादिपर्यायवत् द्रव्यविमुक्ता द्रव्यविरहिताः पर्याया न संति। दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति-यत एवमभेदनयेन द्रव्यपर्याययोर्भेदो नास्ति तत एव कारणात् द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं सत्तामस्तित्वस्वरूपं प्ररूपयन्ति। के कथयन्ति। श्रमणा महाश्रमणाः सर्वज्ञा इति।

अथवा द्वितीयव्याख्यानं-द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं पदार्थं वस्तु श्रमणाः प्ररूपयन्ति। भावशब्देन कथं पदार्थो भण्यत इति चेत्? द्रव्यपर्यायात्मको भावः पदार्थो वस्त्विति वचनात्। अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायादभिन्नं शुद्धपर्यायादभिन्नं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यं शुद्धनिश्चयनयेनोपादेयमिति भावार्थः। यस्मिन् वाक्ये नयशब्दोच्चारणं नास्ति तत्र नय शब्दाध्याहारः कर्तव्यः क्रियाकारकयोरन्यतराध्याहारवत् स्याच्छब्दाध्याहारवद्वा॥ १२॥

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा—१२

उत्थानिका—आगे दिखाते हैं कि निश्चय नयसे द्रव्य और पर्यायोंका अभेद है।

अन्वयसहित सामान्यार्थः-[पज्जयविजुदं] पर्यायोंसे रहित [दव्वं] द्रव्य [य] और (दव्वविजुत्ता) द्रव्यसे रहित (पज्जया) पर्यायें (णत्थि) नहीं होती हैं। [समणा) मुनिगण (दोण्हं) दोनोंका (अणण्णभूदं) एक अभेदरूप [भावं] भाव (परूविंति) कहते हैं।

विशेषार्थ—जैसे दही, दूध आदि पर्यायोंके बिना गोरस नहीं मिल सक्ता है वैसे पर्यायोंके बिना द्रव्य नही होता है। अथवा जैसे गोरसके बिना दही दूध आदि पर्यायें नहीं हो सक्तीं वैसे द्रव्यके बिना पर्याय नहीं होती हैं इसीलिये दोनोंका अभेद है। अभेद नय से द्रव्य और पर्याय में भेद नहीं है इसलिये ही द्रव्य और पर्याय दोनों में अनन्यभूत अभिन्न भाव अस्तित्व रूप सत्ता सर्वज्ञ ने कही है। अथवा पिछली आधी गाथाका यह भी अर्थ है कि द्रव्य और पर्यायों का एकीभावरूप पदार्थ है ऐसा श्रमण कहते हैं। भाव शब्दको पदार्थ कहते हैं। जैसे कहा है 'द्रव्यपर्यायात्मको भावः पदार्थो वस्त्वस्ति' अर्थात् द्रव्य पर्यायरूप भाव या पदार्थ या वस्तु होती है।

यहां शुद्ध निश्चयनयसे सिद्धरूप शुद्ध पर्यायसे अभिन्न शुद्ध जीवास्तिकाय नामका जो शुद्ध जीव द्रव्य है वही ग्रहण करने योग्य है यह भाव है।

वृत्तिकारका कथन है कि जिस वाक्यमें नय शब्दका उच्चारण न हो वहां 'नय शब्दका अध्याहार करना चाहिये। जैसे क्रिया और कारक एक दूसरेसे सम्बन्ध रखते हैं, इसलिये जहां एक न हो वहां दूसरेको समझ लेते हैं अथवा स्यात् शब्दके समान जानना चाहिये। जहां स्यात् शब्द नहीं कहते वहां भी स्यात् शब्द समझ लिया जाता है॥ १२॥

संस्कृत समय व्याख्या गाथा १३

अत्र द्रव्यगुणानामभेदो निर्दिष्टः।

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा॥ १३॥

द्रव्येण विना न गुणा गुणैर्द्रव्यं विना न सम्भवति।
अव्यतिरिक्तो भावो द्रव्यगुणानां भवति तस्मात्॥ १३॥

पुद्गलपृथग्भूतस्पर्शरसगन्धवर्णवद् द्रव्येण विना न गुणाः संभवन्ति। स्पर्शरसगन्धवर्णपृथग्भूतपुद्गलवद् गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति। ततो द्रव्यगुणानामप्यादेशवशात् कथंचिद्भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति॥ १३॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा १३

अन्वयार्थः—[द्रव्येण विना] द्रव्य विना [गुणाः न] गुण नहीं होते, (गुणैः विना) गुणों विना (द्रव्यं न सम्भवति) द्रव्य नहीं होता, [तस्मात्] इसलिये (द्रव्यगुणानाम्) द्रव्य और गुणोंका (अव्यतिरिक्तः भावः) अव्यतिरिक्तभाव (–अभिन्नपना) (भवति) है।

टीकाः—यहां द्रव्य और गुणोंका अभेद दर्शाया है।

जिसप्रकार पुद्गलसे पृथक् स्पर्श–रस–गंध–वर्ण नहीं होते उसीप्रकार द्रव्यके विना गुण नहीं होते, जिसप्रकार स्पर्श–रस–गंध–वर्णसे पृथक् पुद्गल नहीं होता उसीप्रकार गुणोंके विना द्रव्य नहीं होता। इसलिये, यद्यपि द्रव्य और गुणोंका आदेशवशात् कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्वमें नियत होनेके कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते इसलिये वस्तुरूपसे उनका भी अभेद है॥ १३॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा १३

अथ द्रव्यगुणानां निश्चयनयेनाभेदं समर्थयति:—दव्वेण विणा ण गुणा-पुद्गलरहितवर्णादिवद्द्रव्येण विना गुणा न संति। गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि-वर्णादिगुणरहितपुद्गलद्रव्यवद् गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति। अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा-द्रव्यगुणयोरभिन्नसत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नत्वात् अभिन्नप्रदेशनिष्पन्नत्वेनाभिन्नदेशत्वात् एककालोत्पादव्ययाविनाभावित्वेनाभिन्नकालत्वात् एकस्वरूपत्वेनाभिन्नभावत्वादिति, यस्मात् द्रव्यक्षेत्रकालभावैरभेदस्तस्मात् अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति। कोसौ। भावस्सत्तास्तित्वं। केषां। द्रव्यगुणानां। अथवा द्वितीयव्याख्यानं—अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति। स कः। भावः पदार्थो वस्तु। केषां संबंधित्वेन, द्रव्यगुणानां, इत्यनेन द्रव्यगुणात्मकः पदार्थ इत्युक्तं भवति। निर्विकल्पसमाधिबलेन जातमुत्पन्नं वीतरागसहजपरमानन्दसुखसंवित्त्युपलब्धिप्रतीत्यनुभूतिरूपं यत्स्वसंवेदनज्ञानं तेनैव परिच्छेद्यं प्राप्यं रागादिविभावविकल्पजालशून्यमपि परमानन्तकेवलज्ञानादिगुणसमूहेन भरितावस्थं यत् शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं तदेव मनसा ध्यातव्यं तदेव वचसा वक्तव्यं, कायेन तदनुकूलानुष्ठानं कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यार्थः ॥ १३ ॥ एवं गुणपर्यायरूपत्रिलक्षणप्रतिपादनरूपेण गाथाद्वयं। इति पूर्वसूत्रेण सह गाथात्रयसमुदायेन चतुर्थस्थलं गतं।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा १३

उत्थानिका—आगे निश्चयनयसे द्रव्य और गुणोंका अभेद है ऐसा दिखाते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(दव्वेण) द्रव्यके (विणा) विना (गुणा ण) गुण नहीं हो सक्ते तथा (गुणेहिं विणा) गुणोंके विना (दव्वं) द्रव्य (ण संभवदि) नहीं संभव है (तम्हा) इसलिये [दव्वगुणाणं) द्रव्य और गुणोंका (अव्वदिरित्तो भावो) अभिन्नभाव [हवदि] होता है।

विशेषार्थ—वृत्तिकार पुद्गल द्रव्यपर घटा कर कहते हैं कि जैसे पुद्गल द्रव्यकी सत्ताके विना उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं पाए जासक्ते वैसे द्रव्यके विना गुण नहीं होते हैं तथा जैसे वर्णादि गुणोंको छोडकर पुद्गल द्रव्य नहीं मिलता है वैसे गुणोंके विना द्रव्य नहीं प्राप्त हो सक्ता है। द्रव्य और गुणोंकी सत्ता अभिन्न है—एक है, क्योंकि द्रव्यकी अपेक्षा वे अभिन्न हैं। द्रव्य और गुणोंके प्रदेश अभिन्न हैं—एक हैं, क्योंकि क्षेत्रकी अपेक्षा एकता है। द्रव्य और गुणोंका एक ही काल उत्पाद व्ययका अविनाभाव है क्योंकि कालकी अपेक्षा दोनों एक हैं। द्रव्य और गुण दोनों एक स्वरूप हैं क्योंकि उनका स्वभाव एक है। क्योंकि द्रव्य और गुणों

का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावोंकी अपेक्षा अभेद है इस लिये द्रव्य और गुण अभिन्न हैं-एक हैं। अथवा दूसरा व्याख्यान करते हैं कि, भाव जो पदार्थ वह द्रव्य और गुणोंसे अभिन्न है अर्थात् द्रव्य गुणरूप ही पदार्थ कहा गया है। निर्विकल्प समाधिके बलसे उत्पन्न जो वीतराग सहज परमानन्दमई सुख उसकी संवित्ति, प्राप्ति, प्रतीति व अनुभूतिरूप जो स्वसंवेदन ज्ञान है उसी-सेही जानने योग्य या प्राप्त होने योग्य जो रागादि विभावोंके विकल्प जालोंसे शून्य होकर भी केवलज्ञानादि गुणोंके समूहसे भरा हुआ शुद्ध जीवास्तिकाय नामका शुद्ध आत्मद्रव्य है उसीको ही मनसे ध्याना चाहिये, उसीको ही वचनोंसे कहना चाहिये व उसीका ही अनुष्ठान या ध्यान कायसे करना चाहिये, यह इस सूत्रका तात्पर्य है ॥ १३ ॥

इस तरह गुण पर्यायोंका लक्षण कहते हुए दो गाथाऐं पूर्ण हुईं व उनके पूर्व सूत्रके साथ तीन गाथाके समुदायसे चौथा स्थल पूर्ण हुआ।

समय व्याख्या गाथा १४

अत्र द्रव्यस्यादेशवशेनोक्ता सप्तभंगी।

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥ १४ ॥

स्यादस्ति नास्त्युभयमवक्तव्यं पुनश्च तत्त्रितयम्।
द्रव्यं खलु सप्तभंगमादेशवशेन सम्भवति ॥ १४ ॥

१ स्यादस्ति द्रव्यं, २ स्यान्नास्ति द्रव्यं, ३ स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं, ४ स्यादवक्तव्यं द्रव्यं, ५ स्यादस्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं, ६ स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं, ७ स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यमिति। अत्र सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तद्योतकः कथंचिदर्थ स्याच्छब्दो निपातः तत्र स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टमस्ति द्रव्यं, परद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टं नास्ति द्रव्यं, स्वद्रव्य-क्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च क्रमेणादिष्टमस्ति च नास्ति च द्रव्यं, स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-भावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपदादिष्टमवक्तव्यं द्रव्यं, स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपर-द्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं, परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्र-कालभावैश्चादिष्टं नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं, स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च

युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यमिति । न चैतदनुपपन्नम्: सर्वस्य वस्तुनः स्वरूपादिना अशून्यत्वात्, पररूपादिना शून्यत्वात्, उभाभ्यामशून्यशून्यत्वात्, सहावाच्यत्वात्, भङ्गसंयोगार्पणायामशून्यावाच्यत्वात्, शून्यावाच्यत्वात्, अशून्यशून्यावाच्यत्वाच्चेति ॥१४॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा १४

अन्वयार्थ—[द्रव्यं] द्रव्य [आदेशवशेन] आदेशवशात् [विवक्षा वश] [खलु] वास्तवमें (स्यात् अस्ति) स्यात् अस्ति, (नास्ति) स्यात् नास्ति, [उभयम्] स्यात् अस्ति-नास्ति, (अवक्तव्यम्) स्यात् अवक्तव्य (पुनः च) और [तत्त्रितयम्] अवक्तव्यतायुक्त तीन भंगवाला (-स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति-अवक्तव्य और स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य)—(सप्तभङ्गम्) इसप्रकार सात भंगवाला [सम्भवति] है।

टीकाः—यहाँ द्रव्यके आदेशके वश सप्तभंगी कही है।

(१) द्रव्य 'स्यात् अस्ति' है, (२) द्रव्य 'स्यात् नास्ति' है, (३) द्रव्य 'स्यात् अस्ति और नास्ति' है, (४) द्रव्य 'स्यात् अवक्तव्य' है, (५) द्रव्य 'स्यात् अस्ति और अवक्तव्य' है, (६) द्रव्य 'स्यात् नास्ति और अवक्तव्य' हैं, (७) द्रव्य 'स्यात् अस्ति, नास्ति आर अवक्तव्य, है।

यहाँ (सप्तभंगीमें) सर्वथापनेका निषेधक, अनेकान्तका द्योतक 'स्यात्' शब्द 'कथंचित्' ऐसे अर्थमें अव्ययरूपसे प्रयुक्त हुआ है। वहाँ—(१) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र—काल—भावसे कथन किया जाने पर 'अस्ति' हैं, (२) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र—काल-भावसे कथन किया जाने पर 'नास्ति' है, (३) द्रव्य स्वद्रव्य—क्षेत्र-काल-भावसे और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे क्रमशः कथन किया जाने पर 'अस्ति और नास्ति' है, (४) द्रव्य स्वद्रव्य—क्षेत्र—काल-भावसे और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे युगपद् कथन किया जाने पर 'अवक्तव्य है' (५) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे और युगपद् स्वपर-द्रव्य-क्षेत्र-काल भावसे कथन किया जाने पर 'अस्ति और अवक्तव्य' है, (६) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र—काल-भावसे और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे कथन किया जाने पर 'नास्ति और अवक्तव्य' है, (७) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल—भावसे, परद्रव्य-क्षेत्र-काल—भावसे और युगपद् स्वपरद्रव्य—क्षेत्र—काल-भावसे कथन किया जाने पर 'अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है।-यह (उपरोक्त बात) अयोग्य नही है, क्योंकि सर्व वस्तु (१) स्वरूपादिसे 'अशून्य' है, (२) पररूपादिसे 'शून्य, है' (३) दोनोंसे (स्वरूपादिसे और पररूपादिसे) 'अशून्य और शून्य' है, (४) दोनों (स्वरूपादिसे पररूपादिसे) एक साथ ही साथ 'अवाच्य' हैं, भंगोंके संयोगसे कथन करने पर (५) 'अशून्य और अवाच्य' हैं, (६) 'शून्य और अवाच्य' हैं, (७) 'अशून्य, शून्य और अवाच्य' हैं ॥ १४ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा १४

अथ सर्वविप्रतिपत्तीनां निराकरणार्थं प्रमाणसप्तभंगी कथ्यते ।

"एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः । सदादिकल्पना या च सप्तभङ्गीति सा मता ।।"

सिय अत्थि–स्यादस्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तीत्यर्थः १ । सिय णत्थि स्यान्नास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्तीत्यर्थः२ सिय अत्थिणत्थि–स्यादस्तिनास्ति, स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तिनास्तीत्यर्थः ३ । सिय अव्वत्तव्वं य–स्यादवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण युगपद्वक्तुमशक्यत्वात् 'क्रमप्रवृत्तिर्भारती'ति वचनात् युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया ऽवक्तव्यमित्यर्थः ४ पुणोवि तत्तिदयं–पुनरपि तत्त्रितयं 'सिय अत्थि अव्वत्तव्वं' स्यादस्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्त्यवक्तव्यमित्यर्थः ५ । 'सियणत्थि अवत्तव्वं' स्यान्नास्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च नास्त्यवक्तव्यमित्यर्थः६ । सिय अत्थिणत्थि अव्वत्तव्वं' स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्ति नास्त्यवक्तव्यमित्यर्थः ७ । संभवदि—संभवति । किं कर्तृ । दव्वं—द्रव्यं खु स्फुटं । कथंभूतं । सत्तभंगं–सप्तभंगं । केन । आदेसवसेण–प्रश्नोत्तरवशेन । तथाहि—अस्तीत्यादिसप्तप्रश्नेषु कृतेषु सत्सु स्यादस्तीत्यादिसप्तप्रकारपरिहारवशेनेत्यर्थः । इति प्रमाणसप्तभंगी । एकमपि द्रव्यं कथं सप्तभङ्गयात्मकं भवतीति प्रश्ने परिहारमाहुः । यथैकोपि देवदत्तो गौणमुख्यविवक्षावशेन बहुप्रकारो भवति । कथमिति चेत् ? पुत्रापेक्षया पिता भण्यते, सोपि स्वकीयपित्रपेक्षया पुत्रो भण्यते, मातुलापेक्षया भागिनेयो भण्यते स एव भागिनेयापेक्षया मातुलो भण्यते, भार्यापेक्षया भर्ता भण्यते भगिन्यपेक्षया भ्राता भण्यते विपक्षापेक्षया शत्रुर्भण्यते इष्टापेक्षया मित्रं भण्यते इत्यादि तथैकमपि द्रव्यं गौणमुख्यविवक्षावशेन सप्तभंग्यात्मकं भवतीति नास्ति दोष इति सामान्यव्याख्यानं । सूक्ष्मव्याख्यानविवक्षायां पुनः सदेकनित्यादिधर्मेषु मध्ये एकैकधर्मे निरुद्धे सप्तभंगी वक्तव्या । कथमिति चेत् ? स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यमित्यादि । स्यादेकं स्यादनेकं स्यादेकानेकं स्यादवक्तव्यमित्यादि । स्यान्नित्यं स्यान्नित्यानित्यं स्यादवक्तव्यमित्यादि । तत्केन दृष्टान्तेनेति कथ्यते–यथैकोपि देवदत्तः स्यात्पुत्रः स्यादपुत्रः स्यात्पुत्रापुत्रः स्यादवक्तव्यः स्यात्पुत्रोऽवक्तव्यःस्यादपुत्रोऽवक्तव्यः स्यात्पुत्रापुत्रोऽवक्तव्यश्चेति सूक्ष्मव्याख्यानविवक्षायां सप्तभंगीव्याख्यानं ज्ञातव्यं । स्यादस्ति द्रव्यमिति पठनेन वचनेन प्रमाणसप्तभंगी ज्ञायते । कथमिति चेत् ? स्यादस्तीति सकलवस्तुग्राहकत्वात्प्रमाणवाक्यं स्यादस्त्येव द्रव्यमिति वस्त्वेकदेशग्राहकत्वान्नयवाक्यं । तथाचोक्तं । सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति । अस्ति द्रव्यमिति दुःप्रमाणवाक्यं अस्त्येव द्रव्यमिति दुर्नयवाक्यं । एवं प्रमाणादिवाक्यचतुष्टयव्याख्यानं बोद्धव्यं । अत्र सप्तभंग्यात्मकं षड्द्रव्येषु मध्ये शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मकद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः ।। १४ ।।

इत्येकसूत्रेण सप्तभंगीव्याख्यानं । एवं चतुर्दशगाथासु मध्ये स्थलपंचकेन प्रथमसप्तकं गतं ।

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा—१४

उत्थानिका–आगे सर्व शंकाओंके दूर करनेके लिये प्रमाण सप्तभंगीका स्वरूप कहते हैं।

अन्वयसहित सामान्यार्थः– (दव्वं) द्रव्य (खु) प्रगटपने (आदेसवसेन) विवक्षा या प्रश्नोत्तरके कारणसे (सत्तभंगं) सात भेदरूप (संभवदि) होता है जैसे (सिय अत्थि) स्यात् अस्ति [णत्थि] स्यात् नास्ति, [उहयं] स्यात् उभय अर्थात् अस्तिनास्ति (अव्वत्तव्वं) स्यात् अवक्तव्य [पुणो य] तथा [तत्तिदयं] अवक्तव्य तीनरूप अर्थात् स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य।

विशेषार्थ–अन्य ग्रन्थमें कहा है–एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः। सदादिकल्पना या च सप्तभंगी च सा मता" अर्थ–एक ही पदार्थमें विना किसी विरोधके प्रमाण व नयके वाक्यसे सत् आदिकी कल्पना करना सो सप्तभंगी कही गई है॥ जैसे (१) स्यात् अस्ति अर्थात् कथंचित् या किसी अपेक्षासे द्रव्य है अर्थात् द्रव्य अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप चतु-ष्टयकी अपेक्षासे है। (२) स्यात् नास्ति अर्थात् कथंचित् या किसी अपेक्षासे द्रव्य नहीं है अर्थात् परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप पर–चतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्य नहीं है। [३] स्यात् अस्ति नास्ति अर्थात् कथंचित् द्रव्य है व नही दोनों रूप है। अर्थात् स्वचतुष्टयकी अपेक्षासे है परचतुष्टयकी अपेक्षा नहीं है। [४] स्यात् अवक्तव्य अर्थात् कथंचित् द्रव्य वचनगोचर नही है अर्थात् एक समयमें यह नहीं कहा जासक्ता कि द्रव्य स्वचतुष्टयकी अपेक्षा है व परचतुष्टयकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि कहा है–क्रमप्रवृत्तिर्भारती अर्थात् वाणी क्रम क्रमसे ही बोली जासक्ती है। (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य अर्थात् कथंचित् द्रव्य है और अवक्तव्य दोनों रूप है। अर्थात् स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षासे है परन्तु एक साथ स्वपरद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा अवक्तव्य है। (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य अर्थात् कथंचित् द्रव्य नहीं और अवक्तव्य दोनों रूप है अर्थात् परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नहीं है परन्तु एक साथ स्वपरद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा अवक्तव्य है। (७) स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य अर्थात् किसी अपेक्षासे है व नही तथा अवक्तव्य तीनोंरूप है अर्थात् क्रमसे स्वचतुष्टयकी अपेक्षा है, पर चतुष्टय की अपेक्षा नही है परन्तु

एक साथ स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा अवक्तव्य है। इस तरह ये सात भंग प्रश्नके उत्तरके वशसे द्रव्यमें संभव हैं। अर्थात्- (१) क्या द्रव्य है? (२) क्या द्रव्य नहीं है? (३) क्या द्रव्य दोनों रूप है? [४] क्या द्रव्य अवक्तव्य है? [५] क्या द्रव्य अस्ति और अवक्तव्य दो रूप है? [६] क्या द्रव्य नास्ति और अवक्तव्य दो रूप है? (७) क्या द्रव्य अस्ति नास्ति और अवक्तव्य तीन रूप है? इन प्रश्नोंके किये जानेपर उनका सात प्रकार ही समाधान उत्तरमें किया जाता है। यह प्रमाण सप्तभंगीका स्वरूप कहा। एक ही द्रव्य किस तरह सात भंगरूप होता है? ऐसा प्रश्न होनेपर उसका समाधान करते हैं कि जैसे देवदत्त नामका पुरुष एक ही है वही मुख्य और गौणकी अपेक्षासे बहुत प्रकार है सो इस तरह है- कि वही देवदत्त अपने पुत्रकी अपेक्षासे पिता कहा जाता है। वही अपने पिताकी अपेक्षासे पुत्र कहा जाता है। मामाकी अपेक्षासे भानजा कहा जाता है, वही अपने भानजेकी अपेक्षासे मामा कहा जाता है। अपनी स्त्रीकी अपेक्षासे भर्तार कहा जाता है, अपनी बहनकी अपेक्षासे भाई कहा जाता है। अपने शत्रुकी अपेक्षा शत्रु कहा जाता है वही अपने इष्टकी अपेक्षा मित्र कहा जाता है इत्यादि। तैसे एक ही द्रव्य मुख्य और गौणकी अपेक्षाके वशसे सात भंग रूप हो जाता है। इसमें कोई दोष नहीं है, यह सामान्य व्याख्यान है। यदि इससे सूक्ष्म व्याख्यान करें तो द्रव्यमें जो सत् एक नित्य आदि स्वभाव हैं उनमेंसे एक एक स्वभावके वर्णनमें सात सात भंग कहने चाहिये। वे इस तरह कि—स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्तिनास्ति, स्यात् अवक्तव्य इत्यादि या स्यात् एक, स्यात् अनेक, स्यात् एक अनेक, स्यात् अवक्तव्य इत्यादि या स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य, स्यात् नित्यानित्य, स्यात् अवक्तव्य इत्यादि। ये प्रत्येक के सात भंग इसी देवदत्तके दृष्टांतके समान होंगे। जैसे एक ही देवदत्त (१) स्यात् पुत्र है अर्थात् अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र है। (२) स्यात् अपुत्र है अर्थात् अपने पिताके सिवाय अन्यकी अपेक्षासे वह पुत्र नहीं है। (३) स्यात् पुत्र अपुत्र दोनों रूप है अर्थात् अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र है तथा अन्यकी अपेक्षा पुत्र नहीं है। (४) स्यात् अवक्तव्य है अर्थात् एक ही समय भिन्न भिन्न अपेक्षासे कहें तो यह नहीं कह सक्ते हैं कि पुत्र अपुत्र दो रूप है। (५) स्यात् पुत्र और अवक्तव्य है अर्थात् यह देवदत्त जब अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र है तब ही एक समय में कहने योग्य न होनेसे कि पुत्र है या अपुत्र है यह अवक्तव्य

भी है। (६) स्यात् अपुत्र अवक्तव्य है अर्थात् जब यह देवदत्त अपने पितासे अन्यकी अपेक्षा अपुत्र है तब ही एक समय में कहने योग्य न होनेसे अवक्तव्य है। (७) स्यात् पुत्र अपुत्र तथा अवक्तव्य है अर्थात् अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र, परकी अपेक्षा अपुत्र तब ही एक समयमें कहने योग्य न होनेसे अवक्तव्य हैं। इसी तरह सूक्ष्म व्याख्यानकी अपेक्षासे सप्तभंगीका कथन जान लेना चाहिये। स्यात् द्रव्य है इत्यादि, ऐसा पढनेसे प्रमाण सप्तभंगी जानी जाती है। क्योंकि स्यात् अस्ति यह वचन सकल वस्तुको ग्रहण करनेवाला है इसलिये प्रमाण वाक्य है स्यात् अस्ति एव द्रव्यम् ऐसा वचन वस्तुके एकदेशको अर्थात् उसके मात्र अस्तित्व स्वभावको ग्रहण करने वाला है इससे नय वाक्य है। क्योंकि कहा है "सकलादेशः प्रमाणाधीनो, विकलादेशो नयाधीन इति अर्थात् वस्तुसर्वको कहनेवाला वचन प्रमाणके आधीन है और उसीके एक अंशको कहनेवाला वचन नयके आधीन है। अस्ति द्रव्यं यह दुःप्रमाण वाक्य है व अस्ति एव द्रव्यं यह दुर्नय वाक्य है। इस तरह प्रमाणादि रूपसे व्याख्यान जानना। यहां छः द्रव्योंके मध्यमेंसे सात भंगरूप जो शुद्ध जीवास्तिकाय नामका शुद्ध आत्मद्रव्य है वही ग्रहण करने योग्य है यह भावार्थ है ॥ १४ ॥

इस तरह एक सूत्र से सप्तभंगीका व्याख्यान किया गया। इस तरह १४ गाथाओंसे पांच स्थलोंसे पहली सात गाथाएं पूर्ण हुईं।

समय व्याख्या गाथा १५

अत्रासत्प्रादुर्भावत्वमुत्पादस्य सदुच्छेदत्वं विगमस्य निषिद्धम्।

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो ।

गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति ॥ १५ ॥

भावस्य नास्ति नाशो नास्ति अभावस्य चैव उत्पादः ।

गुणपर्यायेषु भावा उत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति ॥ १५ ॥

भावस्य सतो हि द्रव्यस्य न द्रव्यत्वेन विनाशः, अभावस्यासतोऽन्यद्रव्यस्य न द्रव्यत्वेनोत्पादः। किन्तु भावाः सन्ति द्रव्याणि सदुच्छेदमसदुत्पादं चान्तरेणैव गुणपर्यायेषु विनाशमुत्पादं चारभन्ते। यथा हि घृतोत्पत्तौ गोरसस्य सतो न विनाशः, न चापि गोरसव्यतिरिक्त-

स्यार्थान्तरस्यासतः उत्पादः, किन्तु गोरसस्यैव सदुच्छेदमसदुत्पादं चानुपलभमानस्य स्पर्श-रसगन्धवर्णादिषु परिणामिषु गुणेषु पूर्वावस्थया विनश्यत्सूत्तरावस्थया प्रादुर्भवत्सु नश्यति च नवनीतपर्यायो घृतपर्याय उत्पद्यते, तथा सर्वभावानामपीति ॥ १५ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा १५

अन्वयार्थ—(भावस्य) भावका (सत्का) (नाशः) नाश (न अस्ति) नहीं है (च एव) तथा (अभावस्य) अभावका (असत्का) (उत्पादः) उत्पाद (न अस्ति) नहीं है, (भावाः) भाव (सत् द्रव्ये) (गुणपर्यायेषु) गुणपर्यायोंमें (उत्पादव्ययान्) उत्पादव्यय (प्रकुर्वन्ति) करते हैं।

टीकाः—यहां उत्पादमें असत्के प्रादुर्भावका और व्ययमें सत्के विनाशका निषेध किया है।

भावका—सत् द्रव्यका— द्रव्यरूपसे विनाश नहीं है, अभावका-असत् अन्य द्रव्यका-द्रव्यरूपसे उत्पाद नहीं है, परन्तु भाव—सत् द्रव्ये', सत्के विनाश और असत्के उत्पाद विना ही, गुणपर्यायोंमें विनाश और उत्पाद करते हैं। जिसप्रकार घीकी उत्पत्तिमें गोरसका—सतका-विनाश नहीं है तथा गोरससे भिन्न पदार्थान्तरका असत्का-उत्पाद नहीं है, किन्तु गोरसको ही सत्का विनाश और असत्का उत्पाद किये विना ही, पूर्व अवस्थासे विनाशको प्राप्त होनेवाले और उत्तार अवस्थासे उत्पन्न होनेवाले स्पर्श-रस-गंध-वर्णादिक परिणामी गुणोंमें मक्खनपर्याय विनाशको प्राप्त होती है तथा घीपर्याय उत्पन्न होती है, सर्वभावोंका भी उसीप्रकार वैसा ही है (अर्थात् समस्त द्रव्योंको नवीन पर्यायकी उत्पत्तिमें सत्का विनाश नहीं है तथा असत्का उत्पाद नहीं है, किन्तु सत्का विनाश और असतका उत्पाद किये विना ही, पहलेकी (पुरानी) अवस्थासे विनाशको प्राप्त होनेवाले और बादकी (नवीन) अवस्थासे उत्पन्न होनेवाले परिणामी गुणोंमें पहलेकी पर्यायका विनाश और बादकी पर्यायकी उत्पत्ति होती है।)

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा १५

अथ सति धर्मिणि धर्माश्चिंत्यन्ते द्रव्यं नास्ति सप्तभंगाः कस्य भविष्यंतीति बौद्धमतानुसारिशिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहाररूपेण गाथापातनिकां करोति—द्रव्यार्थिकनयेन सतः पदार्थस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीतिवचनेन क्षणिकैकान्तबौद्धमतं निषेधयतिः—

भावस्स णत्थि णासो णत्थि य भावस्स चेव उप्पादो—यथा गोरसस्य गोरसद्रव्यरूपेणोत्पादो नास्ति विनाशोपि नास्ति। गुणपज्जएसु व भावा उप्पादवये पकुव्वंति—तथापि वर्णरसगंधस्पर्शगुणेषु वर्णरसगंधांतरादिरूपेण परिणामिषु नश्यति नवनीतपर्याय उत्पद्यते च घृतपर्यायः तथा सतो विद्यमानभावस्य पदार्थस्य जीवादिद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वेन नास्ति विनाशः, नास्त्यसतोऽविद्यमानभावस्य पदार्थस्य जीवादिद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वेनोत्पादः तथापि गुणपर्यायेष्वधिकरणभूतेषु भावाः पदार्था जीवादि-

षड्द्रव्याणि कर्तृणि पर्यायार्थिकनयेन विवक्षितनरनारकादिद्व्यणुकादिगतिस्थित्यवगाहनवर्तनादिरूपेण यथासंभवमुत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति। अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति वा पाठः, निश्चयनयेन क्रोधमानमायालोभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिपरभावशून्यमपि उत्पादव्ययरहितेन वा पाठः। आद्यंतरहितेन चिदानंदैकस्वभावेन भरितावस्थं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं ध्यातव्यमित्यभिप्रायः॥ १५॥

इति द्वितीयसप्तकमध्ये प्रथमस्थले बौद्धं प्रति द्रव्यस्थापनार्थं सूत्रगाथा गता।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा १५

उत्थानिका-आगे बौद्ध मतानुसारी शिष्यने यह शंका की या पूर्व पक्ष किया कि यदि धर्मी कोई हो तो उसके धर्म या स्वभावोंका विचार करना चाहिये। यदि द्रव्य ही नहीं है तो सात भंग किसके होंगे? इसका उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं कि द्रव्यार्थिकनयसे सत् पदार्थका नाश नहीं है और न असत् पदार्थकी उत्पत्ति है। इस तरह बौद्धोंके क्षणिक एकांत मतका निषेध करते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थः-(भावस्स) सत्‌रूप पदार्थका (णासो) नाश (णत्थि) नहीं होता है, (चेव) वैसे ही (अभावस्स) अभावका या अवस्तुका या असतका (उप्पादो) उत्पाद या जन्म (णत्थि) नहीं होता है। (भावा) पदार्थ (गुणपज्जयेसु) अपने गुणोंकी पर्यायोंमें (उप्पादवए) उत्पाद व व्यय (पकुव्वंति) करते रहते हैं।

विशेषार्थ-जैसे गोरस एक द्रव्य है उसका अपने गोरस नामके द्रव्यरूपसे न उत्पाद है, न नाश है तथापि गोरसके वर्ण, रस, गंध, स्पर्श गुणोंमें अन्य वर्ण, रस, गंध, स्पर्शरूप परिणमन होते हुए उस गोरसकी जब नवनीत नामकी पर्याय नाश होती है तब घृत नामकी पर्याय उपजती है तैसे ही सत्‌रूप सदा रहनेवाले जो जीव आदि छः द्रव्य हैं उनका द्रव्यार्थिकनयसे कभी नाश नहीं होता है और जो असत् या नहीं विद्यमान जीवादि पदार्थ हैं उनका द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यरूपसे कभी उत्पाद नहीं होता है तथापि गुणोंकी पर्यायोंके अधिकरणमें जीव आदि छहों द्रव्य पर्यायार्थिकनयसे यथासंभव उत्पाद व्यय करते रहते हैं। जैसे जीवोंमें नर नारकादि पर्यायें, पुद्‌गलोंमें द्विअणुक स्कंध आदि पर्यायें होती हैं व धर्ममें गतिसहकारपना, अधर्ममें स्थितिसहकारीपना, आकाशमें अवगाह सहकारीपना तथा कालमें वर्तना सहकारीपना होनेसे पर्यायें होती हैं। यहां छःद्रव्योंके मध्यमें शुद्ध पारिणामिक परमभावको ग्रहण करनेवाली शुद्ध

द्रव्यार्थिकनयसे अथवा निश्चयनयसे क्रोध, मान, माया, लोभ तथा देखे सुने व अनुभव किए हुए भोगोंकी इच्छा रूप निदान बंध आदि पर-भावोंसे शून्य होनेपर भी अथवा उत्पाद व व्यय रहित होनेपर भी अनादि अनंत चिदानंदमई एक स्वभावसे भरे हुए शुद्ध जीवास्तिकाय नामके शुद्ध आत्मद्रव्यको ध्याना चाहिये, यह अभिप्राय है।

इस तरह दूसरे सप्तकमें बौद्धोंके लिये द्रव्यकी स्थापना करते हुए सूत्र कहा ॥ १५ ॥

संस्कृत समय व्याख्या गाथा १६

अत्र भावगुणपर्यायाः प्रज्ञापिताः—

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ॥ १६ ॥

भावा जीवाद्या जीवगुणाश्चेतना चोपयोगः।
सुरनरनारकतिर्यञ्चो जीवस्य च पर्यायाः बहवः ॥ १६ ॥

भावा हि जीवादयः षट् पदार्थाः। तेषां गुणाः पर्यायाश्च प्रसिद्धाः। तथापि जीवस्य वक्ष्यमाणोदाहरणप्रसिद्ध्यर्थमभिधीयन्ते। गुणा हि जीवस्य ज्ञानानुभूतिलक्षणा शुद्धचेतना, कार्यानुभूतिलक्षणा कर्मफलानुभूतिलक्षणा चाशुद्धचेतना, चैतन्यानुविधायिपरिणामलक्षणः सविकल्पनिर्विकल्परूपः शुद्धाशुद्धतया सकलविकलतां दधानो द्वेधोपयोगश्च। पर्यायास्त्वगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्ताः शुद्धाः, सूत्रोपात्तास्तु सुरनरनारकतिर्यङ्मनुष्यलक्षणाः परद्रव्यसंबन्धनिर्वृत्तत्वादशुद्धाश्चेति ॥ १६ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा १६

अन्वयार्थ—(जीवाद्याः) जीवादि (द्रव्यें) वे (भावाः) 'भाव' (द्रव्य पदार्थ) हैं। (जीवगुणाः) जीवके गुण (चेतना च उपयोगः) चेतना तथा उपयोग हैं (च) और (जीवस्य पर्यायाः) जीवकी पर्यायें (सुरनरनारकतिर्यञ्चः) देव-मनुष्य-नारक-तिर्यञ्चरूप (बहवः) अनेक हैं।

टीकाः—यहां भावों (द्रव्यों), गुणों और पर्यायों को बतलाते हैं—

जीवादि छह पदार्थ वे 'भाव' हैं। उनके गुण और पर्यायें प्रसिद्ध हैं, तथापि आगे (अगली गाथामें) जो उदाहरण देना है उसकी प्रसिद्धिके हेतु जीवके गुणों और पर्यायोंका कथन किया जाता है:—

जीवके गुणों ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना तथा कार्यानुभूतिस्वरूप और कर्मफलानुभूतिस्वरूप

अशुद्धचेतना हैं और चैतन्यानुविधायी-परिणाम स्वरूप, सविकल्पनिर्विकल्परूप शुद्धता-अशुद्धता-विकलता धारण करनेवाला दो प्रकारका उपयोग है।

जीवकी पर्यायें इस प्रकार हैं:—अगुरुलघुगुणकी हानिवृद्धिसे उत्पन्न होनेवाली पर्यायें शुद्ध पर्यायें हैं और सूत्रमें (-इस गाथामें) कही हुई, देव-नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-स्वरूप पर्यायें परद्रव्यके सम्बन्धसे उत्पन्न होती हैं इसलिये अशुद्ध पर्यायें हैं ॥ १६ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा १६

अथ पूर्वगाथोक्तान् गुणपर्यायभावान् प्रज्ञापयति:—

भावा जीवादीया भावाः पदार्था भवंति। कानि। जीवादिषड्द्रव्याणि, धर्मादिचतुर्द्रव्याणां गुणपर्यायानग्रे यथास्थानं विशेषेण कथयति, अत्र तावत् जीवगुणा अभिधीयंते। जीवगुणा चेदणा य उवओगा जीवगुणा भवन्ति। के ते। शुद्धाशुद्धरूपेण द्विविधा चेतना ज्ञानदर्शनोपयोगौ चेति संग्रहवाक्यं वार्तिकं समुदायकथनं तात्पर्यार्थकथनं संपिंडितार्थकथनमिति यावत्। तद्यथा। ज्ञानचेतना शुद्धचेतना भण्यते, कर्मचेतना कर्मफलचेतना च अशुद्धा भण्यते सा त्रिप्रकारापि चेतना अग्रे चेतनाधिकारे विस्तरेण व्याख्यास्यते। इदानीमुपयोगः कथ्यते। सविकल्पो ज्ञानोपयोगो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगः। ज्ञानोपयोगोऽष्टधा, मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानीति संज्ञानपंचकं कुमतिकुश्रुतविभंगरूपेणाज्ञानत्रयमित्यष्टधा ज्ञानोपयोगः। तत्र केवलज्ञानं क्षायिकं निरावरणत्वात् शुद्धं, शेषाणि सप्त मतिज्ञानादीनि क्षायोपशमिकानि सावरणत्वा शुद्धानि। दर्शनोपयोगश्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनरूपेण चतुर्धा। तत्र केवलदर्शनं क्षायिकं निरावरणत्वात् शुद्धं, चक्षुरादित्रयं क्षायोपशमिकं सावरणत्वादशुद्धं। इदानीं जीवपर्यायाः कथ्यन्ते। सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा—सुरनरनारकतिर्यंचो जीवस्य विभावद्रव्य पर्याया बहवो भवन्ति। किंच। द्विधा पर्याया द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च। द्रव्यपर्यायलक्षणं कथ्यते-अनेकद्रव्यात्मिकाया ऐक्यप्रतिपत्तेर्निबन्धनकारणभूतो द्रव्यपर्यायः अनेकद्रव्यात्मिकैकयायनवत्। स च द्रव्यपर्यायो द्विविधः समानजातीयोऽसमानजातीयश्चेति। समानजातीयः कथ्यते—द्वे त्रीणि वा चत्वारीत्यादिपरमाणुपुद्गलद्रव्याणि मिलित्वा स्कंधा भवन्तीत्यचेतनस्यापरेणाचेतनेन संबंधात्समानजातीयो भण्यते। असमानजातीयः कथ्यते—जीवस्य भवांतरगतस्य शरीरनोकर्मपुद्गलेन सह मनुष्यदेवादिपर्यायोत्पत्तिः चेतनजीवस्याचेतनपुद्गलद्रव्येण सह मेलापकादसमानजातीयः द्रव्यपर्यायो भण्यते। एते समानजातीया असमानजातीयाश्च अनेकद्रव्यात्मिकैकरूपा द्रव्यपर्याया जीवपुद्गलयोरेव भवन्ति अशुद्धा एव भवन्ति। कस्मादिति चेत्? अनेकद्रव्याणां परस्परसंश्लेषरूपेण संबंधात्। धर्माद्यन्यद्रव्याणां परस्परसंश्लेषसंबंधेन पर्यायो न घटते परद्रव्यसंबंधेनाशुद्धपर्यायोपि न घटते। इदानीं गुणपर्यायाः कथ्यन्ते। तेपि द्विधा स्वभावविभावभेदेन। गुणद्वारेणान्वयरूपायाः एकत्वप्रतिपत्तेर्निबंधनं कारणभूतो गुणपर्यायः, स चैकद्रव्यगत एव सहकारफले हरितपांडुरादिवर्णवत्। कस्य। पुद्गलस्य। मतिज्ञानादिरूपेण ज्ञानान्तरपरिण-

मनवञ्जीवस्य । एवं जीवपुद्गलयोर्विभावगुणरूपाः पर्याया ज्ञातव्याः । स्वभावगुणपर्याया अगुरुलघुगुणषड्हानिवृद्धिरूपाः सर्वद्रव्यसाधारणाः । एवं स्वभावविभावगुणपर्याया ज्ञातव्याः । अथवा द्वितीयप्रकारेणार्थव्यंजनपर्यायरूपेण द्विधा पर्याया भवन्ति । तत्रार्थपर्यायाः सूक्ष्माः क्षणक्षयिणस्तथावाग्गोचरा विषया भवन्ति । व्यंजनपर्यायाः पुनः स्थूलाश्चिरकालस्थायिनो वाग्गोचराश्छद्मस्थदृष्टिविषयाश्च भवन्ति । एते विभावरूपा व्यंजनपर्याया जीवस्य नरनारकादयो भवन्ति, स्वभावव्यंजनपर्यायो जीवस्य सिद्धरूपः । अशुद्धार्थपर्याया जीवस्य षट्स्थानगतकषायहानिवृद्धिविशुद्धिसंक्लेशरूपशुभाशुभलेश्यास्थानेषु ज्ञातव्याः । पुद्गलस्य विभावार्थपर्याया द्व्यणुकादिस्कंधेषु वर्णान्तरादिपरिणमनरूपाः । विभावव्यंजनपर्यायाश्च पुद्गलस्य द्व्यणुकादिस्कंधेष्वेव चिरकालस्थायिनो ज्ञातव्याः । शुद्धार्थपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्हानिवृद्धिरूपेण पूर्वमेव स्वभावगुणपर्यायव्याख्यानकाले सर्वद्रव्याणां कथिताः । एते चार्थव्यंजनपर्यायाः पूर्वं "जेसिं अत्थिसहाओ" इत्यादिगाथायां ये भणिता जीवपुद्गलयोः स्वभावविभावद्रव्यपर्यायाः स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च ये भणितास्तेषु मध्ये तिष्ठन्ति । अत्र गाथायां च ये द्रव्यपर्यायाः गुणपर्यायाश्च भणितास्तेषु च मध्ये तिष्ठन्ति । तर्हि किमर्थं पृथक्कथिता इति चेदेकसमयवर्तिनोऽर्थपर्याया भण्यंते चिरकालस्थायिनो व्यंजनपर्याया भण्यंते इति कालकृतभेदज्ञापनार्थं । अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायपरिणतं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः ॥ १६ ॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा १६

उत्थानिका—आगे पहली गाथामें जिन गुण और पर्यायोंको कहा है उन हीको प्रगट करते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(भावा) सतरूप पदार्थ (जीवादीया) जीव आदि छः हैं। उनमें (जीवगुणा) जीवके गुण (चेदणा) चेतना (य) और (उवओगो) उपयोग हैं (य) और (सुरणरणारयतिरिया) देव, मनुष्य, नारकी और तिर्यञ्च ये (जीवस्स) जीवकी (बहुगा) बहुतसी (पज्जया) पर्यायें हैं।

विशेषार्थ—जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश, काल ये छः द्रव्य हैं उनमें धर्मादि चार द्रव्योंके गुण पर्याय आगे यथास्थान विशेषरूपसे कहेंगे। यहांपर पहले जीवके गुण कहते हैं। जीवके गुण, चेतना और उपयोग हैं। यह संग्रह वाक्य, समुदाय कथन तात्पर्य कथन या संपिंडितार्थ कथन जानना। चेतनाके दो भेद हैं—शुद्धचेतना और अशुद्धचेतना, तथा उपयोगके दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग। ज्ञानचेतनाको शुद्धचेतना कहते हैं। कर्मचेतना और कर्मफलचेतनाको अशुद्धचेतना कहते हैं। इन तीन प्रकार चेतनाके स्वरूपको आगे चेतनाके अधिकारमें विस्तारसे कहेंगे। ज्ञानोपयोग सविकल्प है, दर्शनोपयोग निर्विकल्प है। ज्ञानोपयोगके

आठ भेद हैं–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल पांच सम्यग्ज्ञान और कुमति, कुश्रुत, विभंगज्ञान ये तीन अज्ञान। इनमें केवलज्ञान सर्व आवरण रहित शुद्ध है बाकीके सात ज्ञान मतिज्ञानादि क्षायोपशमिक हैं, आवरण सहित हैं तथा अशुद्ध हैं। दर्शनोपयोग चार प्रकारका है–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन, केवलदर्शन। उनमें केवलदर्शन क्षायिक है आवरण रहित है तथा शुद्ध है। चक्षु आदि तीन क्षायोपशमिक हैं, आवरणसहित हैं तथा अशुद्ध हैं। अब जीवकी पर्यायें कहते हैं–देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यंच ये जीवकी विभाव द्रव्यपर्यायें बहुत प्रकारकी होती हैं। पर्यायोंके दो भेद हैं–द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय। द्रव्यपर्यायका लक्षण कहते हैं–अनेक द्रव्यस्वरूपकी एकताके ज्ञानका जो कारण हो उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं जैसे अनेक वस्तुओंसे बनी हुईको एक यान या वाहन कहना। यह द्रव्यपर्याय दो प्रकारकी है एक समान जातीय, दूसरी असमान जातीय। समान जातीय उसे कहते हैं कि दो, तीन, चार आदि परमाणुरूप पुद्गलद्रव्य मिलकर जो स्कंध हो जाते हैं वे अचेतनके साथ अचेतनके संबन्धसे होते हैं इसलिये समान जातीय द्रव्यपर्याय कहलाते हैं। अब असमान जातीयको कहते हैं-जीव जब दूसरी गतिको जाता है तब नवीन शरीररूप नोकर्म पुद्गलोंको लेता है उससे मनुष्य देव आदि पर्यायकी उत्पत्ति होती है। चेतनरूप जीवके साथ अचेतन रूप पुद्गलके मिलनेसे जो पर्याय हुई वह असमान जातीय द्रव्य पर्याय कही जाती है। ये समान जातीय तथा असमान जातीय अनेक द्रव्योंकी एकरूप द्रव्य पर्यायें जीव और पुद्गलोंमें ही होती हैं तथा ये अशुद्ध ही होती हैं, क्योंकि अनेक द्रव्योंके परस्पर मिलनेसे हुई हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, कालमें परस्पर मिलनेरूप कोई पर्याय नहीं होती है। न परद्रव्यके सम्बन्धसे कोई अशुद्ध पर्याय होती है।

अब गुण पर्यायोंको कहते हैं। वे भी दो प्रकार हैं-स्वभाव गुणपर्याय, विभाव गुण पर्याय। गुणके द्वारा अन्वयरूप एकताके ज्ञानका कारण रूप जो पर्याय हो उसे गुण पर्याय कहते हैं, वह एक द्रव्यके भीतर ही होती है जैसे पुद्गलका दृष्टांत आमके फलमें है कि उसके वर्णगुणकी हरी पीली आदि पर्यायें होती हैं। हर एक पर्यायमें वर्णगुणकी एकताका ज्ञान है इससे यह गुणपर्याय है। जीवके मतिज्ञान श्रुतज्ञान आदिरूपसे ज्ञानका अन्यज्ञानरूप होना सो ज्ञान गुणकी पर्यायें हैं। हरएक पर्यायमें ज्ञान गुणकी एकताका बोध है। ये जीव और पुद्गलकी

विभाव गुण पर्यायें जाननी चाहिये। स्वभाव गुण पर्यायें अगुरुलघु गुणकी षड्गुणी हानि वृद्धिरूप हैं जो सर्व द्रव्योंमें साधारण पाई जाती हैं। इस तरह स्वभाव विभाव गुणपर्यायोंको जानना चाहिये। अथवा दूसरी तरहसे पर्यायोंके दो भेद हैं—अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय। इनमें अर्थपर्यायें अत्यन्त सूक्ष्म क्षणक्षण में होकर नष्ट होनेवाली होती हैं जो वचनके गोचर नहीं होती हैं। व्यंजनपर्यायें जो स्थूल होती हैं वे देरतक रहनेवाली वचनगोचर व अल्पज्ञानीको दृष्टिगोचर भी होती हैं। ये विभावरूप व्यंजनपर्यायें जीवकी नर नारक आदि हैं तथा स्वभाव व्यंजनपर्याय जीवकी सिद्ध अवस्था है। अशुद्ध अर्थपर्याय जीवके कषायोंकी हानि वृद्धि होनेसे विशुद्धिरूप तथा संक्लेशरूप या शुभ अशुभरूप छः लेश्याके स्थानोंमें होनेवाली जाननी चाहिये पुद्गलकी विभाव अर्थपर्यायें दो अणु आदिके स्कंधोंमें वर्णादिसे अन्य वर्णादिरूप होनेरूप हैं। पुद्गलकी विभाव व्यंजनपर्याय दो अणु आदिके स्कंद हैं जो चिरकालतक रहनेवाले हैं। शुद्ध अर्थपर्यायें अगुरुलघुगुणकी षट्गुणी हानि वृद्धि रूप हैं जिनको पहले ही स्वभावगुणपर्यायके व्याख्यानके समय सर्व द्रव्योंमें कह चुके हैं। ये अर्थपर्यायें और व्यंजनपर्यायें पहले कही हुई 'जेसिं अत्थि सहाओ' इत्यादि गाथामें जो जीव पुद्गलकी स्वभाव विभाव द्रव्य पर्याय तथा स्वभाव विभाव गुणपर्याय कही गई हैं उनमें ही गर्भित हैं तथा यहां इस गाथामें जो द्रव्यपर्यायें और गुणपर्यायें कही हैं उनके मध्यमें भी तिष्ठती हैं तब फिर अलग क्यों कही गई हैं ? इसका समाधान यह है कि—अर्थ पर्यायें मात्र एक समय रहनेवाली कही गई हैं तथा व्यंजनपर्यायें चिरकाल रहनेवाली कही गई हैं इस कालकृत भेदको बतानेके लिये कही गई हैं। यहां यह भाव है कि सिद्धरूप शुद्ध पर्यायमें परिणमन करनेवाले शुद्ध जीवास्तिकाय नामके शुद्धात्म द्रव्यकी ही ग्रहण करना योग्य है। ॥ १६ ॥

समय व्याख्या गाथा १७

इदं भावनाशाभावोत्पादनिषेधोदाहरणम्

मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ॥ १७ ॥

मनुष्यत्वेन नष्टो देही देवो भवति इतरो वा।
उभयत्र जीवभावो न नश्यति न जायतेऽन्यः ॥ १७ ॥

प्रतिसमयसंभवदगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्तस्वभावपर्यायसंतत्यविच्छेदकेनैकेन सोपाधिना मनुष्यत्वलक्षणेन पर्यायेण विनश्यति जीवः, तथाविधेन देवत्वलक्षणेन नारकतिर्यक्त्वलक्षणेन वान्येन पर्यायेणोत्पद्यते। न च मनुष्यत्वेन नाशे जीवत्वेनापि नश्यति, देवत्वादिनोत्पादे जीवत्वेनाप्युत्पद्यते, किं तु सदुच्छेदमसदुत्पादमन्तरेणैव तथा विवर्तत इति ॥ १७ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा १७

अन्वयार्थः—(मनुष्यत्वेन) मनुष्यत्वसे (मनुष्य पर्याय से) (नष्टः) नष्ट हुआ (देही) देही (जीव) (देवः वा इतरः) देव अथवा अन्य पर्याय रूप (भवति) होता है, (उभयत्र) उन दोनोंमें (जीवभावः) जीवभाव (न नश्यति) नष्ट नहीं होता और (अन्यः) दूसरा जीवभाव (न जायते) उत्पन्न नहीं होता।

टीकाः—'भावका नाश नही होता और अभावका उत्पाद नहीं होता' उसका यह उदाहरण है।

प्रतिसमय होनेवाली अगुरुलघुगुणकी हानिवृद्धिसे उत्पन्न होनेवाली स्वभावपर्यायोंकी संततिका विच्छेद न करनेवाली एक सोपाधिक मनुष्यत्वस्वरूप पर्यायसे जीव विनाशको प्राप्त होता है और तथाविध (—स्वभावपर्यायोंके प्रवाहको न तोडनेवाली सोपाधिक) देवत्वस्वरूप, नारकत्वस्वरूप या तिर्यञ्चत्वस्वरूप अन्य पर्यायसे उत्पन्न होता है। वहां ऐसा नहीं है कि मनुष्यत्वसे विनष्ट होने पर जीवत्वसे भी नष्ट होता है और देवत्व आदिसे उत्पाद होने पर जीवत्वसे भी उत्पन्न होता है, किन्तु सत्के उच्छेद और असत्के उत्पाद विना ही तदनुसार विवर्तन (—परिवर्तन, परिणमन) करता है ॥ १७ ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—१७

अथ पर्यायार्थिकनयेनोत्पादविनाशयोरपि द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादविनाशौ न भवत इति समर्थयतिः—मणुअत्तणेण णट्ठो देही देवो व होदि इदरो वा—मनुष्यत्वेन मनुष्यपर्यायेण नष्टो विनष्टो मृतो देही संसारी जीवः पुण्यवशाद्देवो भवति स्वकीयकर्मवशादितरो वा नारकतिर्यग्मनुष्यो भवति। उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदे ण जायदे अण्णो—उभयत्र कोर्थः मनुष्यभवे देवभवे वा पर्यायार्थिकनयेन मनुष्यभवे नष्टे द्रव्यार्थिकनयेन न विनश्यति तथैव पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याये जाते सति द्रव्यार्थिकनयेनान्योऽपूर्वो न जायते नोत्पद्यते किंतु स एव। कोसौ ? जीवभावो जीवपदार्थः। एवं पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययत्वेपि द्रव्यार्थिकयेनोत्पादव्ययत्वं नास्तीति सिद्धं। अनेन व्याख्यानेन क्षणिकैकान्तमतं नित्यैकान्तमतं च निषिद्धमिति सूत्रार्थः ॥१७॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा १७

उत्थानिका—आगे यह समर्थन करते हैं कि यद्यपि पर्यायार्थिक नयसे द्रव्यमें उत्पत्ति और विनाश होते हैं तो भी द्रव्यार्थिक नयसे उत्पत्ति और विनाश नहीं होते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(देही) यह देहधारी संसारी जीव (मणुसत्तणेण) मनुष्यपनेकी पर्यायसे (णट्ठो) नष्ट होता हुआ (देवो) देव (वा) अथवा (इदरो (दूसरा कोई (हवेदि) पैदा होजाता है । (उभयत्त) दोनोंही अवस्थाओंमें (जीवभावो) जीव द्रव्य (ण णस्सदि) न तो नाश होता है (ण अण्णो जायदे) न दूसरा कोई उत्पन्न होता है ।

विशेषार्थ—यह संसारी जीव यदि मनुष्य देहमें हो और मरे तब यह पुण्यके वशसे देव अथवा अपने अपने कर्मके वशसे दूसरा कोई नारकी, तिर्यंच या मनुष्य हो जाता है यद्यपि पर्यायकी अपेक्षा मनुष्य भवका नाश हुआ परन्तु द्रव्यकी अपेक्षा जिसने मनुष्यभव धारा था उस जीवका नाश नहीं हुआ, तैसे ही यद्यपि पर्यायार्थिक नयसे देव पर्याय उत्पन्न हुई तथापि द्रव्यार्थिक नयसे कोई दूसरा अपूर्व नहीं पैदा हुआ किन्तु वही जीव है जो पहले मनुष्य पर्यायमें था, इसलिये यह बात सिद्ध है कि पर्यायार्थिक नयसे उत्पाद व्यय होनेपर भी द्रव्यार्थिक नयसे उत्पाद व्यय नहीं होते हैं । इस व्याख्यानसे क्षणिक एकांत मतका तथा नित्य एकांत मतका निषेध किया गया ।। १७ ।।

समय व्याख्या गाथा—१८

अत्र कथंचिद्व्ययोत्पादवत्त्वेऽपि द्रव्यस्य सदाविनष्टानुत्पन्नत्वं ख्यापितम्

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो ।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसु त्ति पज्जाओ ।। १८ ।।

स च एव जातिं मरणं याति न नष्टो न चैवोत्पन्नः ।
उत्पन्नश्च विनष्टो देवो मनुष्य इति पर्यायः ।। १८ ।।

यदेव पूर्वोत्तरपर्यायविवेकसंपर्कापादितामुभयीमवस्थामात्मसात्कुर्वाणमुच्छिद्यमानमुत्पद्यमानं च द्रव्यमालक्ष्यते, तदेव तथाविधोभयावस्थाव्यापिना प्रतिनियतैकवस्तुत्वनिबन्धनभूतेन स्वभावेनाविनष्टमनुत्पन्नं वा वेद्यते । पर्यायास्तु तस्य पूर्वपूर्वपरिणामोपमर्दोत्तरोत्तरपरिणामोत्पादरूपाः प्रणाशसंभवधर्माणोऽभिधीयन्ते । ते च वस्तुत्वेन द्रव्यादपृथग्भूता एवोक्ताः । ततः पर्यायैः सहैकवस्तुत्वाज्जायमानं म्रियमाणमपि जीवद्रव्यं सर्वदानुत्पन्नाविनष्टं द्रष्टव्यम् । देवमनुष्यादिपर्यायास्तु क्रमवर्तित्वादुपस्थितातिवाहितस्वसमय उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति चेति ।। १८ ।।

हिन्दी समय व्याख्या गाथा १८

अन्वयार्थः—(सः च एव)वही (जातिं) जन्म को और वही (मरणं याति) मृत्यु को प्राप्त करता है तथापि (न एव उत्पन्नः) वह उत्पन्न नहीं होता (च) और (न नष्टः) नष्ट नही होता, (देवः मनुष्यः) देव, मनुष्य (इति पर्यायः) ऐसी पर्याय (उत्पन्नः) उत्पन्न होती है (च) और (विनष्टः) विनष्ट होती है।

टीकाः—यहां, द्रव्य कथंचित् व्यय और उत्पादवाला होने पर भी उसका सदैव अविनष्टपना और अनुत्पन्नपना कहा है।

जो द्रव्य पूर्व पर्यायके वियोगसे और उत्तर पर्यायके संयोगसे होनेवाली उभय अवस्थाओंको आत्मसात् (अपने रूप) करता हुआ विनष्ट होता और उपजता दिखाई देता है, वही (द्रव्य) वैसी उभय अवस्थाओंमें व्याप्त होनेवाला जो प्रतिनियत-एक-वस्तुत्वके कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा (-उस स्वभावकी अपेक्षासे) अविनष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता है, उसकी पर्यायें पूर्व-पूर्व परिणामके नाशरूप और उत्तर—उत्तर परिणामके उत्पादरूप होनेसे विनाश-उत्पादधर्मवाली कही जाती हैं, और वे (पर्यायें) वस्तुरूपसे द्रव्यसे अपृथग्भूत ही कही गई हैं। इसलिये, पर्यायोंके साथ एकवस्तुपनेके कारण जन्मता और मरता होने पर भी जीवद्रव्य सर्वदा अनुत्पन्न एवं अविनष्ट ही देखना (-श्रद्धा करना), देव-मनुष्यादि पर्यायें उपजती हैं और विनष्ट होती हैं क्योंकि वे क्रमवर्ती होनेसे उनका स्वसमय उपस्थित होता है और बीत जाता है॥ १८॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा १८

अथ तमेवार्थं नयद्वयेन पुनरपि दृढयति,—सो चेव जादि-स च एव जीवपदार्थः पर्यायार्थिकनयेन देवपर्यायरूपां जातिमुत्पत्तिं जादि-याति गच्छति स चैव मरणं-मरणं याति। ण णट्ठो ण उप्पण्णो। द्रव्यार्थिकनयेन पुनर्न नष्टो न चोत्पन्नः। तर्हि कोसौ नष्टः कोसौ उत्पन्नः? उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसोत्ति पज्जाओ—पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याय उत्पन्नो मनुष्यपर्यायो विनष्टः। ननु यद्युत्पादविनाशौ तर्हि तस्यैव पदार्थस्य नित्यत्वं कथं? नित्यत्वं तर्हि तस्यैवोत्पादव्ययद्वयं च कथं परस्परविरुद्धमिदं शीतोष्णवदिति पूर्वपक्षे परिहारमाहुः। येषां मते सर्वथैकान्तेन नित्यं वस्तु क्षणिकं वा तेषां दूषणमिदं। कथमिति चेत्? येनैव रूपेण नित्यत्वं तेनैवानित्यत्वं न घटते, येन च रूपेणानित्यत्वं तेनैव नित्यत्वं न घटते। कस्मात्? एकस्वभावत्वाद्वस्तुनस्तन्मते। जैनमते पुनरनेकस्वभावं वस्तु तेन कारणेन द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यरूपेण नित्यत्वं घटते पर्यायार्थिकनयेन पर्यायरूपेणानित्यत्वं च घटते। तौ च द्रव्यपर्यायौ परस्परं सापेक्षौ, तच्च सापेक्षत्वं "पज्जयरहियं दव्वं दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि" इत्यादि पूर्वं व्याख्यातं तेन कारणेन द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परगौणमुख्यभावव्याख्यानादेकदेवदत्तस्य जन्यजनकादिभाववत् एकस्यापि द्रव्यस्य नित्यानित्यत्वं घटते, नास्ति विरोध इति सूत्रार्थः॥ १८॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा १८

उत्थानिका-आगे इस ही अर्थको दो नयोंसे फिर भी दृढ करते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(सो चेव जादि) वही जीव उत्पन्न होता है जो (मरणं जादि) मरणको प्राप्त होता है (ण णट्ठो) वास्तवमें जीव न नष्ट हुआ (ण चेव उप्पण्णो) और न पैदा हुआ, (देवो मणुसुत्ति पज्जाओ) देव या मनुष्य पर्याय (उप्पण्णो य विणट्ठो) ही उत्पन्न और नाश हुई है ।

विशेषार्थ-पर्यायार्थिक नयसे यही जीव देवपर्याय रूपसे उत्पत्तिको प्राप्त होता है जो पहले मनुष्य पर्याय रूपसे नष्ट होता हैं । द्रव्यार्थिक नयसे न कोई जीव नष्ट हुआ न पैदा हुआ है, तब फिर कौन नष्ट हुआ व कौन पैदा हुआ ? इसके लिये कहते हैं कि पर्यायार्थिकनयसे देवपर्याय उत्पन्न हुई और मनुष्य पर्याय नष्ट हुई । यहां कोई शंका करता हैं कि यदि पदार्थमें उत्पत्ति और विनाश होता है तब वह नित्य किस तरह रहा और यदि पदार्थ नित्य है तो उसमें उत्पाद व्यय किस तरह हैं, ये दोनों बातें विरुद्ध हैं जैसे शीत और उष्णका विरोध है । इस पूर्व पक्षके करनेपर आचार्य इसका समाधान करते हैं कि जिनके मतमें सर्वथा एकांतसे पदार्थ नित्य ही है या क्षणिक ही है उनके मतमें यह दूषण आसक्ता है, क्योंकि जिस अपेक्षासे नित्यपना है उसी ही अपेक्षासे अनित्यपना नहीं घट सक्ता है तथा जिस अपेक्षासे अनित्यपना है उस ही अपेक्षासे नित्यपना नहीं घट सक्ता है, क्योंकि उनके मतमें वस्तु एक रूप हीं मानी है । जैनमतमें पदार्थको अनेक स्वभाव रूप माना है, इसलिये द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यपनेकी अपेक्षा वस्तुमें नित्यपना घटता है और पर्यायार्थिक नयसे पर्यायकी अपेक्षा वस्तुमें अनित्यपना घट जाता है । ये द्रव्य पर्याय दोनों परस्पर अपेक्षा सहित हैं। वह सापेक्षपना पहले ही इस गाथामें 'पज्जयरहियं दव्वं दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि' कहा जा चुका है । इस कारणसे द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयसे परस्पर मुख्य गौण भावसे व्याख्यान करनेसे एक हीं द्रव्यमें नित्य और अनित्यपना दोनों घट जाते हैं जैसे एक देवदत्तमें ही पिता व पुत्रपना सिद्ध है । इसमे कोई विरोध नहीं है ॥ १८ ॥

समय व्याख्या गाथा १९

अत्र सदसतोरविनाशानुत्पादौ स्थितिपक्षत्वेनोपन्यस्तौ ।

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो ॥ १९ ॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य नास्त्युत्पादः।
तावज्जीवानां देवो मनुष्य इति गतिनाम ॥ १९ ॥

यदि हि जीवो य एव म्रियते स एव जायते, य एव जायते स एव म्रियते, तदेवं सतो विनाशोऽसत उत्पादश्च नास्तीति व्यवतिष्ठते। यत्तु देवो जायते मनुष्यो म्रियते इति व्यपदिश्यते तदवधृतकालदेवमनुष्यत्वपर्यायनिर्वर्तकस्य देवमनुष्यगतिनाम्नस्तन्मात्रत्वादविरुद्धम्। यथा हि महतो वेणुदण्डस्यैकस्य क्रमवृत्तीन्यनेकानि पर्वाण्यात्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्वान्तरमगच्छन्ति स्वस्थानेषु भावभाञ्जि परस्थानेष्वभावभाञ्जि भवन्ति, वेणुदण्डस्तु सर्वेष्वपि पर्वस्थानेषु भावभागपि पर्वान्तरसंबन्धेन पर्वान्तरसंबन्धाभावादभावभाग्भवति, तथा निरवधित्रिकालावस्थायिनो जीवद्रव्यस्यैकस्य क्रमवृत्तयोऽनेके मनुष्यत्वादिपर्याया आत्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्यायान्तरमगच्छन्तः स्वस्थानेषु भावभाजः परस्थानेष्वभावभाजो भवन्ति, जीवद्रव्यं तु सर्वपर्यायस्थानेषु भावभागपि पर्यायान्तरसंबन्धेन पर्यायान्तरसंबन्धाभावभाग्भवति ॥ १९ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा १९

अन्वयार्थः-(एवं) इसप्रकार (जीवस्य) जीवको (सतः विनाशः) सत्का विनाश और (असतः उत्पादः) असत्का उत्पाद (न अस्ति) नहीं है, (देव जन्मता है और मनुष्य मरता है-ऐसा कहा जाता है उसका यह कारण है कि) (जीवानाम्) जीवोंको (देवः मनुष्यः) देव, मनुष्य (इति गतिनाम) ऐसा गतिनामकर्म (तावत्) उतने ही कालका होता है।

टीकाः—यहां सत्का अविनाश और असत्का अनुत्पाद ध्रुवताके पक्षसे कहा है।

यदि वास्तवमें जो जीव मरता है वही जन्मता है, और जो जीव जन्मता है वही मरता है, तो इसंप्रकार सतका विनाश और असतका उत्पाद नहीं है ऐसा निश्चित होता है। और देव जन्मता है तथा मनुष्य मरता है ऐसा जो कहा जाता है वह (भी) अविरुद्ध है क्योंकि मर्यादित कालकी देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्यायको रचनेवाले देवगतिनामकर्म और मनुष्यगतिनामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं। जिसप्रकार एक बड़े बाँसके क्रमवर्ती अनेक पर्व (पोरें) अपने-अपने मापमें मर्यादित होने से अन्य पर्व में न जाते हुए अपने—अपने स्थानोंमें भाववाले (-विद्यमान) हैं और परस्थानोंमें अभाववाले

(—अविद्यमान) हैं तथा बाँस तो समस्त पर्वस्थानोंमें भाववाला होने पर भी अन्य पर्वके सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्वके सम्बन्धका अभाव होनेसे अभाववाला (भी) है, उसीप्रकार निरवधि त्रिकाल स्थित रहनेवाले एक जीवद्रव्यकी क्रमवर्ती अनेक मनुष्यादिपर्यायें अपने—अपने मापमें मर्यादित होनेसे अन्य पर्यायमें न जाती हुई अपने-अपने स्थानों में भाववाली हैं और परस्थानोंमें अभाववाली हैं तथा जीवद्रव्य तो सर्वपर्यायस्थानोंमें भाववाला होने पर भी अन्य पर्यायके सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्यायके सम्बन्धका अभाव होनेसे अभाववाला (भी) है ॥ १६ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा १६

अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सतो विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति स्थितमिति निश्चिनोति,—एवं सदो विणासो असदो भावस्स णत्थि उप्पादो—एवं पूर्वोक्तगाथाद्वयव्याख्यानेन यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन नरनारकादिरूपेणोत्पादविनाशत्वं घटते तथापि द्रव्यार्थिकनयेन सतो विद्यमानस्य विनाशो नास्त्यसतश्चाविद्यमानस्य नास्त्युत्पादः । कस्य ? भावस्य जीवपदार्थस्य । ननु यद्युत्पादव्ययौ न भवतस्तर्हि पल्यत्रयपरिमाणं भोगभूमौ स्थित्वा पश्चात् म्रियते, यत् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देवलोके नारकलोके तिष्ठति पश्चान्म्रियत इत्यादि व्याख्यानं कथं घटते ? तावदियो जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो—तावत्पल्यत्रयादिरूपं परिमाणं यज्जीवानां कथ्यते देवो मनुष्य इति योसौ गतिनामकर्मोदयजनितपर्यायस्तस्य तत्परिमाणं, न च जीवद्रव्यस्येति वेणुदण्डवन्नास्ति विरोधः । तथाहि—यथा महतो वेणुदण्डस्यानेकानि पर्वाणि स्वस्थानेषु भावभाञ्जि विद्यमानानि भवन्ति परपर्वस्थानेष्वभावभाञ्ज्यविद्यमानानि भवन्ति वंशदण्डस्तु सर्वपर्वस्थानेष्वन्वयरूपेण विद्यमानोपि प्रथमपर्वरूपेण द्वितीयपर्वे नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते, तथा वेणुदण्डस्थानीयजीवे नरनारकादिरूपाः पर्वस्थानीया अनेकपर्यायाः स्वकीयायुःकर्मोदयकाले विद्यमाना भवन्ति परकीयपर्यायकाले चाविद्यमाना भवन्ति जीवश्चान्वयरूपेण सर्वपर्वस्थानीयसर्वपर्यायेषु विद्यमानोपि मनुष्यादिपर्यायरूपेण देवादिपर्यायेषु नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते । स एव नित्यः स एवानित्यः कथं घटत इति चेत् । यथैकस्य देवदत्तस्य पुत्रविवक्षाकाले पितृविवक्षा गौणा पितृविवक्षाकाले पुत्रविवक्षा गौणा, तथैकस्य जीवस्य जीवद्रव्यस्य वा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वविवक्षाकाले पर्यायरूपेणानित्यत्वं गौणं पर्यायरूपेणानित्यत्वविवक्षाकाले द्रव्यरूपेण नित्यत्वं गौणं । कस्मात् । विवक्षितो मुख्य इति वचनात् । अत्र पर्यायरूपेणानित्यत्वेपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनाविनश्वरमनन्तज्ञानादिरूपं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं रागादिपरिहारेणोपादेयरूपेण भावनीयमिति भावार्थः ॥ १६ ॥ एवं बौद्धमतनिराकरणार्थमेकसूत्रगाथा प्रथमस्थले पूर्वं भणिता तस्य विवरणार्थं द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् ।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा १६

उत्थानिका—आगे यह निश्चय करते हैं कि द्रव्यार्थिक नयसे सत्का विनाश नहीं है और न असत्का उत्पाद है । यही बात सिद्ध है ।

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(एवं) इस तरह जैसा पहले कह चुके हैं (सदो जीवस्स) सत् पदार्थ जीवका (विणासो) नाश और (असदो) असत् पदार्थ जीवका (उप्पादो) जन्म (णत्थि) नही होता है। (जीवाणं) संसारी जीवोंकी (तावदिओ) जो इतने प्रमाण स्थिति हैं सो (देवो मणुसोत्ति गदिणामो) उनके देव या मनुष्यगति नाम कर्मके उदयका विपाक है।

विशेषार्थ-पहले तीन गाथाओंमें यह कह चुके हैं कि यद्यपि पर्यायार्थिनयसे जीव पदार्थका नरनारक आदि रूपसे उत्पाद और विनाश घटता है तथापि द्रव्यार्थिकनयसे सत्रूप जो विद्यमान पदार्थ उसका विनाश नहीं होता है और न असत्रूप अविद्यमान पदार्थका जन्म होता है। यहां कोई शंका करता है कि यदि जीवका जन्ममरण नहीं होता है तो फिर यह व्याख्यान कैसे सिद्ध होता है कि यह जीव तीन पल्य प्रमाण भोगभूमिमें ठहरकर फिर मरता है अथवा तेतीस सागर प्रमाण देवगति या नरकगतिमें रहता है फिर मरता है? इसका उत्तर यह है कि यह जो तीन पल्य आदिकी स्थिति जीवोंकी कही गई है सो देव या मनुष्यगति नामा नामकर्मके उदयसे उत्पन्न जो देव या मनुष्यकी पर्याय उसकी स्थितिका परिमाण है, न कि जीवद्रव्यका। वांसकी लकडीके दृष्टांतसे इसमें कोई विरोध नहीं है। जैसे बहुत बडे वांसकी लकडीमें बहुत गांठे अपने अपने स्थानपर विद्यमान हैं वे ही गांठें परस्पर दूसरी गांठोंपर नहीं मौजूद हैं अर्थात् प्रत्येक गांठ या पर्व भिन्न भिन्न अपनी सत्ता रखती है परन्तु वांसकी लकडी सर्व ही पर्वोंमें अन्वयरूपसे विद्यमान है तौ भी जैसी पहली पर्वमें है वैसी दूसरी पर्वके स्थानमें नही है यह भी कह सकते हैं, तैसे ही वांसकी लकडीके समान इस जीव नामा पदार्थमें पर्वोंके समान नरनारक आदि अनेक पर्यायें अपने २ आयुकर्मके उदयके कालमें विद्यमान रहती हैं। ये ही पर्यायें परस्पर एक दूसरेके पर्यायके कालमें विद्यमान नहीं हैं-सर्व पर्यायें भिन्न भिन्न हैं तथा यह जीव अन्वयरूपसे सर्व पर्वोंके समान अपनी सर्व पर्यायोंमें विद्यमान है तौभी मनुष्यादि पर्यायके रूपसे देवादि पर्यायोंमें नहीं है ऐसा भी कह सक्ते हैं अर्थात वही जीव नित्य है वही जीव अनित्य है यह सिद्ध होता है। किस तरह सो कहते हैं-जैसे एक देवदत्तको जब पुत्रकी अपेक्षासे देखा जायगा तब उसमें पितापनेकी अपेक्षा गौणपना है जब उसे पिताकी

अपेक्षासे देखेंगे तब उसमें पुत्रकी अपेक्षाको गौण करना होगा तैसे ही एक जीवद्रव्यको द्रव्यार्थिकनयसे जब नित्यकी अपेक्षा करेंगे तब उसमें पर्यायार्थिकनयसे अनित्यपना गौणरूप रहेगा और जब पर्यायरूपसे अनित्यपनेकी अपेक्षा करेंगे तब द्रव्यरूपसे नित्यपना गौण रहेगा क्योंकि जिसकी विवक्षा होती है वह मुख्य हो जाता है यह वचन है। यहां यह तात्पर्य है कि जो पर्यायरूपसे अनित्य है, परन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे अविनाशी अनन्तज्ञानादिरूप शुद्ध जीवास्तिकाय नामका शुद्ध आत्मद्रव्य है उसहीको रागादि भावोंको त्यागकर ग्रहण करना चाहिये व उसहीकी भावना करना चाहिये ॥ १९ ॥

इस तरह बौद्धमतको निराकरण करनेके लिये एक सूत्र गाथा प्रथम स्थलमें पहले कही थी उसीके विशेष वर्णनके लिये दूसरे स्थलमें चार गाथाएं कहीं।

समय व्याख्या गाथा २०

अत्रात्यन्तासदुत्पादत्वं सिद्धस्य निषिद्धम्।

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो ॥ २० ॥

यथा स्तोककालान्वयिषु नामकर्मविशेषोदयनिर्वृत्तेषु जीवस्य देवादिपर्यायेष्वेकस्मिन् स्वकारणनिवृत्तौ निवृत्तेऽभूतपूर्व एव चान्यस्मिन्नुत्पन्ने नासदुत्पत्तिः, तथा दीर्घकालान्वयिनि ज्ञानावरणादिकर्मसामान्योदयनिर्वृत्तसंसारित्वपर्याये भव्यस्य स्वकारणनिवृत्तौ निवृत्ते समुत्पन्ने चाभूतपूर्वे सिद्धत्वपर्याये नासदुत्पत्तिरिति। किं च—यथा द्राघीयसि वेणुदण्डे व्यवहिताव्यवहितविचित्रचित्रकिर्मीरताखचिताधस्तनार्धभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धोर्ध्वार्धभागेऽवतारिता दृष्टिः समन्ततो विचित्रचित्रकिर्मीरताव्याप्तिं पश्यन्ती समनुमिनोति तस्य सर्वत्राविशुद्धत्वं, तथा क्वचिदपि जीवद्रव्ये व्यवहिताव्यवहितज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरताखचितबहुतराधस्तनभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धबहुतरोर्ध्वभागेऽवतारिता बुद्धिः समन्ततो ज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरताव्याप्तिं व्यवस्यन्ती समनुमिनोति तस्य सर्वत्राविशुद्धत्वम्। यथा च तत्र वेणुदण्डे व्याप्तिज्ञानाभासनिबन्धनविचित्रचित्रकिर्मीरतान्वयः, तथा च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरतान्वयः। यथैव च तत्र वेणुदण्डे विचित्रचित्रकिर्मीरतान्वयाभावा-

रसुविशुद्धत्वं, तथैव च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मभिःरितान्वयाभावादाप्तागमसम्यगनुमानातीन्द्रियज्ञानपरिच्छिन्नात्सिद्धत्वमिति ॥ २० ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा २०

अन्वयार्थः—(ज्ञानावरणाद्याः भावाः) ज्ञानावरणादि भाव (जीवेन) जीवके साथ (सुष्ठु) भलीभांति (अनुबद्धाः) अनुबद्ध हैं (तेषाम् अभावं कृत्वा) उनका अभाव करके वह (अभूतपूर्वः सिद्धः) अभूतपूर्व सिद्ध (भवति) होता है।

टीकाः-यहां सिद्धको अत्यंत असत्-उत्पादका निषेध किया है।

जिस प्रकार कुछ समय तक अन्वयरूपसे (-साथ-साथ) रहनेवाले नामकर्मविशेषके उदयसे उत्पन्न होनेवाली जो देवादिपर्यायें उनमेंसे जीवको एक पर्याय स्वकारणसे निवृत्त हो तथा अन्य कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न हो, वहां असत्की उत्पत्ति नहीं है, उसीप्रकार दीर्घकाल तक अन्वयरूपसे रहनेवाली ज्ञानावरणादिकर्मसामान्यके उदयसे उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय भव्यको स्वकारणसे निवृत्त हो और अभूतपूर्व (—पूर्वकालमें नहीं हुई ऐसी) सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो, वहां असत्की उत्पत्ति नहीं है।

पुनश्च (विशेष समझाया जाता है):—

जिसप्रकार जिसका विचित्र चित्रोंसे चित्रित नीचेका अर्ध भाग कुछ ढंका हुआ और कुछ बिना ढंका हो तथा सुविशुद्ध (—अचित्रित) ऊपरका अर्ध भाग मात्र ढंका हुआ ही हो ऐसे बहुत लम्बे बांस पर दृष्टि डालनेसे वह दृष्टि सर्वत्र विचित्र चित्रोंसे हुए चित्रविचित्रपनेकी व्याप्तिका निर्णय करती हुई "वह बांस सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण रंगबिरंगा है)" ऐसा अनुमान करती है, उसीप्रकार जिसका ज्ञानावरणादि कर्मोंसे हुआ चित्रविचित्रतायुक्त (—विविध विभावपर्यायवाला) बहुत बडा नीचेका भाग कुछ ढंका हुआ और कुछ बिन ढंका है तथा सुविशुद्ध (सिद्धपर्यायवाला), बहुत बडा ऊपरका भाग मात्र ढंका हुआ ही है ऐसे किसी जीवद्रव्यमें बुद्धि लगानेसे वह बुद्धि सर्वत्र ज्ञानावरणादि कर्मसे हुए चित्रविचित्रपनेकी व्याप्तिका निर्णय करती हुई 'वह जीव सर्वत्र अविशुद्ध है' ऐसा अनुमान करती है। पुनश्च, जिस प्रकार उस बांसमें व्याप्तिज्ञानाभासका कारण [नीचेके खुले भागमें] विचित्र चित्रोंसे हुए चित्रविचित्रपनेका अन्वय (-संतति, प्रवाह) है, उसीप्रकार उस जीवद्रव्यमें व्याप्तिज्ञानाभासका कारण [नीचेके खुले भागमें] ज्ञानावरणादि कर्मसे हुए चित्रविचित्रपनेका अन्वय है। और जिस प्रकार उस बाँसमें (ऊपरके भागमें) सुविशुद्धपना है क्योंकि (वहां) विचित्र चित्रोंसे हुए चित्रविचित्रपनेके अन्वयका अभाव है, उसीप्रकार उस जीवद्रव्यमें (ऊपरके भागमें) सिद्धपना है क्योंकि (वहां) ज्ञानावरणादि कर्मसे हुए चित्रविचित्रपनेके अन्वयका अभाव है-कि जो अभाव आप्त-आगम के ज्ञानसे सम्यक् अनुमानज्ञानसे और अतीन्द्रियज्ञानसे ज्ञात होता है ॥ २० ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २०

अथ यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सर्वदैव शुद्धरूपस्तिष्ठति तथापि पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्यासदुत्पादो भवतीत्यावेदयति, अथवा यदा मनुष्यपर्याये विनष्टे देवपर्याये जाते स एव जीवस्तथा मिथ्यात्वरागादि-परिणामाभावात् संसारपर्यायविनाशे सिद्धपर्याये जाते सति जीवत्वेन विनाशो नास्त्युभयत्र स एव जीव इति दर्शयति, अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयद्वयेन पूर्वोक्तप्रकारेणानेकान्तात्मकं तत्त्वं प्रतिपाद्य पश्चात्संसारावस्थायां ज्ञानावरणादिरूपबन्धकारणभूतं मिथ्यात्वरागादिपरिणामं त्यक्त्वा शुद्धभावपरिणमनान्मोक्षं च कथयतीति पातनिकात्रयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति,—णाणावर-णादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा—ज्ञानावरणादिभावद्रव्यकर्मपर्याया: संसारिजीवेन सुष्ठु संश्लेषरू-पेणानादिसंतानेन बद्धास्तिष्ठन्ति तावत् 'तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो' यदा कालादिल-ब्धिवशाद्भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गं लभते तदा तेषां ज्ञानावरणादिभावानां द्रव्य-भावकर्मरूपपर्यायाणामभावं विनाशं कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनाभूतपूर्वसिद्धो भवति, द्रव्यार्थिकनयेन पूर्वमेव सिद्धरूप इति वार्तिकं। तथाहि—यथैको महान् वेणुदण्ड: पूर्वार्धभागे विचित्रचित्रेण खचित: शबलितो मिश्रित: तिष्ठति तस्मादूर्ध्वार्द्धभागे विचित्रचित्राभावाच्छुद्ध एव तिष्ठति तत्र यदा कोपि देवदत्तो दृष्ट्याव-लोकनं करोति तदा भ्रान्तिज्ञानवशेन विचित्रचित्रवशादशुद्धत्वं ज्ञात्वा तस्मादुत्तरार्धभागेशुद्धेप्यशुद्धत्वं मन्यते तथायं जीव: संसारावस्थायां मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामवशेन व्यवहारेणाशुद्धस्ति-ष्ठति शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनाभ्यन्तरे केवलज्ञानादिस्वरूपेण शुद्ध एव तिष्ठति। यदा रागादिपरिणामाविष्ट: सन् सविकल्परूपेन्द्रियज्ञानेन विचारं करोति तदा यथा बहिर्भागे रागाद्याविष्टमात्मानमशुद्धं पश्यति तथाभ्यन्तरेपि केवलज्ञानादिस्वरूपेप्यशुद्धत्वं मन्यते भ्रान्तिज्ञानेन। यथा वेणुदण्डे विचित्रचित्रमिश्रितत्वं भ्रान्तिज्ञानकारणं तथात्र जीवेपि मिथ्यात्वरागादिरूपं भ्रान्तिज्ञानकारणं भवति। यथा वेणुदण्डो विचित्र-चित्रप्रक्षालने कृते शुद्धो भवति तथायं जीवोपि यदा गुरूणां पार्श्वे शुद्धात्मस्वरूपप्रकाशकं परमागमं जानाति। कीदृशमिति चेत्? "एकोऽहं निर्मम: शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर:। बाह्या: संयोगजा भावा मत्त: सर्वेऽपि सर्वदा" इत्यादि। तथैव च देहात्मनोरत्यन्तभेदो भिन्नलक्षणलक्षितत्वाज्जलानलादिवदित्य-नुमानज्ञानं जानाति तथैव च वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं जानाति। तदित्थंभूतागमानुमानस्वसं-वेदनप्रत्यक्षज्ञानात् शुद्धो भवति। अत्राभूतपूर्वसिद्धस्वरूपं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यमुपादे-यमिति तात्पर्यार्थ: ॥ २० ॥ एवं तृतीयस्थले पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्याभूतपूर्वोत्पादव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा २०

उत्थानिका—आगे दिखलाते हैं कि यद्यपि शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे यह जीव सदा शुद्ध रहता है तथापि पर्यायार्थिक नयसे सिद्ध पर्यायका असत् उत्पाद होता है अर्थात् जो सिद्ध अवस्था

पहले कभी प्रगट नहीं थी उसका प्रकाश होता है अथवा यह बताते हैं कि जैसे मनुष्यपर्यायके नष्ट होते हुए या देवपर्यायके जन्मते हुए वही जीव रहता है तैसे मिथ्यादर्शन व रागद्वेषादि परिणामोंके चले जानेपर संसारपर्यायके नाश होते हुए व सिद्धपर्यायके जन्म होते हुए जीवका जीवपनेकी अपेक्षा नाश नहीं हुआ है अर्थात् दोनों ही संसार या सिद्ध अवस्थामें वही जीव है। अथवा यह कहते हैं कि-परस्पर अपेक्षा सहित पूर्वोक्त द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयोंसे तत्त्वको समझकर फिर जो संसार अवस्थामें ज्ञानावरणादि कर्मोंके बंधके कारण मिथ्यात्व व रागादि परिणाम थे उनको छोडकर शुद्ध भावोंमें परिणमन करता है उसको मोक्ष होती है। इस तरह तीन पातनिकाओंको मनमें धरकर आगेका सूत्र वर्णन करते हैं।

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जीवेण) इस संसारी जीवद्वारा (णाणावरणादीया) ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार (भावा) कर्मकी अवस्थाएं (सुट्ठु) गाढ रूपसे (अणुबद्धा) बांधी हुई हैं (तेसिम्) उन सबका (अभावं किच्चा) नाश करके (अभूदपुव्वो) अभूतपूर्व अर्थात् जो पहले कभी नहीं हुआ ऐसा (सिद्धो) सिद्ध (हवदि) हो जाता है।

विशेषार्थ-इस संसारी जीवने अनादि कालसे द्रव्य कर्मकी प्रकृतियोंको बांध रक्खा है अर्थात् प्रवाह रूपसे इसके सदा ही आठ कर्म बंधे हुए पाए जाते हैं। जब कोई भव्य काल आदि लब्धिके वशसे भेद रत्नत्रय स्वरूप व्यवहार मोक्षमार्गको और अभेदरत्नत्रय स्वरूप निश्चय मोक्षमार्गको प्राप्त करता है तब वह उन ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंकी द्रव्य और भावरूप अवस्थाओंका नाश करके पर्यायार्थिक नयसे सिद्ध भगवान होजाता है अर्थात् जो सिद्ध पर्याय कभी प्रगट नहीं की थी, उस सिद्ध पर्यायको प्राप्त कर लेता है। द्रव्यार्थिक नयसे तो पहले ही से यह जीव स्वरूपसे ही सिद्ध रूप है। जैसे एक बडा बांस है उसके पहले आधे भागमें नाना प्रकार चित्र बने हुए हैं तथा उसके ऊपरका आधा भाग विचित्र चित्रोंके विना शुद्ध ही है। तब वहां जब कोई देवदत्त नामका पुरुष अपनी दृष्टिसे उस चित्रित भागको देखता है और उस शुद्ध भागको नहीं देख पाता है तब वह अपने भ्रांति रूप ज्ञानसे उस सर्व बांसको विचित्र चित्रोंसे चित्रित अशुद्ध जानकर उसके आधे ऊपरके भागमें भी अशुद्धता मान लेता है तैसे यह जीव संसारकी अवस्थामें मिथ्यात्व व रागद्वेष आदि विभाव परिणामोंके वशसे व्यवहारन-

यसे अशुद्ध हो रहा है, परन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे अपने भीतरी स्वभावमें केवलज्ञानादिरूपसे शुद्धरूप ही विराजमान है। जब यह रागादि परिणामोंमें परिणमन करता हुआ विकल्प रूप इंद्रियज्ञानके द्वारा विचार करता है तब जैसे बाहरी भागमें रागादि रूप अशुद्ध आत्माको देखता है तैसे ही भीतरमें भी केवलज्ञानादि स्वरूप होते हुए भी अपने भ्रामक ज्ञान या मिथ्याज्ञानसे अशुद्धता मान लेता है। जैसे बांसमें नाना प्रकार चित्रोंसे मिश्रितपना मिथ्याज्ञानमें कारण है तैसे इस जीवमें मिथ्यात्व व रागादिरूपपना मिथ्याज्ञानका कारण है। जैसे वह बांस विचित्र चित्रोंके धोए जानेपर शुद्ध होजाता है वैसे यह जीव भी जब श्रीगुरुओंके पासमें शुद्ध आत्म स्वरूपके प्रकाश करनेवाले परमागमको जानता है और यह समझता है जैसा कि कहा है "एकोहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः। बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वदा॥" अर्थात् मैं एक अकेला हूँ, मेरा परपदार्थ कोई नहीं है मैं शुद्ध हूं ज्ञानी हूँ सर्व ही परके संयोगसे पैदा होनेवाले भाव सदा ही मेरे स्वरूपसे बाहर हैं इत्यादि। तैसे ही अपने अनुमान ज्ञानसे जानता है कि यह देहादि और आत्मा परस्पर बिलकुल भिन्न हैं क्योंकि दोनोंका भिन्न भिन्न लक्षण है। जैसे जल अग्नि भिन्न २ लक्षण रखनेसे बिलकुल भिन्न २ हैं। इसी तरह वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानद्वारा अनुभव करता है। तब इस तरह आगम, अनुमान और स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञानके प्रतापसे शुद्ध होजाता है। यहां यह तात्पर्य है कि अभूतपूर्व सिद्धपना अथवा शुद्ध जीवास्तिकाय नामका शुद्ध आत्मद्रव्य ही ग्रहण करने योग्य है॥२०॥

इस तरह तीसरे स्थलमें पर्यायार्थिक नयसे सिद्धके अभूतपूर्व पर्यायका उत्पाद होता है, इस व्याख्यानकी मुख्यतासे गाथा पूर्ण हुई।

संस्कृत समय व्याख्या गाथा २१

जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपपत्त्युपसंहारोऽयम्।

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो॥ २१॥

एवं भावमभावं भावाभावमभावभावं च।
गुणपर्ययैः सहितः संसरन् करोति जीवः॥ २१॥

द्रव्यं हि सर्वदाऽविनष्टानुत्पन्नमाम्नातम् । ततो जीवद्रव्यस्य द्रव्यरूपेण नित्यत्वमुपन्यस्तम् । तस्यैव देवादिपर्यायरूपेण प्रादुर्भवतो भावकर्तृत्वमुक्तं, तस्यैव च मनुष्यादिपर्यायरूपेण व्ययतोऽभावकर्तृत्वमाख्यातं, तस्यैव च सतो देवादिपर्यायस्योच्छेदमारभमाणस्य भावाभावकर्तृत्वमुदितं, तस्यैव चासतः पुनर्मनुष्यादिपर्यायस्योत्पादमारभमाणस्याभावभावकर्तृत्वमभिहितम् । सर्वमिदमनवद्यं द्रव्यपर्यायाणामन्यतरगुणमुख्यत्वेन व्याख्यानात् । तथा हि—यदा जीवः पर्यायगुणत्वेन द्रव्यमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा नोत्पद्यते, न विनश्यति, न च क्रमवृत्त्यावर्तमानत्वात् सत्पर्यायजातमुच्छिनत्ति, नासदुत्पादयति । यदा तु द्रव्यगुणत्वेन पर्यायमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा प्रादुर्भवति, विनश्यति, सत्पर्यायजातमतिवाहितस्वकालमुच्छिनत्ति, असदुपस्थितस्वकालमुत्पादयति चेति । स खल्वयं प्रसादोऽनेकान्तवादस्य यदीदृशोऽपि विरोधो न विरोधः ॥ २१ ॥

इति षड्द्रव्यसामान्यप्ररूपणा ।

हिन्दी समय व्याख्या गाथा २१

अन्वयार्थः—[एवम्] इस प्रकार (गुणपर्ययैः सहितः) गुणपर्यायों सहित [जीवः] जीव [संसरन्] संसरण करता हुआ [भावम्] भाव, (अभावम्) अभाव, (भावाभावं) भावाभाव [च] और (अभावभावम्) अभावभावको (करोति) करता है ।

टीकाः-यह, जीवको उत्पाद, व्यय, सत्-विनाश और असत्-उत्पादका कर्तृत्व होनेकी सिद्धिरूप उपसंहार है ।

द्रव्य वास्तवमें सर्वदा अविनष्ट और अनुत्पन्न आगममें कहा है, इसलिये जीवद्रव्यको द्रव्यरूपसे नित्यपना कहा गया । (१) देवादिपर्यायरूपसे उत्पन्न होता है इसलिये उसीको (-जीवद्रव्यको ही) भावका (-उत्पादका) कर्तृत्व कहा गया है, (२) मनुष्यादि पर्यायरूपसे नाशको प्राप्त होता है इसलिये उसीको अभावका (-व्ययका) कर्तृत्व कहा गया है, (३) सत् (विद्यमान) देवादिपर्यायका नाश करता है इसलिये उसीको भावाभावका (सत्के विनाशका) कर्तृत्व कहा गया है, और (४) फिरसे असत् (-अविद्यमान) मनुष्यादिपर्यायका उत्पाद करता है इसलिये उसीको अभावभावका (-असत्के उत्पादका) कर्तृत्व कहा गया है ।

—यह सब निरवद्य (निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है क्योंकि द्रव्य और पर्यायोंमें से एक की गौणतासे और अन्यकी मुख्यतासे कथन किया जाता है । वह इस प्रकार है:—

जब जीव, पर्यायकी गौणतासे और द्रव्यकी मुख्यतासे विवक्षित होता है तब यह (१) उत्पन्न

नहीं होता, (२) विनष्ट नहीं होता, (३) क्रमवृत्तिसे वर्तन नहीं करता इसलिये सत् (-विद्यमान) पर्यायसमूहको विनष्ट नहीं करता और (४) असत्को (अविद्यमान पर्यायसमूहको) उत्पन्न नहीं करता, और जब जीव, द्रव्यकी गौणतासे तथा पर्यायकी मुख्यतासे विवक्षित होता है तब वह (१) उपजता है, (२) विनष्ट होता है, (३) जिसका स्वकाल बीत गया है ऐसे सत् (-विद्यमान) पर्यायसमूहको विनष्ट करता है और (४) जिसका स्वकाल उपस्थित हुआ है (-आपहुँचा है) ऐसे असत्को (अविद्यमान पर्यायसमूहको) उत्पन्न करता है।

यह प्रसाद वास्तवमें अनेकान्तवादका है कि ऐसा विरोध भी (सचमुच) विरोध नहीं है ॥२१॥

इस प्रकार षड्द्रव्यकी सामान्य प्ररूपणा समाप्त हुई।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २१

अथ जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपसंहारव्याख्यानमुद्योतयति,–एवं भाव-मभावं–एवं पूर्वोक्तप्रकारेण द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन पूर्वं मनुष्यपर्यायस्य अभावं–व्ययं कृत्वा पश्चाद्देवोत्पत्तिकाले भावं देवपर्यायस्योत्पादं कुणदि करोति। भावाभावं पुनरपि देवपर्यायच्यवन-काले विद्यमानस्य देवभावस्य पर्यायस्याभावं करोति। अभावभावं च पश्चान्मनुष्यपर्यायोत्पत्तिकाले अभावस्याविद्यमानमनुष्यपर्यायस्य भावमुत्पादं करोति। स कः कर्ता। जीवो—जीवः। कथंभूतः। गुण-पज्जयेहि सहिदो–कुमतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायसहितः न च केवलज्ञानादिस्वभावगुण-सिद्धरूपशुद्धपर्यायसहितः। कस्मादिति चेत्? तत्र केवलज्ञानाद्यवस्थायां नरनारकादिविभावपर्यायाणामसं-भवात् अगुरुलघुकगुणषड्वानिवृद्धिस्वभावपर्यायरूपेण पुनस्तत्रापि भावाभावादिकं करोति नास्ति विरोधः किं कुर्वन् सन् मनुष्यभावादिकं करोति। संसरमाणो संसरन् परिभ्रमन् सन्। क। द्रव्यक्षेत्रकालभवभा-वस्वरूपपञ्चप्रकारसंसारे। अत्र सूत्रे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे साक्षादुपादेयभूते शुद्धजीवास्तिकाये सम्य-क्श्रद्धानज्ञानानुचरणं तद्रूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं परमसामायिकं तदलभमानो दृष्टश्रुतानुभूताहारभय-मैथुनपरिग्रहसंज्ञादिसमस्तपरभावपरिणाममूर्छितो मोहित आसक्तः सन् नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण भावमुत्पादं करोति तथैव चाभावं व्ययं करोति येन कारणेन जीवस्तस्मात् तत्रैव शुद्धात्मद्रव्ये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं तथानुचरणं च निरन्तरं सर्वतात्पर्येण कर्तव्यमिति भावार्थः॥ २१॥ एवं द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन संसारिजीवस्य देवमनुष्याद्युत्पादव्ययकर्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन चतु-र्थस्थले गाथा गता। इति स्थलचतुष्टयेन द्वितीयं सप्तकं गतं। एवं प्रथमगाथासप्तके यदुक्तं स्थलपञ्चकं तेन सह नवभिरन्तरस्थलैश्चतुर्दशगाथाभिः प्रथममहाधिकारमध्ये द्रव्यपीठिकाभिधाने द्वितीयोन्तराधिकारः समाप्तः।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा २१

उत्थानिका–आगे यह प्रकाश करते हैं कि यह जीव अपने भीतर विद्यमान पर्यायके नाश

तथा अविद्यमान पर्यायके उत्पादका कर्ता है तथा इस व्याख्यानको संकोचते भी हैं–

अन्वयसहित सामान्यार्थ:–(एवं) इसी तरह (गुणपज्जयेहिं सहिदो जीवो) अपने गुण और पर्यायके साथमें रहता हुआ यह जीव (संसरमाणो) संसारमें भ्रमण करता हुआ (भावं) उत्पाद, और (अभावं) नाशको (भावाभावं) विद्यमान पर्यायके अभावके प्रारम्भको (अभावभावं) अविद्यमान पर्यायके सद्भावके प्रारम्भको (कुणदि) करता रहता है।

विशेषार्थ–जैसा पहले कह चुके हैं कि यह जीव द्रव्यार्थिक नयसे नित्य है तौ भी पर्यायार्थिक नयसे पहलेकी विद्यमान मनुष्य पर्यायका नाश करता है फिर देवगतिमें उत्पत्तिके समयमें देव पर्यायका उत्पाद करता है फिर भी देवपर्यायके छूटनेके कालमें विद्यमान देवपर्यायका नाश प्रारम्भ करता है तथा मनुष्य पर्यायकी उत्पत्तिके कालमें अविद्यमान मनुष्य पर्यायकी उत्पत्तिको प्रारम्भ करता है। जो ऐसा करता है यह जीव कुमति ज्ञानादि विभाव गुण व नर नारकादि विभाव पर्याय सहित होता है। जो जीव केवलज्ञानादि स्वाभाविक गुण और सिद्धमई शुद्ध पर्याय सहित होता है वह इस तरह गतियोंमें भ्रमण नहीं करता है क्योंकि केवलज्ञानादिके प्रकाशकी अवस्था होते हुए नर नारक आदि विभाव पर्यायोंकी उत्पत्ति असंभव है किंतु शुद्ध सिद्ध पर्यायमें भी यह जीव अगुरुलघु गुणके द्वारा षट् गुणी हानिवृद्धि रूप स्वभावपर्यायकी अपेक्षा उत्पाद व नाश आदि करता रहता है। इसमें कोई विरोध नहीं है। जब अशुद्ध होता है तब यह जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पंच प्रकार संसारमें भ्रमण करता रहता हैं। इस सूत्रमें यह दिखाया है कि जब यह जीव साक्षात् ग्रहण करने योग्य विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकायका सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और चारित्ररूप निश्चय रत्नत्रयमई परम सामायिकको न प्राप्त करता हुआ देखे सुने व अनुभव किये हुए आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओंको आदि लेकर सर्व परभावोंके परिणामोंमें मूर्छित, मोहित या आसक्त होता हुआ नर नारकादि विभाव पर्यायोंमें उत्पाद और व्यय करता रहता है तब इस जीवको शुद्ध आत्म द्रव्यका सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान तथा अनुभव या ध्यान निरन्तर जिस तरह बने उसतरह करना योग्य है जिससे विभावोंमें भ्रमण न हो, यह तात्पर्य है ॥ २१ ॥

इस तरह द्रव्यार्थिक नयसे नित्य होनेपर भी पर्यायार्थिक नयसे इस संसारी जीवके देव

मनुष्यादि पर्यायोंके उत्पाद या नाशका कर्ता गा है। इस व्याख्यानके संकोचकी मुख्यतासे चौथे स्थलमें गाथा पूर्ण हुई। इस तरह चार स्थलोंसे दूसरा सप्तक पूर्ण किया. इस प्रकार पहली गाथा सप्तकमें जो पांच स्थल कहे थे उनको लेकर नव अन्तर स्थलोंसे चौदह गाथाओंके द्वारा प्रथम महा अधिकारमें द्रव्यपीठिका नामका दूसरा अंतर अधिकार समाप्त हुआ।

समय व्याख्या गाथा २२

अत्र सामान्येनोक्तलक्षणानां षण्णां द्रव्याणां मध्यात् पञ्चानामस्तिकायत्वं व्यवस्थापितम्।

जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स ॥ २२ ॥

जीवाः पुद्गलकाया आकाशमस्तिकायौ शेषौ।
अमया अस्तित्वमयाः कारणभूता हि लोकस्य ॥ २२ ॥

अकृतत्वात् अस्तित्वमयत्वात् विचित्रात्मपरिणतिरूपस्य लोकस्य कारणत्वाच्चाभ्युपगम्यमानेषु षट्सु द्रव्येषु जीवपुद्गलाकाशधर्माधर्माः प्रदेशप्रचयात्मकत्वात् पंचास्तिकायाः न खलु कालस्तदभावादस्तिकाय इति सामर्थ्यादवसीयत इति॥ २२ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा २२

अन्वयार्थः—[जीवाः] जीव, (पुद्गलकायाः) पुद्गलकाय (आकाशम्) आकाश और [शेषौ अस्तिकायौ] शेष दो अस्तिकाय (असयाः) अकृत हैं, (अस्तित्वमयाः) अस्तित्वमय हैं और (हि) वास्तवमें (लोकस्य कारणभूताः) लोकके कारणभूत हैं।

टीकाः—यहां (इस गाथामें), सामान्यतः जिनका स्वरूप (पहले) कहा गया है ऐसे छह द्रव्योंमेंसे पांचको अस्तिकायपना स्थापित किया गया है।

अकृत होनेसे, अस्तित्वरूप होनेसे और अनेकप्रकारकी अपनी परिणतिरूप लोकके कारण होनेसे जो स्वीकार (संमत) किये गये हैं ऐसे छह द्रव्योंमें जीव, पुद्गल, आकाश, धर्म और अधर्म प्रदेशप्रचयात्मक (प्रदेशोंके समूहमय) होनेसे वे पांच अस्तिकाय हैं। कालको प्रदेशप्रचयात्मकपनेका अभाव होनेसे वह वास्तवमें अस्तिकाय नहीं है ऐसा (विना कथन किये भी) सामर्थ्यसे निश्चित होता है॥ २२ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २२

अथ कालद्रव्यप्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं कथ्यते। तत्र पंचगाथासु मध्ये षड्द्रव्यमध्याज्जीवादिपंचानामस्तिकायत्वसूचनार्थं "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि सूत्रमेकं, तदनन्तरं निश्चयकालकथनरू-

पेण "सब्भावसहावाणं" इत्यादि सूत्रद्वयं टीकाभिप्रायेण सूत्रमेकं, पुनश्च समयादिव्यवहारकालमुख्यत्वेन "समओ णिमिसो" इत्यादि गाथाद्वयं एवं स्थलत्रयेण तृतीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका। अथ सामान्योक्तलक्षणानां षण्णां द्रव्याणां यथोक्तस्मरणार्थमग्रे विशेषव्याख्यानार्थं वा पंचानामस्तिकायत्वं व्यवस्थापयति,-

जीवा पोग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा-जीवाः पुद्गलकाया आकाशं अस्तिकायिकौ शेषौ धर्माधर्मौ चेति एते पंच। कथंभूताः। अमया—अकृत्रिमा न केनापि पुरुषविशेषेण कृताः। तर्हि कथं निष्पन्नाः। अत्थित्तमयां-अस्तित्वमयाः स्वकीयास्तित्वेन स्वकीयसत्तया निर्वृत्ता निष्पन्ना जाता इत्यनेन पंचानामस्तित्वं निरूपितं। पुनरपि कथंभूताः। कारणभूदा दु लोगस्स-कारणभूताः। कस्य? लोकस्य "जीवादिषड्द्रव्याणां समवायो मेलापको लोकः" इति वचनात्। स च लोकः उत्पादव्ययध्रौव्यवान् तेनास्तित्वं लोक्यते, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति वचनात्। पुनरपि कथंभूतो लोकः। ऊर्ध्वाधोमध्यभागेन सांशः सावयवस्तेन कायत्वं कथितं भवतीति सूत्रार्थः ॥ २२ ॥ एवं षड्द्रव्यमध्याज्जीवादिपंचानामस्तिकायत्वसूचनरूपेण गाथा गता।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा २२

उत्थानिका—आगे कालद्रव्यके कहनेकी मुख्यतासे पांच गाथाएं कही जाती हैं, इन पांच गाथाओंके मध्यमें छः द्रव्योंमेंसे जीवादि पांच द्रव्योंकी अस्तिकाय संज्ञा है यह बतानेके लिये 'जीवा पुग्गलकाया' इत्यादि एक सूत्र है। फिर निश्चयकालको कहते हुए 'सब्भावसहावाणं' इत्यादि सूत्र दो हैं व टीकाके अभिप्रायसे सूत्र एक है। फिर समयादि व्यवहार कालकी मुख्यतासे समओ णिमिसो, इत्यादि गाथा दो हैं। इस तरह तीन स्थलद्वारा तीसरे अन्तर अधिकार में समुदाय पातनिका कही।

अब सामान्यपने जिनका लक्षण कहचुके ऐसे छः द्रव्योंके नाम स्मरणके लिये व उनका विशेष व्याख्यान करनेके लिये अथवा पांच द्रव्योंको अस्तिकायपना स्थापना करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जीवा) अनंत जीव (पुग्गलकाया) अनंतपुद्गलकाय (आयासं) एक आकाश (सेसा अत्थिकाइया) शेष दो अस्तिकाय धर्म और अधर्म द्रव्य ये पांच अस्तिकाय (अमया) अकृत्रिम हैं, (अत्थित्तमया) अपनी सत्ताको रखनेवाले हैं तथा (हि) निश्चयसे (लोगस्स) इस लोकके (कारणभूदा) कारणरूप हैं।

विशेषार्थ—जीवादि पांच अस्तिकाय हैं। इनको किसी पुरुषविशेषने बनाया नहीं है। ये

अपनी सत्तासे ही निर्वृत्त अथवा निष्पन्न हुए हैं अतः विद्यमान हैं। यह लोक इन पांच अस्तिकायोंका व कायरहित एक प्रदेशी काल द्रव्यका इस तरह छः द्रव्योंका समुदाय है जैसा कहा है–'जीवादिषड्द्रव्याणां समवायो मेलापको लोकः' इति तथा यह लोक उत्पादव्यय व ध्रौव्य स्वरूप है इसीसे इस लोकका अस्तित्व देखा जाता है, क्योंकि कहा है "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त' सत् इति" तथा यह लोक ऊर्ध्व, मध्य, अधो इन तीन अंशोंको रखनेवाला अवयवसहित है इससे इसको बहु प्रदेशी या कायपना कहा गया है। यह सूत्रका भाव है ॥ २२ ॥

इस तरह छः द्रव्योंके मध्यमें जीवादि पांच द्रव्यको अस्तिकाय संज्ञा है ऐसी सूचना करते हुए गाथा पूर्ण की।

समय व्याख्या गाथा २३

अत्रास्तिकायत्वेनानुक्तस्यापि कालस्यार्थापन्नत्वं द्योतितम्।

सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो ॥ २३ ॥

सद्भावस्वभावानां जीवानां तथैव पुद्गलानां च।
परिवर्तनसम्भूतः कालो नियमेन प्रज्ञप्तः ॥ २३ ॥

इह हि जीवानां पुद्गलानां च सत्तास्वभावत्वादस्ति प्रतिक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यैकवृत्तिरूपः परिणामः। स खलु सहकारिकारणसद्भावे दृष्टः, गतिस्थित्यवगाहपरिणामवत्। यस्तु सहकारिकारणं स कालः। तत्परिणामान्यथानुपपत्तिगम्यमानत्वादनुक्तोऽपि निश्चयकालोऽस्तीति निश्चीयते। यस्तु निश्चयकालपर्यायरूपो व्यवहारकालः स जीवपुद्गलपरिणामेनाभिव्यज्यमानत्वात्तदायत्त एवाभिगम्यत एवेति ॥ २३ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा २३

अन्वयार्थः—(सद्भावस्वभावानाम्) सत्तास्वभाववाले (जीवानाम् तथा एव पुद्गलानाम् च) जीवों और पुद्गलोंके (परिवर्तनसम्भूतः) परिवर्तनसे सिद्ध होनेवाले [कालः] ऐसे कालका (नियमेन प्रज्ञप्तः) (सर्वज्ञों द्वारा) नियमसे (निश्चयसे) उपदेश दिया गया है।

टीकाः—काल अस्तिकायरूपसे अनुक्त (–कथन नहीं किया गया) होने पर भी उसे अर्थपना (–पदार्थपना) सिद्ध होता है ऐसा यहां दर्शाया है।

इस जगतमें वास्तवमें जीवोंको और पुद्गलोंको सत्तास्वभावके कारण प्रतिक्षण उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकवृत्तिरूप परिणाम वर्तता है। वह (-परिणाम) वास्तवमें सहकारी कारणके सद्भावमें दिखाई देता है, गति-स्थिति-अवगाह परिणामकी भाँति। यह जो सहकारी कारण है सो काल है। वह जीवपुद्गल के परिणामकी अन्यथा अनुपपत्ति द्वारा ज्ञात होता है इसलिये, निश्चयकाल-[अस्तिकायरूपके] अनुक्त होने पर भी-[द्रव्यरूपसे] विद्यमान है ऐसा निश्चित होता है। और जो निश्चयकालकी पर्यायरूप व्यवहार-काल है वह जीव-पुद्गलोंके परिणामसे व्यक्त (गम्य) होता है इसलिये अवश्य तदाश्रित ही [-जीव तथा पुद्गलके परिणामके आश्रित ही] गिना जाता है ॥ २३ ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—२३

अथात्र पंचास्तिकायप्रकरणेऽस्तिकायत्वेनानुक्तोपि कालः सामर्थ्येन लब्ध इति प्रतिपादयति,—

सब्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च—सद्भावस्सत्ता सैव स्वभावः स्वरूपं येषां ते सद्भावस्वभावास्तेषां सद्भावस्वभावानां जीवपुद्गलानां अथवा सद्भावानामित्यनेन धर्माधर्माकाशानि गृह्यन्ते। परियट्टणसंभूदो-परिवर्तनसंभूतः परिवर्तनं नवजीर्णरूपेण परिणमनं तत्परिवर्तनं संभूतं समुत्पन्नं यस्मात्स भवति परिवर्तनसंभूतः कालो कालाणुरूपो द्रव्यकालः, णियमेण निश्चयेन पण्णत्तो प्रज्ञप्तः कथितः। कैः ? सर्वज्ञैः। तथापि पंचास्तिकायव्याख्याने क्रियमाणे परमार्थकालस्यानुक्तस्याप्यर्थापन्नत्वमित्युक्तं पातनिकायां तत् कथं घटते ? प्रश्ने प्रत्युत्तरमाहुः—पंचास्तिकायाः परिणामिनः परिणामश्च कार्यं, कार्यं च कारणमपेक्षते स च द्रव्याणां परिणतिनिमित्तभूतः कालाणुरूपो द्रव्यकालः इत्यनया युक्त्या सामर्थ्येनार्थापन्नत्वं द्योतितं। किं च समयरूपः सूक्ष्मकालः पुद्गलपरमाणुना जनितः स एव निश्चयकालो भण्यते, घटिकादिरूपः स्थूलो व्यवहारकालो भण्यते। स च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनवस्त्रकायपुरुषहस्तव्यापाररूपः क्रियाविशेषेण जनितो न च द्रव्यकालेनेति पूर्वपक्षे परिहारमाहुः—यद्यपि समयरूपः सूक्ष्मव्यवहारकालः पुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यज्यते प्रकटीक्रियते ज्ञायते घटिकादिरूपस्थूलव्यवहारकालश्च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनवस्त्रादिद्रव्यविशेषेण ज्ञायते तथापि तस्य समयघटिकादिपर्यायरूपव्यवहारकालस्य कालाणुरूपो द्रव्यकाल एवोपादानकारणं। कस्मात्। उपादानकारणसदृशं कार्यमिति वचनात्। किंवदिति चेत्। कुंभकारचक्रचीवरादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य घटकार्यस्य मृत्पिण्डोपादानकारणवत् कुविंदतुरीवेमसलाकादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य पटकार्यस्य तंतुसमूहोपादानकारणवत् इन्धनाग्न्यादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य शाल्याद्योदनकार्यस्य शाल्यादितंडुलोपादानकारणवत् कर्मोदयनिमित्तोत्पन्नस्य नरनारकादिपर्यायकार्यस्य जीवोपादानकारणवदित्यादि ॥ २३ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा २३

उत्थानिका-आगे कहते हैं कि इस पंचास्तिकाय प्रकरणमें अस्तिकायके नामसे जिस काल द्रव्यको नहीं कहा है तौभी पंचास्तिकायके प्रकरणकी सामर्थ्यसे कालद्रव्य प्राप्त होता है।

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(सब्भावसभावाणं) सत्तारूप स्वभावको रखनेवाले (जीवाणं) जीवोंके (तह य पोग्गलाणं) तैसे ही पुद्गलोंके (च) और अन्य धर्म अधर्म आकाशके (परियट्टणसंभूदो) परिणमनमें जो निमित्त कारण हो सो (णियमेण) निश्चय करके (कालो) काल द्रव्य (पण्णत्तो) कहा गया है।

विशेषार्थ-द्रव्योंके नए से जीर्ण होनेको परिवर्तन या परिणमन कहते हैं सो जिससे होता है वह कालाणु रूप द्रव्य काल है ऐसा सर्वज्ञदेवने कहा है। यहां शिष्य शंका करता है कि आपने यह पातनिका की थी कि इस पंचास्तिकायके व्याख्यानको करते हुए निश्चयकाल द्रव्यको न कहने पर भी भावसे उसको ग्रहण करलेना चाहिये सो किस तरह सिद्ध होता है? इस प्रश्नका समाधान आचार्य करते हैं कि ये पांचों जीवादि अस्तिकाय परणमन करते रहते हैं। परिणमन करनेसे परिणाम या पर्याय रूप कार्य होता है। सो कार्य कारणकी अपेक्षा रखता है। यद्यपि उपादान शक्ति द्रव्योंमें स्वयं परिणमनेकी है परन्तु निमित्त कारणकी आवश्यकता है सो द्रव्योंके परिणमनमें निमित्तरूप कालाणुरूप द्रव्यकाल है इसी युक्तिकी सामर्थ्यसे काल द्रव्य झलकता है। शिष्य फिर यह पूर्व पक्ष करता है कि-पुद्गल परमाणुके गमनसे उत्पन्न जो समयरूप सूक्ष्मकाल वही निश्चय काल कहा जाता है तथा घड़ी घंटा आदिरूप स्थूलकाल सो व्यवहार काल कहा जाता है, सो व्यवहार काल घड़ी घंटे आदिके निमित्त कारण जल भरने, भाजन व वस्त्र व काष्ठ वनानेमें जो पुरुषोंके हाथोंकी व्यापार रूप क्रिया विशेष होती है उसीसे उत्पन्न होता है। द्रव्य कालसे कोई व्यवहार काल नहीं होता है। इसीका आचार्य समाधान करते हैं कि यद्यपि समयरूप सूक्ष्म व्यवहारकाल पुद्गल परमाणुकी मंदगतिसे प्रगट होता है या जान पडता है तथा घडी घंटा आदि रूप जो व्यवहारकाल है सो घटिका आदिके निमित्त कारण जल वर्तन वस्त्र आदि द्रव्यविशेषकी क्रियासे जाना जाता है तथापि समय या घटिका आदि पर्याय रूप जो व्यवहारकाल है उस ही का उपादान कारण कालाणु रूप द्रव्यकाल है ऐसा मानना ही चाहिए क्योंकि यह आगमका वचन है कि कार्य उपादान कारणके समान होता है। जैसे जो घट रूप कार्य कुंभार, चक्र, चीवर आदि वाहरी निमित्त कारणोंसे वनता है उसका उपादान कारण मिट्टीका पिण्ड है। अथवा जो पट या कपडा रूप कार्य कुविंद, तुरी, वेम, शलाका आदि वाहरी निमित्त कारणोंसे वनता है उसका

उपादान कारण तागोंका (धागोंका) समूह है। अथवा ईंधन, अग्नि आदि बाहरी निमित्त कारणोंसे उत्पन्न जो भात रूप कार्य है उसका उपादान कारण चावल या तंदुल है अथवा कर्मोंके उद-यके निमित्तसे होनेवाले नर नारक आदि पर्याय रूप कार्यका उपादान कारण जीव है। इसी तरह वस्तुओंकी क्रियाविशेषसे प्रगट जो व्यवहार काल है उसका उपादान कारण कालाणु रूप निश्चय काल द्रव्य है॥ २३॥

समय व्याख्या गाथा २४—

ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति॥ २४॥

व्यपगतपंचवर्णरसो व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शश्च।
अगुरुलघुको अमूर्तो वर्तनलक्षणश्च काल इति॥ २४॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा २४

अन्वयार्थः—(कालः इति) काल (निश्चयकाल) (व्यपगतपञ्चवर्णरसः) पांच वर्ण और पाँच रस रहित, (व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शः च) दो गंध और आठ स्पर्श रहित, (अगुरुलघुकः) अगु-रुलघु, (अमूर्तः) अमूर्त (च) और (वर्तनलक्षणः) वर्तनालक्षणवाला है।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २४

अथ पुनरपि निश्चयकालस्य स्वरूपं कथयति,—ववगदपणवण्णरसो ववगददोअट्ठगंधफासो य—पंचव-र्णपंचरसद्विगंधाष्टस्पर्शैर्व्यपगतो वर्जितो रहितः। पुनरपि कथंभूतः। अगुरुलहुगो-षट्हानिवृद्धिरूपागुरुल-घुकगुणः। पुनरपि किंविशिष्टः। अमुत्तो-यत एव वर्णादिरहितस्तत एवामूर्तः ततश्चैव सूक्ष्मोतीन्द्रियज्ञा-नग्राह्यः। पुनश्च किंरूपः। वट्टणलक्खो य कालोत्ति-सर्वद्रव्याणां निश्चयेन स्वयमेव परिणामं गच्छतां शीतकाले स्वयमेवाध्ययनक्रियां कुर्वाणस्य पुरुषस्याग्निसहकारिवत् स्वयमेव भ्रमणक्रियां कुर्वाणस्य कुम्भका-रचक्रस्याधस्तनशिलासहकारिवद्बहिरङ्गनिमित्तत्वाद्वर्तनालक्षणश्च कालाणुरूपो निश्चयकालो भवति। किंच लोकाकाशाद्बहिर्भागे कालद्रव्यं नास्ति कथमाकाशस्य परिणतिरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह—यथैकप्रदेशे स्पृष्टे सति लंबायमानमहावरत्रायां महावेणुदण्डे वा कुंभकारचक्रे वा सर्वत्र चलनं भवति यथैव च मनोज्ञस्प-र्शनेन्द्रियविषयैकदेशे स्पर्शे कृते सति रसनेन्द्रियविषये च सर्वाङ्गेन सुखानुभवो भवति, यथैव चैकदेशे सर्प-दष्टे व्रणादिके वा सर्वाङ्गेन दुःखवेदना भवति तथा लोकमध्ये स्थितेपि कालद्रव्ये सर्वत्रालोकाकाशे परिण-तिर्भवति। कस्मात्। अखंडैकद्रव्यत्वात्। कालद्रव्यमन्यद्रव्याणां परिणतिसहकारिकारणं भवति। कालस्य

किं परिणतिसहकारिकारणमिति। आकाशस्याकाशाधारवत ज्ञानादित्यरत्नप्रदीपानां स्वपरप्रकाशवच्च कालद्रव्यस्य परिणतेः काल एव सहकारिकारणं भवति। अथ मतं यथा कालद्रव्यं स्वपरिणतेः स्वयमेव सहकारी तथाशेषद्रव्याण्यपि स्वपरिणतेः स्वयमेव सहकारिकारणानि भविष्यन्ति कालद्रव्येण किं प्रयोजनमिति। परिहारमाह–सर्वद्रव्यसाधारणपरिणतिसहकारित्वं कालस्यैव गुणः। कथमिति चेत् ? आकाशस्य सर्वसाधारणावकाशदानमिव धर्मद्रव्यस्य सर्वसाधारणगतिहेतुत्वमिव तथा धर्मस्य स्थितिहेतुत्वमिव। तदपि कथमिति चेत् ? अन्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति संकरव्यतिकरदोषप्राप्तेः।

किंच यदि सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीयपरिणतेरुपादानकारणवत् सहकारिकारणान्यपि भवन्ति तर्हि गतिस्थित्यवगाहपरिणतिविषये धर्माधर्माकाशद्रव्यैः सहकारिकारणभूतैः किं प्रयोजनं गतिस्थित्यवगाहाः स्वयमेव भविष्यंति। तथा सति किं दूषणं जीवपुद्गलसंज्ञे द्वे एव द्रव्ये। स चागमविरोधः।

अत्र विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावस्य शुद्धजीवास्तिकायस्यालाभेतीतानंतकाले संसारचक्रे भ्रमितोऽयं जीवः ततः कारणाद्वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा समस्तरागादिरूपसंकल्पविकल्पकल्लोलमालापरिहारबलेन जीवन् स एव निरंतरं ध्यातव्य इति भावार्थः ॥ २४ ॥ इति निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा २४

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(ववगदपणवण्णरसो) जो पांच वर्ण पांच रससे रहित है (ववगददोगंधअट्ठफासो य) व जो दो गंध व आठ स्पर्शसे रहित है। (अगुरुलहुगो) अगुरुलघु गुणके द्वारा षट् गुणी हानि वृद्धिसहित है (अमुत्तो) अमूर्तीक होनेसे सूक्ष्म है इन्द्रिय गोचर नहीं है (वट्टणलक्खो य) तथा जो वर्तनालक्षण है (कालोत्ति) ऐसा यह कालद्रव्य है।

विशेषार्थ–यह अमूर्तीक कालद्रव्य सर्व द्रव्योंके परिणमनमें निमित्त है। जैसे शीतकालमें स्वयं पढते हुए पुरुषको अग्नि सहकारी कारण है या स्वयं घूमते हुए कुम्भकारके चाकको नीचेकी शिला सहकारी कारण है तैसे हीं निश्चयसे स्वयं परिणमन करते हुए सर्व द्रव्योंके परिणमनमें बाहरी निमित्त कारण वर्तनालक्षण धारी काल द्रव्य है। यही निश्चय काल है।

यहां शिष्यने प्रश्न किया कि लोकाकाशके बाहर काल द्रव्य नहीं है तब बाहरके आकाश द्रव्यमें परिणति कैसे होगी ? इसका उत्तर आचार्य कहते हैं कि:–जैसे लम्बी बडी रस्सीके या लम्बे बडे बांसके या कुंभारके चाकके एक स्थानको हिलाते हुए सर्व ठिकाने हलन चलन

हो जाता है अथवा जैसे कामस्पर्शन इंद्रियके एक स्थानमें स्पर्श करते हुए तथा रसना इंद्रिय से स्वाद लेते हुए सर्वांगमें सुखका अनुभव होता है अथवा जैसे सर्पके एक स्थानपर काटते हुए व घाव आदिके एक स्थानपर होते हुए सर्व अंगमें दुःखकी वेदना होती है तैसे ही लोकमें ही काल द्रव्य है तौभी सर्व आकाशमें परिणतिको कारण है क्योंकि आकाश एक अखंड द्रव्य है।

दूसरा प्रश्न यह है कि दूसरे द्रव्योंके परिणमनमें सहकारी कारण काल द्रव्य है तब काल द्रव्यके परिणमनका सहकारी कारण क्या है? इसका समाधान यह है कि:-जैसे आकाशका आधार आकाश है, ज्ञान, रत्न या दीपक स्वपर-प्रकाशक हैं ऐसे ही काल द्रव्यकी परिणतिको काल ही सहकारी कारण है। फिर शिष्य प्रश्न करता है कि यदि काल द्रव्य अपनी परिणतिमें आप ही सहकारी कारण है वैसे ही सर्व द्रव्य अपनी अपनी परिणतिमें सहकारी कारण हो जांयगे, कालद्रव्यसे कोई प्रयोजन न रहेगा।

इसका समाधान यह है कि सब द्रव्योंको साधारण परिणमनमें सहकारी कारणपना होना यह कालका ही गुण है। जैसे आकाशका गुण सर्वको साधारण अवकाश देना है, धर्मद्रव्यका गुण सर्व साधारणको गमनमें कारणपना है तथा अधर्मद्रव्यका सर्वसाधारणको स्थितिमें सह-कारीपना है। यह इसलिये कि एक द्रव्यके गुण दूसरे द्रव्यके गुणरूप नहीं किये जासक्ते हैं। यदि ऐसा हो तो संकर व्यतिकर दोष आजावें। यदि सर्व द्रव्य अपनी अपनी परिणतिके उपा-दान कारण होते हुए सहकारी कारण भी हो जावें तो फिर गति, स्थिति, अवगाहके कार्योंमें धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्योंके सहकारी कारणसे कुछ प्रयोजन न रहे, स्वयं ही गति, स्थिति अवगाह हो जावे। यदि ऐसा हो तो यह दूषण हो जायगा कि जीव पुद्गल दो ही द्रव्य रह जांयगे। आगमसे इसमें विरोध आवेगा।

यहां यह भावार्थ है कि:—यह जीव विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावधारी, शुद्ध जीवास्तिकाय की प्राप्ति न करके, गत अनन्तकालसे संसारचक्रमें भ्रमता चला आया है, इस कारण अब इसे वीतराग निर्विकल्प समाधिमें ठहरकर सर्व रागद्वेषादिरूप संकल्प विकल्पोंकी लहरोंको त्याग करके उसी शुद्ध जीवको सदा ध्याना चाहिये ॥२४॥

इस तरह निश्चय कालके व्याख्यानकी मुख्यतासे दो गाथाएं पूर्ण हुईं।

समय व्याख्या गाथा २५

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती
मासोदुअयणसंवच्छरा त्ति कालो परायत्तो ॥ २५ ॥

समयो निमिषः काष्ठा कला च नाली ततो दिवारात्रः ।
मासर्त्वयनसंवत्सरमिति कालः परायत्तः ॥ २५ ॥

अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं द्योतितम् । परमाणुप्रचलनायत्तः समयः । नयनपुटघटनायत्तो निमिषः । तत्संख्याविशेषतः काष्ठा कला नाली च । गगनमणिगमनायत्तो दिवारात्रः । तत्संख्याविशेषतः मासः, ऋतुः, अयनं, संवत्सरमिति । एवंविधो हि व्यवहारकालः केवलकालपर्यायमात्रत्वेनावधारयितुमशक्यत्वात् परायत्त इत्युपमीयत इति ॥२५॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा २५

अन्वयार्थः—(समयः) समय, (निमिषः) निमेष, (काष्ठा) काष्ठा, (कला च) कला, (नाली) घड़ी, (ततः दिवारात्रः) अहोरात्र, (–दिवस), (मासर्त्वयनसंवत्सरम्) मास, ऋतु, अयन और वर्ष—(इति कालः) ऐसा जो काल (अर्थात् व्यवहारकाल) (परायत्तः) वह पराश्रित है ।

टीकाः—यहां व्यवहारकालका कथंचित् पराश्रितपना दर्शाया है ।

परमाणुके गमनके आश्रित समय है, आंख मिंचनेके आश्रित निमेष है, उसकी (–निमेषकी) अमुक संख्यासे काष्ठा, कला और घडी होती है, सूर्यके गमनके आश्रित अहोरात्र होता है, और उसकी (–अहोरात्रकी) अमुक संख्यासे मास, ऋतु, अयन और वर्ष होते हैं ।–ऐसे व्यवहारकाल का केवल कालकी पर्यायमात्ररूपसे अर्थात् परकी अपेक्षा विना अवधारन करना, अशक्य होनेसे उसे 'पराश्रित' ऐसी उपमा दी जाती है ॥ २५॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २५

अथ समयादिव्यवहारकालस्य निश्चयेन परमार्थकालपर्यायस्यापि जीवपुद्गलनवजीर्णादिपरिणत्या व्यज्यमानत्वात् कथंचित्परायत्तत्वं द्योतयति,—समओ—मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यक्तीक्रियमाणः समयः । णिमिसो—नयनपुटविघटनेन व्यज्यमानः संख्यातीतसमयो निमिषः । कट्ठा-पंचदशनिमिषैः काष्ठा । कला य-त्रिंशत्काष्ठाभिः कला, णाली-साधिकविंशतिकलाभिर्घटिका, घटिकाद्वयं मुहूर्तः । तदो दिवारत्ती-त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः । मासो त्रिंशद्दिवसैर्मासः । उदु-मासद्वयमृतुः । अयणं-ऋतुत्रयमयनं । संवच्छरोत्ति कालो-अयनद्वयं वर्ष इति । इतिशब्देन पल्योपमसागरोपमादिरूपो व्यवहारकालो ज्ञातव्यः । स च मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुव्यज्यमानः समयो जलभाजनादिबहिरङ्गनिमित्तभूतपुद्गलप्रकटीक्रियमाणा

घटिका, दिनकरबिंबगमनादिक्रियाविशेषव्यक्तीक्रियमाणो दिवसादिः व्यवहारकालः । कथंभूतः । परायत्तो कुम्भकारादिवहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नमृत्पिण्डोपादानकारणजनितघटवन्निश्चयेन द्रव्यकालजनितोऽपि व्यवहारेण परायत्तः पराधीन इत्युच्यते । किंच अन्येन क्रियाविशेषेणादित्यगत्यादिना परिच्छिद्यमानोऽन्यस्य जातकादेः परिच्छित्तिहेतुः स एव कालोऽन्यो द्रव्यकालो नास्तीति । तन्न । पूर्वोक्तसमयादिपर्यायरूप आदित्यगत्यादिना व्यज्यमानः स व्यवहारकालः यश्चादित्यगत्यादिपरिणतेः सहकारिकारणभूतः स द्रव्यरूपो निश्चयकालः । ननु आदित्यगत्यादिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं कालस्य किमायातं । नैवं । गतिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं भवति कालद्रव्यं च सहकारिकारणानि बहून्यपि भवन्ति यतः कारणात् घटोत्पत्तौ कुम्भकारचक्रचीवरादिवत् मत्स्यादीनां जलादिवत् मनुष्याणां शकटादिवत् विद्याधराणां विद्यामन्त्रौषधादिवत् देवानां विमानवदित्यादिकालद्रव्यं गतिकारणं । कुत्र भणितं तिष्ठतीति चेत् ? "पोग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणेहिं" क्रियावंतो भवंतीति कथयत्यग्रे । ननु यावता कालेनैकप्रदेशातिक्रमं करोति पुद्गलपरमाणुस्तत्प्रमाणेन समयव्याख्यानं कृतं स एकसमये चतुर्दशरज्जुकाले गमनकाले यावंतः प्रदेशास्तावंतः समया भवंतीति ? नैवं । एकप्रदेशातिक्रमेण या समयोत्पत्तिर्भणिता सा मंदगतिगमनेन, चतुर्दशरज्जुगमनं यदेकसमये भणितं तदक्रमेण शीघ्रगत्या कथितमिति नास्ति दोषः । अत्र दृष्टांतमाह—यथा कोपि देवदत्तो योजनशतं दिनशतेन गच्छति स एव विद्याप्रभावेण दिनेनैकेन गच्छति तत्र किं दिनशतं भवति नैवैकदिनमेव तथा शीघ्रगतिगमने सति चतुर्दशरज्जुगमनेप्येकसमय एव नास्ति दोषः इति ॥ २५ ॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा २५

उत्थानिका—आगे यह प्रगट करते हैं कि समय घटिका आदि व्यवहार काल है सो यद्यपि निश्चयसे निश्चयकालकी पर्याय है तथापि जीव तथा पुद्गलोंको नवीन व जीर्ण परिणति आदिसे प्रगट होता है इसलिये किसी अपेक्षा पराधीन है ।

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(समओ) समय (णिमिसो) निमिष (कट्ठा) काष्ठा (कला) कला (य णाली) और घडी (तदो) तिससे बने (दिवारत्तो) दिनरात (मासोदु) मास, व ऋतु (अयण) अयन (संवच्छरोत्ति) संवत्सर आदि (कालो) काल (परायत्तो) पराधीन है ।

विशेषार्थः—जो पुद्गलके परमाणुकी एक कालाणुसे दूसरे कालाणुपर मंद गतिसे परिणमनके निमित्तसे प्रगट हो वह समय है । आंखकी पलक मारनेसे जो प्रगट हो व जिसमें असंख्यात समय बीत जाते हैं वह निमिष है । पन्द्रह निमिषोंकी एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठाओंकी एक कला होती है, कुछ अधिक बीस कलाकी एक घटिका या घडी होती है । दो घटिकाका एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्तका दिनरात होता है । तीस दिनरातका एक

मास होता है, दो मासकी एक ऋतु होती है, तीन ऋतुका एक अयन होता है, दो अयनका एक वर्ष होता है, इत्यादि पल्योपम, सागर आदि व्यवहारकाल जानना चाहिये। जो मंदगति-रूप परिणमन करते हुए पुद्गलके परमाणुसे प्रगट हो वह समय है। जो जलके वर्तन आदि बाहरी निमित्तभूत पुद्गलकी क्रियासे प्रगट हो वह घडी है। सूर्यके बिम्बके गमन आदि क्रिया विशेषसे प्रगट हो वह दिवस आदि व्यवहारकाल है। जैसे कुंभार चाक आदि बाहरी निमित्त कारणोंसे उत्पन्न घट मिट्टीके पिंडरूप उपादान कारणसे पैदा हुआ है, ऐसे ही निश्चयनयसे यह व्यवहारकाल द्रव्यकालाणुसे उत्पन्न हुआ है तौभी व्यवहारसे पुद्गलादिके गमनका निमित्त होनेसे पराधीन है। यहां कोई शंका करता है कि—जो अन्यकी क्रिया विशेषसे अर्थात् सूर्यादिके गमनादिसे जाना जावे व जो अन्य उत्पन्न हुए पदार्थोंके जनावनेका कारण हो वही काल है दूसरा कोई द्रव्य या निश्चयकाल नहीं है। इसका उत्तर कहते हैं कि ऐसा नहीं है कि जो पहले कहे प्रमाण समय आदिकी पर्यायरूप व सूर्यकी गति आदिसे प्रगट होता है वह व्यवहार काल है परन्तु जो सूर्य आदिकी गतिके परिणमनमें सहकारी कारण हो वह द्रव्य काल या निश्चय काल है। फिर शंकाकार कहता है कि सूर्यके गमन आदि परिणतिमें धर्म द्रव्य सहकारी कारण है काल द्रव्यका यहां क्या काम है? आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं। गमन-रूप परिणमनमें धर्म द्रव्य सहकारी कारण है वैसे काल द्रव्य भी सहकारी कारण है। सहकारी कारण बहुतसे भी हो सक्ते हैं जैसे घटकी उत्पत्तिमें कुमार चाक चीवर आदि अनेक कारण हैं व मछली आदिके लिये जल आदि व मनुष्योंके लिये शकट आदि, व विद्याधरोंके लिए मन्त्र औषधि आदि, व देवोंके लिये विमान गमनमें सहकारी कारण हैं वैसे काल द्रव्य भी गमनमें सहकारी कारण है।

कहीं पर कहा है कि पुद्गलके द्वारा बने हुए स्कंध व पुद्गल सहित जीव कालके निमि-त्तसे ही क्रियावान होते हैं। इसे आगे कहेंगे भी।

शंकाकार यह शंका करता है कि जितने कालमें एक प्रदेशका उल्लंघन पुद्गल परमाणु करता है वह समय है, ऐसा कहा गया है। वही परमाणु जब एक ही समय में चौदह राजू चला जाता है तब जितने प्रदेश चौदह राजूके हैं उतने ही समय हुए, एक ही समय कैसे लगा? आचार्य समाधान करते हैं कि ऐसा नहीं है। जब मंदगतिसे परमाणु गमन करता हुआ एक

प्रदेश उल्लंघन करता है तब एक समय उत्पन्न होता है वही परमाणु उतने ही एक समयमें चौदह राजू उल्लंघन करता है सो शीघ्र गतिसे करता है ऐसा कहा है, इस लिये इसमें कोई दोष नहीं है। समयके विभाग नहीं होते हैं। इसमें दृष्टांत कहते हैं जैसे कोई देवदत्त नामका पुरुष सौ योजन सौ दिनमे मंदगतिसे जाता है वही यदि विद्याके प्रभावसे एक दिनमें चला जावे तो क्या सौ दिन लगे ऐसा कहेंगे, नहीं एक ही दिन लगा यह कहेंगे तैसे ही शीघ्र गतिसे जानेपर चौदहराजूमें भी एक समय ही लगना है कोई दोष नही है।

समय व्याख्या गाथा २६

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो॥ २६॥

नास्ति चिरं वा क्षिप्रं मात्रारहितं तु सापि खलु मात्रा।
पुद्गलद्रव्येण विना तस्मात्कालः प्रतीत्यभवः॥ २६॥

अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित् परायत्तत्वे सदुपपत्तिरुक्ता। इह हि व्यवहारकाले निमिषसमयादौ अस्ति तावत् चिरं इति क्षिप्रं इति संप्रत्ययः। स खलु दीर्घह्रस्वकालनिबंधनं प्रमाणमंतरेण न संभाव्यते। तदपि प्रमाणं पुद्गलद्रव्यपरिणाममन्तरेण नावधार्यते। ततः परपरिणामद्योतमानत्वाद्व्यवहारकालो निश्चयेनानन्याश्रितोऽपि प्रतीत्यभव इत्यभिधीयते। तदत्रास्तिकायसामान्यप्ररूपणायामस्तिकायत्वात्साक्षादनुपन्यस्यमानोऽपि जीवपुद्गलपरिणामान्यथानुपपत्त्या निश्चयरूपस्तत्परिणामायत्ततया व्यवहाररूपः कालोऽस्तिकायपंचकवल्लोकरूपेण परिणत इति खरतरदृष्टयाभ्युपगम्य इति॥ २६॥

इति समयव्याख्यायामन्तर्नीतषड्द्रव्यपंचास्तिकायसामान्यव्याख्यानरूपः पीठबंधः समाप्तः॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा २६

अन्वयार्थः—(चिरं वा क्षिप्रं) 'चिर' अथवा 'क्षिप्र' ऐसा ज्ञान (—अधिक काल अथवा अल्प काल ऐसा ज्ञान) (मात्रारहितं तु) परिमाण विना (—कालके माप बिना) (न अस्ति) नही होता, (सा मात्रा अपि) और वह परिमाण (खलु) वास्तवमें (पुद्गलद्रव्येण विना) पुद्गलद्रव्यके विना नही होता, (तस्मात्) इसलिये (कालः प्रतीत्यभवः) काल (व्यवहारकाल) पराश्रितरूपसे उपजनेवाला है।

टीका:—यहां व्यवहारकालके कथंचित् पराश्रितपनेके विषयमें सत् युक्ति (सुयुक्ति) कही गई है।

प्रथम तो, निमेष-समयादि व्यवहारकालमें 'चिर' और 'क्षिप्र' ऐसा ज्ञान (—अधिक काल और अल्प काल ऐसा ज्ञान) होता है। वह ज्ञान वास्तवमें अधिक और अल्प काल निमित्तभूत जो प्रमाण (-कालपरिमाण) उसके बिना संभवित नहीं है और वह प्रमाण पुद्गलद्रव्यके परिणाम बिना निश्चित नही होता। इसलिये, व्यवहारकाल परके परिणाम द्वारा ज्ञात होनेके कारण—यद्यपि निश्चयसे वह अन्यके आश्रित नही है तथापि-पराश्रितरूपसे उत्पन्न होनेवाला कहा जाता है।

इसलिये, यद्यपि कालका, अस्तिकायपनेके अभावके कारण, यहां अस्तिकायकी सामान्य प्ररूपणामें साक्षात् कथन नही है तथापि जीव—पुद्गलके परिणामकी अन्यथा अनुपपत्ति द्वारा सिद्ध होनेवाला निश्चयरूप काल और उसके परिणामके आश्रित निश्चित होनेवाला व्यवहाररूप काल पंचास्तिकायकी भांति लोकरूपमें परिणत है-ऐसा अत्यन्त तीक्ष्ण दृष्टिसे जाना जा सकता है ॥ २६ ॥

इसप्रकार समयव्याख्यान नामकी टीकामें षड्द्रव्यपंचास्तिकायके सामान्य व्याख्यानरूप पीठिका समाप्त हुई।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २६

अथ पूर्वगाथायां यद्व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं कथितं तत्केन रूपेण संभवतीति पृष्टे युक्तिं दर्शयति,—णत्थि—नास्ति न विद्यते। किं चिरं वा खिप्पं—चिरं बहुतरकालस्वरूपं क्षिप्रं शीघ्रं च। कथंभूतं। मत्तारहियं—तु मात्रारहितं परिमाणरहितं मानविशेषरहितं च तन्मात्राशब्दवाच्यं परिमाणं चिरकालस्य घटिकाप्रहरादिरिति, क्षिप्रस्य सूक्ष्मकालस्य च मात्राशब्दवाच्यं परिमाणं च। किं ? समयावलिकादीति। 'सावि खलु मत्ता पोग्गलदव्वेण विणा' सूक्ष्मकालस्य या समयादिमात्रा सा मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुनयनपुटविघटनादिपुद्गलद्रव्येण विना न ज्ञायते चिरकालघटिकादिरूपा मात्रा च घटिकानिमित्तभूतजलभाजनादिद्रव्येण विना न ज्ञायते। तम्हा कालो पडुच्च भवो—तस्मात्कारणात्समयघटिकादिसूक्ष्मस्थूलरूपो व्यवहारकालो यद्यपि निश्चयेन द्रव्यकालस्य पर्यायस्तथापि व्यवहारेण परमाणुजलादिपुद्गलद्रव्यं प्रतीत्याश्रित्य निमित्तीकृत्य भव उत्पन्नो जात इत्यभिधीयते। केन दृष्टांतेन। यथा निश्चयेन पुद्गलपिंडोपादानकारणेन समुत्पन्नोपि घटः व्यवहारेण कुंभकारनिमित्तेनोत्पन्नत्वात्कुम्भकारेण कृत इति भण्यते तथा समयादिव्यवहारकालो यद्यपि निश्चयेन परमार्थकालोपादानकारणेन समुत्पन्नः तथापि समयनिमित्तभूतपरमाणुना घटिकानिमित्तभूतजलादिपुद्गलद्रव्येण च व्यज्यमानत्वात् प्रकटीक्रियमाणत्वात्पुद्गलोत्पन्न इति भण्यते। पुनरपि कश्चिदाह—समयरूप एव परमार्थकालो न चान्यः कालाणुद्रव्यरूप इति। परिहारमाह। समयस्तावत्सूक्ष्मकालरूपः प्रसिद्धः एव पर्यायः न च द्रव्यं। कथं पर्यायत्वमिति चेत् ? उत्पन्नप्रध्वंसित्वात्पर्यायस्य "समओ उप्पण्णपद्धंसी" ति वचनात्। पर्यायस्तु द्रव्यं विना न भवति. द्रव्यं च निश्चयेनाविनश्वरं तच्च कालपर्यायस्योपादानकारणभूतं कालाणुरूपं कालद्रव्यमेव न च पुद्गलादि। तदपि कस्मात् ? उपादानकारणसदृशत्वात्कार्यस्य मृत्पिंडोपादानकारणसमुत्पन्नघटकार्यवदिति। किंच विशेषः कालशब्द

एवं परमार्थकालवाचकभूतः स्वकीयवाच्यं परमार्थकालस्वरूपं व्यवस्थापयति साधयति । किंवत् । सिंहशब्दः सिंहपदार्थवत्, सर्वज्ञशब्दः सर्वज्ञपदार्थवत् इन्द्रशब्द इन्द्रपदार्थवदित्यादि । पुनरप्युपसंहाररूपेण निश्चयकालव्यवहारकालस्वरूपं कथ्यते । तद्यथा—समयादिरूपसूक्ष्मव्यवहारकालस्य घटिकादिरूपस्थूलव्यवहारकालस्य च यद्युपादानकारणभूतकालस्तथापि समयघटिकारूपेण या विवक्षिता व्यवहारकालस्य भेदकल्पना तया रहितस्त्रिकालस्थायित्वेनानाद्यनिधनो लोकाकाशप्रदेशप्रमाणकालाणुद्रव्यरूपः परमार्थकालः । यस्तु निश्चयकालोपादानकारणजन्योपि पुद्गलपरमाणुजलभाजनादिव्यज्यमानत्वात्समयघटिकादिवसादिरूपेण विवक्षितव्यवहारकल्पनारूपः स व्यवहारकाल इति । अत्र व्याख्यानेतीतानंतकाले दुर्लभो योसौ शुद्धजीवास्तिकायस्तस्मिन्नेव चिदानंदैककालस्वभावे सम्यक्श्रद्धानं रागादिभ्यो भिन्नरूपेण भेदज्ञानं रागादिविभावरूपसमस्तसंकल्पविकल्पजालत्यागेन तत्रैव स्थिरचित्तं च कर्तव्यमिति तात्पर्यार्थः ॥ २६ ॥

इति व्यवहारकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अत्र पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रवणेष्टांतराधिकारसहितप्रथममहाधिकारमध्ये निश्चयव्यवहारकालप्ररूपणाभिधानः पंचगाथाभिः स्थलत्रयेण तृतीयोंतराधिकारो गतः ।

एवं समयशब्दार्थपीठिका द्रव्यपीठिका निश्चयव्यवहारकालव्याख्यानमुख्यतया चांतराधिकारत्रयेण षड्विंशतिगाथाभिः पंचास्तिकायपीठिका समाप्ता ।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा २६

उत्थानिका—आगे पूर्व गाथामें जिस व्यवहारको किसी अपेक्षासे पराधीन कहा है वह किस तरह पराधीन है इस प्रश्नके होते हुए युक्तिसे समझाते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(मत्तारहिदं) मात्रा या परिमाणके विना (तु) तो (चिरं वा खिप्पं) देर या जल्दीका व्यवहार (णत्थि) नहीं होता है । (खलु) निश्चयसे (सा वि मत्ता) वह मात्रा भी (पुग्गलदव्वेण) पुद्गल द्रव्यके (विना) विना नहीं होती है (तम्हा) इसलिये [कालो] काल (पडुचभवो) पुद्गलके निमित्तसे हुआ ऐसा कहा जाता है ।

विशेषार्थ—बहुत कालको चिर व थोडे कालको क्षिप्र कहते हैं । लोकमें चिर या क्षिप्रका व्यवहार विना मर्यादाके नहीं होसक्ता । घडी प्रहर आदिके कालको जब चिरकाल कहेंगे तब उससे छोटे कालको क्षिप्रकाल कहेंगे । सूक्ष्मकाल एक समय है जो मंद गतिमें परिणमन करते हुए पुद्गलके परमाणुके विना नहीं जाना जाता है । जो निमिष मात्र है वह आंखके पलकमारनेकेविना नही जाना जाता है । चिरकाल, घडी आदि घटिकाके निमित्त जलपात्र आदि द्रव्यके विना नही जाने जाते हैं । इस कारण समय घटिकादि रूप सूक्ष्म या स्थूल व्यवहार काल

यद्यपि निश्चयनयसे कालद्रव्यकी पर्याय है तथापि व्यवहारसे परमाणु व जल आदि पुद्गल द्रव्यके आश्रय या निमित्तसे उत्पन्न होता है ऐसा कहा जाता है। जैसे निश्चयसे पुद्गल पिंड रूप मिट्टीके उपादान कारणसे उत्पन्न जो घट सो व्यवहारसे कुंभारके निमित्तसे बना होनेसे कुंभारसे किया गया ऐसा कहा जाता है तैसे ही समयादि व्यवहार काल यद्यपि निश्चयसे परमार्थ काल द्रव्यके उपादान कारणसे उत्पन्न हुआ है तथापि समयको निमित्तभूत परमाणु द्वारा या घटिकाको निमित्तभूत जलादि पुद्गल द्रव्य द्वारा प्रगट होनेसे पुद्गलसे उत्पन्न हुआ ऐसा कहा जाता है। फिर किसीने कहा—समयरूप व्यवहार कालको ही मानो, निश्चयकाल कालाणु द्रव्य रूप कोई नहीं है? इसका समाधान आचार्य कहते हैं कि समय सबसे सूक्ष्म काल रूप प्रसिद्ध एक पर्याय है वह द्रव्य नहीं है। पर्याय इसलिये है कि समय उपजता विनशता है। कहा है 'समओ उप्पण्ण पद्धंसी' पर्याय बिना द्रव्यके नहीं होसक्ती है। द्रव्य निश्चयसे अविनाशी होता है इसलिये कालकी समय पर्यायका उपादान कारण कालाणु रूप काल द्रव्य ही है पुद्गलादि नहीं है क्योंकि यह नियम है कि जैसा उपादान कारण होता है वैसा कार्य होता है मिट्टीका पिंड जैसा होगा वैसा ही उसके उपादान कारणके समान घट बनेगा। और तो क्या? काल शब्द ही परमार्थ कालका वाचक होनेसे अपने ही वाच्य परमार्थ कालके स्वरूपको स्थापित करता है। जैसे सिंह शब्द सिंह पदार्थको, सर्वज्ञ शब्द सर्वज्ञ पदार्थको, इन्द्र शब्द इन्द्र पदार्थको सिद्ध करता है। फिर भी संकोचते हुये निश्चय तथा व्यवहार कालका स्वरूप कहते हैं-

समय आदि रूप सूक्ष्म व्यवहार कालका व घटिकादिरूप स्थूल व्यवहार कालका जो कोई उपादान कारण है तथा जो समय घटिकादिके भेदसे कहने योग्य व्यवहार कालकी भेद कल्पनासे रहित है, व जो तीनों कालोंमें रहनेवाला अनादि अनंत लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंके प्रमाण असंख्यात कालाणु रूप भिन्न२ द्रव्य है सो निश्चय काल है। तथा जो निश्चयकालके उपादान कारणसे पैदा होने पर भी पुद्गल परमाणु व जल पात्रादिसे प्रगट होता है सो समय घटिका दिवस आदि रूपसे विशेष २ व्यवहारकी कल्पनामें आनेवाला व्यवहार काल है। इस व्याख्यानमेंसे यह तात्पर्य लेना कि जिसका लाभ भूतके अनंत कालमें दुर्लभ रहा है ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय है उसीके ही चिदानंदमई एक स्वभावमें सम्यक् श्रद्धान करना चाहिये, उसीको रागादिसे भिन्न जानकर भेदज्ञान प्राप्त करना चाहिये तथा उसीमें ही रागादि विभाव

रूप सर्व संकल्प विकल्प–जाल छोडकर स्थिर चित्त करना चाहिये।

इस तरह व्यवहारकालके व्याख्यानकी मुख्यतासे दो गाथाएं पूर्ण हुईं।

इस पंचास्तिकाय व छः द्रव्यके प्ररूपण करनेवाले आठ अंतरअधिकार सहित प्रथम महा-अधिकारमें निश्चय व्यवहारकालको कहनेवाला पांच गाथाओंसे तीन स्थलद्वारा तीसरा अंतर अधिकार पूर्ण हुआ। इस प्रकार समय शब्दार्थपीठिका द्रव्यपीठिका व निश्चय व्यवहारकाल इन व्याख्यानोंकी मुख्यतासे तीन अंतर अधिकारों से छव्वीस गाथाओंके द्वारा पीठिकासमाप्त हुई।

समय व्याख्या गाथा २७

अथामीषामेव विशेषव्याख्यानम्। तत्र तावत् जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम्।

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥ २७ ॥

जीव इति भवति चेतयितोपयोगविशेषितः प्रभुः कर्त्ता।
भोक्ता च देहमात्रो न हि मूर्तः कर्मसंयुक्तः ॥ २७ ॥

अत्र संसारावस्थस्यात्मनः सोपाधि निरुपाधि च स्वरूपमुक्तम्। आत्मा हि निश्चयेन भावप्राणधारणाज्जीवः, व्यवहारेण द्रव्यप्राणधारणाज्जीवः। निश्चयेन चिदात्मकत्वात्, व्यवहारेण चिच्छक्तित्वाच्चेतयिता। निश्चयेनापृथग्भूतेन, व्यवहारेण पृथग्भूतेन चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेनोपलक्षितत्वादुपयोगविशेषितः। निश्चयनयेन भावकर्मणां, व्यवहारेण द्रव्यकर्मणामास्रवणबंधनसंवरणनिर्जरणमोक्षणेषु स्वयमीशत्वात् प्रभुः। निश्चयेन पौद्गलिककर्मनिमित्तात्मपरिणामानां, व्यवहारेणात्मपरिणामनिमित्त पौद्गलिककर्मणां कर्तृत्वात्कर्ता। निश्चयेन शुभाशुभकर्मनिमित्तसुखदुःखपरिणामानां, व्यवहारेण शुभाशुभकर्मसंपादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृत्वाद्भोक्ता। निश्चयेन लोकमात्रोऽपि विशिष्टावगाहपरिणामशक्तियुक्तत्वान्नामकर्मनिर्वृत्तमणु महच्च शरीरमधितिष्ठन् व्यवहारेण देहमात्रः। व्यवहारेण कर्मभिः सहैकत्वपरिणामान्मूर्तोऽपि निश्चयेन नीरूपस्वभावत्वान्न हि मूर्तः। निश्चयेन पुद्गलपरिणामानुरूपचैतन्यपरिणामात्मभिः, व्यवहारेण चैतन्यपरिणामानुरूपपुद्गलपरिणामात्मभिः कर्मभिः संयुक्तत्वात्कर्मसंयुक्त इति ॥ २७ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा २७

अब उन्हींका (–षड्द्रव्य और पंचास्तिकायका ही) विशेष व्याख्यान किया जाता है। उसमें प्रथम, जीवद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान है।

अन्वयार्थः–(जीवः इति भवति) आत्मा जीव है, (चेतयिता) चेतयिता (चेतनेवाला) है, (उपयोगविशेषितः) उपयोगलक्षित है (उपयोग लक्षण वाला है) (प्रभुः) प्रभु है, (कर्ता) कर्ता है, (भोक्ता) भोक्ता है, (देहमात्रः) देहप्रमाण है, (न हि मूर्तः) अमूर्त है (च) और (कर्मसंयुक्तः कर्मसंयुक्त है।

टीकाः—यहां (इस गाथामें) संसारदशावाले आत्माका सोपाधि और निरुपाधिस्वरूप कहा है।

आत्मा निश्चयसे भावप्राणको धारण करता है इसलिये 'जीव' व्यवहारसे द्रव्यप्राणको धारण करता है इसलिये 'जीव' है, निश्चयसे चित्स्वरूप होनेके कारण 'चेतयिता' (चेतनेवाला) है, व्यवहारसे, चित्शक्तियुक्त होनेसे 'चेतयिता' है, निश्चयसे अपृथग्भूत ऐसे चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होनेसे 'उपयोगलक्षित' है, व्यवहारसे पृथग्भूत ऐसे चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होनेसे 'उपयोगलक्षित' है। निश्चयसे भावकर्मोंके आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष करने में स्वयं ईश (समर्थ) होनेसे 'प्रभु' है, व्यवहारसे द्रव्यकर्मोंके आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष करनेमें स्वयं ईश होनेसे 'प्रभु' है, निश्चयसे पौद्गलिक कर्म जिनका निमित्त है ऐसे आत्मपरिणामोंका कर्तृत्व होनेसे 'कर्ता' है, व्यवहारसे आत्मपरिणाम जिनका निमित्त है ऐसे पौद्गलिक कर्मोंका कर्तृत्व होनेसे 'कर्ता' है, निश्चयसे शुभाशुभ कर्म जिनका निमित्त है ऐसे सुखदुःखपरिणामोंका भोक्तृत्व होनेसे 'भोक्ता' है, व्यवहारसे शुभाशुभ कर्मोंसे सम्पादित (प्राप्त) इष्टानिष्ट विषयोंका भोक्तृत्व होने से 'भोक्ता' है, निश्चयसे लोकप्रमाण होने पर भी, विशिष्ट अवगाहपरिणामकी शक्तिवाला होनेसे नामकर्मसे रचेजानेवाले छोटे बडे शरीरमें रहता हुआ व्यवहारसे 'देहप्रमाण' है। व्यवहारसे कर्मोंके साथ एकत्वपरिणामके कारण मूर्त होने पर भी, निश्चयसे अरूपी—स्वभाववाला होनेके कारण 'अमूर्त' है, निश्चय से पुद्गलपरिणामके अनुरूप चैतन्यपरिणामात्मक कर्मोंके (भाव कर्म के) साथ संयुक्त होनेसे 'कर्मसंयुक्त' है, व्यवहारसे चैतन्यपरिणामको अनुरूप पुद्गल परिणामात्मक कर्मोंके साथ संयुक्त होनेसे 'कर्मसंयुक्त' है॥ २७॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २७

अथ पूर्वोक्तषड्द्रव्याणां चूलिकारूपेण विस्तरव्याख्यानं क्रियते। तद्यथा–

"परिणाम जीव मुत्तं सपदेसं एय खेत्त किरिया य।
णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदिदर हि यपदेसो" ॥ १॥

परिणामपरिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्यां, शेषचत्वारि द्रव्याणि विभावव्यञ्जनपर्यायाभावाद् मुख्यवृत्या पुनरपरिणामीनि . जीवः शुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं शुद्धचै-

तन्य' प्राणशब्देनोच्यते, तेन जीवतीति जीवः व्यवहारनयेन पुनः कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिः प्राणै-र्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः पुद्‌गलादिपञ्चद्रव्याणि पुनरजीवरूपाणि। मुत्तं-अमूर्तशुद्धा-त्मनो विलक्षणा स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्तिरुच्यते तत्सद्भावात् मूर्तः पुद्‌गलः, जीवद्रव्य' पुनरनुपचरितास-द्भूतव्यवहारेण मूर्तमपि शुद्धनिश्चयनयेनामूर्तं, धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्तानि। सपदेसं-लोकमात्र-प्रमितासंख्येयप्रदेशलक्षणं जीवद्रव्यमादिं कृत्वा पंचद्रव्याणि पंचास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि, कालद्रव्य' पुनर्बहुप्रदेशलक्षणकायत्वाभावादप्रदेशं। एय-द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाशद्रव्याण्येकानि भवन्ति जीव-पुद्‌गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि। खेत्त—सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्यात्क्षेत्रमाकाशमेकं शेषपंचद्रव्या-ण्यक्षेत्राणि। किरिया य-क्षेत्रात् क्षेत्रांतरगमनरूपा परिस्पंदवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावंतौ जीवपुद्‌गलौ धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि। णिच्चं-धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि तथापि मुख्यवृत्त्या विभावव्यंजनपर्यायाभावान्नित्यानि द्रव्यार्थिकनयेन, च जीवपुद्‌गलद्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघुपरिणतिरूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जनपर्यायापेक्षया चानित्ये। कारण—पुद्‌गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्य शरीरवाङ्मनः प्राणापानादिगतिस्थित्यवगाहवर्तनाकार्याणि कुर्वंतीति कारणानि भवन्ति, जीवद्रव्य' पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोपग्रहं करोति तथापि पुद्‌गलादिपंचद्रव्याणां किमपि न करोति इत्य-कारणं। कत्ता-शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बंधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपा-पघटपटादीनामकर्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणतः सन् पुण्यपापबंधयोः कर्ता तत्फलभोक्ता च भवति। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मद्रव्यसम्यक्‌श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धोप-योगेन तु परिणतः सन् मोक्षस्यापि कर्ता तत्फलभोक्ता च, शुभाशुभशुद्धपरिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वं सर्वत्र ज्ञातव्यमिति पुद्‌गलादीनां पञ्चद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीयपरिणामेन परिणमनमेव कर्तृत्वं, वस्तुवृत्त्या पुनः पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव, सव्वगदं-लोकालोकव्याप्त्यपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते, लोकव्याप्त्य-पेक्षया धर्माधर्मौ च, जीवद्रव्य' पुनरेकैकजीवापेक्षया लोकपूरणावस्थां विहायासर्वगतं नानाजीवापेक्षया सर्व-गतमेव भवति। पुद्‌गलद्रव्य' पुनर्लोकरूपमहास्कंदापेक्षया सर्वगतं शेषपुद्‌गलापेक्षया सर्वगतं न भवतीति। कालद्रव्य' पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया सर्वगतं न भवति, लोकप्रदेशप्रमाणनानाकालाणुविवक्षया लोके सर्वगतं। इदरंहि यप्पवेसो—यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रावगाहेनान्योन्यानुप्रवेशेन तिष्ठन्ति तथापि निश्चयेन चेतनाचेतनादिस्वकीयस्वकीयस्वरूपं न त्यजंतीति। अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानंदैकादिगु-णस्वभावं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररहितं निजशुद्धात्मद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः ॥ १ ॥

इत ऊर्ध्वं "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादिगाथायां पूर्वं पंचास्तिकाया ये सूचितास्तेषामेव विशेषव्या-ख्यानं क्रियते। तत्र पाठक्रमेण त्रिपंचाशद्‌गाथाभिर्नवांतराधिकारैर्जीवास्तिकायव्याख्यानं प्रारभ्यते। तासु त्रिपंचाशद्‌गाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् चार्वाकमतानुसारिशिष्य' प्रति जीवसिद्धिपूर्वकत्वेन नवाधि-कारक्रमसूचनार्थं "जीवोत्ति हवदि चेदा" इत्याद्येकाधिकारसूत्रगाथा भवति।

"तत्रादौ प्रभुता तावज्जीवत्वं देहमात्रता । अमूर्तत्वं च चैतन्यमुपयोगात्तथा क्रमात् ॥ १ ॥
कर्तृता भोक्तृता कर्मायुक्तत्वं च त्रयं तथा । कथ्यते यौगपद्येन यत्र तत्रानुपूर्व्यतः ॥ २ ॥"

इति श्लोकद्वयेन भट्टमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धिपूर्वकत्वेनाधिकारव्याख्यानं क्रमशः सूचितम् । तत्रादौ प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धयर्थं "कम्ममल" इत्यादि गाथाद्वयं भवति तदनंतरं चार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति जीवसिद्धयर्थं जीवत्वव्याख्यानरूपेण "पाणेहिं चदुहिं" इत्यादि गाथात्रयं, अथ नैयायिकमीमांसकसांख्यमताश्रितशिष्यं प्रति जीवस्य स्वदेहमात्रस्थापनार्थं "जह पउम" इत्यादिसूत्रद्वयं, तदनंतरं भट्टचार्वाकमतानुकूलशिष्यं प्रति जीवस्यामूर्तत्वज्ञापनार्थं "जेसिं जीवसहावो" इत्यादिसूत्रत्रयं, अथानादिचैतन्यसमर्थनव्याख्यानेन पुनरपि चार्वाकमतनिराकरणार्थं "कम्माणं फल" मित्यादि सूत्रद्वयं । एवमधिकारगाथामादिं कृत्वांतराधिकारपंचकसमुदायेन त्रयोदश गाथा गताः । अथ नैयायिकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं "उवओगो खलु दुविहो" इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यंतमुपयोगाधिकारः कथ्यते—तत्रैकोनविंशतिगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनार्थं "उवओगो खलु' इत्यादिसूत्रमेकं, तदनंतरमष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनार्थं 'आभिणि' इत्यादि सूत्रमेकं, अथ मत्यादिसंज्ञानपंचकविवरणार्थं 'मदिणाण' मित्यादि पाठक्रमेण सूत्रपञ्चकं, तदनंतरमज्ञानत्रयकथनरूपेण 'मिच्छत्ता अण्णाणं' इत्यादि सूत्रमेकं इति ज्ञानोपयोगसूत्राष्टकं, अथ चक्षुरादिदर्शनचतुष्टयप्रतिपादनमुख्यत्वेन 'दंसणमवि' इत्यादि सूत्रमेकं । एवं ज्ञानदर्शनोपयोगाधिकारगाथामादिं कृत्वांतरस्थलपंचकसमुदायेन गाथानवकं गतं । अथ गाथादशकपर्यंतं व्यवहारेण जीवज्ञानयोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयनयेन प्रदेशास्तित्वाभ्यां नैयायिकं प्रत्यभेदस्थापनं क्रियते अग्न्युष्णत्वयोरभेदवत् । जीवज्ञानयोः संज्ञालक्षणप्रयोजनानां स्वरूपं कथ्यते । तथाहि—जीवद्रव्यस्य जीव इति संज्ञा ज्ञानगुणस्य ज्ञानमिति संज्ञा चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव इति जीवद्रव्यलक्षणं, ज्ञायंते पदार्था अनेनेति ज्ञानगुणलक्षणं । जीवद्रव्यस्य बंधमोक्षादिपर्यायैरविनष्टरूपेण परिणमनं प्रयोजनं ज्ञानगुणस्य पुनः पदार्थपरिच्छित्तिमात्रमेव प्रयोजनमिति संक्षेपेण संज्ञालक्षणप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि । तत्र दशगाथासु मध्ये जीवज्ञानयोः संक्षेपेणाभेदस्थापनार्थं 'ण वियप्पदि' इत्यादि सूत्रत्रयं, अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां भेदे कथंचिदभेदेपि घटंत इत्यादि समर्थनरूपेण 'ववदेसा' इत्यादिगाथात्रयं, तदनंतरमेकक्षेत्रावगाहित्वेनायुतसिद्धानामभेदसिद्धानामाधाराधेयभूतानां पदार्थानां प्रदेशभेदेपि सति इहात्मनि ज्ञानमिह तंतुषु पट इत्यादिरूपेण इहेदमिति प्रत्ययः संबंधः समवाय इत्यभिधीयते नैयायिकमते तस्य निषेधार्थं 'ण हि सो समवायाहिं' इत्यादि सूत्रद्वयं, पुनश्च गुणगुणिनोः कथंचिदभेदविषये दृष्टांतदार्ष्टांतव्याख्यानार्थं 'वण्णरस' इत्यादि सूत्रद्वयमिति । दृष्टांतलक्षणमाह—दृष्टावंतौ धर्मौ स्वभावावग्निधूमयोरिव साध्यसाधकयोर्वादिप्रतिवादिभ्यां कर्तृभूताभ्यामविवादेन यत्र वस्तुनि स दृष्टांत इति । अथवा संक्षेपेण यथेति दृष्टांतलक्षणं तथेति दार्ष्टांतलक्षणमिति । एवं पूर्वोक्तगाथानवके स्थलपंचकमत्र तु गाथादशके स्थलचतुष्टयं चेति समुदायेन नवभिरंतरस्थलैरेकोनविंशतिसूत्रैरुपयोगाधिकारपातनिका । अथानंतरं वीतरागपरमानंदसुधारसपरमसम-

रसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्नं यत्कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयस्वरूपं सदसत्प्रतिपादनार्थं यत्र तत्रानुपूर्व्याष्टादशगाथापर्यंतं व्याख्यानं करोति। तत्राष्टादशगाथासु मध्ये प्रथमस्थले 'जीवा अणाइणिहणा' इत्यादि गाथात्रयेण समुदायकथनं, तदनंतरं द्वितीयस्थले 'उदयेण' इत्याद्येकगाथायामौदयिकादिपञ्चभावव्याख्यानं, अथ तृतीयस्थले 'कम्मं वेदयमाणो' इत्यादिगाथाषट्केन कर्तृत्वमुख्यतया व्याख्यानं, अथ चतुर्थस्थले 'कम्मं कम्मं कुव्वदि' इत्याद्येका पूर्वपक्षगाथा, तदनंतरं पंचमस्थले परिहारगाथाः सप्त। तत्र सप्तगाथासु मध्ये प्रथमं 'ओगाढगाढ' इत्यादि गाथात्रयेण निश्चयेन द्रव्यकर्मणां जीवः कर्ता न भवतीति कथ्यते तदनंतरं निश्चयनयेन जीवस्य द्रव्यकर्माकर्तृत्वेपि 'जीवा पोग्गलकाया' इत्याद्येकगाथया कर्मफले भोक्तृत्वं, अथ 'तम्हा कम्म कत्ता' इत्याद्येकसूत्रेण कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुपसंहारः, तदनंतरं 'एवं कत्ता' इत्यादिगाथाद्वयेन क्रमेण कर्मसंयुक्तत्वं कर्मरहितत्वं च कथयतीति परिहारमुख्यत्वेन सप्तगाथा गताः। एवं पाठक्रमेणाष्टादशगाथाभिः स्थलपंचकेनैकांतमतनिराकरणाय तथैवानेकांतमतस्थापनाय च सांख्यमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं कर्तृत्वं बौद्धमतानुयायिशिष्यं प्रति बोधनार्थं भोक्तृत्वं सदाशिवमताश्रितशिष्यसंदेहविनाशार्थं कर्मसंयुक्तत्वमिति कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वाधिकारत्रयं ज्ञातव्यं। इत ऊर्ध्वं जीवास्तिकायसंबन्धिनवाधिकारव्याख्यानानंतरं 'एक्को जेम महप्पा' इत्यादिगाथात्रयेण जीवास्तिकायचूलिका। एवं पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारसंबंधिषष्ठांतराधिकारेषु मध्ये त्रिपंचाशद्गाथाप्रमितचतुर्थांतराधिकारे समुदायपातनिका।

तद्यथा—अथ संसारावस्थस्यात्मनः शुद्धनिश्चयेन निरुपाधिविशुद्धभावान् तथैवाशुद्धनिश्चयेन सोपाधिभावकर्मरूपरागादिभावान् तथा चासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मोपाधिजनिताशुद्धभावांश्च यथासंभवं प्रतिपादयतिः–जीवोत्ति हवदि–आत्मा हि शुद्धनिश्चयेन सत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्जीवति तथा चाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकौदयिकभावप्राणैर्जीवति तथैव चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यप्राणैश्च यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवो भवति। चेदा–शुद्धनिश्चयेन शुद्धज्ञानचेतनया तथैवाशुद्धनिश्चयेन कर्मकर्मफलरूपया चाशुद्धचेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति। उवओगविसेसिदो—निश्चयेन केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धोपयोगेन तथैव चाशुद्धनिश्चयेन मतिज्ञानादिक्षायोपशमिकाशुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोगविशेषितो भवति। पहू–निश्चयेन मोक्षमोक्षकारणरूपशुद्धपरिणामपरिणमनसमर्थत्वात्तथैव चाशुद्धनयेन संसारसंसारकारणरूपाशुद्धपरिणामपरिणमनसमर्थत्वात् प्रभुर्भवति,। कत्ता–शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धभावानां परिणामानां तथैवाशुद्धनिश्चयेन भावकर्मरूपरागादिभावानां तथा चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मनोकर्मादीनां कर्तृत्वात्कर्ता भवति, भोत्ता–शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मोत्थवीतरागपरमानंदरूपसुखस्य तथैवाशुद्धनिश्चयेनेन्द्रियजनितसुखदुःखानां तथा चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण सुखदुःखसाधकेष्टानिष्टाशनपानादिवहिरङ्गविषयाणां च भोक्तृत्वात् भोक्ता भवति, सदेहमेत्तो–निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमितोपि व्यवहारेण शरीरनामकर्मोदयजनिताणुमहच्छरीरप्रमाणत्वात्स्वदेहमात्रो भवति,–ण हि मुत्तो। मूर्तिरहितः, असद्भूतव्यवहारेणानादिकर्मबंधसहितत्वात्मूर्तोपि शुद्धनिश्चयनयेन वर्णादिरहितत्वादमूर्तो

भवति । कम्मसंजुत्तो–शुद्धनिश्चयनयेन कर्मरहितोप्यानुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन द्रव्यकर्मसंयुक्तत्वात् तथैव अशुद्धनिश्चयनयेन रागादिभावकर्मयुक्तत्वात्कर्मसंयुक्तश्च भवति । इति शब्दार्थनयार्थौ कथितौ, इदानीं मतार्थः कथ्यते–जीवत्वव्याख्याने–

"वच्छक्खर भवसारित्थसग्गणिरयपियराय । चुल्लियहंडयिपुण्णमयउ णव दिट्ठंता जाय ।"

इति दोहकसूत्रकथितनवदृष्टांतैश्चार्वाकमतानुसारिशिष्यापेक्षया सर्वजीवसिद्धयर्थं अनादिचेतनागुणव्याख्यानं च तदर्थमेव । अथवा सामान्यचेतनाव्याख्यानं सर्वमतसाधारणं ज्ञातव्यं, अभिन्नज्ञानदर्शनोपयोगव्याख्यानं तु नैयायिकमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं मोक्षोपदेशकमोक्षसाधकप्रभुत्वव्याख्यानं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं वचनं प्रमाणं भवतीति ।

"रयणदिवदिणयरुदहिउ दुद्धउ घिउ पासाणुसुणरूप्पफलिहउ अगणि णव दिट्ठंता जाणु" ॥२॥

इति दोहकसूत्रकथितनवदृष्टांतैर्भट्टचार्वाकमताश्रितशिष्यापेक्षया सर्वज्ञसिद्धयर्थं, शुद्धाशुद्धपरिणामकर्तृत्वव्याख्यानं तु नित्याकर्तृत्वैकान्तसांख्यमतानुयायिशिष्यसंबोधनार्थं, भोक्तृत्वव्याख्यानं कर्ता कर्मफलं न भुंक्त इति बौद्धमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं, स्वदेहप्रमाणव्याख्यानं नैयायिकमीमांसककपिलमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं, अमूर्तत्वव्याख्यानं भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं, द्रव्यभावकर्मसंयुक्तत्वव्याख्यानं च सदामुक्तनिराकरणार्थमिति मतार्थो ज्ञातव्यः । आगमार्थव्याख्यानं पुनर्जीवत्वचेतनादिधर्माणां संबंधित्वेन परमागमे प्रसिद्धमेव, कर्मोपाधिजनितमिथ्यात्वरागादिरूपसमस्तविभावपरिणामांस्त्यक्त्वा निरुपाधिकेवलज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकाय एव निश्चयनयेनोपादेयत्वेन भावयितव्य इति भावार्थः । एवं शब्दनयमतागमभावार्था व्याख्यानकाले यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्याः ।

जीवास्तिकायसमुदायपातनिकायां पूर्वं चार्वाकादिमतव्याख्यानं कृतं पुनरपि किमर्थमिति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहारमाहुः । तत्र वीतरागसर्वज्ञसिद्धे सति व्याख्यानं प्रमाणं प्राप्नोतीति व्याख्यानक्रमज्ञापनार्थं प्रभुताधिकारमुख्यत्वेनाधिकारनवकं सूचितं । तथा चोक्तं–वक्तृप्रामाण्याद्वचनस्य प्रामाण्यमिति । अत्र तु सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यंत इति वचनाच्चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां धर्माणामाधारभूते विशेष्यलक्षणे जीवे धर्मिणि सिद्धे सति तेषां चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां धर्माणां व्याख्यानं घटत इति ज्ञापनार्थं जीवसिद्धिपूर्वकत्वेन मतांतरनिराकरणसहितमधिकारनवकमुपदिष्टमिति नास्ति दोषः ॥ २७ ॥ एवमधिकारगाथा गता ।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा २७

उत्थानिका–आगे पहले कहे हुए छः द्रव्योंका चूलिकारूपसे विस्तारसे व्याख्यान करते हैं–

* परिणाम जीव मुत्तं सपदेसं एय खेत्त किरिया य ।

---

*टीप्पणी–यह गाथा मूलाचार अध्याय ७ गाथा ४४ तथा वसुनन्दि श्रावकाचार गाथा २३ वीं है। श्रीजयसेन आचार्य ने छह द्रव्यों का विशेष कथन करने के लिये टीका में उद्धृत की है।

णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदिदरं हि यपदेसो ॥ १ ॥

भावार्थ—जीव और पुद्गल दो द्रव्य, स्वभाव और विभाव व्यंजनपर्यायोंको रखनेवाले हैं, जब कि शेष चार द्रव्य विभाव व्यंजनपर्यायको न रखनेके कारण मुख्यतासे अपरिणामी हैं अर्थात् चारमें आकारोंका परिवर्तन नहीं होता है—अपने आकारमें स्थिर रहते हैं। यह छःद्रव्योंके सम्बन्धमें प्रथम परिणाम अधिकार है। छःद्रव्योंमें एक जीवद्रव्य सचेतन है जो शुद्ध निश्चय-नयसे विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावमयी शुद्ध चैतन्य प्राणोंसे जीता है तथा व्यवहार नयसे कर्मके उदयसे उत्पन्न जो द्रव्य व भावरूप इंद्रियादि चार प्राण उनसे जीता है, जीवेगा या पहले जी चुका है सो जीव एक सचेतन है, शेष पुद्गलादि पांच द्रव्य अचेतन व अजीव हैं। यह छः द्रव्योंमें जीव अधिकार दूसरा हुआ। अमूर्तीक शुद्ध आत्मासे विलक्षण स्पर्श रस गंधवर्णवाली मूर्ति कहलाती है जिसके यह मूर्ति हो उसको मूर्त या पुद्गल कहते हैं। जीव द्रव्य यद्यपि अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे मूर्तिक है तो भी शुद्ध निश्चय नयसे अमूर्तीक है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य सब अमूर्तीक हैं। निश्चयसे पुद्गल मूर्तीक है। शेष पांच अमूर्तीक हैं। यह छः द्रव्योंमें तीसरा मूर्त्त अधिकार हुआ।

लोकमात्रप्रमाण असंख्येय प्रदेश धारी एक जीव द्रव्य है इसी तरह धर्म अधर्म भी असंख्यात २ प्रदेश धारी हैं, आकाश अनंत प्रदेशी है व पुद्गल संख्यात, असख्यात अनंत प्रदेशी हैं। इस तरह ये पांच द्रव्य जिनको पंचास्तिकाय संज्ञा है सप्रदेशी या बहु प्रदेशी हैं जब कि काल द्रव्य बहु प्रदेशमई कायपनेकी शक्ति न रखनेके कारण व मात्र एक प्रदेश रखनेके कारण अप्रदेशी है। यह छः द्रव्योंमें चौथा प्रदेश अधिकार पूर्ण हुआ।

द्रव्यार्थिकनयसे धर्म, अधर्म, आकाश मात्र एक एक द्रव्य हैं तथा जीव पुद्गल और काल अनेक द्रव्य हैं। यह छःद्रव्योंमें एकानेक अधिकार पांचमा हुआ।

सर्व द्रव्योंको अवकाश देनेकी सामर्थ्य रखनेसे क्षेत्रमई एक आकाशद्रव्य है, शेष पांच द्रव्य उसमें रहनेवाले अक्षेत्री हैं। यह छः द्रव्योंमें क्षेत्र अधिकार छठा पूर्ण हुआ।

एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें जानेको हलनचलनरूप क्रिया कहते हैं। इस क्रियाको रखनेवाले जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य अक्रिय हैं—क्रियारहित हैं, क्योंकि वे स्थिर हैं। यह छः द्रव्योंमें सातमा क्रिया अधिकार हुआ।

धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य यद्यपि अर्थपर्यायके परिणमनकी अपेक्षा अनित्य हैं तथापि मुख्यतासे ये नित्य हैं क्योंकि इनमें आकारके पलटनरूप विभाग व्यंजनपर्याय नहीं होती है। द्रव्यार्थिकनयसे यद्यपि जीव और पुद्गलद्रव्य नित्य हैं तथापि अगुरुलघुकी परिणतिरूप स्वभावपर्याय तथा विभाव व्यंजनपर्याय (जिससे आकार पलटता है) की अपेक्षासे अनित्य हैं। यह छः द्रव्योंमें नित्य नामका आठमा अधिकार हुआ।

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य व्यवहारनयसे जीवके शरीर, वचन, मन, श्वासोश्वास बनानेमें, गतिमें स्थितिमें अवगाह पानेमें व वर्तन करनेमें क्रमसे सहकारी होते हैं इसलिये ये कारण कहलाते हैं जबकि जीवद्रव्य यद्यपि गुरु, शिष्यादिकी तरह परस्पर एक दूसरेका काम करते हैं तथापि पुद्गलादि पांच द्रव्योंका कुछ भी उपकार नहीं करते हैं इसलिये अकारण हैं–यह छः द्रव्योंमें नौमा कारण अधिकार हुआ।

शुद्ध पारिणामिक परम भावको ग्रहण करनेवाली शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे यद्यपि जीव बंध, मोक्ष, द्रव्य या भाव रूप पुण्य पाप तथा घट पट आदिका कर्ता नहीं है तथापि अशुद्ध निश्चय नयसे शुभ और अशुभ उपयोगोंसे परिणमन करता हुआ पुण्य तथा पापके बंधका कर्ता और उनके फलका भोक्ता है तथा जब यह जीव विशुद्ध आत्म द्रव्यके सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चरित्रमई शुद्धोपयोगसे परिणमन करता है तब मोक्षका भी कर्ता है और मोक्षके फलको भोक्ता है। शुभ, अशुभ तथा शुद्ध भावोंमें परिणमनेका ही कर्तापना सर्व ठिकाने जानना योग्य है। पुद्गलादि पांच द्रव्य अपने २ स्वभावमें ही परिणमन करते हैं यही उनमें कर्तापना है। वास्तवमें वे पुण्य पापादिके कर्ता नहीं हैं किन्तु अकर्ता हैं। यह छः द्रव्योंमें दसमा कर्ता अधिकार पूर्ण हुआ।

लोक व अलोकमें फैला हुआ एक आकाश द्रव्य है इसलिये यह आकाश सर्वगत कहा जाता है। लोकाकाशमें व्याप्तिकी अपेक्षा धर्म अधर्म सर्वगत हैं। जीव द्रव्य एक जीवकी अपेक्षासे लोक पूर्णकी अवस्थाको छोड कर असर्वगत है अर्थात् समुद्घातके सिवाय शरीर प्रमाण आकारधारी है। नाना जीवोंकी अपेक्षासे सर्व लोकाकाश जीवोंसे पूर्ण है। पुद्गल द्रव्य लोकप्रमाण महास्कंधकी अपेक्षासे सर्वगत है। शेष पुद्गलोंकी अपेक्षा सर्वगत नहीं है। लोकभरमें पुद्गल भरे हुए हैं इसलिये भी पुद्गल सर्वगत है तथा काल द्रव्य एक एक कालाणु

द्रव्यकी अपेक्षा सर्वगत नहीं है परन्तु लोकके प्रदेशोंके प्रमाण असंख्यात कालाणुओंकी अपेक्षा लोकमें सर्वगत है। यह छः द्रव्योंमें ग्यारहवां सर्वगत अधिकार पूर्ण हुआ।

यद्यपि सर्व द्रव्य व्यवहार नयसे एक क्षेत्रमें अवगाह पा रहे हैं इससे एक दूसरेमें प्रवेश रूप तिष्ठे हैं तथापि निश्चय नयसे अपने २ चेतन या अचेतन स्वरूपको नहीं छोडते हैं। यह छः द्रव्योंमें अन्योन्य प्रवेश नामका बारहवां अधिकार पूर्ण हुआ।

यहां छः द्रव्योंके मध्यमें वीतराग चिदानन्दमई आदि गुण स्वभावका धारी जो अपना ही शुद्ध आत्मद्रव्य है जिसमें मन वचन कायका व्यापार नहीं है वही ग्रहण करने योग्य है। यह भावार्थ है।

समुदाय पातनिका

इसके आगे—जीवा पोग्गलकाया इत्यादि गाथामें जो पहले पांच अस्तिकायोंकी सूचना की गई है उनहीका विशेष व्याख्यान करते हैं। यहां पाठके क्रमसे त्रेपन गाथाओंके द्वारा नव अन्तर अधिकारोंसे जीवास्तिकायका व्याख्यान शुरू किया जाता है। इन त्रेपन गाथाओंमें पहले ही चार्वाकमतके अनुसारी भाव रखनेवाले शिष्यके लिये जीवकी सिद्धि करते हुए नव अधिकार हैं। उनके क्रमकी सूचना यह है कि 'जीवोत्ति हवदि चेदा' इत्यादि एक अधिकारकी सूत्र गाथा है जैसा इन नीचेके लिखे दो श्लोकोंमें कहा है। भट्ट मतानुसारी शिष्यके लिये सर्वज्ञकी सिद्धिपूर्वक क्रमसे अधिकारोंका व्याख्यान सूचित किया है।

तत्रादौ प्रभुता तावज्जीवत्वं देहमात्रता। अमूर्तत्वं च चैतन्यमुपयोगो तथा क्रमात् ॥

कर्तृता भोक्तृता कर्मायुक्तत्वं च त्रयं तथा। कथ्यते यौगपद्येन यत्र तत्रानुपूर्व्यतः ॥

अर्थात्—जीवमें प्रभुता है, जीवपना है व जीव शरीरमात्र प्रमाणसहित है, अमूर्तीक है, चेतनामयी है, उपयोगवान है, कर्मोंका कर्ता है, कर्मोंका भोक्ता है तथा कर्मोंसे छूट भी जाता है। ये नौ अधिकार क्रमसे कहे जाते हैं।

इनमेंसे पहले ही प्रभुत्वके व्याख्यानको मुख्यतासे भट्ट मतानुसारी शिष्यके लिये सर्वज्ञकी सिद्धि करनेके प्रयोजनसे 'कम्ममल' इत्यादि दो गाथाएं हैं। फिर चार्वाक मतानुसारी शिष्यके प्रति जीवकी सिद्धिके प्रयोजनसे जीवत्वका व्याख्यान करते हुए 'पाणेहिं चदुहि' इत्यादि गाथाएं तीन हैं फिर नैयायिक मीमांसक और सांख्यमतको आश्रय करनेवाले शिष्यके लिये जीव अपने

प्राप्त देहके प्रमाण है इसे बतानेके लिये 'जह पउम' इत्यादि दो सूत्र है। इसके पीछे भट्ट चारवाक मतके अनुकूल शिष्यके लिये जीवके अमूर्तीकपना बतानेके लिये 'जेसिं जीवसहावो' इत्यादि सूत्र तीन हैं। फिर अनादि कालसे जीवके चैतन्य भाव है इसके समर्थनके व्याख्यानको तथा चार्वाक मतके खंडनके लिये 'कम्माणं फल' इत्यादि दो सूत्र हैं। इसप्रकार अधिकारकी गाथाको आदि लेकर पांच अंतराधिकारके समुदायसे तेरह गाथाएं कहीं।

फिर नैयायिक मतके अनुसार शिष्यके सम्बोधनके लिये "उवओगो खलु दुविहो" इत्यादि उन्नीस गाथा तक उपयोग अधिकार कहा जाता है। इन १९ गाथाओंके मध्यमें पहले ही ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग इन दो प्रकार उपयोगोंकी सूचनाके लिये "उवओगो खलु" इत्यादि सूत्र एक है। फिर आठ प्रकार ज्ञानके नाम कहनेके लिये 'आभिणि' इत्यादि सूत्र एक है। फिर मति आदि पांच ज्ञानोंके व्याख्यानके लिये 'मदिणाणं' इत्यादि पाठक्रमसे सूत्र पांच हैं। फिर तीन प्रकारके अज्ञानके क्रमकेलिये 'मिच्छत्ता अण्णाणं' इत्यादि सूत्र एक है। इस तरह ज्ञानोपयोगके सात सूत्र हैं। आगे चक्षु आदि दर्शनोपयोग चारको कहनेकी मुख्यतासे 'दंसण-मवि' इत्यादि सूत्र एक है। इस तरह ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगके अधिकारकी गाथाको लेकर पांच अंतर स्थलोंसे नव गाथाएं हैं। आगे दश गाथाओं तक व्यवहारसे जीव और ज्ञानमें संज्ञा लक्षण प्रयोजनादिकी अपेक्षा भेद होने पर भी निश्चयनयसे प्रदेशोंकी और अस्तित्वकी अपे-क्षासे नैयायिकोंके लिये इस ज्ञान और जीवका अभेद स्थापना करते हैं, जैसे अग्नि और उष्णताका अभेद है। यहां पर जीव और ज्ञानका भेद संज्ञा, लक्षण, प्रयोजनोंकी अपेक्षासे कहा जाता है। जीव द्रव्यकी जीव एसी संज्ञा है, ज्ञानगुणकी ज्ञान ऐसी संज्ञा है। चारों प्राणोंसे जी रहा है जीवेगा व जीचुका है सो जीव है। यह जीवद्रव्यका लक्षण है। जिससे पदार्थ जाने जावें यह ज्ञान गुणका लक्षण है। जीव द्रव्यका प्रयोजन बन्ध तथा मोक्षकी पर्यायोंमें परिणमन करते हुए भी नाश न होना है। ज्ञान गुणका प्रयोजन पदार्थको जाननेमात्र ही है। इस तरह संक्षेपसे जीव और ज्ञानके भिन्न २ संज्ञा, लक्षण व प्रयोजन जानने योग्य हैं। इन दश गाथा-ओंके मध्यमें जीव और ज्ञानका अभेद संक्षेपसे स्थापनके लिये 'ण वियप्पदि' इत्यादि सूत्र तीन हैं। फिर द्रव्य और गुणोंका अभेद होनेपर भी नाम आदिकी अपेक्षा भेद है ऐसा समर्थन करते हुए 'ववदेसा' इत्यादि गाथाएं तीन हैं। फिर एक क्षेत्रमें रहनेवाले गुण और द्रव्य जो परस्पर

अयुतसिद्ध है अर्थात् कभी मिले नहीं अर्थात् जिनका अभेद सिद्ध है व जो परस्पर अमिट आधार आधेयरूप हैं, उन गुण और द्रव्यरूप भिन्न २ जीवादि पदार्थोंमें परस्पर प्रदेश भेद है तौ भी आत्मा और ज्ञानका प्रदेश भेद नहीं है। आत्मामें ज्ञान है जैसे तंतुओंमें पटपना है। इत्यादि जो सम्बन्ध है कि यह इसमें है सो समवाय सम्बन्ध कहलाता है। नैयायिकमतमें इसी समवायका निषेध है इसके बतानेके लिये 'ण हि सो समवायाहिं' इत्यादि सूत्र दो हैं। फिर गुण और गुणीमें किसी अपेक्षा अभेद है इस सम्बन्धमें दृष्टांत दार्ष्टान्तका व्याख्यान करनेके लिये 'वण्ण-रस' इत्यादि सूत्र दो हैं। दृष्टांतका लक्षण कहते हैं। 'दृष्टौ अंतौ धर्मौ स्वभावौ अग्निधूमयोः इव साध्यसाधकयोः वादिप्रतिवादिभ्यां कर्तृभूताभ्याम् अविवादेन यत्र वस्तुनि स दृष्टांतः'' इति अर्थात् अग्निमें धूमकी तरह जिस पदार्थमें साध्य साधकके स्वभाव वादी प्रतिवादीको विना किसी विरोध या विवादके दिखलाई पडें सो दृष्टांत है। संक्षेपसे जैसे दृष्टांतका लक्षण है वैसे दार्ष्टान्तका लक्षण है। इस तरह पहले कही नव गाथाओंमें स्थल पांच तथा यहां दश गाथाओंमें स्थल चार इस तरह समुदायसे नव अंतर स्थलोंके द्वारा उगणीस सूत्रोंसे उपयोग अधिकारकी पातनिका हुई।

अथानंतर वीतराग परमानंदमई अमृतरसरूप परम समरसीभावमें परिणमन स्वरूप शुद्ध जीवास्तिकायसे भिन्न जो जीवमें कर्मोंका कर्तापना, कर्मोंका भोक्तापना तथा कर्मोंसे संयोगपना इन तीन बातोंका स्वरूप है उसे सत् या असत् बतलानेके लिये जहांतहां आनुपूर्वीके द्वारा अठारह गाथाओं तक व्याख्यान करते हैं। इन अठारह गाथाओंके मध्यमें पहले स्थलमें 'जीवा अणाइ-णिहणा' इत्यादि तीन गाथाओंसे समुदाय कथन है। फिर दूसरे स्थलमें 'उदयेण' इत्यादि एक गाथामें औदयिक आदि पांच भावोंका व्याख्यान है। फिर तीसरे स्थलमें 'कम्मं वेदयमाणो' इत्यादि छः गाथाओंमें कर्तापनेकी मुख्यतासे व्याख्यान है। फिर चौथे स्थलमें 'कम्मं कम्मं कुव्वदि' इत्यादि पूर्वपक्षकी गाथा है। पीछे पांचवें स्थलमें इस पक्षके समाधानकी सात गाथाएं हैं। इन सात गाथाओंमें पहले ही 'ओगाढ गाढ' इत्यादि तीन गाथाओंसे निश्चयनयसे द्रव्य-कर्मोंका जीव कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। फिर निश्चयसे जीवके द्रव्यकर्मोंका अकर्ता होनेपर भी 'जीवा पोग्गलकाया' इत्यादि एक गाथासे कर्मोंके फलका भोक्तापना है तथा 'तम्हा कम्मं कत्ता' इत्यादि एक सूत्रसे कर्ता भोक्तापनेका संकोच कथन है। फिर 'एवं कत्ता' इत्यादि दो गाथाओंसे

क्रमसे जीवके कर्मसे संयुक्तपना व कर्मसे मुक्तपना कहते हैं। इस तरह पूर्वपक्षके उत्तरमें सात गाथाएं हैं। इस तरह पाठके क्रमसे अठारह गाथाओंके द्वारा पांच स्थलोंसे एकांतमतके निराकरणके लिये तैसे ही अनेकांत मतके स्थापनके लिये तथा सांख्यमतानुसारी शिष्यके सम्बोधनके लिये कर्तापना व बौद्धमतके अनुयायी शिष्यके समझानेके लिये भोक्तापना तथा सदाशिवके आश्रित मतिधारी शिष्यका संदेह विनाश करनेके लिये कर्मसंयुक्तपना इस तरह कर्तापना भोक्तापना तथा कर्मसंयुक्तपना तीन अधिकार जानने चाहिये। इसके आगे जीवास्तिकाय सम्बन्धी नौ अधिकारोंके व्याख्यानके पीछे 'एक्को जेम महप्पा' इत्यादि गाथा तीनसे जीवास्तिकाय चूलिका है। इस तरह पंचास्तिकाय व छः द्रव्यका प्रतिपादन करनेवाले प्रथम महा अधिकार में छः अन्तर अधिकारोंके द्वारा त्रेपन गाथा प्रमाण चौथे अन्तर अधिकारमें समुदाय पातनिका हुई।

उत्थानिका--आगे संसार अवस्थामें भी रहनेवाले आत्माके शुद्ध निश्चयनयसे उपाधिरहित शुद्धभाव हैं तैसे ही अशुद्ध निश्चयनयसे उपाधि सहित भावकर्मरूप रागादिभाव हैं तथा असद्भूत व्यवहारनयसे भावकर्मकी उपाधिसे उत्पन्न द्रव्यकर्म हैं ऐसा यथासम्भव प्रतिपादन करते हैं--

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(जीवोत्ति) यह जीव जीनेवाला है, (चेदा) चेतना सहित चेतनेवाला है, (उवओगविसेसिदो) उपयोग सहित है, (पहू) प्रभू है, (कत्ता) करनेवाला है, (य भोत्ता) और भोगनेवाला है। (देहमत्तो) शरीर प्रमाण आकार धारी है (णहिमुत्तो) निश्चयसे मूर्तीक नहीं है तथा (कम्मसंजुत्तो) कर्म सहित (हवदि) है। इन नौ अधिकारोंको रखनेवाला है।

विशेषार्थ:--यह आत्मा शुद्ध निश्चयनयसे सत्ता चैतन्य, ज्ञान आदि शुद्ध प्राणोंसे जीता है तथा अशुद्ध निश्चयनयसे क्षायोपशमिक तथा औदयिक भावरूपी प्राणोंसे जीता है तैसे ही अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे द्रव्यप्राणोंसे यथासंभव जीता है, जीवेगा व पहले जी चुका है इसलिये यह जीनेवाला है। यह आत्मा शुद्ध निश्चयनयसे शुद्ध ज्ञान चेतना तथा अशुद्ध निश्चयनयसे कर्म तथा कर्मफलरूप अशुद्ध चेतना सहित होनेसे चेतनेवाला है, निश्चयनयसे केवलदर्शन केवलज्ञानमई शुद्ध उपयोगसे तथा अशुद्ध निश्चयनयसे मतिज्ञानादि क्षायोपशमिक अशुद्ध उपयोगसे युक्त होनेके कारण उपयोगवान है, निश्चयनयसे मोक्ष तथा मोक्षके कारणरूप

शुद्ध परिणामोंमें परिणमन करनेकी सामर्थ्य रखनेसे तथा अशुद्ध निश्चयनयसे संसारके कारण रूप अशुद्ध परिणामोंमें परिणमनेकी सामर्थ्य रखनेसे प्रभु है। शुद्ध निश्चयनयसे शुद्ध भावोंका तैसे ही अशुद्ध निश्चयनयसे भावकर्मरूप रागादि भावोंका तथा अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि और नोकर्म बाहरी शरीरादिका करनेवाला होनेसे कर्त्ता है शुद्ध निश्चयनयसे शुद्ध आत्मासे उत्पन्न वीतराग परमानंदमई सुखका तैसे ही अशुद्ध निश्चयनयसे इंद्रियोंसे उत्पन्न सुख दुःखका तथा अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे सुखदुःखके साधक इष्ट व अनिष्ट खानपान आदि बाहरी विषयोंका भोगनेवाला होनेसे भोक्ता है। निश्चयनयसे लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशप्रमाण होनेपर भी व्यवहारनयसे शरीरनामा नामकर्मके उदयसे उत्पन्न छोटे या बडे शरीर प्रमाण होनेसे स्वदेहमात्र है। निश्चय नयसे मूर्तिरहित है तथा कर्म्म रहित है तथापि असद्भूत व्यवहार नयसे अनादिकालीन कर्म बंध सहित होनेसे मूर्तीक है और कर्मसंयुक्त है। इसतरह शब्दार्थ और नयार्थको कहा। अब मतोंकी अपेक्षा अर्थ कहते हैं। यहां जीवत्वका व्याख्यान चार्वाक मतानुसारी शिष्यकी अपेक्षासे—

उद्धृतगाथार्थ—जो आत्मा और पुनर्जन्मको नहीं मानते हैं उनके लिये ये नव दृष्टांत हैं—

(१) वत्स (बालक)—जन्मते ही माताका स्तनपान करने लगता है सो पूर्व संस्कारके विना होना अशक्य है। इससे आत्मा और उसका पूर्व जन्म सिद्ध है।

(२) अक्षर—प्राणी अक्षरोंका उच्चारण अपने प्रयोजनवश ज्ञानपूर्वक करता है। यदि पंच-भूतसे बना जीव माना जायगा तो उसमें विचार पूर्वक व ज्ञानजन्य अक्षरोंका उच्चारण नहीं हो सक्ता। जैसे जड पुद्गलके बने यंत्रमें ज्ञानपूर्वक शब्दोच्चारण नहीं होता इससे भी भूतोंसे भिन्न आत्मा सिद्ध है।

(३) भव (जन्म)—देहका धारण करना—जबतक स्थायी आत्मा न माना जायगा तबतक देहका धरना—जन्मना नहीं बन सकेगा।

(४) सादृश्य—जो बात एक सजीवप्राणीमें देखी जाती है वही दूसरोंमें देखी जाती है। सब ही प्राणियोंके भीतर आहार, भय, मैथुन, परिग्रह चार संज्ञाएं होती हैं। इंद्रियोंके द्वारा काम करना समान है। यह सब भिन्न आत्माके माने विना हो नहीं सक्ता। भौतिकदेह मात्र माननेसे सादृश्यता अकारण हो जायगी, विना विशेष कारणके यह सदृशता क्यों है?

(५-६) स्वर्गनरक—जगतमें स्वर्ग और नरक प्रसिद्ध हैं—यदि आत्मा न माना जायगा तो

कौन पुण्यके फलसे स्वर्गमें व कौन पापके फलसे नरकमें जायगा ?

(७) पितर-यदि आत्मा न माना जायगा तो जो यह बात प्रसिद्ध है कि भूतप्रेत आकर कह देते हैं कि हम तुम्हारे पिता आदि थे यह बात नष्ट हो जायगी अथवा लौकिकमें पितृ पूजा श्राद्ध आदि करते हैं सो आत्माके नष्ट होते हुए नही बन सकेंगे ।

(८) चूल्हा-यदि पांच भूतोंसे आत्मा बन जाता हो तो चूल्हे पर चढाई हुई हांडी, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पांच तत्त्वोंसे युक्त है उसमें ज्ञान व इच्छा क्यों नहीं दिखलाई पडतेहैं ।

(९) मृतक-मुर्दा शरीर भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश सहित है फिर उसमें इच्छा व ज्ञान क्यों नहीं होते ?

इस तरह नव दृष्टांतोंसे आत्मा जडसे भिन्न नित्य है यह बात सिद्ध होती है ।।१।।

अथवा सामान्य चेतना गुणका व्याख्यान सर्व मतोंके लिये साधारण रूपसे जानना चाहिये। यह जीव ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगसे भिन्न नहीं है ऐसा व्याख्यान नैयायिक मतके अनुसारी शिष्यको समझाने के लिये कहा है क्योंकि नैयायिक गुण और गुणीकी भिन्नता किसी समय मान लेता है । यह आत्मा ही मोक्षका उपदेशक तथा मोक्षका साधक होनेसे प्रभु है यह व्याख्यान इसलिये किया है कि वीतराग सर्वज्ञका वचन प्रमाणीक होता है तथा भट्टचार्वाकमतके आश्रित शिष्यकी अपेक्षासे सर्वज्ञसिद्धि करनेके लिये नीचे लिखे दोहेमें कथित नव दृष्टांतोंसे कथन किया है क्योंकि भट्ट चार्वाक मत किसी सर्वज्ञको नहीं मानता है ।

उद्धृतगाथार्थ-यहां सर्वज्ञकी सिद्धिके लिये नौ दृष्टांत दिये हैं । जैसे रत्नदीपमें प्रभा कमती बढ़ती दिखनेसे अनुमान होता है कि किसीमें अधिकसे अधिक तेज होना चाहिये । इसी तरह जगतके प्राणियोंमें ज्ञान कमती बढती दिखलाई पडता है तब किसी भी जीवमें ज्ञानकी पूर्णता संभव है । जिसमें पूर्ण ज्ञान है वही सर्वज्ञ है । यही भाव अन्य दृष्टांतोंका भी है जैसे (२) सूर्यकी किरणका कमती बढती तेज, (३) चन्द्रमाकी चांदनी, (४) नक्षत्रकी ज्योति, (५) धातु पाषाणोंका प्रकाश, (६) सोनेकी चमक, (७) चांदीकी चमक, (८) स्फटिककी ज्योति, (९) आगकी तेजी । सोना, चांदीका दृष्टांत इसलिये भी कार्यकारी होगा कि ये शुद्ध होते २ पूर्ण शुद्ध भी पाए जाते हैं । इसी तरह अशुद्ध आत्मा शुद्ध होते २ पूर्ण शुद्ध भी पाया जाना चाहिये, वही सर्वज्ञ है ।। २ ।।

यह जीव ही शुद्ध या अशुद्ध भावोंका कर्ता है यह व्याख्यान जीव अकर्ता है ऐसे एकांत मतधारी सांख्यमतके अनुसारी शिष्यको समझानेके लिये किया है। तथा यह जीव भोक्ता है यह व्याख्यान 'कर्ता कर्मोंका फल नहीं भोगता है क्योंकि वह क्षणिक है' इस मतके माननेवाले बौद्ध मतके अनुसारी शिष्यके संबोधनके लिये किया है। यह जीव अपने शरीरके प्रमाण रहता है, यह कथन नैयायिक, मीमांसक व कपिल मतानुसारी आदि शिष्योंके संदेह निवारणके लिये किया है, क्योंकि वे आत्माको सर्वव्यापी या अणुमात्र मानते हैं। यह जीव अमूर्तीक है। यह व्याख्यान भट्ट चार्वाक मतके अनुसारी शिष्यके संबोधनके लिये किया है, क्योंकि वे जीवको अतीन्द्रिय ज्ञानधारी शुद्ध जडसे भिन्न नहीं मानते है। यह जीव द्रव्य कर्म व भाव कर्मसे संयुक्त होता है, यह व्याख्यान सदाशिवमतके निराकरणके लिये किया है, क्योंकि वे आत्माको सदा-मुक्त व शुद्ध ही मानते हैं। इस तरह मतोंके द्वारा अर्थ जानना योग्य है। आगमद्वारा अर्थका व्याख्यान यह है कि यह जीव जीवत्व चेतना आदि स्वभावोंका धारी है यह बात परमागममें प्रसिद्ध ही है। यहां यह भावार्थ है कि—कर्मोंकी उपाधिसे उत्पन्न जो मिथ्यात्व व रागादि रूप समस्त विभाव परिणाम उनको त्यागकर उपाधि रहित केवलज्ञानादि गुणोंसे युक्त शुद्ध जीवा-स्तिकाय ही निश्चयनयसे उपादेयरूपसे भावना करने योग्य है।

इस तरह शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ तथा भावार्थ व्याख्यानके कालमें सर्व ठिकाने यथासंभव जानना योग्य है।

यहां शिष्यने प्रश्न किया कि पहले जीवास्तिकायकी समुदाय पातनिकामें चार्वाक आदि मतोंके अभिप्रायसे व्याख्यान किया था फिर यहां क्यों कहा गया ऐसा पूर्वपक्ष होनेपर आचार्य समाधान करते हैं कि पहले तो इस व्याख्यानके क्रमको बतानेके लिये प्रभुता आदि अधिकारकी मुख्यतासे नव अधिकार सूचित किये गये कि वीतराग सर्वज्ञकी सिद्धि होनेपर ही व्याख्यान में प्रमाणपना प्राप्त होता है, क्योंकि कहा है-'वक्तृप्रामाण्याद्वचनप्रामाण्यमिति' भावार्थ—वक्ताकी प्रमाणतासे उसके वचनकी प्रमाणता होती है यहां फिर इसलिये कहा है कि धर्मीपदार्थकी सत्ता होने पर ही उसके धर्म या स्वभावोंका विचार किया जाता है यह आगमका वचन है, इसलिये चेतनागुण आदि विशेष धर्मका आधारभूत विशेष लक्षणरूप जीवरूप धर्मीकी सिद्धि होनेपर उन चेतना गुण आदि विशेष धर्मोंका व्याख्यान घट सक्ता है इसीको बतानेके लिये

जीवकी सिद्धिपूर्वक अन्यमतोंका निराकरण करते हुए नव अधिकारोंका उपदेश किया गया है इसमें कोई दोष नहीं हैं ॥ २७ ॥

इस प्रकार अधिकारकी गाथा पूर्ण हुई ।

समय व्याख्या गाथा २८

अत्र मुक्तावस्थस्यात्मनो निरुपाधिस्वरूपमुक्तम् ।

कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता ।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं ॥ २८ ॥

कर्ममलविप्रमुक्त ऊर्ध्वं लोकस्यान्तमधिगम्य ।
स सर्वज्ञानदर्शी लभते सुखमनिन्द्रियमनंतम् ॥ २८ ॥

आत्मा हि परद्रव्यत्वात्कर्मरजसा साकल्येन यस्मिन्नेव क्षणे मुच्यते तस्मिन्नेवोर्ध्वगमनस्वभावत्वाल्लोकांतमधिगम्य परतो गतिहेतोरभावादवस्थितः केवलज्ञानदर्शनाभ्यां स्वरूपभूतत्वादमुक्तोऽनंतमतीन्द्रियं सुखमनुभवति । मुक्तस्य चास्य भावप्राणधारणलक्षणं जीवत्वं, चिद्रूपलक्षणं चेतयितृत्वं, चित्परिणामलक्षण उपयोगः, निर्वर्तितसमस्ताधिकारशक्तिमात्रं प्रभुत्वं, समस्तवस्त्वसाधारणस्वरूपनिर्वर्तनमात्रं कर्तृत्वं, स्वरूपभूतस्वातन्त्र्यलक्षणसुखोपलम्भरूपं भोक्तृत्वं, अतीतानंतरशरीरपरिमाणावगाहपरिणामरूपं देहमात्रत्वं, उपाधिसंबंधविविक्तमात्यन्तिकममूर्तत्वम् । कर्मसंयुक्तत्वं तु द्रव्यभावकर्मविप्रमोक्षान्न भवत्येव । द्रव्यकर्माणि हि पुद्गलस्कंधा भावकर्माणि तु चिद्विवर्ताः । विवर्तते हि चिच्छक्तिरनादिज्ञानावरणादिकर्मसंपर्ककूणितप्रचारा परिच्छेद्यस्य विश्वस्यैकदेशेषु क्रमेण व्याप्रियमाणा । यदा तु ज्ञानावरणादिकर्मसंपर्कः प्रणश्यति तदा परिच्छेद्यस्य विश्वस्य सर्वदेशेषु युगपद्व्यापृता कथंचित्कौटस्थ्यमवाप्य विषयांतरमनाप्नुवंती न विवर्तते । स खल्वेष निश्चितः सर्वज्ञसर्वदर्शित्वोपलम्भः अयमेव द्रव्यकर्मनिबंधनभूतानां भावकर्मणां कर्तृत्वोच्छेदः । अयमेव च विकारपूर्वकानुभवाभावादौपाधिकसुखदुःखपरिणामानां भोक्तृत्वोच्छेदः । इदमेव चानादिविवर्तखेदविच्छित्तिसुस्थितानंतचैतन्यस्यात्मनः स्वतंत्रस्वरूपानुभूतिलक्षणसुखस्य भोक्तृत्वमिति ॥ २८ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा २८

अन्वयार्थः-(कर्ममलविप्रमुक्तः) कर्ममलसे मुक्त आत्मा (ऊर्ध्वं) ऊपर (लोकस्य अन्तम्) लोकके अन्तको (अधिगम्य) प्राप्त करके (सः सर्वज्ञानदर्शी) वह सर्वज्ञ-सर्वदर्शी (अनंतम्) अनंत (अनिन्द्रियम्) अनिन्द्रिय (सुखम्) सुखका (लभते) अनुभव करता है।

टीकाः-यहां मुक्तावस्थावाले आत्माका निरुपाधिस्वरूप कहा है।

आत्मा (कर्मरजके) परद्रव्यपनेके कारण कर्मरजसे सम्पूर्णरूपसे जिस क्षण छूटता है (-मुक्त होता है), उसी क्षण (अपने) ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण लोकके अन्तको पाकर आगे गतिहेतुका अभाव होने से (वहां) स्थिर होता हुआ केवलज्ञान और केवलदर्शन (निज) स्वरूपभूत होनेके कारण उनसे न छूटता हुआ अनंत अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करता है। उस मुक्त आत्माको, भावप्राण जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसा जीवत्व होता है चिद्रूप जिसका लक्षण है ऐसा चेतयितृत्व होता है, चित्परिणाम जिसका लक्षण है ऐसा 'उपयोग' होता है, प्राप्त किये हुए समस्त (आत्मिक) अधिकारों की शक्तिमात्ररूप प्रभुत्व होता है, समस्त वस्तुओंसे असाधारण ऐसे स्वरूपकी निष्पत्तिमात्ररूप (-निज स्वरूपको रचनेरूप) कर्तृत्व होता है, स्वरूपभूत स्वातंत्र्य जिसका लक्षण है ऐसे सुखकी उपलब्धि रूप भोक्तृत्व होता है, अतीत अनन्तर (-अन्तिम) शरीरानुसार अवगाहपरिणामरूप देहप्रमाणपना होता है, और उपाधिके सम्बन्धसे आत्यंतिक (सर्वथा) विविक्त हो जाने से अमूर्तपना होता है। (मुक्त आत्माको) कर्मसंयुक्तपना तो कदापि नहीं होता, क्योंकि द्रव्यकर्मों और भावकर्मोंसे पूर्ण मुक्त होगया है द्रव्यकर्म वे पुद्गलस्कंध हैं और भावकर्म वे चिद्विवर्त चैतन्य के विकार हैं। चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरणादिकर्मोंके सम्पर्कसे (सम्बन्धके) संकुचित व्यापारवाली होनेके कारण ज्ञेयभूत विश्वके (-समस्त पदार्थोंके) एक-एक देशमें क्रमशः व्यापार करती हुई विवर्तनको प्राप्त होती है। किन्तु जब ज्ञानावरणादिकर्मोंका सम्पर्क विनष्ट होता है तब वह ज्ञेयभूत विश्वके सर्व देशोंमें युगपद् व्यापार करती हुई कथंचित् कूटस्थ होकर, अन्य विषयको प्राप्त न होती हुई विवर्तन नहीं करती। वह यह (चित्शक्तिके विवर्तनका अभाव), वास्तवमें निश्चित (-नियत, अचल) सर्वज्ञपनेकी और सर्वदर्शीपनेकी उपलब्धि है यही, द्रव्यकर्मोंके निमित्तभूत भावकर्मोंके कर्तृत्वका विनाश है, यही, विकारपूर्वक अनुभवके अभावके कारण औपाधिक सुखदुःखपरिणामोंके भोक्तृत्वका विनाश है, और यही, अनादि विवर्तनके खेदके विनाशसे जिसका अनंत चैतन्य सुस्थित हुआ है ऐसे आत्माको स्वतंत्रस्वरूपानुभूतिलक्षण सुखका भोक्तृत्व है ॥ २८ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २८

अथ मोक्षसाधकत्वप्रभुत्वगुणद्वारेण सर्वज्ञसिद्ध्यर्थं मुक्तावस्थस्यात्मनः केवलज्ञानादिरूपं निरुपाधिस्वरूपं दर्शयतिः,—कम्ममलविप्पमुक्को—द्रव्यकर्मभावकर्मविप्रमुक्तः सन्, उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता--ऊर्ध्व-

गतिस्वभावत्वाल्लोकस्यांतमधिगम्य प्राप्य, सो सव्वणाणदरिसी—परतो धर्मास्तिकायाभावात्तत्रैव लोकाग्रे स्थितः सन्, सर्वविषये ज्ञानदर्शने-सर्वज्ञानदर्शने ते विद्येते यस्य स भवति सर्वज्ञानदर्शी। एवंभूतः सन् किंकरोति? 'लहइ सुहमणिंदियमणंतं' लभते। किं? सुखं। कथंभूतं? अतीन्द्रियं। पुरपि कथंभूतं? अनंतमिति। किंच विशेषः--पूर्वसूत्रोदितजीवतत्त्वादिनवाधिकारेषु मध्ये कर्मसंयुक्तत्वं विहाय शुद्धजीवत्वशुद्धचेतनाशुद्धोपयोगादयोष्टाधिकारा यथासंभवमागमाविरोधेनात्र मुक्तावस्थायामपि योजनीया इति सूत्राभिप्रायः ॥ २८ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा २८

उत्थानिका—आगे मोक्षका साधकपना व प्रभुत्व गुणके द्वारा सर्वज्ञकी सिद्धिके लिये मुक्त आत्माका केवलज्ञानादि रूप उपाधिरहित स्वभाव है ऐसा दिखलाते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(सो) सो संसारी जीव (कम्ममलविप्पमुक्को) कर्मोंके मलसे मुक्त होकर (सव्वणाणदरिसी) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता हुआ (उड्ढं) ऊपर जाकर व (लोगस्स अंतम्) लोकाकाशके अंतमें (अधिगंता) प्राप्त होकर (अणिंदियं) इन्द्रिय रहित (सुहम्) सुखको (लहदि) प्राप्त करता या अनुभव करता रहता है।

विशेषार्थ–यह जीव ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म व रागद्वेषादि भाव कर्म व शरीरादि नो कर्म इन तीन प्रकार कर्मोंसे बिलकुल छूटकर केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सर्वज्ञ और सकलदर्शी होता हुआ अपने ऊर्ध्वगमन स्वभावसे ऊपर जाकर लोकाकाशके अंतमें ठहर जाता है–आगे धर्मास्तिकायके न होनेसे नहीं जाता है। वहां सिद्धक्षेत्रमें तिष्ठा हुआ क्या करता है? उसका समाधान करते हैं कि वह सिद्धात्मा अतीन्द्रिय अनंत स्वाभाविक आनन्दको भोगा करता है। इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि पूर्व सूत्रमें कहे प्रमाण नो अधिकारोंमेंसे कर्मसंयुक्त छोड़कर शुद्ध जीवपना, शुद्ध चेतनपना, शुद्ध उपयोगपना आदि आठ अधिकार यथासम्भव आगममें विरोध न लाते हुए मुक्तावस्थामें भी जान लेने चाहिये।

समय व्याख्या गाथा २९

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।
पप्पोदि सुहमणंतं अव्वाबाधं सगममुत्तं ॥ २९ ॥

जातः स्वयं स चेतयिता सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
प्राप्नोति सुखमनंतमव्याबाधं स्वकममूर्तम् ॥ २९ ॥

इदं सिद्धस्य निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखसमर्थनम् । आत्मा हि ज्ञानदर्शनसुखस्वभावः संसारावस्थायामनादिकर्मक्लेशसंकोचितात्मशक्तिः परद्रव्यसंपर्केण क्रमेण किंचित् किंचिज्जानाति पश्यति, परप्रत्ययं मूर्तसंबद्धं सव्याबाधं सांतं सुखमनुभवति च । यदा त्वस्य कर्मक्लेशाः सामस्त्येन प्रणश्यन्ति, तदाऽनर्गलासंकुचितात्मशक्तिरसहायः स्वयमेव युगपत्समग्रं जानाति पश्यति, स्वप्रत्ययममूर्तसंबद्धमव्याबाधमनंतं सुखमनुभवति च । ततः सिद्धस्य समस्तं स्वयमेव जानतः पश्यतः, सुखमनुभवतश्च स्वं, न परेण प्रयोजनमिति ।। २६ ।।

हिन्दी समय व्याख्या गाथा २६

अन्वयार्थः—(सः चेतयिता) वह चेतयिता (आत्मा) (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ (च) और (सर्वलोकदर्शी) सर्वलोकदर्शी (स्वयं जातः)स्वयं होता हुआ, (स्वकम्) स्वकीय (अमूर्तम्) अमूर्त (अव्याबाधं) अव्याबाध (अनंतम्) अनंत (सुखम्) सुखको (प्राप्नोति) प्राप्त करता है ।

टीकाः—यह, सिद्धके निरुपाधि ज्ञान, दर्शन और सुखका समर्थन है ।

वास्तवमें ज्ञान, दर्शन और सुख जिसका स्वभाव है ऐसा आत्मा संसारदशामें, अनादि कर्म-क्लेश द्वारा आत्मशक्ति संकुचित की गई होनेसे, परद्रव्यके सम्पर्क द्वारा (-इन्द्रियादिके सम्बन्ध द्वारा) क्रमशः कुछ—कुछ जानता है और देखता है तथा पराश्रित, मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्धवाला, सव्याबाध (-बाधासहित) और सान्त सुखका अनुभव करता है, किन्तु जब उसके कर्मक्लेश समस्त-विनाशको प्राप्त होते हैं तब, आत्मशक्ति अनर्गल (-निरंकुश) और असंकुचित होनेसे, वह असहायरूपसे स्वयमेव युगपद् सब (-सर्व द्रव्यक्षेत्रकालभाव) जानता है और देखता है तथा स्वाश्रित, मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्ध रहित, अव्याबाध और अनंत सुखका अनुभव करता है । इसलिये सब स्वयमेव जानने और देखनेवाले तथा स्वकीय सुखका अनुभवन करनेवाले सिद्धको परसे (कुछ भी) प्रयोजन नहीं है ।। २६ ।।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २६

अथ यदेव पूर्वोक्तं निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखस्वरूपं तस्यैव 'जादो सयमिति' वचनेन पुनरपि समर्थनं करोतिः—जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य—आत्मा हि निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसुखस्वभावस्तावत् इत्थंभूतोपि संसारावस्थायां कर्मावृतः सन् क्रमकरणव्यवधानजनितेन क्षायोपशमिकज्ञानेन किमपि किमपि जानाति, तथाभूतदर्शनेन किमपि किमपि पश्यति तथा चेन्द्रियजनितं बाधासहितं पराधीनं मूर्तसुखं चानुभवति स एव चेतयितात्मा निश्चयनयेन स्वयमेव कालादिलब्धिवशात्सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातः । एवं जातः सन् किंकरोति । पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सगममुत्तं—प्राप्नोति लभते । किं ? सुखमित्यध्याहारः । कथंभूतं सुखं ? इन्द्रियरहितं । पुनरपि कथंभूतं ? बाधारहितं । पुनरपि किं विशिष्टं ? स्वकमात्मोत्थं । पुनश्च किंरूपं ? मूर्तेन्द्रियनिरपेक्षत्वादमूर्तं च । अत्र स्वयं जातमिति वचनेन

पूर्वोक्तमेव निरुपाधित्वं समर्थितं । तथा च स्वयमेव सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातो निश्चयनयेनेति पूर्वोक्तमेव सर्वज्ञत्वं सर्वदर्शित्वं च समर्थितमिति । अथ भट्टचार्वाकमतानुसारी कश्चिदाह--नास्ति सर्वज्ञोऽनुपलब्धेः खरविषाणवत् । तत्र प्रत्युत्तरं दीयते--कुत्र सर्वज्ञो नास्त्यत्र देशे तथा चात्रकाले किं जगत्त्रये कालत्रये वा ? यद्यत्र देशे काले नास्तीति भण्यते तदा सम्मतमेव । अथ जगत्त्रये कालत्रयेपि नास्ति तत्कथं ज्ञातं भवता ? जगत्त्रयकालत्रयं सर्वज्ञरहितं ज्ञातं चेद्भवता तर्हि भवानेव सर्वज्ञः । कुत इति चेत् ? योसौ जगत्त्रयं कालत्रयं जानाति स एव सर्वज्ञः, यदि पुनः सर्वज्ञरहितं जगत्त्रयं कालत्रयं न ज्ञातं भवता तर्हि जगत्त्रये कालत्रयेपि सर्वज्ञो नास्तीति कथं निषेधः क्रियते त्वया । अथ मतं--किमत्रोदाहरणं यथा कश्चिद्देवदत्तो घटरहितभूतलं चक्षुषा दृष्ट्वा पश्चाद्ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्तीति युक्तमेव, अन्यः कोप्यंधः किमेवं ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्त्यपि तु नैवं, तथा योसौ जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं प्रत्यक्षेण जानाति स एव सर्वज्ञनिषेधे समर्थो, न चान्योऽन्ध इव, यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं जानाति स सर्वज्ञनिषेधं कथमपि न करोति । कस्मात् ? जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञानसहितत्वेन स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिति । किंचानुपलब्धेरिति हेतुवचनं तदयुक्तं । कथमिति चेत् ? किं भवतां सर्वज्ञानुपलब्धिरुत जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां वा, यदि भवतामनुपलब्धिरेतावता सर्वज्ञाभावो न भवति । कथमिति चेत् ? परमाण्वादिसूक्ष्मपदार्थाः परचेतोवृत्तयश्च भवद्भिर्यदि न ज्ञायंते तर्हि किं न सन्ति, अथ जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां सर्वज्ञानुपलब्धिस्तत्कथं ज्ञातं भवद्भिरिति पूर्वमेव विचारितं तिष्ठति इति हेतुदूषणं । यदप्युक्तं खरविषाणवदिति दृष्टांतवचनं तदप्ययुक्तं । कथमिति चेत् ? खरे विषाणं नास्ति न सर्वत्र, गवादौ प्रत्यक्षेण दृश्यते तथा सर्वज्ञोपि विवक्षितदेशकाले नास्ति न च सर्वत्र इति संक्षेपेण हेतुदूषणं दृष्टांतदूषणं च ज्ञातव्यं । अथ मतं--सर्वज्ञाभावे दूषणं दत्तं भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावे किं प्रमाणं ? तत्र प्रमाणं कथ्यते--अस्ति सर्वज्ञः पूर्वोक्तप्रकारेण बाधकप्रमाणाभावात् स्वसंवेद्यसुखदुःखादिवदिति, अथवा द्वितीयमनुमानप्रमाणं कथ्यते । तद्यथा-सूक्ष्मा व्यवहितदेशांतरितकालान्तरितस्वभावांतरितार्था धर्मिणः कस्यापि पुरुषविशेषस्य प्रत्यक्षा भवंतीति--साध्यो धर्मः । कस्माद्धेतोः ? अनुमानविषयत्वात्, यद्यदनुमानविषयं तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्षं दृष्टं यथाग्न्यादि । अनुमानविषयाश्चैते तस्मात्कस्यापि प्रत्यक्षा भवंतीति । यद्यन्न कस्यापि प्रत्यक्षं तत्तन्नानुमानविषयं यथा खपुष्पादि अनुमानविषयाश्चैते । तस्मात्कस्यापि प्रत्यक्षा भवन्ति । इति संक्षेपेण सर्वज्ञसद्भावे प्रमाणं ज्ञातव्यं । विस्तरेणासिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिंचित्करहेतुदूषणसमर्थनमन्यत्र सर्वज्ञसिद्धौ विस्तरेण भणितमास्ते, अत्र पुनरध्यात्मग्रंथत्वान्नोच्यते । इदमेव वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं समस्तरागादिविभावत्यागेन निरंतरमुपादेयत्वेन भावनीयमिति भावार्थः ।। २६ ।। एवं प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं ।

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा २६

उत्थानिका--आगे पहली गाथामें जो सिद्ध भगवानके उपाधि रहित ज्ञानदर्शन सुख बताया है उसी का ही 'जादो ही सयं' इस वचनसे फिर भी समर्थन करते हैं--

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(स चेदा) वह आत्मा (सयं) अपने आप ही (सव्वण्हू) सर्वज्ञ (य) और (सव्वलोकदरसी) सर्व लोकालोकका देखनेवाला (जादो) होता हुआ (अणंतं) अंतरहित, (अव्वाबाधं) बाधा रहित (सगम्) अपने आत्मासे ही उत्पन्न तथा (अमुत्तं) अमूर्तीक (सुहम्) सुखको (पप्पोदि) पाता है या अनुभव करता है।

विशेषार्थ-यह आत्मा निश्चयनयसे केवलज्ञान केवलदर्शन व परम सुखमई स्वभावको रखनेवाला होनेपर भी संसारकी अवस्थामें कर्मोंसे आच्छादित होता हुआ क्रमसे जाननेवाला इन्द्रिय ज्ञान रूपी क्षयोपशम ज्ञानसे कुछ कुछ जानता है तथा चक्षु अचक्षु दर्शन से कुछ कुछ देखता है तथा इंद्रियोंसे उत्पन्न बाधा सहित पराधीन मूर्तीक सुखका ही अनुभव करता है वही चेतनेवाला आत्मा जब काल आदिकी लब्धिके वशसे स्वयमेव सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होजाता है तब अतीन्द्रिय बाधा रहित आत्मीक स्वाधीन अमूर्तीक सुखका ही अनुभव किया करता है। यहां जो यह कहा है कि यह आत्मा स्वयं ही सर्वज्ञ सर्वदर्शी होजाता है, इस वचनसे यह समर्थन किया है कि निश्चयनयसे यह पहिलेसे ही उपाधि रहित है तथा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है।

यहां कोई भट्टचार्वाक मतके अनुसार चलनेवाला कहता है कि सर्वज्ञ कोई नहीं है क्योंकि कोई देखनेमें नही आता है जैसे गधेके सींग नहीं देखनेमें आते हैं? इस शंकाका समाधान करते हैं कि तूने कहा कि कहीं सर्वज्ञ दिखलाई नहीं पडता है तो यहां इस कालमें नहीं दिखलाई पड़ता है कि तीन जगत तीन कालमे कोई सर्वज्ञ नहीं होता है, सो यदि तेरा कहना है कि इस देश या इसकालमें सर्वज्ञ नहीं है तो हमें मान्य ही है और जो तू कहे कि तीन जगत या तीन कालमें कोई सर्वज्ञ नहीं है तो ऐसा तुमने कैसे जाना? यदि तुमने तीन जगत और तीन कालको सर्वज्ञ बिना जान लिया है तो तुम ही सर्वज्ञ हो क्योंकि सर्वज्ञ वही होता है जो कोई तीनों लोकोंको जानता है और यदि तू सर्वज्ञ नहीं है और तू तीन जगत तीन कालको नहीं जानता है तब तू यह कैसे निषेध कर सक्ता है कि तीन जगत व तीन कालमें भी कोई सर्वज्ञ नहीं होता हैं। इसी पर दृष्टांत कहते हैं-जैसे कोई देवदत्त घट बिना पृथ्वीतलको आंखोंसे देख कर फिर कहता है कि यहां इस पृथ्वीतलपर घट नहीं है तो उसका कहना ठीक ही है, अन्य कोई अन्धा पुरुष बिना देखे क्या यह कह सक्ता हैं कि यहां कहीं भी घट नहीं है अर्थात् वह नहीं कह सक्ता इसी तरह जो कोई तीन लोक व तीन कालको देखकर प्रत्यक्ष यह जान सके कि सर्वज्ञ नहीं है

वही सर्वज्ञका निषेध कर सक्ता है । दूसरा जो सब जानता ही नहीं वह अन्धेके समान निषेध नहीं कर सक्ता है परन्तु जो तीन लोक तीन कालको जानता है वह सर्वज्ञका निषेध किसी तरह नहीं कर सक्ता है, क्योंकि वह स्वयं सर्वज्ञ होगया–उसको तीन लोक तीन कालके विषयका ज्ञान है। आपने यह हेतु कहा कि सर्वज्ञकी प्राप्ति नहीं है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इसमें प्रश्न है कि आपको सर्वज्ञकी प्राप्ति नही है या तीन जगत व तीन कालके पुरुषोंको भी सर्वज्ञकी प्राप्ति नहीं है। यदि आपको सर्वज्ञकी प्राप्ति नहीं है तो इससे सर्वज्ञका अभाव नहीं हो सक्ता है, क्योंकि आप तो परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थोंको व दूसरेके चित्तकी बातोंको भी नहीं जानते हैं तो आपके न जानने से ये सब नहीं है ऐसा माना जायगा, सो नहीं हो सक्ता है यदि कहो कि तीन जगत व तीन कालके पुरुषोंको भी सर्वज्ञकी प्राप्ति नहीं है तो यह आपने कैसे जाना ? इसका पहले ही विचार कर चुके हैं। यह दोष आपके हेतुमें आता है तथा जो आपने गधेके सींग समान है ऐसा दृष्टांत रूप वचन कहा सो भी ठीक नही है, क्योंकि गधेमें सींग नहीं है परन्तु सर्व ठिकाने सींग नही है ऐसा नही है–गौ आदिमें सींग प्रत्यक्ष दिखलाई पडता है तैसे ही सर्वज्ञ भी इस देशमें इस कालमें यहां नहीं है किन्तु सर्वत्र नहीं है ऐसा नहीं है । इस तरह संक्षेपसे आपके हेतु तथा दृष्टांतको दोष आता है, ऐसा जानना चाहिये ।

फिर शंकाकार कहता है कि सर्वज्ञके अभावमें तो आपने दूषण दिया, परन्तु यह तो बताइये कि सर्वज्ञके सद्भावमें क्या प्रमाण है ? यहां प्रमाण कहते हैं–सर्वज्ञ कोई है, क्योंकि जैसा पहले कहा है उसतरह उसके लिये बाधक प्रमाण कोई नहीं है जैसे अपने अनुभवमें आने योग्य सुख दुःख है । अथवा दूसरा अनुमान प्रमाण यह कहा जाता है कि सूक्ष्म पदार्थ व्यवहित या दूसरे से ढके पदार्थ, दूरदेशवर्ती पदार्थ, भूत भावीकालके पदार्थ, स्वभाव अगोचर पदार्थ किसी भी पुरुषविशेषके प्रत्यक्ष हैं । यह साध्य धर्म है । उसमें साधक हेतु यह है कि इन पदार्थोंका अनुमान होता है, जो २ पदार्थ अनुमानका विषय होता है वह किसीको प्रत्यक्ष अवश्य दिखाई पडता है जैसे अग्नि आदि, क्योंकि ये सब पदार्थ अनुमानके विषय हैं इसलिये किसीके प्रत्यक्ष अवश्य हैं । जो किसी के प्रत्यक्ष नहीं है वह अनुमान का विषय भी नहीं । जैसे आकाशका पुष्प, वह किसीके प्रत्यक्ष नहीं है । इसतरह संक्षेपसे सर्वज्ञकी सत्तामें प्रमाण जानना चाहिए, विस्तारसे असिद्ध, विरुद्ध, अनैकांतिक, अकिंचित्कर हेतुओंसे दूषण या समर्थन सर्वज्ञ सिद्धि करने

वाले अन्य ग्रन्थोंमें कहा है वहांसे जानना । यह अध्यात्म ग्रन्थ है इससे विशेष नहीं कहा है। भावार्थ यह है कि यही वीतराग सर्वज्ञका स्वरूप सर्व रागादि विभावोंको त्यागकर निरंतर ग्रहण करने योग्य तथा भावना करने योग्य है ॥ २६ ॥

समय व्याख्या गाथा ३०

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥ ३० ॥

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीविष्यति यः खलु जीवितः पूर्वम् ।
स जीवः प्राणाः पुनर्बलमिन्द्रियमायुरुच्छ्वासः ॥ ३० ॥

जीवत्वगुणव्याख्येयम् । इन्द्रियबलायुरुच्छ्वासलक्षणा हि प्राणाः । तेषु चित्सामान्यान्वयिनो भावप्राणाः, पुद्गलसामान्यान्वयिनो द्रव्यप्राणाः । तेषामुभयेषामपि त्रिष्वपि कालेष्वनवच्छिन्नसंतानत्वेन धारणात्संसारिणो जीवत्वम् । मुक्तस्य तु केवलानामेव भावप्राणानां धारणात्तदवसेयमिति ॥ ३० ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ३०

अन्वयार्थः—(यः खलु) जो (चतुर्भिः प्राणैः) चार प्राणोंसे (जीवति) जीता है, (जीविष्यति) जियेगा और (जीवितः पूर्वम्) पूर्वकालमें जीता था, (सः जीवः) वह जीव है, (पुनः प्राणाः) और वह प्राण (इन्द्रियम्) इन्द्रिय, (बलम्) बल, (आयुः) आयु तथा (उच्छ्वासाः) स्वासोच्छ्वास है।

टीका:—यह जीवत्वगुणकी व्याख्या है।

प्राण इन्द्रिय, बल, आयु तथा उच्छ्वासस्वरूप हैं । उनमें (-प्राणोंमें), चित्सामान्यरूप अन्वयवाले वे भावप्राण हैं और पुद्गलसामान्यरूप अन्वयवाले वे द्रव्यप्राण हैं । उन दोनों प्राणोंको त्रिकाल अविच्छिन्न-संतानरूपसे (अटूट धारासे) धारण करता है इसलिये संसारीको जीवत्व है । मुक्तको (सिद्धको) तो केवल भावप्राणोंका ही धारण होनेसे जीवत्व है ऐसा समझना ॥ ३० ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—३०

अथ जीवत्वगुणव्याख्यानं क्रियते:-'पाणेहिं' इत्यादि पदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते । पाणेहिं चदुहिं जीवदि-यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धचैतन्यादिप्राणैर्जीवति तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपैस्तथाशुद्धनिश्चयनयेन भावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैः संसारावस्थायां वर्तमानकाले जीवति, जीविस्सदि भाविकाले जीविष्यति, जो हु-यो हि स्फुटं । जीविदो पुव्व'-जीवितः पूर्वकाले, सो जीवो-सः कालत्र-

येपि प्राणचतुष्टयसहितो जीवो भवति, पाणा पुण बलमिंदियमाउउस्सासो--ते पूर्वोक्तद्रव्यभावप्राणाः पुनरभेदेन बलेन्द्रियायुरुच्छ्वासलक्षणा इति । अत्र सूत्रे मनोवाक्कायनिरोधेन पंचेन्द्रियविषयव्यावर्तनबलेन च शुद्धचैतन्यादिशुद्धप्राणसहितः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयरूपेण ध्यातव्य इति भावार्थः ॥३०॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा ३०

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(जो) जो (हु) प्रगटपने (चदुहिं) चार (पाणेहिं) प्राणोंसे (जीवदि) जीता है (जीवस्सदि) जीवेगा व (पुव्वं जीविदो) पूर्वमें जीता था (सो जीवो) वह जीव है। (पुण) तथा (पाणा) प्राण (बलम्) बल (इन्द्रियं) इन्द्रिय, (आउ) आयु (उस्सासो) श्वासोश्वास हैं।

विशेषार्थ-यद्यपि जीव शुद्ध निश्चयनयसे शुद्ध चैतन्यादि प्राणोंसे जीता है तथापि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे द्रव्यरूप चार प्राणोंसे तथा अशुद्ध निश्चयनयसे भावरूप चार प्राणोंसे संसार अवस्थामें वर्तमान कालमें जी रहा है, भविष्यमें जीवेगा व आगे जीचुका है। वे पूर्वोक्त द्रव्य प्राण तथा भाव प्राण अभेदसे बल, इन्द्रिय, आयु, श्वासोच्छ्वास हैं। यहां यह भावार्थ है कि मन बचन कायको रोक करके व पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे वैराग्य भावके बलसे जो शुद्ध चैतन्य आदि प्राणोंका धारी शुद्ध जीवास्तिकाय है उसहीको उपादेय रूपसे ध्याना चाहिये ॥ ३० ॥

समय व्याख्या गाथा ३१-३२

अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे ।
देसेहिं असंखादा सिया लोगं सव्वमावण्णा ॥ ३१ ॥
केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा ।
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा ॥ ३२ ॥

अगुरुलघुका अनंतास्तैरनंतैः परिणताः सर्वे ।
देशैरसंख्याताः स्याल्लोकं सर्वमापन्नाः ॥ ३१ ॥
केचित्तु अनापन्ना मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः ।
वियुताश्च तैर्बहवः सिद्धाः संसारिणो जीवाः ॥ ३२ ॥

अत्र जीवानां स्वाभाविकं प्रमाणं मुक्तामुक्तविभागश्चोक्तः। जीवा ह्यविभागैकद्रव्यत्वाल्लोकप्रमाणैकप्रदेशाः। अगुरुलघवो गुणास्तु तेषामगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबंधनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदाः प्रतिसमयसंभवत्पट्स्थानपतितवृद्धिहानयोऽनंताः। प्रदेशास्तु अविभागपरमाणुपरिच्छिन्नसूक्ष्मांशरूपा असंख्येयाः। एवंविधेषु तेषु केचित्कथंचिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण सर्वलोकव्यापिनः, केचित्तु तदव्यापिन इति। अथ ये तेषु मिथ्यादर्शनकषाययोगैरनादिसंततिप्रवृत्तैर्युक्तास्ते संसारिणः, ये विमुक्तास्ते सिद्धाः, ते च प्रत्येकं बहव इति॥ ३१-३२॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ३१—३२

अन्वयार्थः—(अनंताः अगुरुलघुकाः) अनंत ऐसे जो अगुरुलघु (गुण, अंश) (तैः अनंतैः) उन अनंत अगुरुलघु रूपसे (सर्वे) सर्व जीव (परिणताः) परिणत हैं, (देशैः असंख्याताः) वे (जीव) असंख्यात प्रदेशवाले हैं। (स्यात् सर्वम् लोकम् आपन्नाः) कुछ (जीव) समस्त लोकको प्राप्त होते हैं (केचित् तु) और कुछ (अनापन्नाः) अप्राप्त होते हैं। (वहवः जीवाः) अनेक (-अनंत) जीव (मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः) मिथ्यादर्शन-कषाय-योगसहित (संसारिणः) संसारी हैं (च) और अनेक (—अनंत जीव) (तैः वियुताः) मिथ्यादर्शन-कषाय—योग रहित (सिद्धाः) सिद्ध हैं।

टीकाः—यहां जीवोंका स्वाभाविक प्रमाण तथा उनका मुक्त और अमुक्त ऐसा विभाग कहा है।

जीव वास्तवमें अविभागी-एकद्रव्यपनेके कारण लोकप्रमाण-एक (अखण्ड) प्रदेशवाले हैं। उनके (-जीवोंके) अगुरुलघु गुण अगुरुलघुत्व नामक स्वरूपप्रतिष्ठत्वके कारणभूत स्वभाव वाले (गुणके) अविभाग परिच्छेद हैं तथा प्रतिसमय होनेवाली षट्स्थानपतित वृद्धिहानिवाले अनंत हैं, और (उनके अर्थात् जीवों के) प्रदेश—जो कि अविभाग परमाणु जितने मापवाले सूक्ष्म अंशरूप हैं, वे असंख्य हैं। ऐसे उन जीवोंमें कुछ कथं-चित् (केवलिसमुद्घातके कारण) लोकपूरण-अवस्थाके प्रकार द्वारा समस्त लोकमें व्याप्त होते हैं और कुछ समस्त लोक में अव्याप्त होते हैं और उन जीवोंमें जो अनादि प्रवाहरूपसे प्रवर्तमान मिथ्यादर्शन—कषाय-योग सहित हैं वे संसारी हैं, जो उनसे विमुक्त हैं (अर्थात् मिथ्यादर्शन-कषाय-योग रहित हैं) वे सिद्ध हैं, और वे प्रत्येक जीव बहुत (अनंत) हैं (अर्थात् संसारी तथा सिद्ध जीवोंमेंसे हर एक प्रकारके जीव अनंत हैं)॥ ३१—३२॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ३१-३२

अथागुरुलघुत्वमसंख्यातप्रदेशत्वं व्यापकत्वाव्यापकत्वं मुक्तामुक्तत्वं च प्रतिपादयतिः--अगुरुलहुगाणंता--प्रत्येकं पट्स्थानपतितहानिवृद्धिभिरनंताविभागपरिच्छेदैः सहिता अगुरुलघवो गुणा अनंता भवन्ति। तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे-तैः पूर्वोक्तगुणैरनंतैः परिणताः सर्वे। सर्वे के ? जीवा इति

संबंधः। देसेहि असंखादा-लोकाकाशप्रमिताखण्डप्रदेशैः सहितत्वादसंख्येयप्रदेशाः। सिय लोगं सव्व-मावण्णा—स्यात्कथंचिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण लोकव्यापकाः अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया लोकव्यापकाः। तथा चोक्तं-"आधारे थूलाओ सुहुमेहिं णिरंतरो लोगो" पुनरपि कथंभूतास्ते जीवाः। केचिच्च अणावण्णा केचिच्च केचन पुनर्लोकपूरणावस्थारहिता अव्यापका अथवा बादरैकेन्द्रिया विकलेन्द्रियादयश्चाव्यापकाः। पुनरपि किंविशिष्टाः। मिच्छादंसणकसायजोगजुदा—रागादिरहितपरमानंदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणैर्मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्यथासंभवं युक्ताः। न केवलं युक्ताः, विजुदा य तेहिं-तैरेव मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्वियुक्ता रहिताश्च। उभयेपि इति संख्योपेताः। बहुगा—बहवोऽनंताः। पुनरपि कथंभूताः। सिद्धा संसारिणो-ये मिथ्यादर्शनकषाययोगविमुक्ता रहितास्ते सिद्धा ये च युक्तास्ते संसारिण इति। अत्र जीविताशारूपरागादिविकल्पत्यागेन सिद्धजीवसदृशः परमाह्लादरूपसुखरसास्वादपरिणतनिजशुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयमिति भावार्थः ॥ ३१-३२ ॥ एवं पूर्वोक्त "वच्छरक्ख" इत्यादि दृष्टांतनवकेन चार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं जीवसिद्धिमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं।

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा ३१-३२

उत्थानिका-आगे जीवोंमें अगुरुलघुत्व, असंख्यात प्रदेशपना, व्यापकत्व, अव्यापकत्व, मुक्त व संसारीपना बताते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(अगुरुलहुगा) अगुरुलघु गुण (अणंता) अनंत हैं [तेहिं] तिन (अणंतेहिं) अनंतगुणोंसे (परिणदा) परिणमन करते हुए (सव्वे) सर्व जीव (देसेहिं) प्रदेशोंसे (असंखादा) असंख्यात प्रदेशी हैं (सिय) किसी अपेक्षासे (सव्वं) सर्व [लोगं] लोकमें (आवण्णा) व्याप्त होते हैं (केचित्) परन्तु कितने ही (अणावण्णा) व्याप्त नहीं होते हैं। (मिच्छादंसणकसायजोगजुदा) मिथ्यादर्शन, कषाय व योग सहित [बहुगा] बहुत [संसारिणो] संसारी [जीवा] जीव हैं [य] तथा [तेहिं] उनसे (वियुताः] रहित [सिद्धा] सिद्ध हैं।

विशेषार्थ—प्रत्येक अगुरुलघु गुण षट्स्थान पतित हानि वृद्धि रूप अनन्त अविभाग परिच्छेदोंके साथ होते हैं ऐसे अगुरुलघु गुण अनंत होते हैं, उन पूर्वोक्त अनंत अगुरुलघु गुण सहित परिणमन करते हुए सर्व जीव निश्चयसे लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशधारी अखण्ड होते हैं। इनमेंसे कुछ जीव अर्थात् कुछ केवली केवलिसमुद्घातके समय लोकपूरण अवस्थाकी अपेक्षा लोकमें व्याप जाते हैं अथवा दूसरा अर्थ यह है कि सूक्ष्म स्थावर एकेन्द्रिय जीव लोकमें सर्वव्यापी हैं—सर्व ठिकाने भरे हैं। इस अपेक्षा कुछ जीव लोक व्यापी हैं तथा अन्य जे केवली लोकपूरण अवस्था रहित हैं वे अथवा बादर एकेन्द्रिय तथा विकलत्रय व पंचेंद्रियादि जीव सर्व अव्यापक

हैं अर्थात् कहीं हैं, कहीं नही हैं--लोकके सर्व स्थानोंमें नही हैं। इन सब जीवोंमें जो जीव रागादि रहित परमानंदमय एक स्वभावरूप शुद्ध जीवास्तिकायकी अवस्थासे विलक्षण मिथ्यादर्शन कषाय तथा योगोंसे यथासंभव संयुक्त हैं ऐसे अनंतजीव संसारी हैं तथा जो इन मिथ्यादर्शन कषाय व योगोंसे रहित हैं ऐसे अनंत जीव सिद्ध हैं।

यहां यह तात्पर्य है कि जीवनकी आशाको आदि लेकर सर्व प्रकार रागादि विकल्प त्याग करके सिद्ध जीवके समान यह मेरा आत्मा जो परमानंद रूप सुख रसके आस्वादमें परिणमन करता हुआ शुद्ध जीवास्तिकाय है सो ही ग्रहण करने योग्य है॥ ३१-३२॥

इस तरह पूर्वोक्त "वच्छक्खर" इत्यादि नव दृष्टांतोंसे चार्वाक मतके अनुसार शिष्यके संबोधनके लिये जीवसिद्धिकी मुख्यतासे तीन गाथाएं पूर्ण हुई।

समय व्याख्या गाथा ३३

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो सदेहमित्तं पभासयदि॥ ३३॥

यथा पद्मरागरत्नं क्षिप्तं क्षीरे प्रभासयति क्षीरम्।
तथा देही देहस्थः स्वदेहमात्रं प्रभासयति॥ ३३॥

एष देहमात्रत्वदृष्टांतोपन्यासः। यथैव हि पद्मरागरत्नं क्षीरे क्षिप्तं स्वतोऽव्यतिरिक्तप्रभास्कंधेन तद्व्याप्नोति क्षीरं, तथैव हि जीवः अनादिकषायमलीमसत्वमूले शरीरेऽवतिष्ठमानःस्वप्रदेशैस्तदभिव्याप्नोति शरीरम्। यथैव च तत्र क्षीरेऽग्निसंयोगादुद्वलमाने तस्य पद्मरागरत्नस्य प्रभास्कंध उद्वलते पुनर्निविशमाने निविशते च, तथैव च तत्र शरीरे विशिष्टाहारादिवशादुत्सर्पति तस्य जीवस्य प्रदेशाः उत्सर्पन्ति पुनरपसर्पति अपसर्पन्ति च। यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र प्रभूतक्षीरे क्षिप्तं स्वप्रभास्कंधविस्तारेण तद्व्याप्नोति प्रभूतक्षीरं, तथैव हि जीवोऽन्यत्र महति शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशविस्तारेण तद्व्याप्नोति महच्छरीरम्। यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र स्तोकक्षीरे निक्षिप्तं स्वप्रभास्कंधोपसंहारेण तद्व्याप्नोति स्तोकक्षीरं, तथैव च जीवोऽन्यत्राणुशरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशोपसंहारेण तद्व्याप्नोत्यणुशरीरमिति॥ ३३॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ३३

अन्वयार्थः—(यथा) जिसप्रकार (पद्मरागरत्नं) पद्मरागरत्न (क्षीरे क्षिप्तं) दूधमें डाला जाने

पर (क्षीरम् प्रभासयति) दूधको प्रकाशित करता है, (तथा) उसीप्रकार (देही) देही (जीव) (देहस्थः) देहमें रहता हुआ (स्वदेहमात्रं प्रभासयति) स्वदेहप्रमाण प्रकाशित होता है।

टीकाः—यह देहप्रमाणपनेके दृष्टान्त का कथन है।

जिसप्रकार पद्मरागरत्न दूधमें डाला जाने पर अपनेसे अभिन्न प्रभासमूह द्वारा उस दूधमें व्याप्त होता है, उसीप्रकार जीव अनादिकालसे कषाय द्वारा मलिनता के कारण प्राप्त शरीरमें रहता हुआ स्वप्रदेशों द्वारा उस शरीरमें व्याप्त होता है। और जिसप्रकार अग्निके संयोगसे उस दूधमें उफान आने पर उस पद्मरागरत्नके प्रभासमूहमें उफान आता है (अर्थात् वह विस्तारको प्राप्त होता है) और दूध बैठ जाने पर प्रभासमूह भी बैठ जाता है, उसीप्रकार विशिष्ट आहारादिके वश उस शरीरमें वृद्धि होने पर उस जीवके प्रदेश विस्तृत होते हैं और शरीर फिर सूख जाने पर प्रदेश भी संकुचित होजाते हैं। पुनश्च, जिसप्रकार वह पद्मरागरत्न दूसरे अधिक दूधमें डाला जाने पर स्वप्रभासमूहके विस्तार द्वारा उस अधिक दूधमें व्याप्त होता है, उसीप्रकार जीव दूसरे बडे शरीरमें स्थितिको प्राप्त होने पर स्वप्रदेशोंके विस्तार द्वारा उस बडे शरीरमें व्याप्त होता है। और जिसप्रकार वह पद्मरागरत्न दूसरे कम दूध में डालने पर स्वप्रभासमूहके संकोच द्वारा उस थोडे दूधमें व्याप्त होता है, उसीप्रकार जीव अन्य छोटे शरीरमें स्थितिको प्राप्त होने पर स्वप्रदेशोंके संकोच द्वारा उस छोटे शरीरमें व्याप्त होता है ॥ ३३ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ३३

अथ देहमात्रविषये दृष्टान्तं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति। एवमग्रेपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्याथवा सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं निरूपयतीति पातनिका लक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यं,–जह पउमरायरयणं। यथा पद्मरागरत्नं कर्तृ। कथंभूतं। खित्तं क्षिप्तं क्व? खीरे-क्षीरे दुग्धे। क्षीरे किं करोति? पहासयदि खीरं--प्रकाशयति तत्क्षीरं, तह देही देहत्थो –तथा देही संसारी देहस्थः सन्, सदेहमेत्तं पहासयदि-स्वदेहमात्रं प्रकाशयतीति। तद्यथा--अत्र पद्मरागशब्देन पद्मरागरत्नप्रभा गृह्यते न च रत्नं यथा पद्मरागप्रभासमूहः क्षीरे क्षिप्तस्तत्क्षीरं व्याप्नोति तथा जीवोपि स्वदेहस्थो वर्तमानकाले तं देहं व्याप्नोति। अथवा यथा विशिष्टाग्निसंयोगवशात्क्षीरे वर्द्धमाने सति पद्मरागप्रभासमूहो वर्द्धते हीयमाने च हीयत इति तथा विशिष्टाहारवशाद्देहे वर्धमाने सति विस्तरन्ति जीवप्रदेशा हीयमाने च संकोचं गच्छन्ति, अथवा स एव प्रभासमूहोऽन्यत्र बहुक्षीरे निक्षिप्तो बहुक्षीरं व्याप्नोति स्तोके स्तोकं व्याप्नोति तथा जीवोपि जगत्त्रयकालत्रयमध्यवर्तिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशेन समर्थविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावचैतन्यचमत्कारमात्राच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणैर्मिथ्यात्वरागादिविकल्पैर्यदुपार्जितं शरीरनामकर्म तदुदयजनितविस्तारोपसंहाराधीनत्वेन सर्वोत्कृष्टावगाहपरिणतः सन् सहस्रयोजनप्रमाणं महामत्स्यशरीरं व्याप्नोति जघन्यावगाहेन परिणतः पुनरुत्सेधघनांगुलासंख्येयभागप्रमितं लब्ध्यपूर्णसूक्ष्मनिगोदशरीरं व्याप्नोति, मध्यमावगाहेन मध्यमशरीराणि च व्याप्नोतीति भावार्थः ॥ ३३ ॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा ३३

उत्थानिका-आगे जीव शरीर मात्र आकार रखता है इस विषयमें दृष्टांत कहेंगे, ऐसा अभिप्राय मनमें रखकर आगेका सूत्र कहते हैं। इसी तरह आगे भी कहनेवाले सूत्रका अर्थ मनमें धरके या इस सूत्रके आगे यह कहना उचित है ऐसा निश्चय करके आगेका सूत्र कहते हैं। यह पातनिकाका लक्षण यथासंभव सर्व ठिकाने जानना योग्य है।

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(जह) जैसे (पउमरायरयणं) पद्मरागमणि (खीरे) दूधमें (खित्तं) डाली गई (खीरं) दूधको (पभासयदि)प्रकाश करती है (तह) तैसे (देही) संसारी जीव (देहत्थो) शरीरमें तिष्ठा हुआ (सदेहमत्तं) अपने शरीर मात्रको (पभासयदि) प्रकाशकरता है।

विशेषार्थः-यहां पद्मराग शब्दसे पद्मरागरत्नकी प्रभा लेना चाहिये, न कि रत्न। जैसे पद्म-रागकी प्रभाका समूह दूधमें डाला हुआ उस दूध मात्रमें फैल जाता है तैसे जीव भी वर्तमान-कालीन अपनी देहमें रहता हुआ उस देहको व्याप लेता है अथवा जैसे विशेष अग्निके संयोगसे उफन कर बढ़ते हुये दूध में पद्मरागकी प्रभाका समूह बढता है तथा दूधके घटते हुए घटता है तैसे विशेष भोजनके कारणसे देहके बढने पर जीवके प्रदेश फैलते हैं तथा शरीरके घटने पर फिर सकुड़ जाते हैं अथवा वही प्रभाका समूह दूसरे स्थानमें जहां बहुत दूध है उसमें डाला जावे तो उस बहुत दूधमें फैल जावेगा, तथा थोडे दूधमें डाला जावे तो उस थोडे दूधमें फैलेगा तैसे यह जीव भी तीन जगतकी तीन काल सम्बन्धी सर्व द्रव्योंकी गुण व पर्यायोंको एक समयमें प्रकाशनेको समर्थ ऐसे शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावी चैतन्यके चमत्कार मात्र शुद्ध जीवास्तिकायसे विलक्षण मिथ्यात्व व रागद्वेषादि विकल्पोंमें परिणमन करके जो शरीरनामा नामकर्म बांधता है उसके उदयसे विस्तार या संकोचपनेको करता हुआ कभी सबसे बड़ी अवगाहनाको प्राप्त होकर एक हजार योजनप्रमाण महामत्स्यके शरीरमें फैल जाता है तथा जघन्य अवगाहनामें परिणमता हुआ उत्सेध घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म निगोद शरीरोंमे उस शरीर प्रमाण हो जाता है। मध्यम अवगाहनामें परिणमता हुआ इन दोनों जघन्य उत्कृष्ट अवगाह-नाओंसे मध्यम अवगाहनावाले शरीरोंमें उनके प्रमाण फैल जाता है ॥ ३३ ॥

समय व्याख्या गाथा ३४

अत्र जीवस्य देहाद्देहांतरेऽस्तित्वं, देहात्पृथग्भूतत्वं, देहांतरसंचरणकारणं चोपन्यस्तम्।

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो ।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ॥ ३४ ॥

सर्वत्रास्ति जीवो न चैक एककाये ऐक्यस्थः ।
अध्यवसानविशिष्टश्चेष्टते मलिनो रजोमलैः ॥ ३४ ॥

आत्मा हि संसारावस्थायां क्रमवर्तिन्यनवच्छिन्नशरीरसंताने यथैकस्मिन् शरीरे वृत्तः तथा क्रमेणान्येष्वपि शरीरेषु वर्तत इति तस्य सर्वत्रास्तित्वम् । न चैकस्मिन् शरीरे नीरे क्षीर-मिवैक्येन स्थितोऽपि भिन्नस्वभावत्वात्तेन सहैक इति तस्य देहात्पृथग्भूतत्वम् । अनादिबंधनो-पाधिविवर्तितविविधाध्यवसायविशिष्टत्वात्तन्मूल कर्म जालमलीमसत्वाच्च चेष्टमानस्यात्मनस्तथा-विधाध्यवसायकर्मनिर्वर्तितेतरशरीरप्रवेशो भवतीति तस्य देहांतरसंचरणकारणोपन्यास इति ।३४

हिंदी समय व्याख्या गाथा—३४

अन्वयार्थः—(जीवः) जीव (सर्वत्र) सर्वत्र (क्रमवर्ती सर्व शरीरोंमें) (अस्ति) है (च) और (एककाये) किसी एक शरीरमें (ऐक्यस्थः) (क्षीरनीरवत्) एकरूपसे (एक क्षेत्र अवगाहरूपसे) रहता है तथापि (न एकः) उसके साथ एक स्वभाव (तद्रूप) नही होजाता है, (अध्यवसानविशिष्टः) अध्यवसायविशिष्ट वर्तता हुआ (रजोमलैः मलिनः) रजमल (कर्ममल) द्वारा मलिन होनेसे (चेष्टते) वह भ्रमण करता है ।

टीका:—यहां जीवका देहसे देहान्तरमें अस्तित्व, देहसे पृथक्त्व तथा देहान्तरमें गमनका कारण कहा है ।

आत्मा संसार–दशामें क्रमवर्ती अच्छिन्न (–अटूट) शरीरप्रवाहमें जिसप्रकार एक शरीरमें वर्तता है उसी प्रकार क्रमसे अन्य शरीरमें भी वर्तता है, इस प्रकार उसे सर्वत्र (–सर्व शरीरोंमें) अस्तित्व है और किसी एक शरीरमें, पानीमें दूधकी भांति एकरूपसे रहने पर भी, भिन्न स्वभावके कारण उसके साथ एक (तद्रूप) नहीं है: इसप्रकार उसे देहसे पृथक्पना है । अनादि बंधनरूप उपाधिसे विवर्तन (परिवर्तन) पानेवाले विविध अध्यवसायोंसे विशिष्ट होनेके कारण (अनेक प्रकारके अध्यवसायवाला होनेके कारण) तथा वे अध्यवसाय जिसका निमित्त हैं ऐसे कर्मसमूहसे मलिन होनेके कारण भ्रमण करते हुए आत्माको तथाविध अध्यवसायों तथा कर्मोंसे रचे जानेवाले (–उस प्रकारके मिथ्यात्वरागादिरूप भावकर्मों तथा द्रव्यकर्मोंसे रचेजानेवाले) अन्य शरीरमें प्रवेश होता है, इसप्रकार उसे देहान्तरमें गमन होनेका कारण कहा गया है ॥ ३४ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ३४

अथ वर्तमानशरीरवत् पूर्वापरशरीरसंतानेपि तस्यैव जीवस्यास्तित्वं देहात्पृथक्त्वं भवांतरगमनकारणं च कथयति,—सव्वत्थ अत्थि जीवो—सर्वत्र पूर्वापरभवशरीरसंताने य एव वर्तमानशरीरे जीवः स एवास्ति नचान्यो नवतर उत्पद्यते चार्वाकमतवत्। ण य एक्को—निश्चयनयेन देहेन सह न चैकस्तन्मयः। एक्को य—अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेनैकोपि भवति। कस्मादिति चेत्? एक्कट्ठो—क्षीरनीरवदेकार्थोऽभिन्नो यस्मात् अथवा सर्वत्र देहमध्ये जीवोस्ति न चैकदेशे अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया सर्वत्र लोकमध्ये जीवसमूहोस्ति। स च यद्यपि केवलज्ञानादिगुणसादृश्येनैकत्वं लभते तथापि नानावर्णवस्त्रवेष्टितषोडशवर्णिकासुवर्णराशिवत्स्वकीयस्वकीयलोकमात्रासंख्येयप्रदेशैर्भिन्न इति। भवांतरगमनकारणं कथ्यते। अज्झवसाणविसिट्ठो चेट्ठदि मलिणो रजमलेहिं—अध्यवसानविशिष्टः संश्चेष्टते मलिनो रजोमलैः। तथाहि-यद्यपि शुद्धनिश्चयेन केवलज्ञानदर्शनस्वभावस्तथाप्यनादिकर्मबंधवशान्मिथ्यात्वरागाद्यध्यवसानरूपभावकर्मभिस्तज्जनकद्रव्यकर्ममलैश्च वेष्टितः सन् भवांतरं प्रति शरीरग्रहणार्थं चेष्टते वर्तत इति। अत्र य एव देहाद्भिन्नोऽनंतज्ञानादिगुणः शुद्धात्मा भणितः स एव शुभाशुभसंकल्पविकल्पपरिहारकाले सर्वत्र प्रकारेणोपादेयो भवतीत्यभिप्रायः॥ ३४॥

एवं मीमांसकनैयायिकसांख्यमतानुसारिशिष्यसंशयविनाशार्थं "वेयणकसायवेगुव्विय य मारणंतियो समुग्घादो। तेजो हारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु" इति गाथाकथितसप्तसमुद्घातान् विहाय स्वदेहप्रमाणात्मव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ३४

उत्थानिका—आगे जैसे वर्तमान शरीरमें जीव रहता है वैसे वही जीव इसके पूर्वके शरीरोंमें था व भविष्यके शरीरोंमें रहेगा, संतान रूपसे वही जीव चला जावेगा। इस तरह जीवका अस्तित्व, उसका देहसे जुदा होना तथा अन्यभवमें जानेका कारण कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जीवो) यह जीव [सव्वत्थ] सर्वत्र अपनी सर्व भूत भावी वर्तमान पर्यायोंमें (अत्थि) अस्ति रूप वही है (एक्काय) एक किसी शरीरमें [एक्कट्ठो] एकमेक होकर रहता है (य) तथापि (एक्को ण) उससे एकमेक उससा नहीं होजाता है। [अज्झवसाणविसिट्ठो] रागादि अध्यवसान सहित जीव [रजमलेहिं] कर्म रूपी रजके मैलके कारण (मलिणो] मलीन अशुद्ध होता हुआ [चिट्ठदि] संसारमें भ्रमण करता है।

विशेषार्थ—यह जीव चार्वाक मतकी तरह नया नया नहीं पैदा होता है किंतु जो जीव इस वर्तमान शरीरमें है वही जीव पूर्व या उत्तर जन्मों या पर्यायोंमें बना रहता है। यद्यपि अनुप-

चरित असद्भूत व्यवहारनयसे जीव शरीरके साथ दूध पानीकी तरह एकमेकसा होजाता है तथापि निश्चयनयसे देहके साथ एकरूप तन्मई व देहसरीखा नहीं बन जाता है--स्वभावसे भिन्न ही रहता है। यह शरीरभरमें व्यापता है, उसके एक भागमें नहीं रहता है। अथवा यह अर्थ है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी अपेक्षा लोकमें सब ठिकाने जीवोंके समूह हैं वे जीव यद्यपि केवलज्ञानादि गुणोंकी समानतासे बराबर हैं इससे उनमें एकता है तथापि अपने अपने भिन्न भिन्न लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशोंको रखते हुए अलग अलग हैं। जैसे सोले वाणीके शुद्ध सुवर्णकी डलियोंको भिन्न२ रंगके वस्त्रोंमें बांधकर रक्खें तो वे सर्व सुवर्ण एक भावके हैं, समान हैं। तथापि हरएक डलीकी सत्ता अपने२ वस्त्रमें अलग अलग है ऐसे ये जीव जानने। यद्यपि शुद्ध निश्चयनयसे यह जीव केवलज्ञान और केवल दर्शन स्वभावका धारी है तथापि अनादि कर्मबंधके वशसे रागद्वेषादि अध्यवसाय रूप भावकर्मोंसे तथा उनसे उत्पन्न ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मके मलोंसे घिरा हुआ अन्य शरीर ग्रहण करनेके लिये एक भवसे दूसरे भवमें जाता रहता है यहां यह अभिप्राय है कि जो कोई देहसे भिन्न अनंतज्ञानादि गुणधारी शुद्धात्मा कहा गया है वही शुभ व अशुभ संकल्प विकल्पोंके त्यागके समयमें सर्व तरहसे उपादेय है अर्थात् ध्यान करने योग्य है ॥ ३४ ॥

इस तरह मीमांसक, नैयायिक व सांख्यमतानुसारी शिष्यके संशय विनाश करनेके लिये "वेयणकसायवेगुव्वियो य मारणंतियो समुग्घादो, तेजो हारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु" इस गाथामें कहे प्रमाण वेदना, कषाय, वैक्रियिक मारणांतिक, तैजस, आहारक तथा केवली इन सात समुद्घातोंको छोडकर यह जीव अपनो देहके प्रमाण आकार रखता है, इस व्याख्यानकी मुख्यतासे दो गाथाएं कहीं ॥

समय व्याख्या गाथा ३५

सिद्धानां जीवत्वदेहमात्रत्वव्यवस्थेयम्।

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा ॥ ३५ ॥

येषां जीवस्वभावो नास्त्यभावश्च सर्वथा तस्य।
ते भवन्ति भिन्नदेहाः सिद्धा वाग्गोचरमतीताः ॥ ३५ ॥

सिद्धानां हि द्रव्यप्राणधारणात्मको मुख्यत्वेन जीवस्वभावो नास्ति न च जीवस्वभावस्य सर्वथाभावोऽस्ति भावप्राणधारणात्मकस्य जीवस्वभावस्य सद्भावात्। न च तेषां शरीरेण सह नीरक्षीरयोरिवैक्येन वृत्तिः यतस्ते तत्संपर्कहेतुभूतकषाययोगविप्रयोगादतीतानंतरशरीरमात्रावगाहपरिणतत्वेऽप्यत्यंतभिन्नदेहाः। वाचां गोचरमतीतश्च तन्महिमा, यतस्ते लौकिकप्राणधारणमंतरेण शरीरसंबंधमंतरेण च परिप्राप्तनिरुपाधिस्वरूपाः सततं प्रतपन्तीति ॥ ३५ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा—३५

अन्वयार्थः—(येषां) जिनके (जीवस्वभावः) जीवस्वभाव (—प्राणधारणरूप जीवत्व) (न अस्ति) नहीं है और (सर्वथा) सर्वथा (तस्य अभावः च) उसका अभाव भी नहीं है, (ते) वे (भिन्नदेहाः) देहरहित (वाग्गोचरम् अतीताः) वचनगोचरातीत (सिद्धाः भवन्ति) सिद्ध (सिद्ध भगवंत) हैं।

टीकाः—यह सिद्धोंके जीवत्व और देहप्रमाणत्वकी व्यवस्था है।

सिद्धोंके वास्तवमें द्रव्यप्राणके धारणस्वरूपसे जीवस्वभाव मुख्यरूपसे नहीं है, (उन्हें) जीवस्वभावका सर्वथा अभाव भी नहीं है, क्योंकि भावप्राणके धारणस्वरूप जीवस्वभावका मुख्यरूपसे सद्भाव है। और उन्हें शरीरके साथ नीरक्षीरकी भांति एकरूप वृत्ति नहीं है, क्योंकि शरीरसंयोगके हेतुभूत कषाय और योगका वियोग होगया है इसलिये वे अतीत अनन्तर शरीरप्रमाण अवगाहरूप परिणत होने पर भी अत्यन्त देह रहित हैं। और वचनगोचरातीत उनकी महिमा है, क्योंकि लौकिक प्राणके धारण बिना और शरीरके सम्बन्ध बिना सम्पूर्णरूपसे प्राप्त किये हुए निरुपाधि स्वरूप द्वारा वे सतत प्रतपते हैं (—प्रतापवंत वर्तते हैं) ॥ ३५ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ३५

अथ सिद्धानां शुद्धजीवत्वं अतीतशरीरप्रमाणाकाशव्यापकत्वादिति व्यवहारेण भूतपूर्वकन्यायेन किंचिन्न्यूनचरमशरीरप्रमाणं च व्यवस्थापयति,:-जेसिं जीवसहाओ णत्थि-येषां कर्मजनितद्रव्यप्राणभावप्राणरूपो जीवस्वभावो नास्ति, ते होंति सिद्धा—ते भवन्ति सिद्धा इति संबंधः। यदि तत्र द्रव्यभावप्राणा न संति तर्हि बौद्धमतवत्सर्वथा जीवाभावो भविष्यतीत्याशंक्योत्तरमाह-अभावो य सव्वहा तस्स णत्थि-शुद्धसत्ताचैतन्यज्ञानादिरूपशुद्धभावप्राणसहितत्वात्तत्र सिद्धावस्थायां सर्वथा जीवाभावोपि नास्ति च। सिद्धाः कथंभूताः। भिण्णदेहा-अशरीरात् शुद्धात्मनो विपरीताः शरीरोत्पत्तिकारणभूताः मनोवचनकाययोगाः क्रोधादिकषायाश्च न संतीति भिन्नदेहा अशरीरा ज्ञातव्याः। पुनश्च कथंभूताः। वचिगोयरमतीदा—सांसारिकद्रव्यप्राणभावप्राणरहिता अपि विजयंते प्रतपंतीति हेतोर्वचनगोचरातीतास्तेषां महिमा स्वभावः अथवा सम्यक्त्वाद्यष्टगुणैस्तदंतर्गतानंतगुणैर्वा सहितास्तेन कारणेन वचनगोचरातीता इति। अथात्र

यथा पर्यायरूपेण पदार्थानां क्षणिकत्वं दृष्ट्वातिव्याप्तिं कृत्वा द्रव्यरूपेणापि क्षणिकत्वं मन्यते सौगतः तथेन्द्रियादिदशप्राणसहितस्याशुद्धजीवस्याभावं दृष्ट्वा मोक्षावस्थायां केवलज्ञानाद्यनंतगुणसहितस्य शुद्धजीवस्याप्यभावं मन्यत इति भावार्थः ॥ ३५ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ३५

उत्थानिका—आगे कहते हैं कि शुद्ध जीवपना सिद्धोंके होता है। वे सिद्ध पूर्वके या अंतके शरीरप्रमाण मात्र आकाशमें व्यापी होते हैं इसलिये व्यवहारसे या भूतपूर्व न्यायसे किंचित् कम अंतिम शरीरके प्रमाण हैं।

अन्वय सहित सामान्यार्थ—[जेसिं] जिन सिद्धोंमें [जीवसहाओ) संसारी जीवका अशुद्ध स्वभाव [णत्थि] नहीं रहता है [य] किन्तु (तस्स) उस जीव स्वभाव का [सव्वहा] सर्वथा [अभावो णत्थि] अभाव भी नही है [ते] वे [भिण्णदेहा] सर्व देहोंसे जुदे [वचिगोयरमदीदा] वचनोंसे अगोचर ऐसे (सिद्धा) सिद्ध भगवान (हौंति) होते हैं।

विशेषार्थ—कर्मोंके उदयसे उत्पन्न जो शरीरधारी आत्मामें इंद्रियादि द्रव्य तथा भाव प्राण थे उन प्राणोंका सिद्धोंमें अभाव होजाता है। यहां शिष्य शंका करता है कि—जब द्रव्य तथा भावप्राण ही न रहे तब क्या बौद्धमतकी तरह सर्वथा जीवका अभाव हो जायगा ? इस शंकाका उत्तर कहते हैं कि-जीवके असली स्वभावका नाश नहीं होता वहां शुद्ध सत्ता चैतन्य ज्ञानादि रूप शुद्ध भाव प्राण सदा रहते हैं। वे सिद्ध भगवान, शरीररहित शुद्धात्मासे विपरीत जो शरीरकी उत्पत्तिके कारण मन वचन काय योग हैं तथा क्रोधादि कषाय हैं उनसे शून्य होनेके कारण शरीररहित अशरीर हैं, वे सिद्ध भगवान संसारीक द्रव्य तथा भाव प्राणोंसे रहित होनेपर भी अपने स्वभावमें प्रकाशमान रहते हैं। इसलिये हम अल्पज्ञानियोंके वचनोंसे उनकी महिमा या स्वभाव कहा नहीं जा सक्ता है। वे सम्यक्त्व आदि आठ गुणों व इनहीमें अंतर्भूत अनन्तगुणोंके धारी हैं इसलिये भी उनका वर्णन नहीं हो सक्ता है। यहां यह भावार्थ है कि सौगत अर्थात् बौद्धमती जैसे पर्यायकी अपेक्षा पदार्थोंका क्षणिकपना देखकर उसकी अतिव्याप्ति मानकर द्रव्यरूपसे भी पदार्थोंका क्षणिकपना मान लेता है वैसे इन्द्रियादि दश प्राणोंके धारी अशुद्ध जीवपनेका अभाव देखकर मोक्षकी अवस्थामें केवलज्ञानादि अनंतगुण सहित शुद्ध जीवका भी अभाव मान लेता है ॥ ३५ ॥

समय व्याख्या गाथा ३६

सिद्धस्य कार्यकारणभावनिरासोऽयम्।

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥ ३६ ॥

न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात् कार्यं न तेन सः सिद्धः।
उत्पादयति न किंचिदपि कारणमपि तेन न स भवति ॥ ३६ ॥

यथा संसारी जीवो भावकर्मरूपयात्मपरिणामसंतत्या द्रव्यकर्मरूपया च पुद्‌गलपरिणामसंतत्या कारणभूतया तेन तेन देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपेण कार्यभूत उत्पद्यते, न तथा सिद्धरूपेणापीति। सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमुत्पद्यमानो नान्यतः कुतश्चिदुत्पद्यत इति। यथैव च स एव संसारी भावकर्मरूपामात्मपरिणामसंततिं द्रव्यकर्मरूपां च पुद्‌गलपरिणामसंततिं कार्यभूतां कारणभूतत्वेन निर्वर्तयन् तानि तानि देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपाणि कार्याण्युत्पादयत्यात्मनो न तथा सिद्धरूपमपीति। सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमात्मानमुत्पादयन्नान्यत्किञ्चिदुत्पादयति

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ३६

अन्वयार्थः—(यस्मात् सः सिद्धः) वे सिद्ध [कुतश्चित् अपि) किसी (अन्य) कारणसे (न उत्पन्नः) उत्पन्न नहीं होते (तेन) इसलिये (कार्यं न) कार्य नहीं है, और (किंचित् अपि) किसी भी (अन्य कार्यको) (न उत्पादयति) उत्पन्न नहीं करते (तेन) इसलिये (सः) वे (कारणम् अपि) कारण भी (न भवति) नहीं हैं।

टीकाः—यह, सिद्धको कार्यकारणभाव होनेका निरास है

जिसप्रकार संसारी जीव, कारणभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसंतति और द्रव्यकर्मरूप पुद्‌गलपरिणामसंतति द्वारा, उन-उन देव-मनुष्य-तिर्यञ्च-नारकके रूपमें कार्यभूतरूपसे उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सिद्धरूपसे भी उत्पन्न होता है—ऐसा नहीं है, (और) सिद्ध (-सिद्धभगवान) वास्तवमें, दोनों कर्मोंका क्षय होने पर, स्वयं (सिद्धरूपसे) उत्पन्न होते हुए अन्य किसी कारणसे (-भावकर्मसे या द्रव्यकर्मसे) उत्पन्न नहीं होते।

पुनश्च, जिस प्रकार वही संसारी (जीव) कारणभूत होकर कार्यभूत भावकर्मरूप आत्मपरिणामसंतति और द्रव्यकर्मरूप पुद्‌गलपरिणामसंतति रचता हुआ कार्यभूत ऐसे वे-वे देव-मनुष्य-तिर्यञ्च नारकके रूप अपनेमें उत्पन्न करता है, उसी प्रकार सिद्धका रूप भी (अपनेमें) उत्पन्न करता है—ऐसा नहीं है, (और) सिद्ध वास्तवमें, दोनों कर्मोंका क्षय होने पर, स्वयं अपनेको (सिद्धरूपसे) उत्पन्न करते हुए अन्य कुछ भी (भावद्रव्यकर्मस्वरूप या देवादिस्वरूप कार्य) उत्पन्न नही करते ॥ ३६ ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—३६

अथ सिद्धस्य कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणाभावं साधयति,-ण कदाचिवि उप्पण्णो—संसारिजीववन्नरनारकादिरूपेण कापि काले नोत्पन्नः। जम्हा—यस्मात्कारणात्, कज्जं ण तेण सो सिद्धो--तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षया स सिद्धः कार्यं न भवति, उप्पादेदि ण किंचिवि, स्वयं कर्मनोकर्मरूपं किमपि नोत्पादयति-कारणमिह तेण ण सो होदि-तेन कारणेन स सिद्धः इह जगति कर्मनोकर्मापेक्षया कारणमपि न भवतीति। अत्र गाथासूत्रे य एव शुद्धनिश्चयेन कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यं कारणं च न भवति स एवानंतज्ञानादिसहितः कर्मोदयजनितनवतरकर्मादानकारणभूतमनोवचनकायव्यापारनिवृत्तिकाले साक्षादुपादेयो भवतीति तात्पर्यं ॥ ३६ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा —३६

उत्थानिका—आगे सिद्ध भगवानके कर्म और नो कर्मकी अपेक्षा कार्य और कारणभावका अभाव दिखलाते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(जम्हा) क्योंकि (कुदोचि वि) किसीसे भी (उप्पण्णो ण) उत्पन्न नहीं हुए हैं (तेण) इस कारणसे (सो सिद्धो) वह सिद्ध भगवान (कज्जं ण) कार्य्य नहीं है। तथा (किंचि वि) किसीको भी (ण उप्पादेदि) नही उत्पन्न करते हैं (तेण) इस कारणसे (स) वह सिद्ध भगवान (कारणमवि) कारण भी [ण होदि) नहीं होते हैं।

विशेषार्थ—जैसे संसारी जीव कर्मोंके उदयसे नरनारकादि रूपसे उत्पन्न होते रहते हैं वैसे सिद्ध भगवान कर्मोंके उदयसे व नोकर्म रूपसे नहीं उत्पन्न होते हैं इसलिये वे किसीके कार्य नही हैं, न वे भगवान स्वयं किसी कर्मबन्धको उपजाते हैं, न नोकर्मरूपी शरीर पैदा करते हैं इसलिये वह सिद्ध भगवान कर्म और नो कर्मकी अपेक्षासे कारण भी नही हैं। इस गाथा सूत्रमें जो कोई शुद्ध निश्चयनयसे कर्म और नोकर्मकी अपेक्षासे न कार्य है, न कारण है, वह ही अनंतज्ञानादि सहित है, उसीको ही कर्मोंके उदयसे उत्पन्न व नवीन कर्मोंके ग्रहणमें कारण ऐसे मन वचन कायके व्यापारोंसे निवृत्त होकर साक्षात् ग्रहण करना योग्य है ॥ ३६ ॥

समय व्याख्या गाथा ३७

अत्र जीवाभावो मुक्तिरिति निरस्तम्।

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥ ३७ ॥

शाश्वतमथोच्छेदो भव्यमभव्यं च शून्यमितरच्च।

विज्ञानमविज्ञानं नापि युज्यते असति सद्भावे ॥ ३७ ॥

द्रव्यं द्रव्यतया शाश्वतमिति, नित्ये द्रव्ये पर्यायाणां प्रतिसमयमुच्छेद इति, द्रव्यस्य सर्वदा अभूतपर्यायैः भाव्यमिति, द्रव्यस्य सर्वदा भूतपर्यायैरभाव्यमिति, द्रव्यमन्यद्रव्यैः सदा शून्यमिति, द्रव्यं स्वद्रव्येण सदाऽशून्यमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनंतं ज्ञानं क्वचित्सांतं ज्ञानमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनंतं क्वचित्सांतमज्ञानमिति—एतदन्यथानुपपद्यमानं मुक्तौ जीवस्य सद्भावमावेदयतीति ॥ ३७ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ३७

अन्वयार्थः—(सद्भावे असति) यदि (मोक्षमें) जीवका सद्भाव न हो तो (शाश्वतम्) शाश्वत, (अथ उच्छेदः) नाशवंत, [भव्यम्] भव्य [–होने योग्य], (अभव्यम् च) अभव्य (न होने योग्य), (शून्यम्) शून्य, (इतरत् च) अशून्य, (विज्ञानम्) विज्ञान और (अविज्ञानम्) अविज्ञान (न अपि युज्यते) (जीव द्रव्यमें) भी घटित नहीं हो सकते। (इसलिये मोक्षमें जीवका सद्भाव है ही।)

टीकाः—यहां, 'जीवका अभाव सो मुक्ति है' इस बातका खंडन किया है।

(१) द्रव्य द्रव्यरूपसे शाश्वत है, (२) नित्य द्रव्यमें पर्यायोंका प्रति समय नाश होता है, (३) द्रव्य सर्वदा अभूत पर्यायोंरूपसे भाव्य (–होनेयोग्य, परिणमित होने योग्य) है, (४) द्रव्य सर्वदा भूत पर्यायोंरूपसे अभाव्य (—न होनेयोग्य) है, (५) द्रव्य अन्य द्रव्योंसे सदा शून्य है, (६) द्रव्य स्वद्रव्यसे सदा अशून्य है, [७] किसी जीवद्रव्यमें अनंत ज्ञान और किसीमें सांत ज्ञान है, (८] किसी जीवद्रव्यमें अनंत अज्ञान और किसीमें सांत अज्ञान है—यह सब, अन्यथा घटित न होता हुआ, मोक्षमें जीवके सद्भावको प्रगट करता है ॥ ३७ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ३७

अथ जीवाभावो मुक्तिरिति सौगतमतं विशेषेण निराकरोति:-सस्सदमधमुच्छेदं-सिद्धावस्थायां तावट्टंकोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेणाविनश्वरत्वाद् द्रव्यरूपेण शाश्वतस्वरूपमस्ति, अथ अहो पर्यायरूपेणागुरुलघुकगुणषट्स्थानगतहानिवृद्ध्यपेक्षयोच्छेदोऽस्ति। भव्वमभव्वं च—निर्विकारचिदानंदैकस्वभावपरिणामेन भवनं परिणमनं भव्यत्वं, अतीतमिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामेन अभवनमपरिणमनमभव्यत्वं च सिद्धावस्थायां। सुण्णमिदरं च-स्वशुद्धात्मद्रव्यविलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वं, निजपरमात्मानुगतस्वद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणेतरत्वाशून्यत्वं। विण्णाणमविण्णाणं—समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशनसमर्थसकलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानं, विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थज्ञानेन परिज्ञानादविज्ञानमिति। णवि जुज्जदि असदि सब्भावे-इदं तु नित्यत्वादिस्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे नोऽपि न युज्यते न घटते तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोऽस्ति। अत्र स एवोपादेय इति भावार्थः ॥ ३७ ॥

एवं भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं जीवस्यामूर्तत्वव्याख्यानरूपेण गाथात्रयं गतं।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ३७

उत्थानिका—आगे जीवका अभाव होना सो मुक्ति है ऐसा जो सौगत या बौद्धका मत है उसका निराकरण करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(सस्सदम्) शाश्वतपना (अध) और (उच्छेदं) व्ययपना [भव्वम्] भव्यपना (च) और [अभव्वं] अभव्यपना, (सुण्णं) शून्यपना [च] और (इदरं) दूसरा अशून्यपना (विण्णाणं) विज्ञान [अविण्णाणं] तथा अविज्ञान (सब्भावे असदि) सिद्ध जीवकी सत्ता विद्यमान न रहते हुए [ण वि जुज्जदि] नहीं हो सकते हैं।

विशेषार्थ—सिद्ध भगवानकी सत्ता सदा बनी रहती है इसीसे उनमें नीचे लिखे आठ स्वभाव सिद्ध होते हैं [१] शाश्वतपना इसलिये है कि वे सिद्ध भगवान अपने टंकोत्कीर्ण ज्ञाता दृष्टामय एक स्वभाव रूपसे सदा बने रहते हैं, नष्ट नहीं होते हैं। (२) उच्छेद या व्ययपना इसलिये है कि पर्यायकी अपेक्षा अगुरुलघुगुणमें षट्‌स्थान पतित हानि वृद्धिकी अपेक्षासे सदा ही पर्यायोंका नाश हुआ करता है—ये व्ययपना उत्पादका अविनाभावी है। यह उत्पाद व्यय होना हरएक द्रव्यकी पर्यायका स्वभाव है। [३] भव्यपना इसलिए कि विकार रहित चिदानंदमई एक स्वभावसे वे सदा परिणमन करते रहते हैं, यह उनमें होनापना या भव्यपना है। (४) अभव्यपना—इसलिये कि वे सिद्ध अवस्थामें कभी भी अतीत मिथ्यात्व व रागादि विभाव परिणामोंमें नहीं परिणमन करेंगे। इन रूप न होना यही अभव्यपना है। [५] शून्यपना—इस लिये कि अपने शुद्धात्मद्रव्यसे विलक्षण जो परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल व परभाव चतुष्टय हैं इनका नास्तिपना या शून्यपना या अभाव सिद्धोंके विद्यमान है। (६) अशून्यपना—इसलिये है कि अपने परमात्मा सम्बन्धी निजद्रव्य, निजक्षेत्र, निजकाल व निजकाल रूप चतुष्टयसे उनमें अस्तिपना है। वे कभी अपने शुद्ध गुणोंसे रहित नहीं होते हैं (७) विज्ञान—इसलिये कि वे सर्व द्रव्यके सर्वगुण व सर्व पर्यायोंको एक समय प्रकाश करनेको समर्थ पूर्ण निर्मल केवलज्ञान गुणसे पूर्ण हैं। (८) अविज्ञान—इसलिये कि उनमें अब मतिज्ञानादि क्षयोपशमरूप अल्पज्ञानका अभाव है अर्थात् अब वे इन विभावरूप अशुद्ध ज्ञानोंसे शून्य हैं। इस तरह ये नित्यपना, अनित्यपना, भव्यपना, अभव्यपना, शून्यपना, अशून्यपना, विज्ञान, अविज्ञान ये आठ स्वभाव-यदि

जीवकी सत्ता मोक्षमें न मानी जावे तो–सिद्ध नहीं होसक्ते हैं। जीवकी सत्ता रहते हुए ही सिद्ध होते हैं इनके अस्तित्वसे ही मुक्तिमें शुद्ध जीवकी सत्ता रहती है। यहां यह तात्पर्य है कि वही शुद्ध जीव ग्रहण करने योग्य है ॥ ३७ ॥

इस तरह भट्टचार्वाकके मतके अनुसारी शिष्यके संदेहोंको नाश करनेके लिये जीवका अमूर्त्तपना कहते हुए तीन गाथाएं पूर्ण हुईं ॥ ३७ ॥

समय व्याख्या गाथा ३८

चेतयितृत्वगुणव्याख्येयम्।

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण ॥ ३८ ॥

कर्मणां फलमेकः एकः कार्यं तु ज्ञानमथैकः।
चेतयति जीवराशिश्चेतकभावेन त्रिविधेन ॥ ३८ ॥

एके हि चेतयितारः प्रकृष्टतरमोहमलीमसेन प्रकृष्टतरज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन प्रकृष्टतरवीर्यांतरायावसादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखरूपं कर्मफलमेव प्राधान्येन चेतयंते। अन्ये तु प्रकृष्टतरमोहमलीमसेनापि प्रकृष्टज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन मनाग्वीर्यांतरायक्षयोपशमासादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखरूपकर्मफलानुभवनसंवलितमपि कार्यमेव प्राधान्येन चेतयंते। अन्यतरे तु प्रक्षालितसकलमोहकलंकेन समुच्छिन्नकृत्स्नज्ञानावरणतयात्यंतमुन्मुद्रितसमस्तानुभावेन चेतकस्वभावेन समस्तवीर्यांतरायक्षयासादितानंतवीर्या अपि निर्जीर्णकर्मफलत्वादत्यन्तकृतकृत्यत्वाच्च स्वतोऽव्यतिरिक्तस्वाभाविकसुखं ज्ञानमेव चेतयंत इति ॥ ३८ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा—३८

अन्वयार्थः—[त्रिविधेन चेतकभावेन] त्रिविध चेतकभाव द्वारा [एकः जीवराशिः) एक जीवराशि [कर्मणां फलम्] कर्मोंके फलको, [एकः तु] एक जीवराशि (कार्यं) कार्यको [कर्मचेतनाको] (अथ) और (एकः) एक जीवराशि (ज्ञानम्) ज्ञानको (चेतयति) चेतती (-वेदती) है।

टीकाः–यह, चेतयितृत्वगुणकी व्याख्या है।

कोई चेतयिता अर्थात् आत्मा तो, जो अति प्रकृष्ट मोहसे मलिन है और जिसका प्रभाव (शक्ति)

अति प्रकृष्ट ज्ञानावरणसे मुंद गया है ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा सुखदुःखरूप 'कर्मफल' को ही प्रधानतः चेतते हैं, क्योंकि उनका अति प्रकृष्ट वीर्यान्तरायसे कार्य करनेका [—कर्मचेतनारूप परिणमित होनेका] सामर्थ्य नष्ट हो गया है।

अन्य चेतयिता अर्थात् आत्मा, जो अति प्रकृष्ट मोहसे मलिन है और जिसका प्रभाव प्रकृष्ट ज्ञानावरणसे मुंद गया है ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा—भले ही सुखदुःखरूप कर्मफलके अनुभवसे मिश्रित-रूपसे भी—'कार्य' [कर्म चेतना] को ही प्रधानतः चेतते हैं, क्योंकि उन्होंने अल्प वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे कार्य करनेका सामर्थ्य प्राप्त किया है।

अन्य चेतयिता अर्थात् आत्मा जो, समस्त वीर्यान्तराय के क्षयसे अनन्त वीर्यको प्राप्त हैं, सकल मोहकलंक धुल जाने के तथा समस्त ज्ञानावरण के विनाश के कारण समस्त प्रभाव अत्यन्त विकसित होजाने से चेतकस्वभाव द्वारा, कर्मफल निर्जरित होजाने के और अत्यन्त कृतकृत्यपना होजाने के कारण अपने से अभिन्न स्वाभाविक सुखरूप ज्ञान को ही चेतते [अनुभव करते] हैं॥ ३८॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ३८

अथ त्रिविधचेतनाव्याख्यानं प्रतिपादयतिः,--'कम्माणं फलमेको चेदगभावेण वेदयदि जीवरासी' निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितप्रकृष्टतरमोहमलीमसेन चेतकभावेन प्रच्छादितसामर्थ्यः सन्नेको जीवराशिः कर्मफलं वेदयति, एको कज्जं तु--अथ पुनरेचस्तेनैव चेतकभावेनोपलब्धसामर्थ्येनेहापूर्वकेष्टानिष्ट-विकल्परूपं कर्म कार्यं तु वेदयत्यनुभवति। णाणमथमेको--अथ पुनरेको जीवराशिस्तेनैव चेतकभावेन विशु-द्धशुद्धात्मानुभूतिभावेन विनाशितकर्ममलकलंकेन केवलज्ञानमनुभवति। कतिसंख्योपेतेन तेन पूर्वोक्तचेतक-भावेन। तिविहेण--कर्मफलकर्मकार्यज्ञानरूपेण त्रिविधेनेति॥ ३८ ॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा ३८

उत्थानिका—आगे यह बताते हैं कि चेतना तीन प्रकारकी होती है—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(एक्को) एक (जीवरासी) जीवोंका समुदाय (कम्माणं फलं) कर्मोंके फलको (तु एक्को) और एक जीवराशि (कज्जं) कार्यको (अध) तथा (एक्को) एक जीव राशि (णाणं) ज्ञानको (चेदयदि) वेदती है या अनुभव करती है। इस तरह (तिविहेण) तीन तरहकी (चेदगभावेण) चेतनाके भावसे जीवोंके अनुभव होता है।

विशेषार्थ—निर्मल शुद्ध आत्माकी अनुभूतिको न पाकर अशुद्ध भावोंसे बांधा जो गाढ मोहनीय कर्म उसके उदयसे प्राप्त जो अत्यन्त मलीन चेतना उसीसे जिनके आत्माकी शक्ति ढक रही है ऐसा एक जीवसमुदाय कर्मोंके फलोंको ही अनुभव करता है। दूसरी एक जीवराशि उसी ही मलीन चेतनासे कुछ शक्तिको पाकर इच्छापूर्वक इष्ट या अनिष्टके भेदरूप कर्म या कार्य

का अनुभव करती है तथा एक जीव समुदाय विशुद्ध शुद्धात्माकी अनुभूतिरूप भावनासे कर्म-कलंकको नाश करते हुए अपने शुद्ध चेतनाके भावसे केवलज्ञानको अनुभव करता है । इस तरह यह चेतना तीन प्रकारकी है-कर्मफल चेतना, कर्मचेतना तथा ज्ञानचेतना ॥ ३८ ॥

समय व्याख्या गाथा ३९

अत्र कः किं चेतयत इत्युक्तम् ।

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं ।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥ ३९ ॥

सर्वे खलु कर्मफलं स्थावरकायास्त्रसा हि कार्ययुतम् ।
प्राणित्वमतिक्रांताः ज्ञानं विंदन्ति ते जीवाः ॥ ३९ ॥

चेतयंते अनुभवन्ति उपलभंते विंदंतीत्येकार्थाश्चेतनानुभूत्युपलब्धिवेदनानामेकार्थत्वात् । तत्र स्थावराः कर्मफलं चेतयंते, त्रसाः कार्यं चेतयंते, केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयंते इति ॥३९॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा—३९

अन्वयार्थः-(सर्वे स्थावरकायाः) सर्व स्थावर जीवसमूह (खलु) वास्तवमें (कर्मफलं) कर्मफलको वेदते हैं, (त्रसाः) त्रस (हि) वास्तवमें (कार्ययुतम्) कार्य (कर्मचेतना) सहित कर्मफलको वेदते हैं और (प्राणित्वम् अतिक्रान्ताः) जो प्राणित्वका (—प्राणोंका) अतिक्रम कर गये हैं (ते जीवाः) वे जीव (ज्ञानं) ज्ञानको (विंदन्ति) वेदते हैं।

टीका:-यहां, कौन क्या चेतता है (अर्थात् किस जीवको कौनसी चेतना होती है) यह कहा है ।

चेतता है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है-ये एकार्थ हैं क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदनाका एक अर्थ है । वहां, स्थावर कर्मफलको चेतते हैं, त्रस कार्य (कर्म चेतना) को चेतते हैं, केवलज्ञानी ज्ञानको चेतते हैं ।

भावार्थः—पांच प्रकारके स्थावर जीव अव्यक्त सुखदुःखानुभवरूप शुभाशुभकर्मफलको चेतते हैं । द्वीन्द्रियादि त्रस उसी कर्मफलको इच्छापूर्वक इष्टानिष्ट विकल्परूप कार्यसहित चेतते हैं । परिपूर्ण ज्ञानवंत भगवन्त (अनन्त सौख्य सहित) ज्ञानको ही चेतते हैं ॥ ३९ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ३९

अथात्र कः किं चेतयतीति निरूपयति इति । निरूपयति इति कोर्थः ? इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति एवं प्रश्नोत्तररूपपातनिकाप्रस्तावे सर्वत्रेति शब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः । सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया विंदन्ति-ते सर्वे जीवाः प्रसिद्धाः पंचप्रकाराः स्थावरकाया जीवा अव्यक्तसुखदुःखानुभवरूपं शुभाशुभकर्मफलं विंदंत्यनुभवन्ति । तसा हि कज्जजुदं-द्वीन्द्रियादयस्त्रसजीवाः पुनस्तदेव कर्मफलं निर्विकारपरमानंदैकस्वभावमात्मसुखमलभमानास्संतो विशेषरागद्वेषरूपा तु या कार्य चेतना तत्सहितमनुभवन्ति । पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा-ये तु विशिष्टशुद्धात्मानुभूतिभावनासमुत्पन्नपरमानंदैकसुखामृतसमरसीभा-

वबलेन दशविधप्राणत्वमतिक्रांताः सिद्धजीवास्ते केवलज्ञानं विंदन्ति इत्यत्र गाथाद्वये केवलज्ञानचेतना साक्षादुपादेया ज्ञातव्येति तात्पर्यं ॥ ३९ ॥ एवं त्रिविधचेतनाव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं।

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा ३९

उत्थानिका—आगे शिष्यने प्रश्न किया कि इन तीन प्रकार चेतनाको कौन २ अनुभव करते हैं ? इसका उत्तर आचार्य देते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(खलु) वास्तवमें (सव्वे) सर्व (थावरकाया) स्थावर कायधारी जीव (कम्मफलं) कर्मोंके फलको (हि) निश्चयसे [तसा] त्रस जीव (कज्जजुदं) कार्य सहित कर्मफलको, और (पाणित्तम् अदिक्कंता) जो प्राणोंसे रहित हैं (ते जीवा) वे जीव (णाणं) ज्ञानको (विंदन्ति) अनुभव करते हैं ॥

विशेषार्थ—सर्व ही प्रसिद्ध पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर एकेन्द्रिय जीव अप्रगट सुख दुःखका अनुभव रूप शुभ या अशुभ कर्मके फलको अनुभव करते हैं और द्वेन्द्रियादि त्रस जीव निर्विकार परम आनन्दमई एक स्वभावधारी आत्माके सुखको नहीं अनुभव करते हुए उस कर्मफलको भी अनुभव करते हैं, साथमें विशेष राग द्वेषरूप कार्यकी चेतना भी रखते हैं। तथा जो जीव विशेष शुद्धात्मानुभवकी भावनासे उत्पन्न जो परमानंदमई एक सुखामृतरूप समरसी भाव उसके बल से इन्द्रिय, बल, आयु, उच्छ्वास इन दश प्राणोंको उल्लंघन कर गए हैं ऐसे सिद्ध परमात्मा सो मात्र केवल ज्ञानको अनुभव करते हैं ॥ ३९ ॥

इस तरह तीन प्रकार चेतनाके व्याख्यानकी मुख्यतासे दो गाथाएं पूर्ण हुईं।

समय व्याख्या गाथा ४०

अथोपयोगगुणव्याख्यानम्।

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि ॥ ४० ॥

उपयोगः खलु द्विविधो ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः।
जीवस्य सर्वकालमनन्यभूतं विजानीहि ॥ ४० ॥

आत्मनश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः। सोऽपि द्विविधः—ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्च। तत्र विशेषग्राहि ज्ञानं, सामान्यग्राहि दर्शनम्। उपयोगश्च सर्वदा जीवादपृथग्भूत एव, एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादिति ॥ ४० ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ४०

अब उपयोग गुणका व्याख्यान है ।

अन्वयार्थः-(ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः) ज्ञान और दर्शनसे संयुक्त ऐसा (खलु द्विविधः) वास्तवमें दो प्रकारका (उपयोगः) उपयोग (जीवस्य) जीवको (सर्वकालम्) सर्वकाल (अनन्यभूतं) अनन्यरूपसे [वीजानीहि] जानो ।

टीकाः—आत्माका चैतन्य-अनुविधायी (अर्थात् चैतन्यका अनुसरण करनेवाला) परिणाम सो उपयोग है । वह भी दो प्रकारका है-ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । वहां, विशेपको ग्रहण करनेवाला ज्ञान है और सामान्यको ग्रहण करनेवाला दर्शन है और उपयोग सर्वदा जीवसे अपृथग्भूत ही है, क्योंकि एक अस्तित्वसे रचित है ॥ ४० ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४०

इत ऊर्ध्व मेकोनविंशतिगाथापर्यंतमुपयोगाधिकारः प्रारभ्यते । तद्यथा । अथात्मनो द्वेधोपयोगं दर्शयति । उवओगो-आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणामः उपयोगः चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोयं पटोयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयति इति चैतन्यानुविधायी खलु स्फुटं, दुविहो-द्विविधः । स च कथंभूतः ? णाणेण य दंसणेण संजुत्तो--सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनं ताभ्यां संयुक्तः । जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि--तं चोपयोगं जीवस्य संबन्धित्वेन सर्वकालं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि प्रदेशैरभिन्नं विजानीहीति ॥ ४० ॥ एवं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनरूपेण गाथैका गता ।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ४०

उत्थानिका-आगे उन्नीस गाथातक उपयोगका अधिकार कहते हैं उनमें प्रथम ही बताते हैं कि आत्माके उपयोगके दो भेद हैं-

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(उवओगो) उपयोग (खलु) वास्तवमें (दुविहो) दो प्रकार है (णाणेण य दंसणेण संजुत्तो) ज्ञान और दर्शनसे संयुक्त अर्थात् ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग सो (सव्वकालं) सर्वकाल (जीवस्स) इस जीवसे (अणण्णभूदं) एकरूप है-जुदा नहीं ऐसा (वियाणीहि) जानो ।

विशेषार्थ-आत्माका वह परिणाम जो उसके चैतन्य गुणके साथ रहनेवाला है उसको उपयोग कहते हैं अथवा जो चैतन्य गुणके साथ साथ अन्वय रूपसे परिणमन करे सो उपयोग है अथवा जो पदार्थके जाननेके समय यह घट है यह पट है इत्यादि पदार्थोंको ग्रहण करता हुआ व्यापार करे सो उपयोग है । जो विकल्प सहित उपयोग है सो ज्ञानोपयोग है तथा विकल्प रहित सामान्य उपयोग है सो दर्शनोपयोग है । इन दोनों उपयोगोंके साथ जीव होता है । यह उपयोग जीवसे सदा ही प्रदेशोंकी अपेक्षा अभिन्न है-एक है, यद्यपि संज्ञा, लक्षण, प्रयोजनादिक भेदसे भेद है ॥ ४० ॥

इस तरह उपयोगके ज्ञान व दर्शन ऐसे दो भेद हैं, इसकी सूचना करते हुए एक गाथा कही।

समय व्याख्या गाथा ४१

ज्ञानोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत्।

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥ ४१ ॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानानि पञ्चभेदानि।
कुमतिश्रुतविभङ्गानि च त्रीण्यपि ज्ञानैः संयुक्तानि ॥ ४१ ॥

तत्राभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानं कुमतिज्ञानं कुश्रुतज्ञानं विभङ्गज्ञानमिति नामाभिधानम्। आत्मा ह्यनंतसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धज्ञानसामान्यात्मा। स खल्वनादिज्ञानावरणकर्मावच्छन्नप्रदेशः सन्, यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तदाभिनिबोधिकज्ञानम्, यत्तदावरणक्षयोपशमादनिन्द्रियावलंबाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तत् श्रुतज्ञानम्, यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तदवधिज्ञानम्, यत्तदावरणक्षयोपशमादेव परमनोगतं मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तन्मनःपर्ययज्ञानम्, यत्सकलावरणात्यंतक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं विशेषेणावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलज्ञानम्। मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमाभिनिबोधिकज्ञानमेव कुमतिज्ञानम्, मिथ्यादर्शनोदयसहचरितं श्रुतज्ञानमेव कुश्रुतज्ञानम्, मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमवधिज्ञानमेव विभंगज्ञानमिति स्वरूपाभिधानम्। इत्थं मतिज्ञानादिज्ञानोपयोगाष्टकं व्याख्यातम् ॥ ४१ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ४१

अन्वयार्थः—(आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि) आभिनिबोधिक (—मति), श्रुत, अवधि, मनपर्यय और केवल—(ज्ञानानि पंचभेदानि) इस प्रकार ज्ञानके पांच भेद हैं, (कुमतिश्रुतविभङ्गानि च) और कुमति, कुश्रुत था विभंग [त्रीणि अपि] यह तीन [अज्ञान] भी (ज्ञानैः) (पांच) ज्ञानके साथ (संयुक्तानि) संयुक्त किये गये। (-इस प्रकार ज्ञानोपयोगके आठ भेद हैं।)

टीकाः- यह, ज्ञानोपयोगके भेदोंके नाम और स्वरूपका कथन है।

वहां, (१) आभिनिबोधिकज्ञान (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विभंगज्ञान—इस प्रकार (ज्ञानोपयोगके भेदोंके) नामका कथन है।

(अब उनके स्वरूपका कथन किया जाता है:-) आत्मा वास्तवमें अनंत, सर्व आत्मप्रदेशोंमें

व्यापक, विशुद्ध ज्ञानसामान्यस्वरूप है। वह (आत्मा) वास्तवमें अनादि ज्ञानावरणकर्मसे आच्छादित प्रदेशवाला-वर्तता हुआ, (१) उस प्रकारके (अर्थात् मतिज्ञानके) आवरणके क्षयोपशमसे और इन्द्रिय-मनके अवलम्बनसे मूर्त-अमूर्त द्रव्यका विकलरूपसे (अपूर्ण रूपसे) विशेषत: अवबोधन करता है वह आभिनिबोधिकज्ञान है, (२) उस प्रकारके (अर्थात् श्रुतज्ञानके) आवरणके क्षयोपशमसे और मनके अवलम्बनसे मूर्त अमूर्त द्रव्यका विकलरूपसे विशेषत: अवबोधन करता है वह श्रुतज्ञान है, (३) उस प्रकारके (अवधि ज्ञानके) आवरणके क्षयोपशमसे ही मूर्त द्रव्यका विकलरूपसे विशेषत: अवबोधन करता है वह अवधिज्ञान है, (४) उस प्रकारके (मनःपर्यय ज्ञान आवरणके) क्षयोपशमसे ही परमनोगत (-दूसरोंके मनके साथ सम्बन्धवाले) मूर्त द्रव्यका विकलरूपसे विशेषत: अवबोधन करता है वह मनःपर्ययज्ञान है, (५) समस्त आवरणके अत्यन्त क्षयसे, केवल ही (-अकेला आत्मा ही) मूर्त-अमूर्त द्रव्यका सकलरूपसे विशेषत: अवबोधन करता है वह स्वाभाविक केवलज्ञान है। (६) मिथ्यादर्शनके उदयके साथका आभिनिबोधिकज्ञान ही कुमतिज्ञान है, (७) मिथ्यादर्शनके उदयके साथका श्रुतज्ञान ही कुश्रुतज्ञान है, (८) मिथ्यादर्शनके उदयके साथका अवधिज्ञान ही विभंगज्ञान है।-इस प्रकार (ज्ञानोपयोगके भेदोंका) स्वरूपका कथन है।

इस प्रकार मतिज्ञानादि आठ ज्ञानोपयोगोंका व्याख्यान किया गया ॥ ४१ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा -४१

अथ ज्ञानोपयोगभेदानां संज्ञां प्रतिपादयति,-आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ज्ञानानि पंचभेदानि भवन्ति। कुमतिज्ञानं कुश्रुतज्ञानं विभंगावधिज्ञानमिति च मिथ्याज्ञानत्रयं भवति। अयमत्र भावार्थः। यथैकोप्यादित्यो मेघावरणवशेन बहुधा भिद्यते तथा निश्चयनयेनाखंडैकप्रतिभासस्वरूपोप्यात्मा व्यवहारनयेन कर्मपटलवेष्टितः सन्मतिज्ञानादिभेदेन बहुधा भिद्यत इति ॥ ४१ ॥ इत्यष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ४१

उत्थानिका-आगे ज्ञानोपयोगके भेदोंके नाम कहते हैं-

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि) मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल (पंचभेयाणि) ये पांच भेद रूप (णाणाणि) सम्यग्ज्ञान हैं सो (कुमदिसुदविभंगाणि) कुमति कुश्रुत व विभंग [तिण्णि वि णाणेहिं] ऐसे तीन अज्ञानोंसे (संजुत्ते) संयुक्त सर्व आठ भेद ज्ञानके होते हैं।

विशेषार्थ-जैसे सूर्य एक ही है, मेघोंके आवरण होनेसे उसकी प्रभाके अनेक भेद होजाते हैं-वैसे ही निश्चयनयसे यह आत्मा भी अखंड है व एक तरहसे प्रकाशमान है तौभी व्यवहारनयसे कर्मोंके पटलोंसे घिरा हुआ है इसलिये उसके ज्ञानके यह सुमति ज्ञान आदि बहुत भेद हो

जाते हैं ।। ४१ ।। आठ प्रकार के ज्ञानोपयोग की संज्ञा कहने वाली गाथा समाप्त हुई ।

आगे छ ६ गाथा ओं को समय व्याख्या टीका उपलब्ध नहीं है अतः संख्या १ से ६ तक पृथक् दी हैं ।

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—१

अथ मत्यादिपंचज्ञानानां क्रमेण गाथापंचकेन व्याख्यानं करोति । तथाहि:—

मदिणाणं पुण तिविहं उवलद्धी भावणं च उवओगो ।
तह एव चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं ।। १ ।।

मदिणाणं—अयमात्मा निश्चयनयेन तावदखण्डैकविशुद्धज्ञानमयः व्यवहारनयेन संसारावस्थायां कर्मावृतः सन्मतिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति पंचभिरिन्द्रियैर्मनसा च मूर्तामूर्तं वस्तु विकल्परूपेण यज्जानाति तन्मतिज्ञानं । पुण तिविहं—तच्च पुनस्त्रिविधं, उवलद्धी भावणं च उवओगो—उपलब्धिर्भावना तथोपयोगश्च, मतिज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितार्थग्रहणशक्तिरुपलब्धिरुपलब्धेऽर्थे पुनः पुनश्चिंतनं भावना । नीलमिदं पीतमिदं इत्यादिरूपेणार्थग्रहणव्यापार उपयोगः । तह एव चदुवियप्पं—तथैवावग्रहेहावायधारणाभेदेन चतुर्विधं,वरकोष्ठबीजपदानुसारिसंभिन्नश्रोतृताबुद्धिभेदेन वा । दंसणपुव्वं हवदि णाणं—तच्च मतिज्ञानं सत्तावलोकनदर्शनपूर्वकमिति । अत्र निर्विकारशुद्धात्मानुभूत्यभिमुखं यन्मतिज्ञानं तदेवोपादेयभूतानंतसुखसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं पुनर्व्यवहारेणेति तात्पर्यं ।। १ ।।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा १

उत्थानिका—आगे मति आदि पांच ज्ञानका स्वरूप गाथा पांचसे कहते हैं । ये गाथाएं अमृतचंदकृत टीकामें नहीं हैं ।

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(पुण) तथा (मदिणाणं) मतिज्ञान (तिविहं) तीन प्रकार है (उवलद्धी) उपलब्धि या जाननेकी शक्ति, (उवओगो) उपयोग या जाननरूप व्यापार (च भावणं) और भावना या जाने हुएका विचार । (तह एव) तैसे ही वह (चदुवियप्पं) चार प्रकार है । (दंसणपुव्वं) दर्शनपूर्वक (णाणं) यह ज्ञान (हवदि) होता है ।

विशेषार्थ—यह आत्मा निश्चय नयसे अखंड एक शुद्ध ज्ञानमई है व व्यवहारनयसे संसारकी अवस्थामें कर्मोंसे ढका हुआ है । मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होनेपर पांच इन्द्रिय और मनके द्वारा जो कोई मूर्तीक और अमूर्तीक वस्तुओंको विकल्प सहित या भेद सहित जानता है वह मतिज्ञान है । सो तीन प्रकार है—मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे जो पदार्थोंको जाननेकी शक्ति प्राप्त होती है उसको उपलब्धि मतिज्ञान कहते हैं । यह नीला है, यह पीला है । इत्यादि रूपसे जो पदार्थके जाननेका व्यापार उसको उपयोग मतिज्ञान कहते हैं । जाने हुए पदार्थको बारबार चिन्तवन करना सो भावना मतिज्ञान है । यही मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणाके भेदसे चार प्रकार है । अथवा कोष्ठ बुद्धि, बीज बुद्धि, पदानुसारी बुद्धि और संभिन्न

श्रोतृता बुद्धिके भेदसे भी चार प्रकार है। यह मतिज्ञान सत्ता अवलोकनरूप दर्शनपूर्वक होता है। यहां यह तात्पर्य है कि निश्चयनयसे निर्विकार शुद्धात्मानुभवके सन्मुख जो मतिज्ञान है वही उपादेयभूत अनंतसुखका साधक होनेसे ग्रहण योग्य है—उसीका साधक जो बाहरी मतिज्ञान है वह व्यवहारनयसे उपादेय है ॥ १ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा २

सुदणाणं पुण णाणी भणंति लद्धीय भावणा चेव।
उवओगणयवियप्पं णाणेण य वत्थु अत्थस्स ॥ २ ॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति-स एव पूर्वोक्तात्मा श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति यन्मूर्तामूर्तं वस्तु परोक्षरूपेण जानाति तत्पुनः श्रुतज्ञानं ज्ञानिनो भणन्ति। तच्च कथंभूतं ? लद्धी य भावणा चेव लब्धिरूपं च भावनारूपं चैव। पुनरपि किंविशिष्टं। उवओगणयवियप्पं--उपयोगविकल्पं नयविकल्पं च। उपयोगशब्देनात्र वस्तुग्राहकं प्रमाणं भण्यते नयशब्देन तु वस्त्वेकदेशग्राहको ज्ञातुरभिप्रायो विकल्पः। तथा चोक्तं। नयो ज्ञातुरभिप्रायः। केन कृत्वा वस्तुग्राहकं प्रमाणं वस्त्वेकदेशग्राहको नय इति चेत् ? णाणेण य--ज्ञातृत्वेन परिच्छेदकत्वेन ग्राहकत्वेन, वत्थु अत्थस्स--सकलवस्तुग्राहकत्वेन प्रमाणं भण्यते। अर्थस्य वस्त्वेकदेशस्य, कथंभूतस्य ? गुणपर्यायरूपस्य ग्रहणेन पुनर्नय इति। अत्र विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणाभेदरत्नत्रयात्मकं यद्भावश्रुतं तदेवोपादेयभूतपरमात्मतत्त्वसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं तु व्यवहारेणेति तात्पर्यं ॥ २ ॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा २

उत्थानिका-आगे श्रुतज्ञानको कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(पुण) फिर (णाणी) ज्ञानीजन (सुदणाणं) श्रुतज्ञानको (भणंति) कहते हैं (वत्थु अत्थस्स णाणेण य) पदार्थ और उसके भावको जाननेसे (लद्धी य भावणा चेव उवओगणयवियप्पं) उस श्रुतज्ञानके लब्धि, भावना, उपयोग व नय ऐसे भेद होते हैं।

विशेषार्थ-वही आत्मा जिसने मतिज्ञानसे पदार्थको जाना था, जब श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम होनेपर जो मूर्त और अमूर्त पदार्थोंको जानता है उसको ज्ञानीजन श्रुतज्ञान कहते हैं वह श्रुतज्ञान जो शक्तिकी प्राप्ति रूप है सो लब्धि है, जो बार बार विचार रूप है सो भावना है। उसीके उपयोग और नय ऐसे भी दो भेद हैं। उपयोग शब्दसे वस्तुको ग्रहण करनेवाला प्रमाण ज्ञान लेना चाहिये तथा नय शब्दसे वस्तुके एक देशको ग्रहण करनेवाला ज्ञाताका अभिप्राय मात्र लेना चाहिये, क्योंकि कहा है-"नयो ज्ञातुरभिप्रायः" कि नय ज्ञाताका अभिप्राय मात्र है।

जो गुणपर्याय रूप पदार्थको सर्व रूपसे जानना सो प्रमाण है और उसीके किसी एक गुण या किसी एक पर्याय मात्रको मुख्यतासे जानना सो नय है। यहां यह तात्पर्य है कि ग्रहण करने योग्य परमात्म तत्त्वका साधक जो विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव रूप शुद्ध आत्मीक तत्त्वका सम्यक् श्रद्धान ज्ञान व आचरण रूप जो अभेद रत्नत्रयरूप भावश्रुत है सो निश्चयनयसे ग्रहण करने योग्य है और व्यवहारनयसे इसी भावश्रुतज्ञानके साधक द्रव्यश्रुतको ग्रहण करना चाहिये ॥२॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ३

ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च।

तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं ॥ ३ ॥

ओहिं तहेव घेप्पदु--अयमात्मावधिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति मूर्तं वस्तु यत्प्रत्यक्षेण जानाति तदवधिज्ञानं भवति तावत् यथापूर्वमुपलब्धिभावनोपयोगरूपेण त्रिधा श्रुतज्ञानं व्याख्यातं तथा साप्यवधि भावनां विहाय त्रिधा गृह्यतां ज्ञायतां भवद्भिः। देसं परमं च ओहि सव्वं च--अथवा देशावधिपरमावधिसर्वावधिभेदेन त्रिधावधिज्ञानं किंतु परमावधिसर्वावधिद्वयं चिदुच्छलननिर्भरानंदरूपपरमसुखामृतरसास्वादसमरसीभावपरिणतानां चरमदेहतपोधनानां भवति। तथा चोक्तं। "परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स" तिण्णिवि गुणेण णियमा--त्रयोप्यवधयो विशिष्टसम्यक्त्वादिगुणेन निश्चयेन भवन्ति। भवेण देसं तहा णियदं--भवप्रत्ययेन योवधिर्देवनारकाणां स देशावधिरेव नियमेनेत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा —३

उत्थानिका—आगे अवधिज्ञानको कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(तहेव) तैसे ही (ओहिं) अवधिज्ञानको (घेप्पदु) ग्रहण करो (देसं) देशावधि (च परमं) और परमावधि (ओहिसव्वं) और सर्वावधि (तिण्णिवि) तीनों ही (णियमा) नियमसे (गुणेण) सम्यक्त्वादि गुणसे होती हैं (तहा) तथा (भवेण) भवके द्वारा (णियदं) नियमसे (देसं) देशावधि होती है।

विशेषार्थ—जो अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होनेपर मूर्तीक वस्तुको प्रत्यक्ष रूपसे जानता है वह अवधिज्ञान है। जैसे पहले श्रुतज्ञानको उपलब्धि भावना तथा उपयोगकी अपेक्षा तीन भेदसे कहा था वैसे यह अवधिज्ञान भावनाको छोडकर उपलब्धि तथा उपयोग स्वरूप है। अवधिज्ञानकी शक्ति सो उपलब्धि है, चेतनकी परिणतिका उधर झुकना सो उपयोग है तथा उसके तीन भेद और भी जानो-देशावधि, परमावधि, सर्वावधि किन्तु इन तीनमेंसे परमावधि और सर्वावधि ज्ञान उन चरमशरीरी मोक्षगामी मुनियोंके होता है जो चैतन्य भावके उछलनेसे

पूर्ण व आनन्दमई परम सुखामृत रसके आस्वादरूप परम समरसी भावमें परिणमन कर रहे हैं। जैसा कि वचन है "परमोही सव्वोही चरमशरीरस्स विरदस्स" ये तीनो ही अवधिज्ञान विशेष सम्यग्दर्शन आदि गुणोंके कारण नियमसे होते हैं तथा जो भवप्रत्यय अवधि है अर्थात् जो देव नारकियोंके जन्मसे होनेवाली अवधि है वह नियमसे देशावधि ही होती है यह अभिप्राय है॥ ३ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४

विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं।
एदे संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स ॥ ४ ॥

अयमात्मा पुनः मनःपर्ययज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति परकीयमनोगतं मूर्तं वस्तु यत्प्रत्यक्षेण जानाति तन्मनःपर्ययज्ञानं। तच्च कतिविधं ? विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं ऋजुमतिविपुलमतिभेदेन द्विविधं मनःपर्ययज्ञानं, तत्र विपुलमतिज्ञानं परकीयमनोवचनकायगतमर्थं वक्रावक्रं जानाति, ऋजुमतिश्च प्राञ्जलमेव। निर्विकारात्मोपलब्धिभावनासहितानां चरमदेहमुनीनां विपुलमतिर्भवति। एदे संजमलद्धी-एतौ मनःपर्ययौ संयमलब्धी उपेक्षासंयमे सति लब्धियोस्तौ संयमलब्धी मनःपर्ययौ भवतः। तौ च कस्मिन् काले समुत्पद्येते । उवओगे-उपयोगे विशुद्धपरिणामे। कस्य ? अप्पमत्तस्स वीतरागात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानभावनासहितस्य "विकहा तहा कसाया इंदिय णिद्दा य तहेव पणओ य। चदु चदु पणमेगं होंति पमादा हु पण्णरस" इत्यादि गाथोक्तपंचदशप्रमादरहितस्याप्रमत्तमुनेरिति। अत्रोत्पत्तिकाल एवाप्रमत्तनियमः पश्चात्प्रमत्तस्यापि संभवतीति भावार्थः॥ ४ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ४

उत्थानिका—आगे मनःपर्ययज्ञानको कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—[पुण] फिर (अज्जवणाणं) ऋजुमतिज्ञान (च) और (विउलमदी णाणं) विपुलमतिज्ञान (दुविहं) यह दो प्रकारका [मणणाणं] मनःपर्ययज्ञान होता है [एदे] ये दोनों [अप्पमत्तस्स] अप्रमत्त मुनिके (उवओगे) उपयोगमें [संजमलद्धी] संयमके द्वारा प्राप्त होते हैं।

विशेषार्थ—यह आत्मा मनःपर्यय ज्ञानावरणीयके क्षयोपशम होनेपर दूसरेके मनमें प्राप्त मूर्तवस्तुको जिसके द्वारा प्रत्यक्ष जानता है वह मनःपर्यय ज्ञान है उसके दो भेद हैं—ऋजुमति और विपुलमति। इनमें विपुलमति मनःपर्ययज्ञान दूसरेके मनमें प्राप्त पदार्थको सीधा व वक्र दोनोको जानता है जब कि ऋजुमति मात्र सीधेको ही जानता है। इनमेंसे विपुलमति उन चरमशरीरी मुनियोंके ही होता है जो निर्विकार आत्मानुभूतिकी भावनाको रखनेवाले हैं। तथा ये दोनों ही उपेक्षा संयमकी दशामें संयमियोंको ही होते हैं और केवल उन मुनियोंको

ही होते हैं जो वीतराग आत्मतत्त्वके सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान व चारित्रकी भावना सहित, पन्द्रह प्रमाद रहित अप्रमत्त गुणस्थानके विशुद्ध परिणाममें वर्त रहे हों। जब यह उत्पन्न होता है तब अप्रमत्त सातवें गुणस्थानमें ही होता है यह नियम है। फिर प्रमत्तके भी बना रहता है, यह तात्पर्य है ॥ ४ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५

णाणं णेयणिमित्तं केवलणाणं ण होदि सुदणाणं।
णेयं केवलणाणं णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो ॥ ५ ॥

केवलणाणं णाणं णेयणिमित्तं ण होदि-केवलज्ञानं यज्ज्ञानं तद्घटपटादिज्ञेयार्थमाश्रित्य नोत्पद्यते। तर्हि श्रुतज्ञानस्वरूपं भविष्यति। ण होदि सुदणाणं-यथा केवलज्ञानं ज्ञेयनिमित्तं न भवति तथा श्रुतज्ञानस्वरूपमपि न भवति। णेयं केवलणाणं-एवं पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञेयं ज्ञातव्यं केवलज्ञानं। अयमत्रार्थः। यद्यपि दिव्यध्वनिकाले तदाधारेण गणधरदेवादीनां श्रुतज्ञानं परिणमति तथापि तत् श्रुतज्ञानं गणधरदेवादीनामेव न च केवलिनां, केवलिनां केवलज्ञानमेव-णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो-न केवलं श्रुतज्ञानं नास्ति केवलिनां ज्ञानाज्ञानं च नास्ति क्वापि विषये ज्ञानं क्वापि विषये पुनरज्ञानमेव किंतु सर्वत्र ज्ञानमेव, अथवा मतिज्ञानादिभेदेन नानाभेदं ज्ञानं नास्ति किंतु केवलज्ञानमेकमेवेति। अथ मतिज्ञानादिभेदेन यानि पंचज्ञानानि व्याख्यातानि तानि व्यवहारेणेति, निश्चयेनाखंडैकज्ञानप्रतिभास एवात्मा निर्मेघादित्यवदिति भावार्थः ॥ ५ ॥ एवं मत्यादिपंचज्ञानव्याख्यानरूपेण गाथापंचकं गतं।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ५

उत्थानिका-आगे केवलज्ञानको कहते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-[केवलणाणं] केवलज्ञान [णेयणिमित्तं] ज्ञेयके निमित्तसे [ण होदि] नहीं होता है, [सुदणाणं ण होदि] न श्रुतज्ञान है। (केवलिणो) केवली भगवानके [णाणाणाणं च णत्थि] ज्ञान अज्ञानकी कल्पना नहीं है, उसे (केवल) मात्र (णाणं) ज्ञान [णेयं] जानना योग्य है।

विशेषार्थ-केवलज्ञान घटपट आदि जानने योग्य पदार्थोंके आश्रयसे नहीं उत्पन्न होता है इसलिये वह जैसे ज्ञेय पदार्थोंके निमित्तसे नहीं होता है वैसे ही श्रुतज्ञानरूप भी नहीं है यद्यपि दिव्यध्वनिके समयमें इस केवलज्ञानके आधारसे गणधरदेव आदिकोंके श्रुतज्ञान होता है। तथापि वह श्रुतज्ञान गणधरदेवादिको ही होता है केवली अरहन्तोंके नहीं है। केवली भगवानके ज्ञानमें किसी सम्बन्धमें ज्ञान व किसीमें अज्ञान नहीं होता है, किन्तु सर्व ज्ञेयोंका विना क्रमके ज्ञान होता है अथवा मतिज्ञान आदि भेदोंसे नाना प्रकारका ज्ञान नहीं है किन्तु

एक मात्र शुद्ध ज्ञान ही है। यहां जो मतिज्ञान आदिके भेदसे पांच ज्ञान कहे गए हैं वे सब व्यवहारनयसे हैं। निश्चयसे अखंड एक ज्ञानके प्रकाशरूप ही आत्मा है जैसे मेघादि रहित सूर्य होता है यह तात्पर्य है॥ ५॥

इस तरह मतिज्ञान आदि पांच ज्ञानोंको कहते हुये पांच गाथाएं पूर्ण हुईं।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ६

अथाज्ञानत्रयं कथयति:—

मिच्छत्ता अण्णाणं अविरदिभावो य भावआवरणा।
णेयं पडुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च॥ ६॥

मिच्छत्ता अण्णाणं—द्रव्यमिथ्यात्वोदयात्सकाशाद्भवतीति क्रियाध्याहार:। किं भवति। अण्णाणं अविरदिभावो य—ज्ञानमप्यज्ञानं भवति। अत्राज्ञानशब्देन कुमत्यादित्रयं ग्राह्यं। न केवलमज्ञानं भवति। अविरतिभावश्च अव्रतपरिणामश्च। कथंभूतान्मिथ्यात्वोदयादज्ञानमविरतिभावश्च भवति। भावावरणा भावस्तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं भावसम्यक्त्वं तस्यावरणं झंपनं भावावरणं तस्माद्भावावरणाद्भावमिथ्यात्वादित्यर्थ:। पुनरपि किं भवति मिथ्यात्वात्। तह दुण्णय दुप्पमाणं च—यथैवाज्ञानमविरतिभावश्च भवति तथा सुनयो दुर्णयो भवति प्रमाणं दुःप्रमाणं च भवति। कदा भवति? काले—तत्त्वविचारकाले। किं कृत्वा। पडुच्च—प्रतीत्याश्रित्य। किमाश्रित्य? णेयं—ज्ञेयभूतं जीवादिवस्त्विति। अत्र मिथ्यात्वाद् विपरीतं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं निश्चयसम्यक्त्वकारणभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं तस्य फलभूतं निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निश्चयसम्यक्त्वं चोपादेयं भवतीति भावार्थ:॥ ६॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ६

आगे तीन प्रकार अज्ञानको कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(मिच्छत्ता) द्रव्य मिथ्यात्वके उदयसे (अण्णाणं) ज्ञान, अज्ञान रूप अर्थात् कुमति, कुश्रुत व विभंगज्ञानरूपी होता है (अविरदिभावो य) तथा व्रत रहित भाव भी होता है (भावआवरणा) इस तरह तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप भाव सम्यग्दर्शन व भावसंयमका आवरणरूप भाव होता है (तह) तैसे ही मिथ्यात्वके उदयसे (णेयं पडुच्च काले) ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थोंको आश्रय करके तत्त्व विचारके समयमें (दुण्णय दुप्पमाणं च) सुनय दुर्नय होजाता है व प्रमाण दुःप्रमाण होजाता है। यहां यह तात्पर्य है कि मिथ्यात्वसे विपरीत तत्त्वार्थका श्रद्धानरूप जो व्यवहार सम्यक्त्व है तथा जो निश्चय सम्यक्त्वका कारण है अथवा जिस व्यवहार सम्यक्त्वका फल निर्विकार शुद्धात्मानुभवरूप निश्चय सम्यक्त्व है वे दोनों ही व्यवहार और

निश्चय ग्रहण करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

समय व्याख्या गाथा ४२

दर्शनोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत् ।

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं ।
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ॥ ४२ ॥

दर्शनमपि चक्षुर्युतमपि चावधिना सहितम् ।
अनिधनमनंतविषयं कैवल्यं चापि प्रज्ञप्तम् ॥ ४२ ॥

चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनंतसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धदर्शनसामान्यात्मा । स खल्वनादिदर्शनावरणकर्मावच्छन्नप्रदेशः सन्, यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुरिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तच्चक्षुर्दर्शनम् । यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुर्वर्जितेतरचतुरिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तदचक्षुर्दर्शनम्, यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तदवधिदर्शनम्, यत्सकलावरणात्यंतक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं सामान्येनावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलदर्शनमिति स्वरूपाभिधानम् ॥ ४२ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ४२

अन्वयार्थः—(दर्शनम् अपि) दर्शन भी (चक्षुर्युतम्) चक्षुदर्शन, (अचक्षुर्युतम् अपि च) अचक्षुदर्शन, (अवधिना सहितम्) अवधिदर्शन (च अपि) और (अनंतविषयम्) अनंत जिसका विषय है ऐसा अविनाशी (कैवल्यं) केवलदर्शन (प्रज्ञप्तम्)—ऐसे चार भेदवाला कहा है ।

टीका:—यह, दर्शनोपयोगके भेदोंके नाम और स्वरूपका कथन है ।

(१) चक्षुदर्शन, [२] अचक्षुदर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन इस प्रकार [दर्शनोपयोगके भेदोंका] नामका कथन है ।

[अब, उनके स्वरूपका कथन किया जाता है:-]आत्मा वास्तवमें अनंत, सर्व आत्मप्रदेशोंमें व्यापक, विशुद्ध दर्शनसामान्यस्वरूप है । वह (आत्मा) वास्तवमें अनादि दर्शनावरणकर्मसे आच्छादित प्रदेशोंवाला वर्तता हुआ, (१) उस प्रकारके (अर्थात् चक्षुदर्शनके) आवरणके क्षयोपशमसे और चक्षु-इन्द्रियके अवलम्बनसे मूर्त द्रव्यको विकलरूपसे सामान्यतः अवबोधन करता है वह चक्षुदर्शन है, (२) उस प्रकारके आवरणके क्षयोपशमसे तथा चक्षुके अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियां और मनके अवलम्बनसे मूर्त-अमूर्त द्रव्यको विकलरूपसे सामान्यतः अवबोधन करता है वह अचक्षुदर्शन है, (३) उस प्रकारके आवरणके क्षयोपशमसे ही मूर्त द्रव्यको विकलरूपसे सामान्यतः अवबोधन करता है वह अवधिदर्शन है, (४) समस्त आवरणके अत्यन्त क्षयसे केवल ही (-आत्मा अकेला ही) मूर्त—अमूर्त द्रव्यको

सकलरूपसे सामान्यतः अवबोधन करता है वह स्वाभाविक केवलदर्शन है । इस प्रकार (दर्शनोपयोगके भेदोंके) स्वरूपका कथन है ।। ४२ ।।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४२

अथ दर्शनोपयोगभेदानां संज्ञां स्वरूपं च प्रतिपादयतिः--चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति दर्शनोपयोगभेदानां नामानि । अयमात्मा निश्चयनयेनानंताखंडैकदर्शनस्वभावोपि व्यवहारनयेन संसारावस्थायां निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितेन कर्मणा झंपितः सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमे सति बहिरंगचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलंबनेन यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनं, शेषेन्द्रियनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति बहिरंगद्रव्येन्द्रियद्रव्यमनोवलंबनेन यन्मूर्तामूर्तं च वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन यथासंभवं पश्यति तदचक्षुर्दर्शनं, स एवात्मावधिदर्शनावरणक्षयोपशमे सति यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शनं रागादिदोषरहितचिदानंदैकस्वभावनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पध्यानेन निरवशेषकेवलदर्शनावरणक्षये सति जगत्त्रयकालत्रयवर्तिवस्तुगतसत्तासामान्यमेकसमयेन पश्यति तदनिधनमनंतविषयं स्वाभाविकं केवलदर्शनं भवतीति । अत्र केवलदर्शनाविनाभूतानंतगुणाधारः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इत्यभिप्रायः ।। ४२ ।। एवं दर्शनोपयोगव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता ।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ४२

आगे दर्शनोपयोगके भेदोंकी संज्ञा व स्वरूप कहते हैं:-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-[दंसणं] दर्शन (अवि) भी (चक्खुजुदं) चक्षु सहित (अवि) तथा [अचक्खुजुदं] अचक्षु सहित (य) और [ओहिणासहियं] अवधि सहित (चावि) तैसे ही (अणिधणम्) अंतरहित [अणंतविसयं] अनंतको विषय करनेवाला (केवलियं) केवल सहित (पण्णत्तं) कहा गया है !

विशेषार्थ-दर्शनोपयोगके चार भेद हैं जिनके नाम-चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल हैं । यह आत्मा निश्चयनयसे अनंत व अखंड एक दर्शन स्वभावको धारनेवाला है तौभी व्यवहारनयसे संसार दशामें निर्मल व शुद्ध आत्माके अनुभवको न पानेसे जो कर्म बांधे है उनसे ढका हुआ चक्षुर्दर्शनावरण कर्मके क्षयोपशमसे बाहरी चक्षु नामके द्रव्येंद्रियके अवलम्बनसे जो मूर्तीक वस्तुको विकल्परहित सत्ता अवलोकन मात्र देखता है वह चक्षु दर्शन है । तथा चक्षुके सिवाय अन्य चार इन्द्रिय तथा नोइन्द्रिय या मनके आवरणके क्षयोपशम होनेपर बाहरी स्पर्शादि चार द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्य मनके आलम्बनसे जो मूर्तिक अमूर्तिक वस्तुको विकल्परहित सत्ता अवलोकन मात्र यथासंभव देखता है सो अचक्षु दर्शन है, वही आत्मा अवधि दर्शनावरण कर्मके क्षयोपशम होनेपर जो मूर्तीक वस्तुको विकल्प रहित सत्ता अवलोकन मात्र प्रत्यक्ष देखता है सो अवधि दर्शन है तथा रागादि दोषोंसे रहित चिदानन्दमई एक स्वभावरूप अपने शुद्धात्माके

अनुभवमई निर्विकल्प ध्यानके बलसे सर्व केवल दर्शनावरण कर्मके क्षय हो जानेपर तीन जगतवर्ती व तीन कालवर्ती वस्तुओंमें प्राप्त जो सत्ता सामान्य उसको एक समयमें देखता है वह अनंत दर्शन अनंत पदार्थोंकी सत्ताको विषय करनेवाला स्वाभाविक केवल दर्शन है। यहां यह अभिप्राय है कि केवल दर्शनके साथ अविनाभावी अर्थात् अवश्य रहनेवाले अनंत गुणोंका आधार जो शुद्धजीवास्तिकाय है वही ग्रहण करने योग्य है ॥ ४२ ॥

इस तरह दर्शनोपयोगका व्याख्यान करते हुए गाथा कही।

समय व्याख्या गाथा ४३

एकस्यात्मनोऽनेकज्ञानत्वसमर्थनमेतत्।

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।
तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहिं॥ ४३ ॥

न विकल्प्यते ज्ञानात् ज्ञानी ज्ञानानि भवंत्यनेकानि।
तस्मात्तु विश्वरूपं भणितं द्रव्यमिति ज्ञानिभिः ॥ ४३ ॥

न तावज्ज्ञानी ज्ञानात्पृथग्भवति, द्वयोरप्येकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात्, द्वयोरप्यभिन्नप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात्, द्वयोरप्येकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात्, द्वयोरप्येकस्वभावत्वेनैकभावत्वात्। न चैवमुच्यमानेप्येकस्मिन्नात्मन्याभिनिबोधिकादीन्यनेकानि ज्ञानानि विरुध्यंते, द्रव्यस्य विश्वरूपत्वात्। द्रव्यं हि सहक्रमप्रवृत्तानंतगुणपर्यायाधारतयानंतरूपत्वादेकमपि विश्वरूपमभिधीयत इति ॥ ४३ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ४३

अन्वयार्थः -(ज्ञानात्) ज्ञानसे (ज्ञानी न विकल्प्यते) ज्ञानीका (आत्माका) भेद नहीं किया जाता, (ज्ञानानि अनेकानि भवंति) तथापि ज्ञान अनेक हैं। (तस्मात् तु) इसीलिये तो (ज्ञानिभिः ज्ञानियोंने (द्रव्यं) द्रव्यको (विश्वरूपम् इति भणितम्) विश्वरूप (-अनेकरूप) कहा है।

टीकाः--एक आत्मा अनेक ज्ञानात्मक होनेका यह समर्थन है।

प्रथम तो ज्ञानी (-आत्मा) ज्ञानसे पृथक् नहीं है; क्योंकि दोनों एक अस्तित्वसे रचित होनेसे दोनोंको एकद्रव्यपना है, दोनोंके अभिन्न प्रदेश होनेसे दोनोंको एकक्षेत्रपना है दोनों एक समयमें रचे जाते होनेसे दोनोंको एककालपना है, दोनोंका एक स्वभाव होनेसे दोनोंको एकभावपना है। किन्तु ऐसा कहा जाने पर भी, एक आत्मामें आभिनिबोधिक (-मति) आदि अनेक ज्ञान विरोध नहीं पाते, क्योंकि द्रव्य विश्वरूप (अनेकरूप) है। द्रव्य वास्तवमें सहवर्ती अनंत गुणों तथा क्रमवर्ती पर्यायोंका आधार होनेके कारण अनंतरूपवाला होनेसे, एक होने पर भी, विश्वरूप (अनेक रूप) कहा जाता है ॥ ४३ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४३

अथात्मनो ज्ञानादिगुणैः सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयेन प्रदेशाभिन्नत्वं मत्याद्यनेकज्ञानत्वं च व्यवस्थापयति सूत्रत्रयेण। ण वियप्पदि—न विकल्पते न भिद्यते न पृथक् क्रियते। कोसौ। णाणी—ज्ञानी। कस्मात्सकाशात्। णाणादो-ज्ञानगुणात्। तर्हि ज्ञानमप्येकं भविष्यति। नैवं। णाणाणि होंति णेगाणि-मत्यादिज्ञानानि, भवंत्यनेकानि यस्मादनेकानि ज्ञानानि भवन्ति--तम्हा दु विस्सरूवं भणियं तस्मात्कारणादनेकज्ञानगुणापेक्षया विश्वरूपं नानारूपं भणितं। किं। दवियत्ति-जीवद्रव्यमिति। कैर्भणितं णाणीहिं-हेयोपादेयतत्त्वविचारज्ञानिभिरिति। तथाहि-एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् एकप्रदेशनिर्वृत्तत्वेनैकक्षेत्रत्वात् एकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् मूर्तैकजडस्वरूपत्वेनैकस्वभावत्वाच्च परमाणोर्वर्णादिगुणैः सह यथा भेदो नास्ति तथैवैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् लोकाकाशप्रमितासंख्येयाखंडैकप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् एकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् एकचैतन्यनिर्वृत्तत्वेनैकस्वभावत्वाच्च ज्ञानादिगुणैः सह जीवद्रव्यस्यापि भेदो नास्ति। अथवा शुद्धजीवापेक्षया शुद्धैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् लोकाकाशप्रमितासंख्येयाखंडैकशुद्धप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रपरिणतिरूपवर्तमानैकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् निर्मलैकचिज्ज्योतिःस्वरूपेणैकस्वभावत्वात् च सकलविमलकेवलज्ञानाद्यनंतगुणैः सह शुद्धजीवस्यापि भेदो नास्तीति भावार्थः॥ ४३॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा—४३

उत्थानिका—आगे कहते हैं कि आत्माका ज्ञानादि गुणोंके साथ संज्ञा लक्षण प्रयोजनादिकी अपेक्षा भेद होनेपर भी निश्चयनयसे प्रदेशोंकी अपेक्षा भिन्नता नहीं है तथा मति आदि ज्ञानके अनेकपना है—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—[णाणी] ज्ञानी आत्मा [णाणादो] ज्ञान गुणसे (ण वियप्पदि) नहीं भिन्न किया जा सक्ता है पृथक नहीं किया जा सकता है तथा [णाणाणि] ज्ञान [अणेगाणि] अनेक प्रकार मति आदि रूपसे [होंति] होते हैं। (तम्हा दु) इसीलिये ही [णाणीहिं] हेय उपादेय तत्त्वके विचार करनेवाले ज्ञानियोंके द्वारा [विस्सरूवं] नाना रूप [दवियत्ति] जीव द्रव्य है ऐसा (भणियं) कहा गया है।

विशेषार्थ—एक पुद्गलका परमाणु अपने एकपनेकी सत्ताको रखनेसे एक द्रव्यरूप है, एक प्रदेशको रखनेसे एक क्षेत्ररूप है, एक समय मात्र परिणमनको रखनेसे एक कालरूप है, मूर्तीक एक जड़ स्वरूप रखनेसे एक स्वभावरूप है, ऐसे अपने द्रव्यादि चतुष्टयको रखनेवाले परमाणुका जैसे अपने वर्णादि गुणोंके साथ भेद नहीं है तैसे ही जीव द्रव्यका भी अपने ज्ञानादि गुणोंके

साथ भेद नहीं है। जीव द्रव्य भी अपने द्रव्यादि चतुष्टयसे तन्मय है। वह एक अपनी सत्ताको रखनेसे एक द्रव्यरूप है, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात अखंड एकमई प्रदेश रखनेसे एक क्षेत्ररूप है एक समयरूप वर्तनकी अपेक्षा एक कालरूप है, एक चैतन्य स्वभाव रखनेसे एक स्वभावरूप है। इस तरह एक जीव द्रव्यका अपना चतुष्टय जानना चाहिये। इसी तरह शुद्ध जीवकी अपेक्षासे यदि विचार करें तो शुद्ध एक सत्ता मात्र रखनेसे एक द्रव्यरूप है, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात अखंड एकमई शुद्ध प्रदेश रखनेसे एक क्षेत्ररूप है, निर्विकार चैतन्य चमत्कारकी परिणतिमें वर्तन करता हुआ एक समय मात्र परिणमनको रखनेसे एक कालरूप है, निर्मल एक चैतन्य ज्योति स्वरूप होनेसे एक स्वभावरूप है, ऐसे शुद्ध जीवका भी अपने सर्व प्रकारसे निर्मल केवलज्ञानादि अनंत गुणोंके साथ भेद नहीं है ॥ ४३ ॥

समय व्याख्या गाथा ४४

द्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदे, गुणानां च द्रव्याद् भेदे दोषोपन्यासोऽयम्।

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे।
दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥ ४४ ॥

यदि भवति द्रव्यमन्यद् गुणतश्च गुणाश्च द्रव्यतोऽन्ये।
द्रव्यानंत्यमथवा द्रव्याभावं प्रकुर्वन्ति ॥ ४४ ॥

गुणा हि क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रितास्तद्द्रव्यं तच्चेदन्यद् गुणेभ्यः। पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रितास्तद् द्रव्यम्। तदपि अन्यच्चेद् गुणेभ्यः। पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः यत्राश्रिताः तद् द्रव्यम्। तदप्यन्यदेव गुणेभ्यः। एवं द्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदे भवति द्रव्यानंत्यम्। द्रव्यं हि गुणानां समुदायः। गुणाश्चेदन्ये समुदायात्, को नाम समुदायः। एवं गुणानां द्रव्याद् भेदे भवति द्रव्याभाव इति ॥ ४४ ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ४४

अन्वयार्थः-[यदि] यदि (द्रव्यं) द्रव्य [गुणतः] गुणोंसे [अन्यत् च भवति) अन्य [भिन्न] हो (गुणाः च) और गुण (द्रव्यतः अन्ये) द्रव्यसे अन्य हों तो (द्रव्यानंत्यम्) द्रव्यकी अनंतता हो [अथवा] अथवा [द्रव्याभावं] द्रव्यका अभाव [प्रकुर्वन्ति] हो।

टीकाः-द्रव्यका गुणोंसे भिन्नत्व हो और गुणोंका द्रव्यसे भिन्नत्व हो तो दोष आता है-इसका यह कथन है।

गुण वास्तवमें किसीके आश्रयसे होते हैं, (वे) जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है। वह [द्रव्य] यदि गुणोंसे अन्य [भिन्न] हो तो—फिर भी, गुण किसीके आश्रित होंगे, [वे] जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है। वह यदि गुणोंसे अन्य हो तो-फिर भी, गुण किसी के आश्रित होंगे, (वे) जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है। वह भी गुणोंसे अन्य ही हो···इस प्रकार यदि द्रव्यका गुणोंसे भिन्नत्व हो तो, द्रव्यकी अनंतता हो।

वास्तवमें द्रव्य गुणोंका समुदाय है। गुण यदि समुदायसे अन्य हों तो समुदाय कैसा क्या रह जायगा अर्थात् कुछ भी नहीं रह जायगा।] इस प्रकार यदि गुणोंका द्रव्यसे भिन्नत्व हो तो, द्रव्यका अभाव होता है॥ ४४॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४४

अथ द्रव्यस्य गुणेभ्य एकांतेन प्रदेशास्तित्वभेदे सति गुणानां च द्रव्याद्भेदे सति दोषं दर्शयति,— जदि हवदि दव्वमण्णं--यदि चेत् द्रव्यमन्यद्भवति। केभ्यः। गुणदो हि--गुणेभ्यः, गुणा य दव्वदो अण्णे गुणाश्च द्रव्यतो यद्यन्ये भिन्ना भवन्ति। तदा किं दूषणं? दव्वाणंतियं--गुणेभ्यो द्रव्यस्य भेदे सत्येकद्रव्यस्यापि आनंत्यं प्राप्नोति। अहवा दव्वाभावं पकुव्वंति--अथवा द्रव्यात्सकाशाद्यद्यन्ये भिन्ना गुणा भवन्ति तदा द्रव्यस्याभावं कुर्वंतीति। तद्यथा--गुणाः साश्रया वा निराश्रया वा। साश्रयपक्षे दूषणं दीयते। अनंतज्ञानादयो गुणास्तावत् क्वचिच्छुद्धात्मद्रव्ये समाश्रिताः यत्रात्मद्रव्ये समाश्रिताः तदन्यद्गुणेभ्यश्चेत् पुनरपि क्वचिज्जीवद्रव्यांतरे समाश्रितास्तदप्यन्यद्गुणेभ्यश्चेत् पुनरपि क्वचिदात्मद्रव्यांतरे समाश्रिताः। एवं शुद्धात्मद्रव्यादनंतज्ञानादिगुणानां भेदे सति भवति शुद्धात्मद्रव्यानंत्यं। अथोपादेयभूतपरमात्मद्रव्ये गुणगुणिभेदे सति द्रव्यानंत्यं व्याख्यातं तथा हेयभूताशुद्धजीवद्रव्येपि पुद्गलादिष्वपि योजनीयं। अथवा गुणगुणिभेदैकांते सति विवक्षिताविवक्षितैकैकगुणस्य विवक्षिताविवक्षितैकैकद्रव्याधारे सति भवति द्रव्यानंत्यं द्रव्यात्सकाशान्निराश्रयभिन्नगुणानां भेदे द्रव्याभावः कथ्यते, गुणानां समुदायो द्रव्यं भण्यते गुणसमुदायरूपद्रव्याद्गुणानां भेदैकांते सति गुणसमुदायरूपं द्रव्यं क्वास्ति? न क्वापीति भावार्थः॥ ४४॥

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ४४

उत्थानिका—आगे यदि एकांतसे ऐसा माना जाय कि द्रव्यका गुणोंके साथ प्रदेशोंकी अपेक्षा भेद है या गुणोंका द्रव्यके साथ भेद है तो दोष आयगा ऐसा बताते हैं।

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(जदि) यदि (दव्वं) द्रव्य (गुणदो) गुणसे (अण्णं) अन्य (हवदि) होवे (य) और (गुणा य) गुण भी (दव्वदो) द्रव्यसे (अण्णं) भिन्न हों तो (दव्वाणंतियं) द्रव्योंके अनंतपनेको (अधवा) अथवा (दव्वाभावं) द्रव्यके नाशको (पकुव्वंति) करते हैं।

विशेषार्थ-प्रदेशोंकी अपेक्षा भी यदि द्रव्यसे गुण अलग अलग हों तो जो अनंतगुण द्रव्य में एक साथ रहते हैं वे अलग अलग होकर अनंत द्रव्य हो जावेंगे और द्रव्यसे सब गुण भिन्न होगए तब द्रव्यका नाश हो जावेगा। यहां पूछते हैं कि गुण किसीके आश्रय या आधार रहते या वे आश्रय विना होते हैं? यदि वे आश्रयसे रहते हैं ऐसा कोई माने और उसको और कोई दोष दे तो यह कहना होगा कि जो अनंतज्ञान आदि गुण जिस किसी एक शुद्ध आत्म द्रव्यमें आश्रयरूप हैं उस आत्म-द्रव्यसे यदि वे गुण भिन्न २ होजावें, इसी तरह दूसरे शुद्ध जीव द्रव्यमें भी जो अनंत गुण हैं वे भी जुदे २ होजावें तब यह फल होगा कि शुद्धात्म द्रव्योंसे अनंतगुणोंके जुदा होनेपर शुद्ध आत्मद्रव्य अनंत होजावेंगे। जैसे ग्रहण करने योग्य परमात्म द्रव्यमें गुण और गुणीका भेद होनेपर द्रव्यकी अनंतता कही गई वैसे ही त्यागने योग्य अशुद्ध जीव द्रव्यमें तथा पुद्गलादि द्रव्योंमें भी समझ लेनी चाहिये अर्थात् गुण और गुणीका भेद होते हुए मुख्य या गौणरूप एक एक गुणका मुख्य या गौण एक२ द्रव्य आधार होते हुये द्रव्य अनंत हो जावेगा तथा द्रव्यके पाससे जब गुण चले जांयगे तब द्रव्यका अभाव हो जायगा जब कि यह कहा है कि गुणोंका समुदाय द्रव्य है। यदि ऐसे गुणसमुदाय रूप द्रव्यसे गुणोंका एकांतसे भेद माना जायगा तो गुण समुदाय द्रव्य कहां रहेगा, किसी भी तरह नहीं रह सक्ता है ।४४।

समय व्याख्या गाथा ४५

द्रव्यगुणानां स्वोचितानन्यत्वोक्तिरियम् ।

अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णत्तं ।
णिच्छंति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं ॥ ४५ ॥

अविभक्तमनन्यत्वं द्रव्यगुणानां विभक्तमन्यत्वम् ।
नेच्छन्ति निश्चयज्ञास्तद्विपरीतं हि वा तेषाम् ॥ ४५ ॥

अविभक्तप्रदेशत्वलक्षणं द्रव्यगुणानामनन्यत्वमभ्युपगम्यते। विभक्तप्रदेशत्वलक्षणं त्वन्यत्वमनन्यत्वं च नाभ्युपगम्यते। तथा हि—यथैकस्य परमाणोरेकेनात्मप्रदेशेन सहाविभक्तत्वादनन्यत्वं, तथैकस्य परमाणोस्तद्वर्तिनां स्पर्शरसगंधवर्णादिगुणानां चाविभक्तप्रदेशत्वादनन्यत्वम् । यथा त्वत्यंतविप्रकृष्टयोः सह्यविंध्ययोरत्यंतसन्निकृष्टयोश्च मिश्रितयोस्तोयपयसोर्विभक्तप्रदेशत्वलक्षणमन्यत्वमनन्यत्वं च, न तथा द्रव्यगुणानां विभक्तप्रदेशत्वाभावादन्यत्वमनन्यत्वं चेति ॥ ४५ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ४५

अन्वयार्थः-(द्रव्यगुणानाम्) द्रव्य और गुणोंको [अविभक्तम् अनन्यत्वम्] अविभक्तपनेरूप

अनन्यपना है, (निश्चयज्ञाः हि] निश्चयके ज्ञाता [तेषाम्] उन्हें [विभक्तम् अन्यत्वम्] विभक्तपनेरूप अन्यपना [वा] या (तद्विपरीतं] [विभक्तपनेरूप] अनन्यपना (न इच्छन्ति] नही मानते।

टीकाः-यह, द्रव्य और गुणोंके स्वोचित अनन्यपनेका कथन है।

द्रव्य और गुणोंको अभिन्न प्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना स्वीकार किया जाता है; परन्तु विभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप अन्यपना तथा [विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप] अनन्यपना स्वीकार नही किया जाता। वह स्पष्ट समझाया जाता है:—जिस प्रकार एक परमाणुको एक स्वप्रदेशके साथ अविभक्तपना होनेसे अनन्यपना है, उसी प्रकार एक परमाणुको तथा उसमें रहनेवाले स्पर्श-रस-गंध—वर्ण आदि गुणोंको अविभक्त प्रदेश होनेसे (अविभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना है, परन्तु जिस प्रकार अत्यन्त दूर ऐसे सह्य और विंध्यको विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अन्यपना है तथा अत्यन्त निकट ऐसे मिश्रित क्षीर-नीरको विभक्तप्रदेशत्व-स्वरूप अनन्यपना है, उसी प्रकार द्रव्य और गुणोंको विभक्त प्रदेश न होनेसे [विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप] अन्यपना तथा विभक्त प्रदेश स्वरूप अनन्यपना नहीं है॥ ४५॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४५

द्रव्यगुणानां यथोचितमभिन्नप्रदेशरूनन्यत्वं प्रदर्शयति,--अविभत्तमणण्णत्तं-अविभक्तमनन्यत्वं मन्यत इति क्रियाध्याहारः। केषां। दव्वगुणाणं--द्रव्यगुणानामिति। तथाहि--यथा परमाणोर्वर्णादिगुणैः सहान-न्यत्वमभिन्नत्वं। कथंभूतं तत् ? अविभक्तमभिन्नप्रदेशत्वं तथा शुद्धजीवद्रव्ये केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपः स्वभावगुणानां तथैवाशुद्धजीवे मतिज्ञानादिव्यक्तिरूपविभावगुणानां शेषद्रव्याणां गुणानां च यथासंभव-मभिन्नप्रदेशलक्षणमनन्यत्वं ज्ञातव्यं। विभत्तमणण्णत्तं णेच्छंति--विभक्तमन्यत्वं नेच्छन्ति। तद्यथा। अन्यत्वं भिन्नत्वं न मन्यंते। कथंभूतं तत्। विभक्तं भिन्नप्रदेशं सह्यविंध्ययोरिव। के नेच्छन्ति। णिच्चयण्हू-निश्चयज्ञा जैनाः न केवलं भिन्नप्रदेशमन्यत्वं नेच्छन्ति, तव्विवरीदं हि वा—तद्विपरीतं वा, तेसिं--तेषां द्रव्यगुणानां तस्मादन्यत्वाद्विपरीतं तद्विपरीतमनन्यत्वमित्यर्थः। तदपि किं विशिष्टं नेच्छन्ति। एकक्षेत्रावगाहेपि भिन्न-प्रदेशं भिन्नप्रदेशतोयपयसोरिव। कस्मान्नेच्छंतीति चेत्सह्यविंध्ययोरिव तोयपयसोरिव तेषां द्रव्यगुणानां भिन्नप्रदेशाभावादिति। अथवा अनन्यत्वमभिन्नत्वं नेच्छन्ति द्रव्यगुणानां। कथंभूतं तत्। अविभक्तं एकांतेन यथा प्रदेशरूपेणाभिन्नं तथा संज्ञादिरूपेणाप्यभिन्नं नेच्छन्ति। न केवलमित्थंभूतं अनन्यत्वं नेच्छन्ति अन्यत्वं भिन्नत्वमपि नेच्छंति। कथंभूतं। विभक्तं एकांतेन यथा संज्ञादिरूपेण भिन्नं तथा प्रदेशरूपेणापि भिन्नं। न केवलमेकांतेनानन्यत्वमन्यत्वं च नेच्छन्ति "तव्विवरीदं हि वा तेसिं" मिति पाठांतरं तद्विपरी-ताभ्यां वा ताभ्यां परस्परसापेक्षानन्यत्वान्यत्वाभ्यां विपरीते निरपेक्षे तद्विपरीते ताभ्यां तद्विपरीताभ्यां वा कृत्वा तेषां द्रव्यगुणानामनन्यत्वान्यत्वे नेच्छन्ति किंतु परस्परसापेक्षत्वेनेच्छंतीत्यर्थः। गाथासूत्रे विशुद्ध-ज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वादन्यत्वरूपा ये विषयकषायास्तै रहितानां तस्मादेव परमचैतन्यरूपात् परमात्म-तत्त्वात् यदनन्यत्वस्वरूपं निर्विकल्पपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादानुभवनं तत्सहितानां च पुरुषाणां यदेव लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशैः सह केवलज्ञानादिगुणानामनन्यत्वं तदेवोपादेयमिति भावार्थः

॥ ४५ ॥ इति गुणगुणिनोः संक्षेपेण भेदाभेदव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ४५

उत्थानिका–आगे फिर दिखलाते हैं कि द्रव्य और गुणोंमें कथंचित् अभिन्न प्रदेशपना है–उनकी एकता है ।

अन्वयसहित सामान्यार्थ–(दव्वगुणाणं) द्रव्य और गुणोंका (अविभत्तम्) एकपना तथा (अणण्णत्तं) अभिन्नपना है (णिच्चयण्हू) निश्चयनयके ज्ञाता (विभत्तं अणण्णत्तं) उनका विभाग व भिन्नपना (णिच्छंति) नहीं चाहते हैं । (वा) अथवा (तेसिं) उनका (तव्विवरीदं) उससे विपरीत स्वभाव अर्थात् भिन्नपनेसे विपरीत अभिन्नपना भी (हि) निश्चयसे सर्वथा नहीं मानते हैं ।

विशेषार्थ–जैसे परमाणुका वर्णादि गुणोंके साथ अभिन्नपना है अर्थात् उनमें परस्पर प्रदेशोंका भेद नहीं है तैसे शुद्ध जीव द्रव्यका केवलज्ञानादि प्रगटरूप स्वाभाविक गुणोंके साथ और अशुद्ध जीवका मतिज्ञान आदि प्रगटरूप विभाव गुणोंके साथ तथा शेष द्रव्योंका अपने२ गुणोंके साथ यथासंभव एकपना है अर्थात् द्रव्य और गुणोंके भिन्न २ प्रदेशोंका अभाव जानना चाहिये निश्चय स्वरूपके ज्ञाता जैनाचार्य्य जैसे हिमाचल और विंध्याचल पर्वतमें भिन्नपना है अथवा एक क्षेत्रमें रहते हुए जल और दूधका भिन्न प्रदेशपना है ऐसा भिन्नपना द्रव्य और गुणोंका नहीं मानते हैं तौभी एकांतसे द्रव्य और गुणोंका अन्यपनेसे विपरीत एकपना भी नहीं मानते हैं । अर्थात् जैसे द्रव्य और गुणोंमें प्रदेशोंकी अपेक्षा अभिन्नपना है तैसे संज्ञा आदिकी अपेक्षासे भी एकपना है ऐसा नहीं मानते हैं । अर्थात् एकांतसे द्रव्य और गुणोंका न एकपना मानते हैं न भिन्नपना मानते हैं । विना अपेक्षाके एकत्व व अन्यत्व दोनोंको नहीं मानते हैं, किंतु भिन्न २ अपेक्षासे दोनों स्वभावोंको मानते हैं । प्रदेशोंकी एकतासे एकपना है । संज्ञादिकी अपेक्षा द्रव्य और गुणोंका अन्यपना है ऐसा आचार्य मानते हैं यहां यह तात्पर्य है कि विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावमई आत्मतत्त्वसे भिन्नरूप जो विषय व कषाय हैं उनसे रहित होकर उस ही परम चैतन्य स्वरूप परमात्मा तत्त्वसे जो एकता रूप निर्विकल्प परम आह्लाद मई सुखामृत रसके स्वादका अनुभव है उसको धारनेवाले जो पुरुष हैं उनको वही आत्मा ग्रहण करने योग्य है जो लोकाकाश प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेशोंके साथ तथा अपने केवलज्ञानादि गुणोंके साथ एक रूप है ॥ ४५ ॥

इस तरह गुण और गुणीमें संक्षेपसे अभेद और भेदके व्याख्यानकी अपेक्षा गाथा तीन कहीं ये गाथाएं नं० ४३, ४४ व ४५ जाननी ।

व्यपदेशादीनामेकांतेन द्रव्यगुणान्यत्वनिबंधनत्वमत्र प्रत्याख्यातम् ।

ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा ।
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते ॥ ४६ ॥

व्यपदेशाः संस्थानानि संख्या विषयाश्च भवन्ति ते बहुकाः ।
ते तेषामनन्यत्वे अन्यत्वे चापि विद्यन्ते ॥ ४६ ॥

यथा देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे षष्ठीव्यपदेशः, तथा वृक्षस्य शाखा द्रव्यस्य गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथा देवदत्तः फलमङ्कुशेन धनदत्ताय वृक्षाद्वाटिकायामवचिनोतीत्यन्यत्वे कारकव्यपदेशः, तथा मृत्तिका घटभावं स्वयं स्वेन स्वस्मै स्वस्मात् स्वस्मिन् करोतीत्यात्मानमात्मात्मनात्मने आत्मन आत्मनि जानातीत्यनन्यत्वेऽपि । यथा प्रांशोर्देवदत्तस्य प्रांशुर्गौरित्यन्यत्वे संस्थानं, तथा प्रांशोर्वृक्षस्य प्रांशुः शाखाभरो मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथैकस्य देवदत्तस्य दश गाव इत्यन्यत्वे संख्या, तथैकस्य वृक्षस्य दश शाखाः एकस्य द्रव्यस्यानंता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथा गोष्ठे गाव इत्यन्यत्वे विषयः, तथा वृक्षे शाखाः द्रव्ये गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । ततो न व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां वस्तुत्वेन भेदं साधयंतीति ॥ ४६ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ४६

अन्वयार्थः-[व्यपदेशाः] व्यपदेश, [संस्थानानि] संस्थान [संख्याः] संख्याएं (च] और [विषयाः] विषय [ते बहुकाः भवन्ति] अनेक होते हैं। [ते] वे [व्यपदेश आदि], ("तेषाम्) द्रव्य-गुणोंके (अन्यत्वे] अन्यपने में [अनन्यत्वे च अपि] तथा अनन्यपनेमें भी [विद्यंते] हो सकते हैं।

टीकाः—यहां व्यपदेश आदि एकान्तसे द्रव्य-गुणोंके अन्यपनेका कारण होनेका खंडन किया है।

जिस प्रकार "देवदत्तकी गाय" इस प्रकार अन्यपनेमें षष्ठीव्यपदेश (-छठी विभक्तिका कथन) होता है, उसी प्रकार "वृक्षकी शाखा," "द्रव्यके गुण" ऐसे अनन्यपनेमें भी (षष्ठीव्यपदेश) होता है, जिस प्रकार 'देवदत्त फलको अंकुश द्वारा धनदत्तके लिये वृक्ष परसे बगीचेमें तोड़ता है, ऐसे अन्यपनेमें कारकव्यपदेश होता है, उसी प्रकार 'मिट्टी स्वयं घटभावको (घडारूप परिणामको) अपने द्वारा अपने लिये अपनेमेंसे अपनेमें करती है, आत्मा आत्माको आत्मा द्वारा आत्माके लिये आत्मामेंसे आत्मामें जानता है, एसे अनन्यपनेमें भी [कारकव्यपदेश] होता है। जिस प्रकार 'ऊंचे देवदत्तकी ऊंची गाय' ऐसा अन्यपनेमें संस्थान होता है, उसी प्रकार 'विशाल वृक्षका विशाल शाखासमुदाय, 'मूर्त द्रव्यके मूर्त गुण' ऐसे अनन्यपनेमें भी [संस्थान] होता है। जिस प्रकार 'एक देवदत्तकी दस गायें' ऐसे अन्यपनेमें संख्या होती है, उसी प्रकार 'एक वृक्षकी दस शाखाएं', 'एक द्रव्यके अनंत गुण' ऐसे अनन्यपनेमें भी (संख्या) होती

है। जिस प्रकार 'बाडेमें गायें' ऐसे अन्यपनेमें विषय (-आधार) होता है उसी प्रकार 'वृक्षमें शाखाएं, 'द्रव्यमें गुण' ऐसे अनन्यपनेमें भी (विषय अर्थात् आधार) होता है; इसलिये व्यपदेश आदि, द्रव्य गुणोंमें वस्तुरूपसे भेद सिद्ध नहीं करते ॥ ४६ ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—४६

अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानामेकांतेन भिन्नत्वं न साधयंतीति समर्थयति.—ववदेसा संठाणा संखा विसया य—व्यपदेशाः संस्थानानि संख्या विषयाश्च होंति- भवन्ति ते-ते पूर्वोक्तव्यपदेशादयः कति- संख्योपेताः बहुगा प्रत्येकं बहवः ते तेसिमणण्णत्ते विज्जंते ते व्यपदेशादयस्तेषां द्रव्यगुणानां कथंचिदन- न्यत्वे विद्यंते। अण्णत्ते चावि कथंचिदन्यत्वे चापि। नैयायिकाः किल वदन्ति द्रव्यगुणानां यद्येकांतेन भेदो नास्ति तर्हि व्यपदेशादयो न घटंते, तत्रोत्तरमाहुः। द्रव्यगुणानां कथंचिद्भेदे तथैवाभेदेपि व्यपदेशादयः संतीति। तद्यथा—षट् (षष्ठी) कारकभेदेन संज्ञा द्विविधा भवति देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे व्यपदेशः, तथैव वृक्षस्य शाखा जीवस्यानंतज्ञानादिगुणा इत्यनन्यत्वेपि व्यपदेशः। कारकसंज्ञा कथ्यते देवदत्तः-कर्ता फलं- कर्मतापन्नमंकुशेन करणभूतेन धनदत्ताय निमित्तं वृक्षात्सकाशाद्वाटिकायामधिकरणभूतायामवचिनोती- त्यन्यत्वे कारकसंज्ञा तथैवात्मा कर्तात्मानं कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मनः सकाशा- दात्मन्यधिकरणभूते ध्यायतीत्यनन्यत्वेपि कारकसंज्ञा। दीर्घस्य देवदत्तस्य दीर्घो गौरित्यन्यत्वे संस्थानं दीर्घस्य वृक्षस्य दीर्घशाखाभारः मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यभेदे च संस्थानं। संख्या कथ्यते। देवदत्तस्य दशगाव इत्यन्यत्वे संख्या तथैव वृक्षस्य दशशाखा द्रव्यस्यानंतगुणा इत्यभेदेपि। विषयः कथ्यते गोष्ठे गावः इति भेदे विषयः तथैव द्रव्ये गुणा इत्यभेदेपि। एवं व्यपदेशादयो भेदाभेदाभ्यां घटंते तेन कारणेन द्रव्यगुणानामेकां- तेन भेदं न साधयंतीति। अत्र गाथायां नामकर्मोदयजनितनरनारकादिरूपव्यपदेशाभावेपि शुद्धजीवास्ति- कायशब्देन व्यपदेश्यं वाच्यं निश्चयनयेन समचतुरस्रादिषट्संस्थानरहितमपि व्यवहारेण भूतपूर्वकन्यायेन किंचिदूनचरमशरीराकारेण संस्थानं। केवलज्ञानाद्यनंतगुणरूपेणानंतसंख्यानमपि लोकाकाशप्रमितासंख्ये- यशुद्धप्रदेशरूपेणासंख्यातसंख्यानं पंचेन्द्रियविषयसुखरसास्वादरतानामविषयमपि पंचेन्द्रियविषयातीतशुद्धा- त्मभावनोत्पन्नवीतरागसदानंदैकसुखरूपसर्वात्मप्रदेशपरमसमरसीभावपरिणतध्यानविषयं च यच्छुद्ध- जीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति तात्पर्यं ॥ ४६ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ४६

उत्थानिका—आगे यह बताते हैं कि द्रव्य और गुणोंमें नाम आदिकी अपेक्षा भेद है तो भी ये एकांतसे द्रव्य और गुणोंका भिन्नपना नहीं साधते हैं।

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(ववदेसा) कथन या संज्ञाके भेद (संठाणा) आकारके भेद (संखा) संख्या या गणना (य विसया) और विषय या आधार (ते बहुगा होंति) ये बहुत प्रकारके होते हैं (ते) ये चारों (तेसिं) उन द्रव्य और गुणोंकी (अणण्णत्ते) एकतामें (चावि) तैसे

ही (अणण्णत्ते) उनकी भिन्नपनामें (विज्जंते) होते हैं।

विशेषार्थ—नैयायिक ऐसा कहते हैं कि यदि एकांतसे द्रव्य और गुणोंका भेद नहीं है तो व्यपदेश आदि सिद्ध नहीं होते हैं? इसका उत्तर यह है कि द्रव्य और गुणोंका किसी अपेक्षा भेद व किसी अपेक्षा अभेद होनेपर भी व्यपदेश आदि हो सक्ते हैं। जैसे षष्ठी विभक्ती व कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक दो तरह होते हैं। एक भेदमें जैसे देवदत्तकी गौ ऐसा कहा जाय, दूसरे अभेदमें जैसे वृक्षकी शाखा, जीवके अनन्तज्ञानादि गुण। कारकको बताते हैं कि देवदत्त नामका पुरुष कर्ता होकर फलरूप कर्मको अपने अंकुशरूप करणसे धनदत्तके लिये वृक्षसे बाग रूप अधिकरणमें तोडता है। यह भेदमें संज्ञाकारकका दृष्टांत कहा इसमें छहों ही कारक भिन्न २ हैं। तैसे ही आत्मा कर्त्ता होकर अपने ही आत्मारूप कर्मको अपने ही आत्मारूप करण द्वारा अपने ही आत्माके निमित्त अपने आत्माकी निकटतासे अपने ही आत्मारूप आधारमें ध्याता है यह अभेदमें छः कारकोंका दृष्टांत है। इन दोनों दृष्टांतोंमें संज्ञाका भेद व अभेद बताया गया। अब आकारकी अपेक्षा बताते हैं। जैसे दीर्घ देवदत्तकी दर्घ ही गौ है यह भेदमें संस्थान है, तथा दीर्घ वृक्षके दीर्घ शाखाका भार है तथा मूर्त द्रव्यके मूर्त्त गुण होते हैं यह अभेदमें संस्थान है। अब संख्याको कहते हैं—देवदत्तके दस गांव हैं यह भेदमें संख्या है तैसे ही वृक्षकी दस शाखा हैं या द्रव्यके अनंत गुण हैं यह अभेदमें संख्या है। यहां गाथामें विषय शब्दका अर्थ आधार है उसे दिखाते हैं जैसे गोष्ठ (गौशला) में गायें हैं यह भेदमें विषय कहा तैसे ही द्रव्यमें गुण हैं यह अभेदमें विषय कहा। इस तरह व्यपदेश आदि भेद तथा अभेद दोनोंमें सिद्ध होते हैं इसलिये द्रव्य और गुणोंका एकांतसे भेद नहीं सिद्ध होता है। इस गाथामें नामकर्म उदयसे उत्पन्न नर नारक आदि नामोंको निश्चयसे न रखता हुआ भी जो शुद्ध जीवास्तिकायके नामसे कहने योग्य है, व निश्चय नयसे जो समचतुरस्र आदि छः शरीरके संस्थानोंसे रहित है तो भी व्यवहारनयसे भूतपूर्व न्यायसे अंतिम शरीरके आकारसे कुछ कम आकारधारी संस्थान रखता है व जो केवलज्ञान आदि अनंत गुणरूपसे अनंत संख्यावान है तो भी लोकाकाश प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेश रखनेसे असंख्यात संख्या रखता है तथा जो पंचेन्द्रियके विषयसुखके रसास्वादी जीवोंका विषय न होनेपर भी पंचेन्द्रियोंके विषयोंसे रहित शुद्ध आत्माकी भावनासे उत्पन्न जो वीतराग सदानंदमई एक सुख रूप ध्यानका विषय है जो ध्यान सर्व आत्माके प्रदेशोंमें परम समता रसके भावमें परिणमन कररहा है, ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय स्वरूप आत्मा है वही ग्रहण करने योग्य है यह तात्पर्य है॥ ४६॥

समय व्याख्या गाथा—४७

वस्तुत्वभेदाभेदोदाहरणमेतत्।

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥ ४७ ॥

ज्ञानं धनं च करोति धनिनं यथा ज्ञानिनं च द्विविधाभ्याम्।
भणंति तथा पृथक्त्वमेकत्वं चापि तत्त्वज्ञाः ॥ ४७ ॥

यथा धनं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य, भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य, भिन्नसंख्यं भिन्नसंख्यस्य, भिन्नविषयलब्धवृत्तिकं भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य पुरुषस्य धनीति व्यपदेशं पृथक्त्वप्रकारेण कुरुते, यथा च ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्याभिन्नसंस्थानमभिन्नसंथानस्याभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्याभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य पुरुषस्य ज्ञानीति व्यपदेशमेकत्वप्रकारेण कुरुते, तथान्यत्रापि। यत्र द्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशादिः तत्र पृथक्त्वं, यत्राभेदेन तत्रैकत्वमिति ॥ ४७ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ४७

अन्वयार्थः-[यथा] जिस प्रकार [धनं] धन [च] और [ज्ञानं] ज्ञान [धनिनं] [पुरुषको] 'धनी' [च] और [ज्ञानिनं] ज्ञानी [करोति] करते हैं- [द्विविधाभ्याम् भणंति] ऐसा दो प्रकारसे कहा जाता है, [तथा] उसी प्रकार [तत्त्वज्ञाः] तत्त्वज्ञ (पृथक्त्वं) पृथक्त्व [च अपि] तथा [एकत्वम्] एकत्वको कहते हैं।

टीकाः-यह, वस्तुरूपसे भेद और अभेदका उदाहरण है।

जिस प्रकार [१] भिन्न अस्तित्वसे रचित, [२] भिन्न संस्थानवाला, [३] भिन्न संख्यावाला और [४] भिन्न विषयमें आधार में स्थित ऐसा धन [१] भिन्न अस्तित्वसे रचित, [२] भिन्न संस्थानवाले, [३] भिन्न संख्यावाले और [४] भिन्न विषयमें स्थित ऐसे पुरुषको 'धनी' ऐसा व्यपदेश पृथक्त्व प्रकारसे करता है, तथा जिस प्रकार [१] अभिन्न अस्तित्वसे रचित, [२] अभिन्न संस्थानवाला, (३) अभिन्न संख्यावाला और (४) अभिन्न विषयमें स्थित ऐसा ज्ञान [१] अभिन्न अस्तित्वसे रचित, (२) अभिन्न संस्थानवाले, (३) अभिन्न संख्यावाले और (४) अभिन्न विषय में स्थित ऐसे पुरुषको 'ज्ञानी' ऐसा व्यपदेश एकत्वप्रकारसे करता है, उसी प्रकार अन्यत्र समझना चाहिये जहां द्रव्यके भेदसे व्यपदेश आदि हों वहां पृथक्त्व है, जहां (द्रव्यके) अभेदसे (व्यपदेश आदि) हों वहां एकत्व है ॥ ४७ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४७

अथ निश्चयेन भेदाभेदोदाहरणं कथ्यते-,णाणं धणं च कुव्वदि ज्ञानं कर्तृ धनं च कर्तृ करोदि। किं करोति। धणिणं णाणिणं च-धनिनं ज्ञानिनं च करोति दुविहेहिं-द्वाभ्यां नयाभ्यां व्यवहारनिश्चयाभ्यां

जंह-यथा, भणंति-भणन्ति, तह-तथा। किं भणंति। पुधत्तं एयत्तं चावि--पृथक्त्वमेकत्वं चापि। के भणंति। तच्चण्हू-तत्त्वज्ञा इति। तद्यथा भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं धनं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुपस्य भिन्नव्यपदेशं भिन्नव्यपदेशस्य भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य भिन्नसंख्यं भिन्नसंख्यस्य भिन्नविपयलब्धवृत्तिकं भिन्नविपयलब्धवृत्तिकस्य धनं कर्तृ पृथक्त्वप्रकारेण धनीति व्यपदेशं करोति यथा तथैव चाभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुषस्य अभिन्नव्यपदेशमभिन्नव्यपदेशस्य अभिन्नसंस्थानमभिन्नसंस्थानस्य अभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्य अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य ज्ञानं कर्तृ पुरुपस्यापृथक्त्वप्रकारेण ज्ञानीति व्यपदेशं करोति। दृष्टांतव्याख्यानं गतं तथान्यत्र दार्ष्टांतपक्षेपि यत्र विवक्षितद्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशादयो भवन्ति तत्र निश्चयेन भेदो ज्ञातव्यः पूर्वगाथाकथितक्रमेण देवदत्तस्य गौरित्यादि। यत्र पुनरभेदेन व्यपदेशादयो भवन्ति तत्र निश्चयेनाभेदो ज्ञातव्यः वृक्षस्य शाखा जीवस्य ज्ञानंतज्ज्ञानादयो गुणा इत्यादिवदिति। अत्र सूत्रे यदेव जीवेन सहाभिन्नव्यपदेशं अभिन्नसंस्थानं अभिन्नसंख्यं अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकं च तज्जीवं ज्ञानिनं करोति यस्यैवालाभादनादिकालं नरनारकादिगतिषु भ्रमितोयं जीवो यदेव मोक्षवृक्षस्य बीजभूतं यस्यैव भावनाबलादक्रमसमाक्रांतसमस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावजातं तस्यैव फलभूतं सकलविमलकेवलज्ञानं जायते तदेव निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं भावनीयं ज्ञानिभिरित्यभिप्रायः॥ ४७॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ४७

उत्थानिका—आगे निश्चयसे भेद और अभेदका उदाहरण बताते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(जह) जैसे (णाणं) ज्ञान (णाणिणं) ज्ञानीको (च) और (धणं) धन (धणिणं) धनीको (कुव्वदि) करता है (च दुविधेहिं) ऐसा दो तरहसे अभेद और भेदसे (भण्णंति) कह सक्ते हैं (तह) तैसे (तच्चण्हू) तत्त्वज्ञानी (पुधत्तं एयत्तं चावि) भेदपने और अभेदपनेको कहते हैं।

विशेषार्थ—जैसे धनका अस्तित्व भिन्न है और धनी पुरुपका अस्तित्व भिन्न है इसलिये धन और धनीका नाम भिन्न है, धनका आकार भिन्न है, धनी पुरुपका आकार भिन्न है, धनकी संख्या भिन्न है, धनी पुरुपकी संख्या भिन्न है, धनका आधार भिन्न है। धनीका आधार भिन्न है तौभी धनको रखनेवाला धनी ऐसा जो कहना है सो भेद या पृथक्त्व व्यवहार है। तैसे ही ज्ञानका अस्तित्व ज्ञानीसे अभिन्न है ऐसे ज्ञानका अभिन्न अस्तित्व रखनेवाले ज्ञानी आत्माके साथ अभेद कथन है। ज्ञानका नाम ज्ञानीसे अभिन्न है, ज्ञानीका नाम ज्ञानसे अभिन्न है, ज्ञानका संस्थान ज्ञानीसे अभिन्न है, ज्ञानीका संस्थान ज्ञानसे अभिन्न है, ज्ञानकी संख्या ज्ञानीसे अभिन्न है, ज्ञानीकी संख्या ज्ञानसे अभिन्न है, ज्ञानका आधार ज्ञानीसे अभिन्न है, ज्ञानीका आधार ज्ञानसे अभिन्न है। इस तरह ज्ञान और ज्ञानीमें अपृथक्त्व या अभेद कथन है। इन

दोनों दृष्टांतोंके अनुसार दार्ष्टान्त विचार लेना चाहिये जहां भिन्न २ द्रव्य हों उनका नामादि भिन्न २ जानना चाहिये। जैसे पूर्वकी गाथामें देवदत्त और गौका दृष्टांत दिया। जिस एक ही द्रव्यमें अभेदसे नामादि कहे जावें वहां निश्चयसे अभेद जानना चाहिये। जैसे वृक्षकी शाखा या जीवके अनन्तज्ञान आदि गुण इत्यादि। यहां इस सूत्रमें जिसका जीवके साथ अभिन्न व्यपदेश, अभिन्न संस्थान, अभिन्न संख्या, अभिन्न आधार है और जो जीवको ज्ञानी बताता है व जिसके ही लाभ विना अनादिकालसे यह जीव नरनारक आदि गतियोंमें घूमा है व जो वास्तवमें मोक्षरूपी वृक्षका बीज है व जिसकी ही भावनाके बलसे उसीके फलस्वरूप विना क्रमसे समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको जाननेवाला सर्व प्रकार निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है उसीही निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानकी भावना ज्ञानियोंको करनी योग्य है यह अभिप्राय है ॥ ४७ ॥

समय व्याख्या गाथा ४८

द्रव्यगुणानामर्थांतरभूतत्वे दोषोऽयम्।

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स।
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥ ४८ ॥

ज्ञानी ज्ञानं च सदार्थांतरिते त्वन्योऽन्यस्य।
द्वयोरचेतनत्वं प्रसजति सम्यग् जिनावमतम् ॥ ४८ ॥

ज्ञानी ज्ञानाद्यर्थांतरभूतस्तदा स्वकरणांशमंतरेण परशुरहितदेवदत्तवत्करणव्यापारासमर्थत्वादचेतयमानोऽचेतन एव स्यात्। ज्ञानञ्च यदि ज्ञानिनोऽर्थांतरभूतं तदा तत्कर्त्रंशमंतरेण देवदत्तरहितपरशुवत्तत्कर्तृत्वव्यापारासमर्थत्वादचेतयमानमचेतनमेव स्यात्। न च ज्ञानज्ञानिनोर्युतसिद्धयोर्योगेन चेतनत्वं द्रव्यस्य निर्विशेषस्य गुणानां निराश्रयाणां शून्यत्वादिति ।४८।

हिंदी समय व्याख्या गाथा ४८

अन्वयार्थः—(ज्ञानी) यदि ज्ञानी [-आत्मा] [च] और (ज्ञानं) ज्ञान [सदा] सदा (अन्योऽन्यस्य) परस्पर [अर्थान्तरिते तु] अर्थान्तरभूत (भिन्नपदार्थभूत) हों तो (द्वयोः) दोनोंको (अचेतनत्वं प्रसजति) अचेतनपनेका प्रसंग आजाये-(सम्यग् जिनावमतम्) ऐसा जिनका सम्यक् मत है।

टीकाः—द्रव्य और गुणोंको अर्थान्तरपना (भिन्न पदार्थपना) हो तो यह निम्नानुसार दोष आयेगा।

यदि ज्ञानी [-आत्मा] ज्ञानसे अर्थान्तरभूत हो तो (आत्मा) अपने करणअंश विना, कुल्हाडी

रहित देवदत्तकी भांति करणका व्यापार करनेमें असमर्थ होनेसे न चेतता (-जानता) हुआ अचेतन ही होगा और यदि ज्ञान ज्ञानीसे (-आत्मासे) अर्थान्तरभूत हो तो ज्ञान अपने कर्तृ-अंशके बिना, देवदत्त रहित कुल्हाडीकी भांति, अपने कर्ताका व्यापार करनेमें असमर्थ होनेसे न चेतता (जानता) हुआ अचेतन ही होगा पुनश्च, युतसिद्ध पृथक् सिद्ध ऐसे ज्ञान और ज्ञानीको (ज्ञान और आत्माको) संयोगसे चेतनपना हो ऐसा भी नहीं है, क्योंकि निर्विशेष द्रव्य और निराश्रय गुण शून्य होते हैं अर्थात् गुण के विना द्रव्यका और द्रव्यरूप आश्रय के विना गुणका अभाव होता है ॥४८॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४८

अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे दोषं दर्शयति,—णाणी-ज्ञानी जीवः, णाणं च तहा—ज्ञानगुणोपि तथैव, अत्थंतरिदो दु-अर्थांतरितो भिन्नस्तु यदि भवति । कथं । अण्णमण्णस्स-अन्योन्यसंबन्धित्वेन । तदा किं दूषणं । दोण्हं अचेदणत्तं—द्वयोर्ज्ञानज्ञानिनोरचेतनत्वं जडत्वं, पसजदि-प्रसजति प्राप्नोति । तच्च जडत्वं कथंभूतं । सम्मं जिणावमदं—सम्यक्प्रकारेण जिनानामवमतमसंमतमिति । तथाहि । यथाग्नेर्गुणिनः सकाशादत्यंतभिन्नः सन्नुष्णत्वलक्षणो गुणो दहनक्रियां प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति तथा जीवाद् गुणिनः सकाशादत्यंतभिन्नो ज्ञानगुणः पदार्थपरिच्छित्तिं प्रत्यसमर्थः सन्नियमेन जडो भवति। यथोष्णगुणादत्यंतभिन्नः सन् वह्निर्गुणी दहनक्रियां प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति तथा ज्ञानगुणादत्यंतभिन्नः सन् जीवो गुणी पदार्थविच्छित्तिं प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन जडो भवति। अथ मतं यथा भिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवतीति । नैवं वक्तव्यं । छेदनक्रियां प्रति दात्रं बाह्योपकरणं, वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः पुरुषस्य शक्तिविशेषस्तत्राभ्यंतरोपकरणं शक्त्यभावे दात्रोपकरणे हस्तव्यापारे च सति छेदनक्रिया नास्ति तथा प्रकाशोपाध्यायादिबहिरंगसहकारिसद्भावे सत्यभ्यंतरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रिया न भवतीति । अत्र यस्य ज्ञानस्याभावाज्जीवो जडः सन् वीतरागसहजसुंदरानंदस्यन्दि पारमार्थिकसुखमुपादेयमजानन् संसारे परिभ्रमति तदेव रागादिविकल्परहितं निजशुद्धात्मानुभूतिज्ञानमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ४८ ॥

एवं व्यपदेशादिव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ४८

उत्थानिका—आगे दिखलाते हैं कि यदि ज्ञानको ज्ञानीसे बिलकुल जुदा मानोगे तो क्या दोष होगा ?

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(णाणी) ज्ञानी आत्मा (णाणं च) और उसका ज्ञान (अण्णमण्णस्स) एक दूसरेसे (सदा) हमेशा (अत्थंतरिदो दु) यदि भिन्न पदार्थ हों तो (दोण्हं) दोनों आत्मा और ज्ञानको (अचेदणत्तं) अचेतनपना (पसजदि) प्राप्त हो जायगा यह (सम्मं) भले प्रकार (जिणावमदं) जिनेन्द्रका कथन है ।

विशेषार्थ–जैसे यदि अग्नि गुणी अपने गुण उष्णपनेसे अत्यन्त भिन्न हो जावे तो अग्नि दग्ध करनेके कार्यको न कर सकनेसे निश्चयसे शीतल हो जावे उसी प्रकार जीव गुणी अपने ज्ञान गुण से भिन्न हो जावे तो पदार्थ को जानने में असमर्थ होनेसे जड होजावे। जैसे उष्ण गुण से अग्नि अत्यन्त भिन्न यदि मानी जावे तो दहन क्रिया के प्रति असमर्थ होने से शीतल होजावे तैसे ही ज्ञान गुणसे अत्यन्त भिन्न यदि ज्ञानी जीव माना जावे तो वह पदार्थके जाननेको असमर्थ होता हुआ अचेतन जड हो जावे तब ऐसा हो जावे जैसे देवदत्त घसियारेसे उसका घास काटनेका दतीला भिन्न है वैसे ज्ञानसे ज्ञानी भिन्न हो जावे सो ऐसा नहीं कहा जा सक्ता है। दतीला तो छेदनेके कार्यमें मात्र बाहरी उपकरण है परन्तु भीतरी उपकरण तो वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न पुरुषका वीर्यविशेष है। यदि भीतर शक्ति न हो तो दतीला हाथमें होते हुए भी छेदनेका काम नहीं हो सक्ता है। तैसे ही प्रकाश, गुरु आदि बाहरी सहकारी कारणोंके होते हुए यदि पुरुषमें भीतर ज्ञानका उपकरण न हो तो वह पदार्थको जानने रूप कार्य नहीं कर सक्ता है। यहां यह तात्पर्य है कि जिस ज्ञानके अभावसे जीव जड होता हुआ वीतराग सहज व सुन्दर आनंदसे पूर्ण पारमार्थिक सुखको उपादेय न जानता हुआ संसारमें भ्रमा है उसही रागादि विकल्पोंसे रहित अपने शुद्धात्मानुभवमई ज्ञानको ग्रहण करना चाहिये ॥ ४८ ॥

इसतरह व्यपदेशादिके व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथाएं कहीं।

समय व्याख्या गाथा ४९

ज्ञानज्ञानिनोः समवायसंबंधनिरासोऽयम्।

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी।
अण्णाणीति च वयणं एगत्तप्पसाधगं होदि ॥ ४९ ॥

न हि सः समवायादार्थांतरितस्तु ज्ञानतो ज्ञानी।
अज्ञानीति च वचनमेकत्वप्रसाधकं भवति ॥ ४९ ॥

न खलु ज्ञानादर्थान्तरभूतः पुरुषो ज्ञानसमवायात् ज्ञानी भवतीत्युपपन्नम्। स खलु ज्ञानसमवायात्पूर्वं किं ज्ञानी किमज्ञानी ? यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो निष्फलः। अथाज्ञानी तदा किमज्ञानसमवायात्, किमज्ञानेन सहैकत्वात् ? न तावदज्ञानसमवायात्, अज्ञानिनो ह्यज्ञानसमवायो निष्फलः, ज्ञानित्वं तु ज्ञानसमवायाभावान्नास्त्येव। ततोऽज्ञानीति वचनमज्ञानेन सहैकत्वमवश्यं साधयत्येव। सिद्धे चैवमज्ञानेन सहैकत्वे ज्ञानेनापि सहैकत्वमवश्यं सिध्यतीति ॥ ४९ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ४९

अन्वयार्थः-(ज्ञानतः अर्थान्तरितः तु) ज्ञानसे अर्थान्तरभूत (सः) ऐसा वह (-आत्मा) (समवायात्) समवायसे (संयोग से) (ज्ञानी) ज्ञानी होता है (न हि) ऐसा वास्तवमें नहीं है : (अज्ञानी) 'अज्ञानी' (इति च वचनम्) ऐसा वचन (एकत्वप्रसाधकं भवति) (गुण गुणीके) एकत्व को सिद्ध करता है ।

टीकाः—यह, ज्ञान और ज्ञानीको समवाय (संयोग) सम्बन्ध होनेका निराकरण (खंडन) है ।

ज्ञानसे अर्थान्तरभूत आत्मा ज्ञानके समवायसे ज्ञानी होता है ऐसा मानना वास्तवमें योग्य नहीं है । आत्माको ज्ञानके समवायसे ज्ञानी होना माना जाये तो वह (-आत्मा) ज्ञानका समवाय होनेसे पहले वास्तवमें ज्ञानी है या अज्ञानी ? यदि ज्ञानी है (एसा कहा जाये) तो ज्ञानका समवाय निष्फल है । अब यदि अज्ञानी है (ऐसा कहा जाय) तो (पूछते हैं कि) अज्ञानके समवायसे अज्ञानी है कि अज्ञानके साथ एकत्वसे अज्ञानी है ? प्रथम, अज्ञानके समवायसे अज्ञानी हो नहीं सकता, क्योंकि अज्ञानीको अज्ञानका समवाय निष्फल है और ज्ञानीपना तो ज्ञानके समवायका अभाव होनेसे है ही नहीं । इसलिये 'अज्ञानी' ऐसा वचन अज्ञानके साथ एकत्वको अवश्य सिद्ध करता ही है । और इस प्रकार अज्ञानके साथ एकत्व सिद्ध होनेसे ज्ञानके साथ भी एकत्व अवश्य सिद्ध होता है ॥ ४९ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ४९

अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे सति समवायसंबंधेनाप्येकत्वं कर्तुं नायातीति प्रतिपादयति,-सो स जीवः कर्ता, ण हि णाणी—ज्ञानी न भवति हि स्फुटं । कस्मात्सकाशात् । समवायादो-समवायसंबंधात् कथंभूतः सन् । अत्थंतरिदो दु-अर्थांतरितस्त्वेकांतेन भिन्नः । कस्मात्सकाशात् । णाणादो-ज्ञानात् । अण्णाणित्ति य वयणं एयत्तपसाहगं होदि-अज्ञानी चेति वचनं गुणगुणिनोरेकत्वप्रसाधकं भवतीति । तद्यथा ज्ञानसमवायात्पूर्वं जीवो ज्ञानी किंवाऽज्ञानीति विकल्पद्वयमवतरति । तत्र यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो व्यर्थो यतो ज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति, अथवाऽज्ञानी तत्रापि विकल्पद्वयं किमज्ञानगुणसमवायादज्ञानी किं स्वभावेन वा । न तावदज्ञानगुणसमवायादज्ञानिनो जीवस्याज्ञानगुणसमवायो वृथा येन कारणेनाज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति अथवा स्वभावेनाज्ञानित्वं तथैव ज्ञानित्वमपि स्वभावेनैव गुणत्वादिति । अत्र यथा मेघपटलावृते दिनकरे पूर्वमेव प्रकाशस्तिष्ठति पश्चात्पटलविघटनानुसारेण प्रकटो भवति तथा जीवे निश्चयनयेन क्रमकरणव्यवधानरहितं त्रैलोक्योदरविवरवर्तिसमस्तवस्तुगतानंतधर्मप्रकाशकमखंडप्रतिभासमयं केवलज्ञानं पूर्वमेव तिष्ठति किंतु व्यवहारनयेनानादिकर्मावृतः सन्न ज्ञायते पश्चात्कर्मपटलविघटनानुसारेण प्रकटीभवति न च जीवाद्बहिर्भूतं तत् ज्ञानं किमपि तिष्ठतीति पश्चात्समवायसंबंधबलेन जीवे संबद्धं, न भवतीति भावार्थः ॥ ४९ ॥

हिंदी तात्पर्य वृत्ति गाथा ४९

उत्थानिका–आगे फिर कहते हैं कि यदि ज्ञानको ज्ञानीसे अत्यन्त भेदरूप मानो तो समवाय नामके सम्बन्धसे भी उनकी एकता नहीं की जासक्ती है।

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(दु) तथा (णाणदो) ज्ञानसे (अत्थंतरिदो) अत्यन्त भिन्न होता हुआ (सो) वह जीव (समवायादो) समवाय सम्बन्धसे (णाणी) ज्ञानी (ण हि) नहीं होता है (अण्णाणित्ति य वयणं) यह जीव अज्ञानी है ऐसा बचन (एगत्तप्पसाधगं होदि) गुण और गुणीकी एकताको साधनेवाला हो जाता है।

विशेषार्थ–यहां दो विचार पैदा होते हैं कि ज्ञानके साथ जीवका समवाय सम्बन्ध होनेके पूर्व यह जीव ज्ञानी था कि अज्ञानी? यदि कहोगे कि ज्ञानी था तो ज्ञानका समवाय सम्बन्ध हुआ यह कहना व्यर्थ होगा क्योंकि ज्ञानी तो पहले ही से था। अथवा यदि कहोगे कि वह अज्ञानी था तो वहां भी दो विचार हैं कि वह अज्ञान गुणके समवाय सम्बन्धसे अज्ञानी था कि स्वभावसे अज्ञानी था। यदि यह जीव अज्ञान गुणके समवायसे अज्ञानी था तो अज्ञान गुणका समवाय कहना वृथा होगा क्योंकि अज्ञानी तो पहलेसे ही था। अथवा यदि मानोगे कि स्वभावसे अज्ञानीपना है तो जैसे अज्ञानीपना स्वभावसे है वैसे ज्ञानीपना ही स्वभावसे क्यों न मान लिया जावे क्योंकि ज्ञान आत्माका गुण है, गुण और गुणी भिन्न नहीं होते। यहां यह तात्पर्य है कि जैसे सूर्यमें मेघोंके पटलोंसे आच्छादित होते हुए प्रकाश पहलेसे ही मौजूद है फिर जितना २ पटल हटता है उतना २ प्रकाश प्रगट होता है तैसे जीवमें निश्चय नयसे क्रमवर्ती जाननेसे रहित तीन लोक सम्बन्धी व उसके भीतर रहनेवाले सर्व पदार्थोंके अनंत स्वभावोंको प्रकाश करनेवाला अखंड प्रकासमई केवलज्ञान पहलेसे ही मौजूद है किन्तु व्यवहारनयसे अनादि कालसे कर्मोंसे ढका हुआ वह पूर्ण प्रगट नहीं है व उस पूर्ण ज्ञानका पता नहीं चलता है फिर जितना २ कर्म पटल घटता जाता है उतना २ ज्ञान प्रगट होता जाता है। वह ज्ञान जीवके बाहर कहीं भी नहीं है जहांसे जीवमें आता हो और पीछे समवाय सम्बन्धसे जीवसे मिल जाता हो ॥ ४९ ॥

समय व्याख्या गाथा ५०

समवायस्य पदार्थान्तरत्वनिरासोऽयम्।

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य।
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धित्ति णिद्दिट्ठा ॥ ५० ॥

समवर्तित्वं समवायः अपृथग्भूतत्वमयुतसिद्धत्वं च।

तस्माद् द्रव्यगुणानां अयुता सिद्धिरिति निर्दिष्टा ॥ ५० ॥

द्रव्यगुणानामेकास्तित्वनिर्वृत्तित्वादनादिरनिधना सहवृत्तिर्हि समवर्तित्वम्, स एव समवायो जैनानाम्, तदेव संज्ञादिभ्यो भेदेऽपि वस्तुत्वेनाभेदादपृथग्भूतत्वम्, तदेव युतसिद्धिनिबंधनस्यास्तित्वान्तरस्याभावादयुतसिद्धत्वम् । ततो द्रव्यगुणानां समवर्तित्वलक्षणसमवायभाजामयुतसिद्धिरेव, न पृथग्भूतत्वमिति ॥ ५० ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ५०

अन्वयार्थः-(समवर्तित्वं समवायः) समवर्तीपना वह समवाय है, (अपृथग्भूतत्वम्) वही, अपृथक्पना (च) और (अयुतसिद्धत्वम्) अयुतसिद्धपना है । (तस्मात्) इसलिये (द्रव्यगुणानाम्) द्रव्य और गुणोंकी (अयुता सिद्धिः इति) अयुतसिद्धि (निर्दिष्टा) (जिनोंने) कही है ।

टीकाः-यहं, समवायमें पदार्थान्तरपना होनेका निराकरण (खंडन) है ।

द्रव्य और गुण एक अस्तित्वसे रचित हैं इसलिये उनकी जो अनादि-अनंत सहवृत्ति (-एकसाथ रहना) वह वास्तवमें समवर्तीपना है, वही, जैनोंके मतमें समवाय है, वही, संज्ञादि भेद होने पर भी वस्तुरूपसे अभेद होनेसे अपृथक्पना है, वही, युतसिद्धिके कारणभूत अस्तित्वांतरका अभाव होनेसे अयुतसिद्धपना है । इसलिये समवर्तित्वस्वरूप समयवाले द्रव्य और गुणोंको अयुतसिद्धि ही है, पृथक्पना नहीं है ॥ ५० ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५०

अथ गुणगुणिनोः कथंचिदेकत्वं विहायान्यः कोपि समवायो नास्तीति समर्थयति, समवत्ती-समवृत्तिः सहवृत्तिर्गुणगुणिनोः कथंचिदेकत्वेनानादितादात्म्यसंबंध इत्यर्थः । समवाओ-स एव जैनमते समवायो नान्यः कोपि परिकल्पितः. अपुधब्भूदो य-तदेव गुणगुणिनोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि प्रदेशभेदाभावादपृथग्भूतत्वं भण्यते । अजुदसिद्धा य-तदेव दंडदंडिवद्भिन्नप्रदेशलक्षणयुतसिद्धत्वाभावादयुतसिद्धत्वं भण्यते । तम्हा-तस्मात्कारणात् दव्वगुणाणं-द्रव्यगुणानां अजुदा सिद्धित्ति-अयुतासिद्धिरिति कथंचिदभिन्नत्वसिद्धिरिति णिद्दिट्ठा-निर्दिष्टा कथितेति । अत्र व्याख्याने यथा ज्ञानगुणेन सहानादितादात्म्यसंबंधः प्रतिपादितो द्रष्टव्यो जीवेन सह तथैव च यदव्याबाधरूपमप्रमाणमविनश्वरं स्वाभाविकं रागादिदोषरहितं परमानंदैकस्वभावं पारमार्थिकसुखं तत्प्रभृतयो ये अनंतगुणाः केवलज्ञानांतर्भूतास्तैरपि सहानादितादात्म्यसंबंधः श्रद्धातव्यो ज्ञातव्यः तथैव च समस्तरागादिविकल्पत्यागेन निरंतरं ध्यातव्य इत्यभिप्रायः ॥ ५० ॥ एवं समवायनिराकरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं ।

हिंदी तात्पर्यवृत्ति गाथा ५०

उत्थानिका-आगे फिर समर्थन करते हैं कि गुण और गुणीकी एकताको छोड कर और कोई समवाय नहीं है ।

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(समवत्ती) द्रव्य और गुणका साथ साथ रहना (समवाओ) समवाय है (अपुधब्भूदो य) यही अपृथग्भूत या अभिन्न है (अजुदसिद्धो य) तथा यही अयुतसिद्ध है-कभी मिलकर नहीं हुआ है (तम्हा) इसलिये (दव्वगुणाणं) द्रव्य और उसके गुणोंका (अजुदा सिद्धित्ति) अयुत सिद्धपना है ऐसा (णिद्दिट्ठा) कहा गया है।

विशेषार्थ-जैन मतमें समवाय उसीको कहते हैं जो साथ साथ रहते हों अर्थात् जो किसी अपेक्षा एकरूपसे अनादिकालसे तादात्म्य सम्बन्ध या न छूटनेवाला सम्बन्ध रखते हों ऐसा साथ वर्तन गुण और गुणीका होता है इससे दूसरा कोई अन्यसे कल्पित समवाय नहीं है। यद्यपि गुण और गुणीमें संज्ञा लक्षण प्रयोजनादिकी अपेक्षा भेद है तथापि प्रदेशोंका भेद नहीं है इससे वे अभिन्न हैं। तथा जैसे दंड और दंडी पुरुषका भिन्न २ प्रदेशपनारूप भेद है तथा ये दोनों मिल जाते हैं ऐसा भेद गुण और गुणीमें नहीं है इससे इनमें अयुतसिद्धपना या एकपना कहा जाता है। इस कारण द्रव्य और गुणोंका अभिन्नपना सदासे सिद्ध है। इस व्याख्यानमें यह अभिप्राय है कि जैसे जीवके साथ ज्ञान गुणका अनादि तादात्म्य सम्बन्ध कहा गया है तथा वह श्रद्धान करने योग्य है वैसे ही जो अव्याबाध, अप्रमाण, अविनाशी, व स्वाभाविक रागादि दोष रहित परमानंदमई एक स्वभाव रूप पारमार्थिक सुख है इसको आदि लेकर जो अनंत गुण केवलज्ञानमें अंतर्भूत हैं उनके साथ भी जीवका तादात्म्यसम्बन्ध जानना योग्य है तथा उसी ही जीवको रागादि विकल्पोंको त्यागकर निरंतर ध्याना चाहिये ॥ ५० ॥

इस तरह समवायका खंडन करते हुए दो गाथाएं कहीं।

समय व्याख्या गाथा ५१-५२

दृष्टांतदार्ष्टान्तिकार्थपुरस्सरो द्रव्यगुणानामनर्थांतरत्वव्याख्योपसंहारोऽयम्।

वण्णरसगंधफासा परमाणुरूविदा विसेसेहिं।
दव्वादो य अण्णणा अण्णत्तपगासगा होंति ॥ ५१ ॥
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो ॥ ५२ ॥

वर्णरसगंधस्पर्शाः परमाणुप्ररूपिता विशेषैः।
द्रव्याच्च अनन्याः अन्यत्वप्रकाशका भवन्ति ॥ ५१ ॥
दर्शनज्ञाने तथा जीवनिबद्धे अनन्यभूते।
व्यपदेशतः पृथक्त्वं कुरुतः हि नो स्वभावात् ॥ ५२ ॥

वर्णरसगंधस्पर्शा हि परमाणोः प्ररूप्यंते, ते च परमाणोरविभक्तप्रदेशत्वेनानन्येऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबंधनैर्विशेषैरन्यत्वं प्रकाशयन्ति । एवं ज्ञानदर्शने अप्यात्मनि संबद्धे आत्मद्रव्यादविभक्तप्रदेशत्वेनानन्येऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबंधनैर्विशेषैः पृथक्त्वमासादयतः, स्वभावतस्तु नित्यमपृथक्त्वमेव बिभ्रतः ।। ५१-५२ ।।

इति उपयोगगुणव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ कर्तृत्वगुणव्याख्यानम् । तत्रादिगाथात्रयेण तदुपोद्घातः-

हिंदी समय व्याख्या गाथा ५१—५२

अन्वयार्थः—(परमाणुप्ररूपिताः) परमाणुमें प्ररूपित किये जानेवाले ऐसे (वर्णरसगंधस्पर्शाः) वर्ण-रस-गंध-स्पर्श (द्रव्यात् अनन्याः च) द्रव्यसे अनन्य वर्तते हुए (विशेषैः) (व्यपदेशके कारणभूत) विशेषों द्वारा (अन्यत्वप्रकाशकाः भवन्ति) अन्यत्वको प्रकाशित करनेवाले होते हैं (-स्वभावसे अन्यरूप नहीं हैं), (तथा) इस प्रकार (जीवनिबद्धे) जीवमें सम्बद्ध ऐसे (दर्शनज्ञाने) दर्शन-ज्ञान (अनन्यभूते) (जीवद्रव्यसे) अनन्य वर्तते हुए (व्यपदेशतः) व्यपदेश द्वारा (पृथक्त्वं कुरुतः हि) पृथक्त्वको करते हैं, (नो स्वभावात्) स्वभावसे (पृथक्त्व को) नहीं करते ।

टीकाः-दृष्टान्तरूप और दार्ष्टान्तरूप पदार्थपूर्वक, द्रव्य तथा गुणोंके अभिन्न-पदार्थपनेके व्याख्यानका यह उपसंहार है ।

वर्ण-रस-गंध-स्पर्श वास्तवमें परमाणुमें प्ररूपित किये जाते हैं, वे परमाणुसे अभिन्न प्रदेशवाले होनेके कारण अनन्य होनेपर भी, संज्ञादि व्यपदेशके कारणभूत विशेषों द्वारा अन्यत्वको प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार आत्मामें सम्बद्ध ज्ञान दर्शन भी आत्मद्रव्यसे अभिन्न प्रदेशवाले होनेके कारण अनन्य होनेपर भी, संज्ञादि व्यपदेशके कारणभूत विशेषों द्वारा पृथकपनेको प्राप्त होते हैं, परन्तु स्वभावसे सदैव अपृथकपनेको ही धारण करते हैं ॥ ५१-५२ ॥

इस प्रकार उपयोगगुणका व्याख्यान समाप्त हुआ। अब कर्तृत्वगुणका व्याख्यान है। उसमें प्रारंभकी तीन गाथाओंसे उसका उपोद्घात (भूमिका) किया जाता है।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५१-५२

अथ दृष्टांतदार्ष्टांतरूपेण द्रव्यगुणानां कथंचिदभेदव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते,-वण्णरसगंधफासा वर्णरसगंधस्पर्शाः, परमाणुपरूविदा-परमाणुद्रव्यप्ररूपिताः कथिताः । कैः कृत्वा । विसेसेहिं-विशेषैः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदैः अथवा 'विसेसा हि' इति पाठांतरं विशेषा विशेषगुणधर्माः स्वभावा हि स्फुटं । ते कथंभूताः । दव्वादो य—परमाणुद्रव्याच्च सकाशात , अणण्णा—निश्चयनयेनानन्ये । अण्णत्तपयासगा होंति—पश्चाद्व्यवहारनयेन संज्ञादिभेदेनान्यत्वप्रकाशका भवन्ति यथा। इति दृष्टांतगाथा गता । दंसण-

णाणाणि तहा—दर्शनज्ञाने द्वे तथा । कथंभूते ? जीवणिबद्धाणि—जीवनिबद्धे द्वे । पुनरपि कथंभूते ? अणण्णभूदाणि—निश्चयनयेन प्रदेशरूपेणानन्यभूते । इत्थंभूते ते किं कुरुतः ? ववदेसदो पुधत्तं—व्यपदेशतः संज्ञादिभेदतः पृथक्त्वं नानात्वं कुर्वंति—कुरुतः । हु स्फुटं-णो सहावादो—नैव स्वभावतो निश्चयनयेन इति । अस्मिन्नधिकारे यद्यप्यष्टविधज्ञानोपयोगचतुर्विधदर्शनोपयोगव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धविवक्षा न कृता तथापि निश्चयनयेनादिमध्यांतवर्जिते परमानंदमालिनि परमचैतन्यशालिनि भगवत्यात्मनि यदनाकुलत्वलक्षणं पारमार्थिकसुखं तस्योपादेयभूतस्योपादानकारणभूतं यत्केवलज्ञानदर्शनद्वयं तदेवोपादेयमिति श्रद्धेयं ज्ञेयं तथैवार्तरौद्रादिसमस्तविकल्पजालत्यागेन ध्येयमिति भावार्थः ॥ ५१ । ५२ ॥ एवं दृष्टांतदार्ष्टांतरूपेण गाथाद्वयं गतं ।

अत्र प्रथमं 'उवओगो दुवियप्पो' इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण दर्शनज्ञानकथनरूपेणांतरस्थपंचकेन गाथानवकं तदनंतरं 'ण वियप्पदि णाणादो' इत्यादि पाठक्रमेण नैयायिकं प्रति गुणगुणिभेदनिराकरणरूपेणांतरस्थलचतुष्टयेन गाथादशमिति समुदायेनैकोनविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकारव्याख्यानरूपनवाधिकारेषु मध्ये षष्ठ "उपयोगाधिकारः समाप्तः" ।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ५१ ५२

उत्थानिका—आगे दृष्टांत दार्ष्टान्त देकर द्रव्य और गुणोंमें किसी अपेक्षा अभेद के व्याख्यानको संकोच करते हुए कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(हि) निश्चयसे (वण्णरसगंधफासा) वर्ण, रस, गंध स्पर्श (परमाणुपरूविदा) परमाणुमें कहे हुए (विसेसा) गुण (दव्वादो य अणण्णा) पुद्गल द्रव्यसे अभिन्न हैं तौभी (अण्णत्तपगासगा) व्यवहारसे संज्ञादिकी अपेक्षा भेदपनेके प्रकाशक (होंति) हैं (तहा) तैसे (जीवणिबद्धाणि) जीवसे तादात्म्य सम्बन्ध रखनेवाले (दंसणणाणाणि) दर्शन और ज्ञान गुण (णण्णभूदाणि) जीवसे अभिन्न हैं सो (ववदेसदो) संज्ञा आदिसे (पुधत्तं) परस्पर भिन्नपना (कुव्वंति) करते हैं । (हि) निश्चयसे (सभावादो ण) स्वभावसे पृथक्पना नहीं करते हैं ।

विशेषार्थ—प्रदेशोंकी अपेक्षा जैसे पुद्गल परमाणुसे उसके स्पर्शादि गुण अभिन्न हैं वैसे जीवसे उसके ज्ञानदर्शनादि गुण अभिन्न हैं संज्ञा आदिकी अपेक्षा जैसे परमाणुका स्पर्श, रस, गंध वर्णसे भेद है वैसे जीवका अपने ज्ञान दर्शन गुणसे भेद है ।

यहां यह तात्पर्य है कि इस अधिकारमें यद्यपि आठ प्रकार ज्ञानोपयोग और चार प्रकार दर्शनोपयोगके व्याख्यानके कालमें शुद्ध तथा अशुद्धकी अपेक्षा नहीं की थी तथापि निश्चयनयसे आदि मध्य अन्तसे रहित परमानंदमई परमचैतन्यवान भगवान आत्मामें जो निराकुलता

लक्षण पारमार्थिक सुख है उस ग्रहण करने योग्य सुखका उपादान कारण जो केवल दर्शन और केवलज्ञान दो उपयोग हैं वे ही ग्रहण करने योग्य हैं ऐसा श्रद्धान तथा ज्ञान करना चाहिये। तथा उन्हींको ही आर्त्त रौद्र आदि सर्व विकल्पजाल त्यागकरके ध्याना योग्य है ॥ ५१-५२ ॥

इस तरह दृष्टांत और दार्ष्टांत रूपसे दो गाथाएं कहीं। यहां पहले 'उवओगो दुवियप्पो' इत्यादि पूर्व कहे प्रमाण पाठके क्रमसे दर्शन ज्ञानको कहते हुए स्थल पांचसे नव गाथाएं कहीं फिर 'ण वियप्पदि णाणादो' इत्यादि पाठ क्रमसे नैयायिकके लिये गुण और गुणीका भेद हटाते हुए चार अंतर स्थलोंसे दस गाथाएं कहीं। इस तरह समुदाय रूप उगनीस गाथाओंके द्वारा जीवाधिकारके व्याख्यान रूप नव अधिकारोंमें छठा उपयोग अधिकार समाप्त हुआ।

समय व्याख्या गाथा ५३

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो।
सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पधाणा य ॥ ५३ ॥

जीवा अनादिनिधनाः सांता अनंताश्च जीवभावात्।
सद्भावतोऽनंताः पञ्चाग्रगुणप्रधानाः च ॥ ५३ ॥

जीवा हि निश्चयेन परभावानामकरणात्स्वभावानां कर्तारो भविष्यन्ति। तांश्च कुर्वाणाः किमनादिनिधनाः, किं सादिसनिधनाः, किं साद्यनिधनाः, किं तदाकारेण परिणताः, किमपरिणताः भविष्यंतीत्याशंक्येदमुक्तम्। जीवा हि सहजचैतन्यलक्षणपारिणामिकभावेनानादिनिधनाः त एवौदयिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावैः सादिसनिधनाः। त एव क्षायिकभावेन साद्यनिधनाः न च सादित्वात्सनिधनत्वं क्षायिकभावस्याशंक्यम्। स खलूपाधिनिवृत्तौ प्रवर्तमानः सिद्धभाव इव सद्भाव एव जीवस्य, सद्भावेन चानंता एव जीवाः प्रतिज्ञायंते। न च तेषामनादिनिधनसहजचैतन्यलक्षणैकभावानां सादिसनिधनानि साद्यनिधनानि भावांतराणि नोपपद्यंत इति वक्तव्यम्, ते खल्वनादिकर्ममलीमसाः पंकसंपृक्ततोयवत्तदाकारेण परिणतत्वात्पञ्चप्रधानगुणप्रधानत्वेनैवानुभूयंत इति ॥ ५३ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा—५३

अन्वयार्थः-(जीवाः) जीव (अनादिनिधनाः) (पारिणामिकभावसे) अनादि-अनंत हैं, (सांताः) (औपशमिक आदि तीन भावोंसे) सांत (अर्थात् सादि-सांत) हैं (च) और (जीवभावात् अनंताः) जीवभावसे अनंत हैं (अर्थात् जीव सद्भावरूप क्षायिकभावसे सादि-अनंत हैं) (सद्भावतः अनंताः) क्योंकि सद्भावसे जीव अनंत ही होते हैं। (पञ्चाग्रगुणप्रधानाः च) वे पांच मुख्य गुणोंसे प्रधानतावाले हैं।

टीका:—निश्चयसे पर-भावोंका कर्तृत्व न होनेसे जीव स्व-भावोंके कर्ता होते हैं, और उन्हें, (—अपने भावोंको) करते हुए, क्या वे अनादि-अनंत हैं? क्या सादि-सांत हैं? क्या आदि अनंत हैं? क्या तदाकाररूप (उस-रूप) परिणत हैं? क्या तदाकाररूप अपरिणत हैं?-ऐसी आशंका करके यह कहा गया है। अर्थात् उन आशंकाओंके समाधानरूपसे यह गाथा कही गई है।

जीव वास्तवमें सहजचैतन्यलक्षण पारिणामिक भावसे अनादि-अनन्त हैं। वे ही औदयिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भावोंसे सादि-सांत हैं। वे ही क्षायिक भावसे सादि-अनन्त हैं।

'क्षायिक भाव सादि होनेसे वह सान्त होगा'-ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है। कारण इस प्रकार है:-वह वास्तवमें उपाधिकी निवृत्ति होने पर प्रवर्तता हुआ, सिद्धभावकी भांति, जीवका सद्भाव ही है (अर्थात् कर्मोपाधिके क्षयरूपसे प्रवर्तता है इसलिये क्षायिक भाव जीवका सद्भाव ही है) और सद्भावसे तो जीव अनन्त ही स्वीकार किये जाते हैं इसलिये क्षायिकभावसे जीव अनन्त ही हैं अर्थात् विनाशरहित ही हैं।

पुनश्च, 'अनादि-अनन्त सहजचैतन्यलक्षण एक भाववाले उनके सादि-सांत और सादि-अनन्त भावान्तर घटित नहीं होते ऐसा कहना योग्य नहीं है, [क्योंकि] वे वास्तवमें अनादि कर्मसे मलिन वर्तते हुए कीचडसे संपृक्त जलकी भांति तदाकाररूप परिणत होनेके कारण, पांच प्रधान गुणोंसे प्रधानतावाले ही अनुभवमें आते हैं॥ ५३॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५३

अथानंतरं वीतरागपरमानंदसुधारससमरसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात् सकाशात् भिन्नं यत्कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयस्वरूपं तस्य प्रपञ्चसंबन्धित्वेन पूर्वमष्टादशगाथाभिःसमुदायपातनिकारूपेण यत्सूचितं व्याख्यातं तस्येदानीं 'जीवा अणाइणिहणा' इत्यादि पाठक्रमेणांतरस्थलपंचकेन विवरणं करोति। तद्यथा। येषां जीवानामग्रे कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयं कथ्यते तेषां पूर्वं तावत्स्वरूपं संख्यां च प्रतिपादयति:,

जीवा अणाइणिहणा—जीवा हि शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धचैतन्यरूपेणानाद्यनिधनाः। पुनश्च कथंभूताः। संता—औदयिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावत्रयापेक्षया सादिसनिधनाः। पुनरपि किंविशिष्टाः। अणंता य—साद्यनंताः। कस्मात्सकाशात्? जीवभावादो—जीवभावतः क्षायिको भावस्तस्मात्। नहि क्षायिकभावस्य सादित्वादंतोऽपि किल भविष्यतीत्याशंकनीयं। स हि कर्मक्षये सति क्षायिकभावः केवलज्ञानादिरूपेण समुत्पद्यमानः सिद्धभाव इव जीवस्य सद्भाव एव स च स्वभावस्य विनाशो नास्ति चेति अनाद्यनिधनसहजशुद्धपारिणामिकैकभावानां सादिसनिधनान्यप्यौदयिकादिभावांतराणि कथं संभवंतीति चेत्? पंचग्गगुणप्पहाणा य—यद्यपि स्वभावेन शुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशात्सकर्दमजलवदौदयिकादिभावपरिणता दृश्यंत इति स्वरूपव्याख्यानं गतं। इदानीं संख्यां कथयति। सब्भावदो अणंता--द्रव्यस्वभावगणनया पुनरनंताः। सांतनांतशब्दयोर्द्वितीयव्याख्यानं क्रियते--सहांतेन

संसारविनाशेन वर्तंते सान्ता भव्याः, न विद्यतेंतः संसारविनाशो येषां ते पुनरनंता अभव्यास्ते चाभव्या अनंतसंख्यास्तेभ्योपि भव्या अनंतगुणसंख्यास्तेभ्योप्यभव्यसमानभव्या अनंतगुणा इति । अत्र सूत्रे अनादिनिधना अनंतज्ञानादिगुणाधाराः शुद्धजीवा एव सादिसनिधनमिथ्यात्वरागादिदोषपरिहारपरिणतानां भव्यानामुपादेया इति तात्पर्यार्थः ॥ ५३ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ५३

उत्थानिका–आगे वीतराग परमानन्दमई अमृत रस रूप समतारसकी परिणतिमें रहनेवाले शुद्ध जीवास्तिकायसे भिन्न जो कर्मोंका कर्तापना भोक्तापना व उनसे संयोगपना ये तीन स्वरूप हैं उनके प्रपञ्चके सम्बन्धमें पहले अठारह गाथाओंके द्वारा समुदाय पातनिकासे जो सूचना की थी उसीका वर्णन अब "जीव अणाईणिहणा" इत्यादि पाठक्रमसे पांच अंतर स्थलोंके द्वारा करते हैं।

उनमेंसे पहले ही जिन जीवोंका आगे कर्तापना भोक्तापना व संयोग ये तीन भाव कहेंगे उनका पहले स्वरूप व उनकी संख्या कहते हैं--

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(जीवा) जीव (जीवभावादो) अपने जीव सम्बन्धी भावोंकी अपेक्षा (अणाइणिहणा) अनादि अनंत हैं (संता) सांत हैं (णंता य) और अनंत हैं (पंचग्ग-गुणप्पधाणा य) इस तरह पांच मुख्यगुणधारी हैं तथा (सब्भावदो) सत्तापनेकी अपेक्षा (अणंता) अनंत हैं।

विशेषार्थ–ये जीव शुद्ध पारिणामिक परमभावको ग्रहण करनेवाली शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे शुद्ध चैतन्यरूप हैं इससे अनादि अनंत हैं अर्थात् पारिणामिक भाव सदा बना रहता है, और औदयिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक इन तीन भावोंकी अपेक्षा सादि सांत हैं अर्थात् ये तीन भाव कर्मोंके उदय, उपशम, या क्षयोपशमके द्वारा होते हैं और नष्ट होते हैं तथा क्षायिक भावोंकी अपेक्षा सादि अनंत हैं। क्षायिक भावोंको सादिसांत न मानना चाहिये क्योंकि वे भाव कर्मोंके क्षयसे केवलज्ञानादि रूपसे उत्पन्न होकर सदा बने रहते हैं, वे भाव सिद्ध जीवके समान जीवके स्वाभाविक भाव हैं और स्वभावका कभी नाश नहीं होता है। यद्यपि ये जीव स्वभावसे शुद्ध हैं तथापि व्यवहारनयसे अनादिकालसे कर्मबंध होनेके कारण कर्दम सहित जलकी तरह औदयिक आदि भावोंमें परिणमन करते हुए देखे जाते हैं इस तरह स्वरूपका व्याख्यान किया गया। अब संख्याको कहते हैं कि–ये जीव द्रव्य स्वभावकी गणनासे अनंत हैं अर्थात् इनकी संख्या अक्षय अनंत है। सांत अनंत शब्दका दूसरा व्याख्यान करते हैं–जिनका अन्त हो अर्थात् जिनके संसारका अन्त हो सके वे जीव सांत अर्थात् भव्य हैं, व जिनके संसारका अन्त न हो सके वे जीव अनंत अर्थात् अभव्य हैं। ये अभव्य जीव अनंत हैं इनसे भी अनंतगुणे भव्य हैं,

इन भव्योंसे भी अनंतगुणे अभव्य समान भव्य हैं जिनका भी संसार अन्त होनेका अवसर नहीं आयगा—इस सूत्रका यह तात्पर्य है कि जो भव्य जीव सादि सांत मिथ्यात्व रागादि दोषके त्यागमें परिणमन करनेवाले हैं उनको अनादि अनंत अनंतज्ञानादि गुणके धारी शुद्ध जीव ही ग्रहण करने योग्य हैं ॥५३॥

समय व्याख्या गाथा—५४

जीवस्य भाववशात्सादिसनिधनत्वे साद्यनिधनत्वे च विरोधपरिहारोऽयम्।

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स होइ उप्पादो।
इदि जिणवरेहिं भणिदं अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं॥ ५४ ॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य भवत्युत्पादः।
इति जिनवरैर्भणितमन्योऽन्यविरुद्धमविरुद्धम्॥ ५४ ॥

एवं हि पंचभिर्भावैः स्वयं परिणममानस्यास्य जीवस्य कदाचिदौदयिकेनैकेन मनुष्यत्वादिलक्षणेन भावेन सतो विनाशस्तथापरेणौदयिकेनैव देवत्वादिलक्षणेन भावेन असत उत्पादो भवत्येव। एतच्च 'न सतो विनाशो नासत उत्पाद' इति पूर्वोक्तसूत्रेण सह विरुद्धम् यतो जीवस्य द्रव्यार्थिकनयादेशेन न सत्प्रणाशो नासदुत्पादः, तस्यैव पर्यायार्थिकनयादेशेन सत्प्रणाशोऽसदुत्पादश्च। न चैतदनुपपन्नम्, नित्ये जले कल्लोलानामनित्यत्वदर्शनादिति॥ ५४ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ५४

अन्वयार्थः—(एवं) इस प्रकार (जीवस्य) जीवको (सतः विनाशः) सत्का विनाश और (असतः उत्पादः) असत्का उत्पाद (भवति) होता है—(इति) ऐसा (जिनवरैः भणितम्) जिनवरोंने कहा है, (अन्योन्यविरुद्धम्) जो कि अन्योन्य विरुद्ध (१९ वीं गाथाके कथनके साथ विरोधवाला) है तथापि (अविरुद्धम्) अविरुद्ध है।

टीकाः—यह, जीवको भाववशात् (औदयिक आदि भावोंके कारण) सादि-सांतपना और अनादि-अनंतपना होनेमें विरोधका परिहार है।

इस प्रकार वास्तवमें पांच भावरूपसे स्वयं परिणमित होनेवाले इस जीवको कदाचित् औदयिक ऐसे एक मनुष्यत्वादिस्वरूप भावकी अपेक्षासे सत्का विनाश और औदयिक ही ऐसे दूसरे देवत्वादिस्वरूप भावकी अपेक्षासे असत्का उत्पाद होता ही है। और यह (कथन) 'सत्का विनाश नहीं है' तथा असद्का उत्पाद नहीं है' ऐसे पूर्वोक्त सूत्रके (१९ वीं गाथाके) साथ विरोधवाला होने पर भी (वास्तवमें) विरोधवाला नहीं है, क्योंकि जीवको द्रव्यार्थिकनयके कथनसे सत्का नाश नहीं है और असत्का उत्पाद नहीं है तथा उसीको पर्यायार्थिकनयके कथनसे सत्का नाश है और असत्का उत्पाद है। और

यह अनुपपन्न (अयुक्त) नहीं है क्योंकि नित्य ऐसे जलमें कल्लोलोंका अनित्यपना दिखाई देता है ॥ ५४ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५४

अथ यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन विनाशोत्पादौ भवतः तथापि द्रव्यार्थिकनयेन न भवत इति पूर्वापरविरोधो नास्तीति कथयति, एवं सदो विणासो--एवं पूर्व गाथाकथितप्रकारेणौदयिकभावेनायुरुच्छेदवशान्मनुष्यपर्यायरूपेण सतो विद्यमानस्य विनाशो भवति। असदो जीवस्स हवदि उप्पादो--असतोऽविद्यमानस्य देवादिजीवस्य पर्यायस्य गतिनामकर्मोदयाद्भवत्युत्पादः। इदि जिणवरेहिं भणिय--इति जिनवरैर्वीतरागसर्वज्ञैर्भणितं इदं तु व्याख्यातं। कथंभूतं? अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं--अन्योन्यविरुद्धमप्यविरुद्धं। कथमिति चेत्? द्रव्यपीठिकायां सतो जीवस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति भणितं, अत्र सतो जीवस्य विनाशो भवत्यसत उत्पादो भवतीति भणितं तेन कारणेन विरोधः। तन्न। तत्र द्रव्यपीठिकायां द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ निषिद्धौ, अत्र तु पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ भवत इति नास्ति विरोधः। तदपि कस्मादिति चेत्? द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परसापेक्षत्वादिति। अत्र यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन सादिसनिधनं जीवद्रव्यं व्याख्यातं तथापि शुद्धनिश्चयेन यदेवानादिनिधनं टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावं निर्विकारसदानंदैकस्वरूपं च तदेवोपादेयमित्यभिप्रायः ॥ ५४ ॥

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ५४

उत्थानिका--आगे कहते हैं कि यद्यपि पर्यायार्थिकनयसे नाश और जन्म होते हैं तथापि द्रव्यार्थिक नयसे नहीं होते हैं। ऐसा कहनेमें कोई पूर्वापर विरोध नहीं है।

अन्वयसहित सामान्यार्थ--(एवं) ऊपर कहे प्रमाण पर्यायकी अपेक्षासे (जीवस्स) जीवके (सदो) विद्यमान पर्यायका (विणासो) नाश व (असदो) अविद्यमान पर्यायका (उप्पादो) जन्म होता है (इति) ऐसा (जिणवरेहिं) जिनेन्द्रोंने (भणिदं) कहा है (अण्णोण्णविरुद्धं) यह बात परस्पर विरोधरूप है तथापि (अविरुद्धं) विरुद्ध नहीं है।

विशेषार्थ--पूर्व गाथामें जैसा कहा है उस तरह औदयिक भावकी अपेक्षासे आयुके नाशसे मनुष्य पर्याय जो अब विद्यमान है उसका नाश होता है तथा गति नामकर्मके उदयसे अविद्यमान देवादि पर्यायका जन्म होता है यह बात सर्वज्ञ भगवानने कही है। पहले द्रव्यके वर्णनकी पीठिकामें सत् रूप विद्यमान जीवका नाश तथा असत् रूप अविद्यमान जीव द्रव्यका जन्म नहीं होता है ऐसा कहा था, यहां कहा है कि सत् रूप जीवका नाश होता है और असत् रूप जीवका उत्पाद होता है इसलिये विरोध आजायगा सो आचार्य कहते हैं कि विरोध नहीं आयगा क्योंकि वहां द्रव्यकी पीठिकामें द्रव्यार्थिक नयसे उत्पाद और व्ययका निषेध किया गया है, यहां पर्यायार्थिक नयसे उत्पाद व्यय होते हैं ऐसा कहा है इसमें कोई विरोध नहीं है। क्योंकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय परस्पर अपेक्षावान हैं। यहां यह अभिप्राय है कि यद्यपि पर्याया-

र्थिक नयसे किसी पर्यायकी अपेक्षा जीव द्रव्य सादि सान्त कहा गया है तथापि शुद्ध निश्चयनयसे जो अनादि अनन्त एक टंकोत्कीर्ण ज्ञाता मात्र एक स्वभावधारी व निर्विकार सदा आनन्दस्वरूप जीव द्रव्य है वह ही ग्रहणकरने योग्य है।। ५४ ।।

समय व्याख्या गाथा —५५

जीवस्य सदसद्भावोच्छित्त्युत्पत्तिनिमित्तोपाधिप्रतिपादनमेतत् ।

णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी ।
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं ।। ५५ ।।

नारकतिर्यङ्मनुष्या देवा इति नामसंयुताः प्रकृतयः ।
कुर्वन्ति सतो नाशमसतो भावस्योत्पादम् ।। ५५ ।।

यथा हि जलराशेर्जलराशित्वेनासदुत्पादं सदुच्छेदं चाननुभवतश्चतुर्भ्यः ककुब्विभागेभ्यः क्रमेण वहमानाः पवमानाः कल्लोलानामसदुत्पादं सदुच्छेदं च कुर्वन्ति, तथा जीवस्यापि जीवत्वेन सदुच्छेदमसदुत्पत्तिं चाननुभवतः क्रमेणोदीयमानाः नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवनामप्रकृतयः सदुच्छेदमसदुत्पादं च कुर्वंतीति ।। ५५ ।।

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ५५

अन्वयार्थः—(नारकतिर्यङ्मनुष्याः देवाः) नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव (इति नामसंयुताः) ऐसे नामोंवाली (प्रकृतयः) (नामकर्मकी) प्रकृतियां (सतः नाशम्) सत् भावका नाश और (असतः भावस्य उत्पादम्) असत् भावका उत्पाद (कुर्वन्ति) करती हैं ।

टीकाः—जीवको सत् भावके उच्छेद और असत् भावके उत्पादमें निमित्तभूत उपाधिका यह प्रतिपादन है ।

जिस प्रकार समुद्ररूपसे असत्के उत्पाद और सत्के उच्छेदका अनुभव न करनेवाले ऐसे समुद्रको चारों दिशाओंमेंसे क्रमशः बहती हुई हवाएं कल्लोलोंसम्बन्धी असत्का उत्पाद और सत्का उच्छेद करती हैं उसी प्रकार जीवरूपके सत्के उच्छेद तथा असत्के उत्पादका अनुभव न करनेवाले ऐसे जीवका क्रमशः उदयको प्राप्त होनेवाली नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देव नामकी (नामकर्मकी) प्रकृतियां पर्यायोंकी अपेक्षा सत्का उच्छेदन तथा असत्का उत्पाद करती हैं ।। ५५ ।।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५५

अथ पूर्वसूत्रे जीवस्योत्पादव्ययस्वरूपं यद्भणितं तस्य नरनारकादिगतिनामकर्मोदयकारणमिति कथयति, णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा–नारकतिर्यग्मनुष्यदेवा इति नामसंयुक्ताः, पयडी नामकर्मप्रकृतयः कर्त्र् कुव्वंति,–कुर्वन्ति । कं । सदो णासं–सतो विद्यमानस्य भावस्य पर्यायस्य नाशं, असदो

भावस्स उप्पत्ती–असतो भावस्य पर्यायस्योत्पत्तिमिति। तथाहि। यथा समुद्रस्य समुद्ररूपेणाविनश्वरस्यापि कल्लोला उत्पादव्ययद्वयं कुर्वन्ति तथा जीवस्य सहजानंदैकटंकोत्कीर्णज्ञायकस्वभावेन नित्यस्यापि व्यवहारेणानादिकर्मोदयवशान्निर्विकारशुद्धात्मोपलब्धिच्युतस्य नरकगत्यादिकर्मप्रकृतय उत्पादव्ययं च कुर्वंतीति। तथा चोक्तं। "अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणं। उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले॥" अत्र यदेव शुद्धनिश्चयनयेन मूलोत्तरप्रकृतिरहितं वीतरागपरमाह्लादैकरूपचैतन्यप्रकाशसहितं शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति भावार्थः॥ ५५॥ एवं कर्मकर्तृत्वादित्रयपीठिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रयेण प्रथममंतरस्थलं गतं।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ५५

उत्थानिका–आगे पूर्व सूत्रमें जो जीवके भिन्न २ पर्याय धारनेकी अपेक्षा उत्पाद व्यय कहा है उस पर्याय धारणका कारण नर नारक आदि गतिनामा नाम कर्मका उदय है ऐसा कहते हैं-

अन्वयसहित सामान्यार्थ–(णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि) नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव ये (णामसंजुदा पयडी) गति नाम कर्मकी प्रकृतियां हैं सो (सदो भावस्स) विद्यमान पर्यायका (णासं) नाश और (असदो उप्पादं) अविद्यमान पर्यायका जन्म (कुव्वंति) करती हैं।

विशेषार्थ—जैसे समुद्र समुद्ररूपसे अविनाशी है तो भी उसकी तरंगोंमें उपजना विनशना हुआ करता है तैसे यह जीव स्वाभाविक आनंदमई एक टंकोत्कीर्ण (टांकीसे पत्थरमें उकेरी मूर्तिके समान) ज्ञाता दृष्टा स्वभावसे नित्य है तो भी व्यवहारनयसे अनादिकालके प्रवाह रूप कर्मोंके उदयके वशसे निर्विकार शुद्धात्माकी प्राप्तिसे हटा हुआ नरकगति आदि कर्मोंके उदयसे एक गतिको छोडकर दूसरी गतिमें जन्मता रहता है। यह पर्यायके पलटनेकी अपेक्षा कहा है वास्तवमें द्रव्यमें सदृश या विसदृश पर्यायें सदा ही होती रहती हैं, जैसा कि कहा है:–

अर्थात् अनादिसे अनन्तकाल तक बने रहनेवाले द्रव्यमें अपनी पर्यायें प्रति समय प्रगट होती रहती और नष्ट होती रहती हैं जैसे समुद्रमें जलकी तरंगें उठती और बैठती रहती हैं। यहां यह तात्पर्य है कि जो कोई शुद्ध निश्चयनयसे मूल और उत्तर प्रकृतियोंसे रहित वीतराग परम आनन्दमई एक रूप चैतन्यके प्रकाशको रखनेवाला है वही शुद्ध जीवास्तिकाय ग्रहण करने योग्य है॥ ५५॥

इस तरह कर्मका कर्तापना आदि तीन बातोंकी पीठिकाके व्याख्यानकी अपेक्षा तीन गाथासे पहला अन्तरस्थल पूर्ण हुआ।

समय व्याख्या गाथा ५६

जीवस्य भावोदयवर्णनमेतत्।

उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे।

जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु वित्थिण्णा ।। ५६ ।।

उदयेनोपशमेन च क्षयेण द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां परिणामेन ।

युक्तास्ते जीवगुणा बहुषु चार्थेषु विस्तीर्णाः ।। ५६ ।।

कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः, अनुद्भूतिरुपशमः, उद्भूत्यनुद्भूती क्षयोपशमः, अत्यंतविश्लेषः क्षयः, द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः । तत्रोदयेन युक्त औदयिकः, उपशमेन युक्त औपशमिकः, क्षयोपशमेन युक्तः क्षायोपशमिकः, क्षयेण युक्तः क्षायिकः, परिणामेन युक्तः पारिणामिकः । त एते पञ्च जीवगुणाः । तत्रोपाधिचतुर्विधत्वनिबंधनाश्चत्वारः, स्वभावनिबंधन एकः । एते चोपाधिभेदात्स्वरूपभेदाच्च भिद्यमाना बहुष्वर्थेषु विस्तार्यंत इति ।।५६।।

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ५६

अन्वयार्थः-(उदयेन) उदयसे युक्त, (उपशमेन) उपशमसे युक्त, (क्षयेण) क्षयसे युक्त, (द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां) क्षयोपशमसे युक्त (च) और (परिणामेन युक्ताः) परिणामसे युक्त-(ते) ऐसे (जीवगुणाः) (पांच) जीवगुण (-जीवके भाव) हैं, (च) और (बहुषु अर्थेषु विस्तीर्णाः) उन्हें अनेक प्रकारोंमें विस्तृत किया जाता है ।

टीकाः—जीवको भावोंके उदय का (-पांच भावोंकी प्रगटताका) यह वर्णन है ।

कर्मोंका फलदानसमर्थरूपसे उद्भव सो 'उदय' है, अनुद्भव सो 'उपशम' है, उद्भव तथा अनुद्भव सो 'क्षयोपशम' है, अत्यन्त विश्लेप सो 'क्षय' है, द्रव्यका आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है वह 'परिणाम' है । वहां उदयसे युक्त वह 'औदयिक' है, उपशमसे युक्त वह 'औपशमिक' है, क्षयोपशमसे युक्त वह 'क्षायोपशमिक' है, क्षयसे युक्त वह 'क्षायिक' है, परिणामसे युक्त वह 'पारिणामिक' है ।—ऐसे यह पांच जीवगुण हैं । उनमें (—इन पांच गुणोंमें) उपाधिका चतुर्विधपना (कर्मोंकी चार प्रकारकी दशा) जिनका कारण (निमित्त) है ऐसे चार हैं, स्वभाव जिसका कारण है ऐसा एक है । उपाधिके भेदसे और स्वरूपके भेदसे भेद करने पर, उन्हें अनेक प्रकारोंमें विस्तृत किया जाता है ।। ५६ ।।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५६

अथ पीठिकायां पूर्वं जीवस्य यदौदयिकादिभावपंचकं सूचितं तस्य व्याख्यानं करोति—जुत्ता-युक्ताः । के । ते जीवगुणा-ते परमागमप्रसिद्धाः जीवगुणाः जीवभावाः परिणामाः । केन केन युक्ताः । उदयेण-कर्मोदयेन, उवसमेण-कर्मोपशमेन च, खयेण-कर्मक्षयेण, दुहि मिस्सिदेण—द्वाभ्यां क्षयोपशमाभ्यां मिश्रत्वेन परिणामे प्राकृतलक्षणबलात्सप्तम्यंतं तृतीयांतं व्याख्यायते । परिणामेन करणभूतेन इति व्युत्पत्तिरूपेणौदयिकः औपशमिकः, क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, पारिणामिक एवं पंचभावा ज्ञातव्याः । ते च कथंभूताः । बहुसुदसत्थेसु वित्थिण्णा-बहुश्रुतशास्त्रेषु तत्त्वार्थादिषु विस्तीर्णाः । औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकास्त्रयो भावाः

कर्मजनिताः, क्षायिकस्तु केवलज्ञानादिरूपो यद्यपि वस्तुवृत्या शुद्धबुद्धैकजीवस्वभावः तथापि कर्मक्षयेणोत्पन्नत्वादुपचारेण कर्मजनित एव, शुद्धपारिणामिकः पुनः साक्षात्कर्मनिरपेक्ष एव । अत्र व्याख्यानेन मिश्रौपशमिकक्षायिकाः मोक्षकारणं । मोहोदयसहित औदयिको बंधकारणं, शुद्धपारिणामिकस्तु बंधमोक्षयोरकारणमिति भावार्थः । तथा चोक्तं । "मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रोपशमिकक्षायिकाभिधाः । बंधमौदयिका भावा, निःक्रियः पारिणामिकः ।।" ।। ५६ ।। एवं द्वितीयांतरस्थले पंचभावकथनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतं ।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ५६

उत्थानिका–आगे पीठिकामें पहले जो जीवके औदयिक आदि पांच भावोंकी सूचना की थी उन्हीका व्यख्यान करते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थः–(ते जीवगुणा) वे परमागममें प्रसिद्ध जीवके परिणाम (उदयेसु) कर्मोंके उदयसे होनेवाले औदयिक, (उवसमेन) कर्मोंके उपशमसे होनेवाले औपशमिक (य खयेण) और कर्मोंके क्षयसे होनेवाले क्षायिक (दुहिं मिस्सिदेहिं) दोनों क्षय और उपशमके मिश्रसे होनेवाले क्षायोपशमिक तथा (परिणामे) पारिणामिक भावोंसे (जुत्ता) संयुक्त (बहुसु य अत्थेसु) बहुतसे भेदोंमें (विच्छिण्णा) फैले हुए हैं ।

विशेषार्थ–यहां वृत्तिकारने " बहुसुदसत्थेसु विच्छिण्णा " पाठ लेकर यह अर्थ किया है कि बहुतसे शास्त्रोंमें इनका विस्तार किया गया है । इन पांच भावोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक ये तीन भाव कर्मोंकी अपेक्षासे हैं । यद्यपि क्षायिक भाव केवलज्ञानादि रूप है और वह वस्तुके स्वभावसे शुद्ध बुद्ध एक जीवका स्वभाव है तो भी कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है । इसलिये यह भाव भी कर्मोंकी अपेक्षासे ही है । शुद्ध पारिणामिक भाव साक्षात् कर्मोंकी विना अपेक्षाके है । यहां यह तात्पर्य है कि इस व्याख्यानसे यह समझना कि क्षायोपशमिक,औपशमिक तथा क्षायिक भाव मोक्षके कारण हैं तथा मोहके उदय सहित औदयिक भाव बन्धका कारण है तथा शुद्ध पारिणामिक भाव न बन्धका कारण है, न मोक्षका । जैसा कि कहा है–

मिश्रादि तीन भाव मोक्ष करते हैं, औदयिक भाव बंध करते हैं व पारिणामिक भाव बंध मोक्षकी क्रियासे रहित हैं ।। ५६ ।।

इस तरह दूसरे अन्तर स्थलमें पांच भावोंके कथनकी मुख्यतासे एक गाथा सूत्र कहा ।

समय व्याख्या गाथा ५७

जीवस्यौदयिकादिभावानां कर्तृत्वप्रकारोक्तिरियम् ।

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं ।

सो तस्स तेण कत्ता हवदि त्ति य सासणे पढिदं ॥ ५७ ॥

कर्म वेदयमानो जीवो भावं करोति यादृशकम्।

स तस्य तेन कर्ता भवतीति च शासने पठितम् ॥ ५७ ॥

जीवेन हि द्रव्यकर्म व्यवहारनयेनानुभूयते, तच्चानुभूयमानं जीवभावानां निमित्तमात्रमुपवर्ण्यते । तस्मिन्निमित्तमात्रभूते जीवेन कर्तृभूतेनात्मनः कर्मभूतो भावः क्रियते। अमुना यो येन प्रकारेण जीवेन भावः क्रियते, स जीवस्तस्य भावस्य तेन प्रकारेण कर्ता भवतीति ॥५७॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा—५७

अन्वयार्थः—[कर्म वेदयमानः) कर्मको वेदता हुआ (जीवः) जीव (यादृशकम् भावं) जैसे भावको (करोति) करता है, (तस्य) उस भावका (तेन) उस प्रकारसे [सः] वह (कर्ता भवति) कर्ता है—[इति च] ऐसा [शासने पठितम्] शासनमें कहा है।

टीका:—यह, जीवके औदयिकादि भावोंके कर्तृत्वप्रकारका कथन है।

जीव द्वारा द्रव्यकर्म व्यवहारनयसे अनुभवमें आता है, और वह अनुभवमें आता हुआ जीवभावोंका निमित्तमात्र कहलाता है। वह (द्रव्यकर्म) निमित्तमात्र होनेसे, जीव द्वारा कर्तारूपसे अपना कर्मरूप (कार्यरूप) भाव किया जाता है। इसलिये जो भाव जिस प्रकारसे जीव द्वारा किया जाता है, उस भावका उस प्रकारसे वह जीव कर्ता है ॥ ५७ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा –५७

तृतीयस्थलं कथ्यते। अथानंतरं प्रथमगाथायां अशुद्ध निश्चयेन रागादिभावानां जीवस्य कर्तृत्वं कथ्यते। द्वितीयगाथायां तदुदयागतद्रव्यकर्मणो व्यवहारे रागादिभावकर्तृत्वमिति स्वतन्त्रगाथाद्वयं, तदनंतरं प्रथमगाथायां जीवस्य यद्येकांतेनोदयागतद्रव्यकर्म रागादिविभावानां कर्तृ भवति तदा जीवस्य सर्वप्रकारेणाकर्तृत्वं प्राप्नोतीति कथयति द्वितीयगाथायां तु पूर्वोक्तदूषणस्य परिहारं ददातीति पूर्वपक्षपरिहारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं, तदनन्तरं जीवः पुद्गलकर्मणां निश्चयेन कर्ता न भवतीत्यागमसंवादं दर्शयति, द्वितीयायां पुनः कर्मणो जीवस्य चाभेदषट्कारकं कथयतीति स्वतन्त्रगाथाद्वयं इति तृतीयांतरस्थले कर्तृत्वमुख्यत्वेन समुदायेन गाथाषट्कं कथयतीति। तद्यथा। औदयिकादिभावान् केन रूपेण जीवः करोतीति पृष्टे सत्युत्तरं ददाति,—

कम्मं वेदयमाणो—कर्म वेदयमानः नीरागनिर्भरानंदलक्षणप्रचंडाखंडज्ञानकांडपरिणतात्मभावनारहितेन मनोवचनकायव्यापाररूपकर्मकांडपरिणतेन च पूर्वं यदुपार्जितं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तदुदयागतं व्यवहारेण वेदयमानः। कोसौ। जीवो—जीवः कर्ता। भावं करेदि जारिसयं—भावं परिणामं करोति यादृशकं। सो तस्स तेण कत्ता—सः तस्य तेन कर्ता स जीवस्तस्य रागादिपरिणामस्य कर्मतापन्नस्य तेनैव भावेन

करणभूतेनाशुद्धनिश्चयेन कर्ता, हवदित्ति य सासणे पढिदं- भवतीति शासने परमागमे पठितमित्यभिप्रायः इति ॥ ५७ ॥ जीवो निश्चयेन कर्मजनितरागादिविभावानां स्वशुद्धात्मभावनाच्युतः सन् कर्ता भोक्ता च भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ५७

अब तीसरा स्थल कहते हैं। अथानंतर इस स्थलकी प्रथम गाथामें यह कहा जाता है कि निश्चयसे यह जीव ही रागादि भावोंका कर्ता है। दूसरी गाथा में यह है कि उदय प्राप्त द्रव्य कर्म व्यवहारसे रागादि भावोंको करते हैं इस तरह दो स्वतंत्र गाथाएं हैं। फिर प्रथम गाथामें यह कहा है कि यदि एकांतसे उदयप्राप्त द्रव्य कर्म ही जीवके रागादि विभावोंको करनेवाले हों तो जीव सर्व प्रकारसे अकर्ता हो जावेगा। दूसरी गाथामें इस दोषका खंडन है। इस तरह पूर्व पक्ष और उसके समाधानकी मुख्यतासे गाथाएं दो हैं। फिर प्रथम गाथामें आगमका यह कथन दिखाया है कि निश्चयसे जीव पुद्गल कर्मोंका कर्ता नहीं है तथा दूसरीमें जीव और कर्म दोनोंमें अभेद षटकारककी व्यवस्था बताई है इस तरह दो स्वतंत्र गाथाएं हैं ऐसे तीसरे स्थलमें कर्तापनेकी मुख्यतासे समुदायरूप छः गाथाएं कही हैं।

उत्थानिका-आगे इस प्रश्नके होनेपर कि औदयिक आदि भावोंको जीव किस रूपसे करता है, आचार्य उत्तर देते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(कम्मं) कर्मोंको (वेदयमाणो) भोगता हुआ (जीवो) यह जीव (जारिसयं) जिस तरहका (भावं) भाव [करेदि] करता है [सो] वह जीव [तेण] उसी कारणसे [तस्स] उसी भावका [कत्ता] कर्ता (हवदित्ति य) होता है ऐसा [सासने] जिनशासनमें (पढिदं,) व्याख्यान किया गया है।

विशेषार्थ-वीतराग परमानंदमई प्रचंड और अखंड ज्ञानकाण्डमें रमण करनेवाली आत्माकी भावनाको न पाकर अपने मन वचन कायके व्यापाररूप कर्मकांडमें परिणमन करके जो इस जीवने पूर्व कालमें ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म बांध लिये हैं उनही के उदयमें आनेपर उनको भोगता हुआ यह जीव जैसा रागादि परिणाम करता है उसी भावका यह जीव अशुद्ध निश्चय नयसे उस ही अशुद्ध भावके द्वारा कर्ता होजाता है ऐसा परमागममें कथन है ॥ ५७ ॥

यह जीव अपने शुद्धात्माकी भावनासे गिरा हुआ अशुद्ध निश्चयसे कर्मोंके उदयसे उत्पन्न रागादि विभावोंका कर्ता और भोक्ता होता है, इस व्याख्यानकी मुख्यतासे गाथा कही।

समय व्याख्या गाथा ५८

द्रव्यकर्मणां निमित्तमात्रत्वेनौदयिकादिभावकर्तृत्वमत्रोक्तम्।

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा ।
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं ॥ ५८ ॥

कर्मणा विनोदयो जीवस्य न विद्यत उपशमो वा ।
क्षायिकः क्षायोपशमिकस्तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः ॥ ५८ ॥

न खलु कर्मणा विना जीवस्योदयोपशमौ क्षयक्षायोपशमावपि विद्येते, ततः क्षायिकक्षायोपशमिकश्चौदयिकौपशमिकश्च भावः कर्मकृतोऽनुमंतव्यः । पारिणामिकस्त्वनादिनिधनो निरुपाधिः स्वाभाविक एव । क्षायिकस्तु स्वभावव्यक्तिरूपत्वादनंतोऽपि कर्मणः क्षयेणोत्पद्यमानत्वात्सादिरिति कर्मकृत एवोक्तः । औपशमिकस्तु कर्मणामुपशमे समुत्पद्यमानत्वात्, अनुपशमे समुच्छिद्यमानत्वात् कर्मकृत एवेति ।

अथवा उदयोपशमक्षयक्षयोपशमलक्षणाश्चतस्रो द्रव्यकर्मणामेवावस्थाः, न पुनः परिणामलक्षणैकावस्थस्य जीवस्य, तत उदयादिसंजातानामात्मनो भावानां निमित्तमात्रभूततथाविधावस्थत्वेन स्वयं परिणमनाद् द्रव्यकर्मापि व्यवहारनयेनात्मनो भावानां कर्तृत्वमापद्यत इति ॥ ५८ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ५८

अन्वयार्थः—[कर्मणा विना) कर्म विना (जीवस्य) जीवको (उदयः) उदय, (उपशमः) उपशम, (क्षायिकः) क्षायिक (वा) अथवा (क्षायोपशमिकः) क्षायोपशमिक (न विद्यते) नहीं होता (तस्मात् तु) इसलिये (भावः) भाव (—चतुर्विध जीवभाव) (कर्मकृतः] कर्मकृत हैं ।

टीकाः—यहां, (औदयिकादि भावोंके) निमित्तमात्र रूपसे द्रव्यकर्मोंको औदयिकादि भावोंका कर्तापना कहा है ।

कर्मके बिना जीवको उदय—उपशम तथा क्षय—क्षयोपशम नहीं होते (अर्थात् द्रव्यकर्मके बिना जीवको औदयिकादि चार भाव नहीं होते), इसलिये क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक या औपशमिक भावोंको कर्मकृत संमत करना । पारिणामिक भाव तो अनादि—अनंत, निरुपाधि, स्वाभाविक ही है क्षायिक भाव, यद्यपि स्वभावकी व्यक्तिरूप (—प्रगटतारूप) होनेसे अनंत (-अंत रहित) है तथापि, कर्मक्षय द्वारा उत्पन्न होनेके कारण सादि है इसलिये कर्मकृत ही कहा गया है । औपशमिक भाव कर्मके उपशमसे उत्पन्न होनेके कारण तथा अनुपशमसे नष्ट होनेके कारण कर्मकृत ही है ।

अथवा उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमस्वरूप चार (अवस्थाएं) द्रव्यकर्मकी ही अवस्थाएं हैं, परिणामस्वरूप एक अवस्थावाले जीवकी नहीं हैं इसलिये उदयादिक द्वारा उत्पन्न होनेवाले आत्माके भावोंको निमित्तमात्रभूत ऐसी उस प्रकारकी अवस्थाओंरूप (द्रव्यकर्म) स्वयं परिणमित होनेके कारण द्रव्यकर्म भी व्यवहारनयसे आत्माके भावोंके कर्तृत्वको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५८

अथ रागादिपरिणामानामुदयागतं द्रव्यकर्म व्यवहारेण कारणं भवतीति दर्शयति-कम्मेण विणा कर्मणा विना शुद्धज्ञानदर्शनलक्षणाद्भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मविलक्षणात्परमात्मनो विपरीतं यदुदयागतं द्रव्यकर्म तेन विना उदयं। जीवस्स ण विज्जदे-रागादिपरिणामरूप औदयिकभावो जीवस्य न विद्यते न केवलमौदयिकभावः, उवसमं वा--औपशमिकभावो वा न विद्यते तेनैव द्रव्यकर्मोपशमेन विना, खइयं खओवसमियं-क्षायिकभावः क्षायोपशमिकभावस्तस्यैव द्रव्यकर्मणः क्षयेण क्षयोपशमेन विना न भवति। तम्हा भावं तु कम्मकदं--तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः यस्माच्छुद्धपारिणामिकभावं मुक्त्वा पूर्वोक्तमौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकभावचतुष्टयं द्रव्यकर्मणा विना न भवति तस्मादेवं ज्ञायते जीवस्यौदयिकादिभावचतुष्टयमनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन द्रव्यकर्मकृतमिति। अत्र सूत्रे सामान्येन केवलज्ञानादिक्षायिकनवलब्धिरूपो विशेषेण तु केवलज्ञानांतर्भूतं यदनाकुलत्वलक्षणं निश्चयसुखं तत्प्रभृतयो येऽनंतगुणास्तेषामाधारभूतो योसौ क्षायिको भावः स एव सर्वप्रकारेणोपादेयभूत इति मनसा श्रद्धेयं ज्ञेयं मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालत्यागेन निरंतरं ध्येयमिति भावार्थः॥ ५८॥ इति तेषामेव भावानामनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण कर्म कर्ता भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता एवं निश्चयेन रागादिभावानां जीवः कर्ता पूर्वगाथायां भणितमत्र तु व्यवहारेण कर्म कर्तृ भवतीति स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतं।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ५८

उत्थानिका-आगे कहते हैं कि व्यवहारसे रागादि परिणामोंका कारण उदयप्राप्त द्रव्य कर्म है-

अन्वयसहित सामान्यार्थ-[कम्मेण विणा] द्रव्य कर्मोंके सम्बंध विना [जीवस्स] इस जीवके [उदयं] औदयिक [वा] या (उवसमं) औपशमिक या [खइयं] क्षायिक या [खओवसमियं] क्षायोपशमिक भाव [ण विज्झदे] नहीं होता है [तम्हा] क्यों कि [भावं तु कम्मकदं] ये सब भाव कर्मकृत हैं।

विशेषार्थ-शुद्ध ज्ञान दर्शन लक्षणधारी और भावकर्म, द्रव्य कर्म तथा नोकर्मसे विलक्षण परमात्मासे विपरीत जो उदयमें प्राप्त द्रव्यकर्म हैं उनके विना जीवके रागादि परिणामरूप औदयिक भाव नहीं हो सक्ता है। केवल औदयिक ही नहीं औपशमिक भाव भी द्रव्यकर्मके उपशम विना नही होता है। इसी तरह क्षायोपशमिक भाव द्रव्यकर्मोंके क्षयोपशम विना और क्षायिक भाव द्रव्यकर्मोंके क्षय विना नहीं होता है इसलिये ये सब भाव कर्मकृत हैं, क्योंकि शुद्ध पारिणामिक भावोंको छोडकर पूर्वमें कहे हुए औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक ये चार भाव द्रव्यकर्मके विना नही होते हैं इसीलिये यह जाना जाता है कि ये औदयिक आदि चारों भाव अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म कृत है। यहां यह तात्पर्य है कि इस

सूत्रमें सामान्यसे केवलज्ञानादि क्षायिक नवलब्धि रूप जो क्षायिक भाव है तथा विशेष करके जो केवलज्ञानमें गर्भित निराकुलता लक्षण निश्चय सुख है उसको आदि लेकर जो अनन्तगुणोंका आधार है वही क्षायिक भाव सब तरहसे ग्रहण करने योग्य है ऐसा मन द्वारा श्रद्धान करना व जानना चाहिये तथा मिथ्यात्व व रागादि विकल्पजाल त्याग करके उसी क्षायिकभावका निरन्तर ध्यान करना चाहिये ।। ५८ ।।

इस तरह इन ही चार भावोंका अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे कर्म कर्ता है इस व्याख्यानकी मुख्यतासे गाथा कही । इस तरह अशुद्ध निश्चय नयसे रागादि भावोंका कर्त्ता जीव है ऐसा पूर्व गाथामें कहा था । यहां बताया कि व्यवहारसे इनका कर्ता कर्म है इस तरह दो स्वतंत्र गाथाएं कहीं ।

समय व्याख्या गाथा ५९

जीवभावस्य कर्मकर्तृत्वे पूर्वपक्षोऽयम् ।

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता ।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं ।। ५९ ।।

भावो यदि कर्मकृत आत्मा कर्मणो भवति कथं कर्ता ।
न करोत्यात्मा किंचिदपि मुक्त्वान्यत् स्वकं भावम् ।। ५९ ।।

यदि खल्वौदयिकादिरूपो जीवस्य भावः कर्मणा क्रियते, तदा जीवस्तस्य कर्ता न भवति । न च जीवस्याकर्तृत्वमिष्यते । ततः पारिशेष्येण द्रव्यकर्मणः कर्तापद्यते । तत्तु कथम् ? यतो निश्चयनयेनात्मा स्वं भावमुज्झित्वा नान्यत्किमपि करोतीति ।। ५९ ।।

हिंदी समय व्याख्या गाथा ५९

अन्वयार्थः—(यदि भावः कर्मकृतः) यदि भाव (–जीवभाव) कर्मकृत हों तो (आत्मा कर्मणः कर्ता भवति) आत्मा कर्मका [द्रव्यकर्मका] कर्ता होना चाहिये । (कथं) वह तो कैसे हो सकता है ? (आत्मा) क्योंकि आत्मा तो (स्वकं भावं मुक्त्वा) अपने भावको छोडकर (अन्यत् किंचित अपि) अन्य कुछ भी [न करोति] नहीं करता ।

टीकाः—कर्मको जीवभावका कर्तृत्व होनेके सम्बन्धमें यह पूर्वपक्ष (शंका) है ।

यदि औदयिकादिरूप जीवका भाव कर्म द्वारा किया जाता हो, तो जीव उसका (–औदयिकादिरूप जीवभावका) कर्ता नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है और जीवका अकर्तृत्व तो इष्ट (मान्य) नहीं है । इसलिये, शेष यह रहा कि जीव द्रव्यकर्मका कर्ता होना चाहिये । लेकिन वह तो कैसे हो सकता है ? क्योंकि निश्चयनयसे आत्मा अपने भावको छोडकर अन्य कुछ भी नहीं करता ।। ५९ ।।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ५६

अथ जीवस्यैकांतेन कर्माकर्तृत्वे दूषणद्वारेण पूर्वपक्षं करोति, भावो जदि कम्मकदो-भावो यदि कर्मकृतः यद्येकांतेन रागादिभावः कर्मकृतो भवति। आदा कम्मस्स होदि किह कत्ता-तदात्मा द्रव्यकर्मणः कथं कर्ता भवति यतः कारणाद्रागादिपरिणामाभावे सति द्रव्यकर्म नोत्पद्यते। तदपि कथमिति चेत्? ण कुणदि अत्ता किंचिवि—न करोत्यात्मा किमपि। किंकृत्वा। मुत्ता अण्णं सगं भावं—स्वकीयचैतन्यभावं मुक्त्वान्यत् द्रव्यकर्मादिकं न करोतीत्यात्मनः सर्वथाप्यकर्तृत्वदूषणद्वारेण पूर्वपक्षेऽग्रे द्वितीयगाथायां परिहार इत्येकं व्याख्यानं तावत, द्वितीयव्याख्याने पुनरत्रैव पूर्वपक्षोत्रैव परिहारो द्वितीयगाथायां स्थितपक्ष एव। कथमिति चेत्? पूर्वोक्तप्रकारेणात्मा कर्मणां कर्ता न भवतीति दूषणे दत्ते सति सांख्यमतानुसारिशिष्यो वदति। "अकर्ता निर्गुणः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽक्रियः। अमूर्तश्चेतनो भोक्ता जीवः कपिलशासने" इति वचनादस्माकं मते आत्मनः कर्माकर्तृत्वं भूषणमेव न दूषणं। अत्र परिहारः। यथा शुद्धनिश्चयेन रागाद्यकर्तृत्वमात्मनः तथा यद्यशुद्धनिश्चयेनाप्यकर्तृत्वं भवति तदा द्रव्यकर्मबंधाभावस्तदभावे संसाराभावः संसाराभावे सर्वदैव मुक्तप्रसंगः स च प्रत्यक्षविरोध इत्यभिप्रायः ॥ ५६ ॥ एवं प्रथमव्याख्याने पूर्वपक्षद्वारेण द्वितीयव्याख्याने पुनः पूर्वपक्षपरिहारद्वारेणेति गाथा गता।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा—५६

उत्थानिका—आगे कहते हैं कि यदि एकांतसे ऐसा मानें कि जीव कर्मोंका कर्ता नहीं है तो क्या दोष आएगा? उस दोषको बताते हुए पूर्वपक्ष कहते है—

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जदि) यदि (भावो) रागादिभाव (कम्मकदो) कर्मकृत ही हो तो (किध) किस तरह (अत्ता) आत्मा (कम्मस्स कत्ता होदि) द्रव्यकर्मोंका कर्ता होवे क्योंकि एकांतसे कर्मकृत भाव लेनेपर आत्माके रागादि भावके विना उसके द्रव्यकर्मोंका बन्ध नहीं होसक्ता है, क्योंकि (अत्ता) यह आत्मा (सगं भावं) अपने ही भावको (मुत्ता) छोडकर (अण्णं किंचि वि) और कुछ भी द्रव्यकर्म आदिको (ण कुणदि) नहीं करता है।

विशेषार्थ—आत्मा यदि सर्वथा रागादि भावोंका अकर्ता माना जावे ऐसा पूर्व पक्ष होनेपर दूसरी गाथामें इसका खण्डन है। एक व्याख्यान तो यह है। दूसरा व्याख्यान यह है कि इस ही गाथामें ही पूर्वपक्ष है तथा इसका समाधान है इससे अगली गाथामें वस्तुकी मर्यादाका ही कथन है। किस तरह सो कहते हैं—पूर्व कहे प्रकारसे यदि कर्म ही रागादि भावोंके कर्ता हों तो आत्मा पुण्य पापादि कर्मोंका कर्ता नहीं होसकेगा ऐसा दूषण देने पर सांख्यमतानुसारी शिष्य कहता है कि हमारा मत यह है—

यह जीव कर्मका कर्ता नहीं है, निर्गुण है, शुद्ध है, नित्य है, सर्वव्यापी है, निष्क्रिय है, अमू-

तीक है, चेतन है, मात्र भोगनेवाला है। यह कपिलका मत है। इस वचनसे हमारे मतसे तो आत्माके कर्मोंका अकर्तापना होना भूषण ही है, दूषण नहीं है। इसी बातका खण्डन करते हैं कि जैसे शुद्ध निश्चयनयसे आत्मा रागादि भावोंका कर्ता नहीं है ऐसा ही यदि अशुद्ध निश्चयनयसे भी यह जीव अकर्ता हो तो उसके द्रव्यकर्मोंके बन्धका अभाव होगा। कर्मबंधन न होनेसे संसारका अभाव होगा तब फिर यह सर्वथा ही मुक्त रहेगा परन्तु यह बात प्रत्यक्षसे विरोधरूप है। यह अभिप्राय है ॥ ५९ ॥

इस तरह इस गाथाके प्रथम व्याख्यानमें पूर्व पक्ष किया गया। दूसरे व्याख्यानमें पूर्व पक्षका उत्तर भी दिया गया। ऐसी यह गाथा कही।

समय व्याख्या गाथा ६०

पूर्वसूत्रोदितपूर्वपक्षसिद्धांतोऽयम्।

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥ ६० ॥

व्यवहारेण निमित्तमात्रत्वाज्जीवभावस्य कर्म कर्तृ, कर्मणोऽपि जीवभावः कर्ता, निश्चयेन तु न जीवभावानां कर्म कर्तृ, न कर्मणो जीवभावः। न च तौ कर्तारमंतरेण संभूयेते, यतो निश्चयेन जीवपरिणामानां जीवः कर्ता, कर्मपरिणामानां कर्म कर्तृ इति ॥ ६० ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ६०

अन्वयार्थः—(भावः कर्मनिमित्तः) जीवभावका कर्म निमित्त है (पुनः) और (कर्म भावकारणं भवति) कर्म का जीवभाव निमित्त है; (न तु तेषां खलु कर्ता) परन्तु वास्तवमें एक-दूसरेके कर्ता नहीं हैं, (न तु कर्तारम् विना भूताः) किन्तु कर्ताके बिना होते हैं ऐसा भी नहीं है।

टीका:-यह पूर्व सूत्रमें (५९ वीं गाथामें) कहे हुए पूर्वपक्षके समाधानरूप सिद्धान्त है।

व्यवहारसे निमित्तमात्रपनेके कारण जीवभावका कर्म कर्ता है (-औदयिकादि जीवभावका कर्ता द्रव्यकर्म है), कर्मका भी जीवभाव कर्ता है, निश्चयसे तो जीवभावोंका न तो कर्म कर्ता है और न कर्मका जीवभाव कर्ता है। वे (जीवभाव और द्रव्यकर्म) कर्ताके बिना होते हैं ऐसा भी नहीं है, क्योंकि निश्चयसे जीवपरिणामोंका जीव कर्ता है और कर्म परिणामोंका कर्म (-पुद्गल) कर्ता है ॥ ६० ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ६०

अथ पूर्वसूत्रे आत्मनः कर्माकर्तृत्वे सति दूषणरूपेण पूर्वपक्षस्तस्य परिहारं ददाति, द्वितीयव्याख्यानपक्षे स्थितपक्षं दर्शयति,—भावो निर्मलचिज्ज्योतिःस्वभावाच्छुद्धजीवास्तिकायात्प्रतिपक्षभूतो भावो मिथ्यात्वरागादिपरिणामः। स च किंविशिष्टः। कम्मणिमित्तं—कर्मोदयरहिताच्चैतन्यचमत्कारमात्रात्परमात्म-

स्वभावात्प्रतिपक्षभूतं यदुदयागतं कर्म तन्निमित्तं यस्य स भवति कर्मनिमित्तः । कम्मं पुण-ज्ञानावरणादि-कर्मरहिताच्छुद्धात्मतत्त्वाद्विलक्षणं यद्भावि द्रव्यकर्म पुनः । तत्कथंभूतं ? भावकारणं हवदि-निर्विकारशुद्धात्मोपलब्धिभावात्प्रतिपक्षभूतो योसौ रागादिभावः स कारणं यस्य तद्भावकारणं भवति । ण दु-नैव तु पुनः तेसिं-तयोर्जीवगतरागादिभावद्रव्यकर्मणोः । किं नैव । कत्ता-परस्परोपादानकर्तृत्वं, खलु-स्फुटं. ण विणा नैव विना । भूदा दु-भूते संजाते तु पुनस्ते द्रव्यभावकर्मणी द्वे । कं विना । कत्तारं-उपादानकर्तारं विना किंतु जीवगतरागादिभावानां जीव एवोपादानकर्ता, द्रव्यकर्मणां कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला एवेति । द्वितीय-व्याख्याने तु यद्यपि जीवस्य शुद्धनयेनाकर्तृत्वं तथापि विचार्यमाणमशुद्धनयेन कर्तृत्वं स्थितमिति भावार्थः ॥ ६० ॥ एवं पूर्वगाथायां प्रथमव्याख्यानपक्षे तत्र पूर्वपक्षोत्र पुनरुत्तरमिति गाथाद्वयं गतं ।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा-६०

उत्थानिका-आगे पूर्व सूत्रमें आत्माको कर्मोंका अकर्ता होते हुए दूषण देते हुए पूर्व पक्ष किया था उसीका आगे खण्डन देते हैं। दूसरे व्याख्यानसे वस्तुकी मर्यादा बताते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थः-(भावो) रागादि भाव (कम्मणिमित्तो) कर्मोंके निमित्तसे होता है (पुण) तथा (भावकारणं) रागादि भावोंके कारणसे (कम्मं) द्रव्य कर्मका बन्ध (हवदि) होता है (तेसिं) उन द्रव्य और भाव कर्मोंका (खलु) निश्चयमे (कत्ता ण दु) परस्पर उपादान कर्तापना नहीं है (दु) परन्तु (कत्तारं विणा) उपादान कर्ताके विना (ण भूदा) वे नहीं हुए हैं।

विशेषार्थ-निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभावरूप शुद्ध जीवास्तिकायसे प्रतीपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मोंके उदयसे रहित चैतन्यका चमत्कार मात्र जो परमात्म स्वभाव है उससे उल्टे जो उदयमें प्राप्त कर्म हैं उनके निमित्तसे होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मोंसे रहित जो शुद्धात्मतत्त्व है उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म हैं सो निर्विकार शुद्ध आत्माकी अनुभूतिसे विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्तसे बंधते हैं। ऐसा होनेपर भी जीव सम्बन्धी रागादि भावोंका और द्रव्य कर्मोंका परस्पर उपादान कर्तापना नहीं है तौभी वे रागादि भाव और द्रव्यकर्म दोनों विना उपादान कारणके नहीं हुए हैं किन्तु जीव सम्बन्धी रागादि भावोंका उपादान कर्ता जीव ही है तथा द्रव्य कर्मोंका उपादानकर्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही हैं। दूसरे व्याख्यानमें यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चयनयसे विचार किये जानेपर जीव रागादि भावोंका कर्ता नहीं है तथापि अशुद्ध निश्चयनयसे जीव रागादि भावोंका कर्ता है यह बात सिद्ध है ॥ ६० ॥

इस तरह पूर्व गाथामें प्रथम व्याख्यानके द्वारा पूर्व पक्ष किया था यहां उसीका उत्तर दिया इसतरह दो गाथाएं कहीं।

समय व्याख्या गाथा ६१

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं ॥ ६१ ॥

कुर्वन् स्वकं स्वभावं आत्मा कर्ता स्वकस्य भावस्य।
न हि पुद्गलकर्मणामिति जिनवचनं ज्ञातव्यम् ॥ ६१ ॥

निश्चयेन जीवस्य स्वभावानां कर्तृत्वं पुद्गलकर्मणामकर्तृत्वं चागमेनोपदर्शितमत्र इति ॥ ६१ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ६१

अन्वयार्थः—(स्वकं स्वभावं) अपने स्वभावको (परिणामको) (कुर्वन्) करता हुआ आत्मा (हि) वास्तवमें (स्वकस्य भावस्य) अपने भावका (कर्ता) कर्ता है, (न पुद्गल कर्मणां) पुद्गलकर्मोंका नहीं, (इति) ऐसा (जिनवचनं) जिनवचन (ज्ञातव्यम्) जानना।

टीकाः—निश्चयसे जीवको अपने भावोंका कर्तृत्व है और पुद्गलकर्मोंका अकर्तृत्व है ऐसा यहां आगम द्वारा दर्शाया गया है ॥ ६१ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा –६१

अथैव तदेव व्याख्यानमागमसंवादेन दृढयति,–कुव्वं–कुर्वाणः। कं। सगं सहावं--स्वकं स्वभावं चिद्रूपं। अत्र यद्यपि शुद्धनिश्चयेन केवलज्ञानादिशुद्धभावाः स्वभावा भण्यंते तथापि कर्मकर्तृत्वप्रस्तावादशुद्धनिश्चयेन रागादयोपि स्वभावा भण्यंते तान् कुर्वन् सन्। अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स—आत्मा कर्ता स्वकीयभावस्य। ण हि पोग्गलकम्माणं--नैव पुद्गकर्मणां हु स्फुटं निश्चयनयेन कर्ता, इदि जिणवयणं मुणेदव्वं इति जिनवचनं मंतव्यं ज्ञातव्यमिति। अत्र यद्यप्यशुद्धभावानां कर्तृत्वं स्थापितं तथापि ते हेयास्तद्विपरीता अनंतसुखादिशुद्धभावा उपादेया इति भावार्थः ॥ ६१ ॥ इत्यागमसंवादरूपेण गाथा गता।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा–६१

उत्थानिका–आगे इस ही व्याख्यानको आगमके कथनसे दृढ करते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थः-(अत्ता) आत्मा (सगं सहावं) अपने ही स्वभावको (कुव्वं) करता हुआ (सगस्स भावस्स) अपने ही भावका (कत्ता) कर्ता होता है (पुग्गलकम्माणं ण हि) पुद्गल कर्मोंका कर्ता नहीं होता है (इदि) ऐसा (जिणवयणं) जिनेन्द्रका वचन (मुणेयव्वं) मानना योग्य है।

विशेषार्थ–यद्यपि शुद्ध निश्चयनयसे जीवके स्वभाव केवलज्ञानादि शुद्ध भाव कहे जाते हैं तथापि कर्मके कर्तापनेके व्याख्यानमें अशुद्ध निश्चय नयसे रागादि भी जीवके अपने भाव

कहे जाते हैं–इन रागादि भावोंका तो जीवको कर्ता अशुद्ध निश्चयनयसे कहसक्ते हैं, परन्तु पुद्गलकर्मोंका कर्ता जीवको निश्चयनयसे नहीं कहा जासक्ता। यह जिनेंद्रका आगम है। यहां यह तात्पर्य है कि यद्यपि यहां जीवको अशुद्ध भावोंका कर्ता स्थापित किया है तथापि ये सब अशुद्ध भाव त्यागने योग्य हैं और इनसे विपरीत जो अनंत सुख आदि शुद्धभाव हैं सो ग्रहण करने योग्य हैं॥ ६१॥

इस तरह आगमके कथन रूपसे गाथा कही।

समय व्याख्या गाथा ६२

अत्र निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वात्कर्मणो जीवस्य च स्वयं स्वरूपकर्तृत्वमुक्तम्।

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण॥ ६२॥

कर्मापि स्वकं करोति स्वेन स्वभावेन सम्यगात्मानम्।
जीवोऽपि च तादृशकः कर्मस्वभावेन भावेन॥ ६२॥

कर्म खलु कर्मत्वप्रवर्तमानपुद्गलस्कंधरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणं, कर्मत्वगमनशक्तिरूपेण करणतामात्मसात्कुर्वत्, प्राप्यकर्मत्वपरिणामरूपेण कर्मतां कलयत्, पूर्वभावव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालंबनादुपादानत्वम्, उपजायमानपरिणामरूपकर्मणाश्रीयमाणत्वादुपोढसंप्रदानत्वम्, आधीयमानपरिणामाधारत्वाद् गृहीताधिकरणत्वं, स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानं न कारकांतरमपेक्षते। एवं जीवोऽपि भावपर्यायेण प्रवर्तमानात्मद्रव्यरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणो, भावपर्यायगमनशक्तिरूपेण करणतामात्मसात्कुर्वन्, प्राप्यभावपर्यायरूपेण कर्मतां कलयन्, पूर्वभावपर्यायव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालंबनादुपात्तापादानत्वम्, उपजायमानभावपर्यायरूपकर्मणाश्रीयमाणत्वादुपोढसंप्रदानत्वः, आधीयमानभावपर्यायाधारत्वाद् गृहीताधिकरणत्वः, स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानो न कारकांतरमपेक्षते। अतः कर्मणः कर्तुर्नास्ति जीवः कर्ता, जीवस्य कर्तुर्नास्ति कर्म कर्तृ निश्चयेनेति॥ ६२॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा—६२

अन्वयार्थः–(कर्म अपि) कर्म भी (स्वेन स्वभावेन) अपने स्वभावसे (स्वकं करोति) अपनेको करते हैं (च) और (तादृशकः जीवः अपि) वैसा जीव भी (कर्मस्वभावेन भावेन) कर्मस्वभाव भावसे (-औदयिकादि भावसे) (सम्यक् आत्मानम्) यथार्थ जैसा का तैसा अपनेको करता है।

टीकाः–निश्चयनयसे अभिन्न कारक होनेसे कर्म और जीव स्वयं स्वरूपके (-अपने-अपने रूपके) कर्ता हैं ऐसा यहां कहा है।

कर्म वास्तवमें (१) कर्मरूपसे प्रवर्तमान पुद्गलस्कंधरूपसे कर्तृत्वको धारण करता हुआ, (२) कर्मपना प्राप्त करनेकी शक्तिरूप करणपनेको अंगीकृत करता हुआ, (३) प्राप्य ऐसे कर्मत्वपरिणामरूपसे कर्मपनेका अनुभव करता हुआ, (४) पूर्व भावका नाश हो जाने पर भी ध्रुवत्वको अवलम्बन करनेसे जिसने अपादानपनेको प्राप्त किया है ऐसा, (५) उत्पन्न होनेवाले परिणामरूप कर्म द्वारा समाश्रित होनेसे (अर्थात् उत्पन्न होनेवाले परिणामरूप कार्य अपनेको दिया जानेसे) सम्प्रदानपनेको प्राप्त और (६) धारण किये हुए परिणामका आधार होनेसे जिसने अधिकरणपनेको ग्रहण किया है ऐसा स्वयमेव षट्कारकरूपसे वर्तता हुआ अन्य कारककी अपेक्षा नहीं रखता।

उसी प्रकार जीव भी (१) भावपर्यायरूपसे प्रवर्तमान आत्मद्रव्यरूपसे कर्तृत्वको धारण करता हुआ, (२) भावपर्याय प्राप्त करनेकी शक्तिरूपसे करणपनेको अंगीकृत करता हुआ, (३) प्राप्य ऐसी भावपर्यायरूपसे कर्मपनेका अनुभव करता हुआ, (४) पूर्व भावपर्यायका नाश होने पर भी ध्रुवत्वका अवलम्बन करनेसे जिसने अपादानपनेको प्राप्त किया है ऐसा, (५) उत्पन्न होनेवाले भावपर्यायरूप कर्म द्वारा समाश्रित होनेसे (अर्थात् उत्पन्न होनेवाला भावपर्यायरूप कार्य अपनेको दिया जानेसे) सम्प्रदानपनेको प्राप्त और (६) धारण की हुई भावपर्यायका आधार होनेसे जिसने अधिकरणपनेको ग्रहण किया है ऐसा-स्वयमेव षट्कारकरूपसे वर्तता हुआ अन्य कारककी अपेक्षा नहीं रखता।

इसलिये निश्चयसे कर्मरूप कर्ताका जीव कर्ता नहीं है और जीवरूप कर्ताका कर्म कर्ता नहीं है ॥६२॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा –६२

अथ निश्चयेनाभेदषट्कारकीरूपेण कर्मपुद्गलः स्वकीयस्वरूपं करोति जीवोपि तथैवेति प्रतिपादयति। कम्मंपि सयं--कर्म कर्तृ--स्वयमपि स्वयमेव, कुव्वदि--करोति। किं करोति ? सम्मसप्पाणं--सम्यग्यथा भवत्यात्मानं द्रव्यकर्मस्वभावं। केन कारणभूतेन। सगेण भावेण--स्वकीयस्वभावेनाभेदषट्कारकीरूपेण। जीवोवि य तारिसओ--जीवोपि च तादृशः। केन कृत्वा। कम्मसहावेण भावेण--कर्मस्वभावेनाशुद्धभावेन रागादिपरिणामेनेति। तथाहि--कर्मपुद्गलः कर्ता कर्मपुद्गलं कर्मतापन्नं कर्मपुद्गलेन करणभूतेन कर्मपुद्गलाय निमित्तं कर्मपुद्गलात्सकाशात्कर्मपुद्गलेऽधिकरणभूते करोतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण परिणममानः कारकांतरं नापेक्षते, तथा जीवोपि आत्मा कर्तात्मानं कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मनः सकाशादात्मन्यधिकरणभूते करोतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानः कारकांतरं नापेक्षते। अयमत्र भावार्थः। यथैवाशुद्धषट्कारकीरूपेण परिणममानः सन्नशुद्धमात्मानं करोति तथैव शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेणाभेदषट्कारकीस्वभावेन परिणममानः शुद्धमात्मानं करोतीति ॥ ६२ ॥ एवमागमसंवादरूपेणाभेदषट् कारकीरूपेण च स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतं। इति समुदायेन गाथाषट्केन तृतीयांतरस्थलं समाप्तं।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ६२

उत्थानिका–आगे कहते हैं कि निश्चयसे अभेद षटकारक रूप होकर कर्म पुद्गल अपने

भावोंको करता है और जीव अपने भावोंको करता है–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(कम्मं) कर्म भी (सेन सहावेण) अपने स्वभावसे (सगं) आप ही (अप्पाणं) अपने द्रव्य कर्मपनेको (सम्मं) भले प्रकार (कुव्वदि) करता है (तारिसओ) तैसे ही (जीवो वि य) यह जीव भी (कम्मसहावेण भावेण) रागादि कर्मरूप अपने भावसे अपने भावोंको करता है।

विशेषार्थ–वृत्तिकार कर्ता कर्म आदि छः कारकोंको लगाकर व्याख्यान करते हैं कि यह कार्मण पुद्गल कर्ता होकर कर्मकारकपनेको प्राप्त अपने ही द्रव्य कर्मपनेको अपनी ही कर्म पुद्गलकी सहायता रूप करणकारकसे कर्म पुद्गलकी अवस्थाके लिये कर्म पुद्गलोंमेंसे कर्म पुद्गलके ही आधारमें करता है इस तरह यह पुद्गल अपने ही अभेद छः कारकोंके द्वारा परिणमन करता हुआ अपनी अवस्थाको पलटता है उसको दूसरे द्रव्यके कारककी अपेक्षा नहीं है। इसी तरह जीव भी स्वयंकर्ता होकर कर्मपनेको प्राप्त अपने आत्मीक भावको अपने ही आत्मारूपी कारणसे अपने ही आत्माके लिए अपने ही आत्मामेंसे अपने ही आत्माके आधारमें करता है अर्थात् आत्मा अपने ही अभेद छः कारकोंके द्वारा परिणमन करता हुआ अपने भावोंको करता है उसे दूसरे किसी कारककी अपेक्षा नहीं है। यहां यह तात्पर्य है कि जैसे यह आत्मा अशुद्ध छः कारकोंसे परिणमन करता हुआ अपने अशुद्ध आत्मीक भावको करता है तैसे यह शुद्ध आत्मीके सम्यक श्रद्धान, उसीके सम्यक्ज्ञान तथा उसीके आचरण रूपसे अभेद छः कारकोंके स्वभावसे परिणमन करता हुआ शुद्ध आत्मीक भावको करता है ॥ ६२ ॥

इस तरह आगमके कथनसे और अभेद छः कारक रूपसे स्वतंत्र दो गाथाएं पूर्ण हुईं।

इस तरह समुदायसे छः गाथाओंके द्वारा तीसरा अंतरस्थल पूर्ण हुआ।

समय व्याख्या गाथा ६३

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।
किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च देदि फलं ॥ ६३ ॥

कर्म कर्म करोति यदि स आत्मा करोत्यात्मानम्।
कथं तस्य फलं भुङ्क्ते आत्मा कर्म च ददाति फलम् ॥ ६३ ॥

कर्मजीवयोरन्योन्याकर्तृत्वेऽन्यदत्तफलान्योपभोगलक्षणदूषणपुरःसुरः पूर्वपक्षोऽयम् ॥६३।

हिंदी समय व्याख्या गाथा —६३

अन्वयार्थः–(यदि) यदि (कर्म) कर्म (कर्म करोति) कर्मको करे और (सः आत्मा) आत्मा (आत्मानम् करोति) आत्माको करे तो (कर्म) कर्म (फलम् कथं ददाति) आत्माको फल क्यों देगा

(च) और (आत्मा) आत्मा (तस्य फलं भुङ्क्ते) उसका फल क्यों भोगेगा ?

टीका:-यदि कर्म और जीवको अन्योन्य अकर्तापना हो, तो 'अन्यका दिया हुआ फल अन्य भोगे' ऐसा प्रसंग आयेगा,-ऐसा दोष बतलाकर यहां पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया है ॥ ६३ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ६३

अथ पूर्वोक्तप्रकारेणाभेदषट्कारकीव्याख्याने कृते सति निश्चयनयेनेदं व्याख्यानं कृतमिति नयविचारमजानन्नेकांतं गृहीत्वा शिष्यः पूर्वपक्षं करोति:,-कम्मं कर्म कर्तृ कम्मं कुव्वदि जदि यद्येकांतेन जीवपरिणामनिरपेक्षं सद्द्रव्यकर्म करोति "जदि" सो अप्पा करेदि अप्पाणं--यदि च स आत्मात्मानमेव करोति न च द्रव्यकर्म । किह तस्स फलं भुंजदि-कथमेतस्याकृतकर्मणः फलं भुंक्ते । स कः । अप्पा-आत्मा कर्ता कम्मं च देदि फलं जीवेनाकृतं कर्म च कर्तृ कथमात्मने ददाति फलं न कथमपीति ॥ ६३ ॥ चतुर्थस्थले पूर्वपक्षद्वारेण गाथा गता ।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ६३

उत्थानिका-आगे पूर्वोक्त प्रकारसे अभेद छः कारकका व्याख्यान करते हुये निश्चयनयसे यह व्याख्यान किया गया । इसे सुनकर नयोंके विचारको न जानता हुआ शिष्य एकांतको ग्रहण करके पूर्व पक्ष करता है ।

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जदि) यदि (कम्मं) द्रव्यकर्म (कम्मं) द्रव्यकर्मको एकांतसे विना जीवके परिणामकी अपेक्षाके (कुव्वदि) करता है और (सो अप्पा) वह आत्मा (अप्पाणं) अपनेको ही (करेदि) करता है-द्रव्यकर्मको नहीं करता है तो (किध) किस तरह (अप्पा) आत्मा (तस्स फलं) उस विना किये हुए कर्मका फलको (भुंजदि) भोगता है (च) और (कम्मं) वह जीवसे विना किया हुआ कर्म (फलं च देदि) आत्मा में फल कैसे देता है

समय व्याख्या गाथा ६४

अथ सिद्धांतसूत्राणि—

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो ।
सुहमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविधेहिं ॥ ६४ ॥

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः ।
सूक्ष्मैर्बादरैश्चानन्तानंतैर्विविधैः ॥ ६४ ॥

कर्मयोग्यपुद्गला अंजनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेन सर्वलोकव्यापित्वाद्यत्रात्मा तत्रानानीता एवावतिष्ठंत इत्यत्रोक्तम् ॥ ६४ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ६४

अन्वयार्थ-(लोकः) लोक (सर्वतः) सर्वतः (अर्थात् सर्व लोक) (विविधैः) विविध प्रकार के (अनंतानंतैः) अनंतानंत (सूक्ष्मैः बादरैः च) सूक्ष्म तथा बादर (पुद्गलकायैः) पुद्गलकायों (पुद्-गलस्कन्धों) द्वारा (अवगाढगाढनिचितः) अवगाहित होकर गाढ भरा हुआ है।

अब सिद्धांत सूत्र हैं (अर्थात् अत्र ६३ वीं गाथामें कहे गये पूर्वपक्षके निराकरणपूर्वक सिद्धांतका प्रतिपादन करनेवाली गाथाएं कही जाती हैं)।

टीकाः—यहां ऐसा कहा है कि-कर्मयोग्य पुद्गल अन्जनचूर्णसे (सुरमेसे) भरी हुई डिब्बीके न्यायसे (समान) समस्त लोकमें व्याप्त हैं, इसलिये जहां आत्मा है वहां, बिना लाये ही वे स्थित हैं ॥६४॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ६४

अथ परिहारमुख्यत्वे गाथासप्तकं। तत्र गाथासु सप्तसु मध्ये पुद्गलस्य स्वयमुपादान कर्तृत्वमुख्यत्वेन "ओगाढगाढ" इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन च "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं बंधप्रभुत्वेन मोक्षप्रभुत्वेन च "एवं कत्ता भोत्ता" इत्यादि गाथाद्वयं। एवं समुदायेन परिहारगाथासूत्राणि सप्त। तद्यथा। यथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण केवलज्ञानाद्यनंतगुणपरिणतैः सूक्ष्मजीवैर्निरंतरं लोको भृतस्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपीति निरूपयति,—ओगा-ढगाढणिचिदो--अवगाढगाढनिचितः यथा पृथ्वीकायिकादिपंचविधसूक्ष्मस्थावरैरंजनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेना-वगाढगाढरूपेण नैरंतर्येण निचितो भृतः। कोसौ। लोगो—लोकः। पोग्गलकायेहि तहा--पुद्गलकायैश्च। कथं ? सव्वदो—सर्वप्रदेशेषु। कथंभूतैः पुद्गलकायैः। सुहुमेहिं बादरेहि य--सूक्ष्मैर्दृष्ट्यगोचरैर्बादरैर्दृष्टिवि-षयैश्च। कतिसंख्योपेतैः ? अणंताणंतेहिं--अनंतानंतैः। किंविशिष्टैः। विविहेहिं--विविधैरंतर्भेदेन बहुभेदै-रिति। अत्र कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यत्रात्मा तिष्ठति तत्रानानीता एव पूर्वं तिष्ठन्ति बंधकाले पश्चादा-गमिष्यंत्येव। यद्यपि पूर्वं ते तत्रात्मावगाढगाढक्षेत्रे क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठन्ति तथापि ते हेयास्तेभ्यो भिन्नः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा स एवोपादेय इति भावार्थः ॥ ६४ ॥

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ६४

उत्थानिका—ऊपरकी शंकाको दूर करते हुए गाथा सात हैं। उनमेंसे पुद्गलके भीतर स्वयं उपादान कर्तापना है इसकी मुख्यतासे "ओगाढगाढ" इत्यादि पाठक्रमसे तीन गाथाएं हैं फिर कर्तापना और भोक्तापनाके व्याख्यानके संकोचकी मुख्यतासे 'जीवा पोग्गलकाया' इत्यादि गाथा दो हैं फिर बंधका स्वामीपना और मोक्षका स्वामीपना बताते हुए "एवं कत्ता भोत्ता" इत्यादि गाथा दो हैं। इस तरह समुदायसे पूर्व पक्षके समाधानमें सात गाथाएं हैं। पहली गाथामें कहते हैं कि जैसे यह लोक सूक्ष्म जीवोंसे विना अन्तरके भरा है (जो जीव शुद्ध निश्चयनयसे केवलज्ञानादि अनंतगुणोंके धारी हैं) वैसे यह पुद्गलोंसे भी भरा है।

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(लोगो) यह लोक (सव्वदो) सब तरफसे (सुहमेहिं) सूक्ष्म (वादरेहिं य) और स्थूल (विविहेहिं) नाना प्रकारके (णंताणंतेहिं) अनंतानंत (पोग्गलकायेहिं) पुद्गलके स्कंधोंसे (ओगाढ गाढ णिचितो) पूर्ण रूपसे भरा हुआ है।

विशेषार्थ-जैसे यह लोक पृथ्वीकाय आदि पांच प्रकारके सूक्ष्म स्थावर जीवोंसे कज्जलसे पूर्ण भरी हुई कज्जलदानीकी तरह विना अन्तरके भरा हुआ है उसीतरह यह लोक अपने सर्व असंख्यात प्रदेशोंमें दृष्टिगोचर व अदृष्टिगोचर नाना प्रकारके अनंतानंत पुद्गल स्कंधोंसे भी भरा है। यहां प्रकरणमें जो कर्म वर्गणा योग्य पुद्गलस्कंध हैं वे वहां भी मौजूद हैं जहां आत्मा है। वे वहां विना अन्यत्रसे लाए हुए मौजूद हैं। पीछे बंधकालमें और भी वर्गणाए' आवेंगी। यहां यह तात्पर्य है कि यद्यपि वे वर्गणाए' जहां आत्मा है वहां दूध-पानीकी तरह कूटकूटकर भरी हुई हैं तथापि वे त्यागने योग्य हैं। उनसे भिन्न जो शुद्ध बुद्ध एक स्वभावरूप परमात्मा हैं सो ही ग्रहण करने योग्य है ॥ ६४ ॥

समय व्याख्या गाथा ६५

अन्याकृतकर्मसंभूतिप्रकारोक्तिरियम् ।

अत्ता कुणदि सभावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं ।
गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णावगाहमवगाढ़ा ॥ ६५ ॥

आत्मा करोति स्वभावं तत्र गताः पुद्गलाः स्वभावैः ।
गच्छन्ति कर्मभावमन्योन्यावगाहावगाढाः ॥ ६५ ॥

आत्मा हि संसारावस्थायां पारिणामिकचैतन्यस्वभावमपरित्यजन्नेवानादिवंधनवद्धत्वादनादिमोहरागद्वेषस्निग्धैरविशुद्धैरेव भावैर्विवर्तते। स खलु यत्र यदा मोहरूपं रागरूपं द्वेषरूपं वा स्वस्य भावमारभते, तत्र तदा तमेव निमित्तीकृत्य जीवप्रदेशेषु परस्परावगाहेनानुप्रविष्टाः स्वभावैरेव पुद्गलाः कर्मभावमापद्यंत इति ॥ ६५ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ६५

अन्वयार्थः—(आत्मा) आत्मा (स्वभावं) (मोहरागद्वेषरूप) अपने भावको (करोति) करता है, (तत्र गताः पुद्गलाः) (तब) वहां रहनेवाले पुद्गल (स्वभावैः) अपने भावोंसे (अन्योन्यावगाहावगाढाः) जीवमें (विशिष्ट प्रकारसे) अन्योन्य-अवगाहरूपसे प्रविष्ट हुए (कर्मभावम् गच्छन्ति) कर्मभावको प्राप्त होते हैं।

टीका:—अन्य द्वारा किये गये विना कर्मकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है उसका कथन है।

आत्मा वास्तवमें संसार-अवस्थामें पारिणाभिक चैतन्यस्वभावको छोडे बिना ही अनादि

बंधन द्वारा बद्ध होनेसे अनादि मोहरागद्वेप द्वारा स्निग्ध ऐसे अविशुद्ध भावोंरूपसे ही विवर्तनको प्राप्त होता है (-परिणमित होता है)। वह (संसारस्थ आत्मा) वास्तवमें जहां और जब मोहरूप, रागरूप या द्वेपरूप ऐसे अपने भावको करता है, वहां और उस समय उसी भावको निमित्त बनाकर पुद्‌गल अपने भावोंसे ही जीवके प्रदेशोंमें (विशिष्टतापूर्वक) परस्पर-अवगाहरूपसे प्रविष्ट हुए कर्मभावको प्राप्त होते हैं ॥ ६५ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ६५

अथात्मनो मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला निश्चयेनोपादानरूपेण स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमंतीति प्रतिपादयति,--अत्ता आत्मा, कुणदि, करोति। कं करोति। सहावं-स्वभावं रागद्वेषमोहसहितं परिणामं। ननु रागद्वेषमोहरहितो निर्मलचिज्ज्योतिःसहितश्च वीतरागानंदरूपः स्वभावपरिणामो भण्यते रागादिविभावपरिणामः कथं स्वभावशब्देनोच्यत इति परिहारमाह—बंधप्रकरणवशादशुद्धनिश्चयेन रागादिविभावपरिणामोपि स्वभावो भण्यते इति नास्ति दोषः। तत्थ गया—तत्रात्मशरीरावगाढक्षेत्रे गताः स्थिताः। के ते। पोग्गला--कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कंधाः, गच्छंति कम्मभावं-गच्छन्ति परिणमन्ति कर्मभावं द्रव्यकर्मपर्यायं। कैः करणभूतैः। सहावेहिं—निश्चयेन स्वकीयोपादानकारणैः। कथं गच्छन्ति। अण्णोण्णागाहं—अन्योन्यावगाहसंबंधो यथा भवति। कथंभूताः संतः अवगाढा—क्षीरनीरन्यायेन संश्लिष्टा इत्यभिप्रायः॥ ६५ ॥

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ६५

उत्थानिका—आगे कहते हैं कि आत्मामें जब मिथ्यात्व राग द्वेप आदि परिणाम होते हैं तब उनका निमित्त पाकर कर्मवर्गणायोग्य पुद्गल निश्चयसे अपने ही उपादान कारणसे स्वयं ही कर्मरूप परिणमन कर जाते हैं।

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(अत्ता) आत्मा (सहावं) स्वभाव अपने रागादि भाव (कणदि) करता है तब (तत्थगदा) वहां प्राप्त (पोग्गला) पुद्गल स्कंध (सभावेहिं) अपने ही स्वभावसे (अण्णोण्णागाहम्) आत्मा और कर्मवर्गणा परस्पर अवगाह रूप होकर (अवगाढा) अत्यन्त गाढपनेके साथ (कम्मभावं) द्रव्य कर्मपनेको (गच्छंति) प्राप्त होजाते हैं।

विशेषार्थ—प्रश्न—शुद्ध निश्चयनयसे रागद्वेप मोह रहित निर्मल चैतन्यमई ज्योति सहित वीतराग आनन्दरूप ही स्वभाव परिणाम आत्माका कहा जाता है। रागादि विभाव परिणाम को स्वभाव शब्द से क्यों कहा? उत्तर—बंधप्रकरण के वश से अशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा रागादि विभाव परिणाम को स्वभाव कहते हैं। इसमें कोई दोप नहीं है। यहां यह कहा है कि जब यह अशुद्ध आत्मा अपने रागद्वेप मोह सहित परिणामको करता है तब आत्माके द्वारा रोके हुए शरीरकी अवगाहनाके क्षेत्रमें तिष्ठे हुए या प्राप्त हुए कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल

स्कन्ध अपनी ही उपादान कारणरूप शक्तिसे द्रव्यकर्मकी अवस्थाको प्राप्त होजाते हैं और वे जीवके प्रदेशोंमें इस तरह परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप बंध जाते हैं जिस तरह दूध पानी मिल जाता है ॥ ६५ ॥

समय व्याख्या गाथा ६६

अनन्यकृतत्वं कर्मणां वैचित्र्यस्यात्रोक्तम्।

जह पुग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहि खंधणिव्वत्ती ।
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि ॥ ६६ ॥

यथा पुद्‌गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कंधनिर्वृत्तिः ।
अकृता परैर्दृष्टा तथा कर्मणां विजानीहि ॥ ६६ ॥

यथा हि स्वयोग्यचंद्रार्कप्रभोपलंभे संध्याभ्रेंद्रचापपरिवेषप्रभृतिबहुभिः प्रकारैः पुद्‌गलस्कंधविकल्पा कर्त्रंतरनिरपेक्षा एवोत्पद्यंते, तथा स्वयोग्यजीवपरिणामोपलंभे ज्ञानावरणप्रभृतिभिर्बहुभिः प्रकारैः कर्माण्यपि कर्त्रंतरनिरपेक्षाण्येवोत्पद्यंते इति ॥ ६६ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ६६

अन्वयार्थः—(यथा) जिस प्रकार (पुद्‌गलद्रव्याणां) पुद्‌गलद्रव्योंकी (बहुप्रकारैः) अनेक प्रकारकी (स्कंधनिर्वृत्तिः) स्कंधरचना (परैः अकृता) परसे किये गये बिना (दृष्टा) होती दीखती है, (तथा) उसी प्रकार (कर्मणां) कर्मोंकी बहुप्रकारता (विजानीहि) परसे अकृत जानो।

टीकाः—कर्मोंकी विचित्रता (बहुप्रकारता) अन्य द्वारा नही की जाती ऐसा यहां कहा है।

जिस प्रकार अपनेको योग्य चन्द्र-सूर्यके प्रकाशकी उपलब्धि होने पर, संध्याबादल-इन्द्रधनुष प्रभामंडल इत्यादि अनेक प्रकारसे पुद्‌गलस्कंधभेद अन्य कर्ताकी अपेक्षा बिना ही उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अपनेको योग्य जीव-परिणामकी उपलब्धि होने पर, ज्ञानावरणादि अनेक प्रकारके कर्म भी अन्य कर्ताकी अपेक्षाके बिना ही उत्पन्न होते हैं॥ ६६ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ६६

अथ कर्मवर्गणायोग्यपुद्‌गला यथा स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमन्ति तथा दृष्टांतमाह,—जह पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंदणिप्पत्ती अकदा परेहिं दिट्ठा–यथा पुद्‌गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कंधनिष्पत्तिरकृता परैर्दृष्टा। तह कम्माणं वियाणाहि–तथा कर्मणामपि विजानीहि हे शिष्य त्वमिति। तथाहि। यथा चंद्रार्कप्रभोपलंभे सति अभ्रसंध्यारागेंद्रचापपरिवेषादिभिर्बहुभिः प्रकारैः परेणाकृता अपि स्वयमेव पुद्‌गलाः परिणमन्ति लोके तथा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणभावनारूपाभेदरत्नत्रयात्मककारणसमयसाररहितानां जीवानां मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्‌गला जीवेनो-

पादानकारणभूतेनाकृता अपि स्वकीयोपादानकारणैः कृत्वा ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिरूपैर्बहुभेदैः परिणमन्ति इति भावार्थः ॥ ६६ ॥ एवं पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ६६

उत्थानिका—आगे कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल किस तरह स्वयमेव कर्मरूप होजाते हैं इसका दृष्टांत कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जह) जैसे (पुग्गलदव्वाणं) पुद्गल द्रव्योंकी (बहुप्पयारेहिं बहुत प्रकारसे (खंधणिव्वत्ती) स्कंधोंकी रचना (परेहिं) दूसरोंसे (अकदा) विना की हुई (दिट्ठा) दिखलाई पडती है (तह) तैसे (कम्माणं) कर्मोंका बन्ध होना (वियाणाहि) जानो।

विशेषार्थ—जैसे इस लोकमें चन्द्रमा व सूर्यकी प्रभाके निमित्त होते हुए बादल व संध्याके समय लाली व इन्द्रधनुष या मंडल आदिके रूपमें नाना प्रकारसे पुद्गल वर्गणाएं स्वयं विना किसीकी की हुई परिणमन करजाती हैं वैसे उन जीवोंके जो विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव धारी आत्मतत्त्वके सम्यक श्रद्धान ज्ञान व चारित्रकी भावना रूप अभेद रत्नत्रयमई कारण समयसारसे रहित हैं उनके मिथ्यादर्शन व रागद्वेषादि परिणामोंके निमित्तसे कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल अपने ही उपादान कारणोंसे विना जीवके उपादान कारणके ज्ञानावरणादि मूल व उत्तर प्रकृति रूप नाना प्रकारसे परिणमन कर जाते हैं ॥ ६६ ॥

इस तरह पुद्गलमें स्वयं उपादानकर्तापना है, इस मुख्यतासे तीन गाथाएं कहीं।

समय व्याख्या गाथा ६७

निश्चयेन जीवकर्मणोश्चैककर्तृत्वेऽपि व्यवहारेण कर्मदत्तफलोपलंभो जीवस्य न विरुध्यत इत्यत्रोक्तम् ।

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुञ्जन्ति ॥ ६७ ॥

जीवाः पुद्गलकायाः अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः ।
काले वियुज्यमानाः सुखदुःखं ददति भुञ्जन्ति ॥ ६७ ॥

जीवा हि मोहरागद्वेषस्निग्धत्वात्पुद्गलस्कंधाश्च स्वभावस्निग्धत्वाद् बन्धावस्थायां परमाणुद्वन्द्वानीवान्योन्यावगाहग्रहणप्रतिबद्धत्वेनावतिष्ठन्ते । यदा तु ते परस्परं वियुज्यंते, तदोदितप्रच्यवमाना निश्चयेन सुखदुःखरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेणेष्टानिष्टविषयाणां निमित्तमात्रत्वात्पुद्गलकायाः सुखदुःखरूपं फलं प्रयच्छन्ति । जीवाश्च निश्चयेन निमित्तमात्रभूतद्रव्यकर्मनिर्वर्तितसुखदुःखरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेण द्रव्यकर्मोदयापादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृ-

त्वात्तथाविधं फलं भुञ्जन्ते इति । एतेन जीवस्य भोक्तृत्वगुणोऽपि व्याख्यातः ॥ ६७ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ६७

अन्वयार्थः—[जीवाः पुद्गलकायाः] जीव और पुद्गलकाय [अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः] [विशिष्ट प्रकारसे] अन्योन्य-अवगाहके ग्रहण द्वारा [परस्पर] बद्ध हैं, (काले वियुज्यमानाः) कालसे पृथक् होने पर (सुखदुःखं ददते भुञ्जन्ति) सुखदुःख देते हैं और भोगते हैं [अर्थात् पुद्गलकाय सुखदुःख देते हैं और जीव भोगते हैं]।

टीका:-निश्चयसे जीव और कर्मको एकका (निज-निजरूपका ही) कर्तृत्व होने पर भी, व्यवहारसे जीवको कर्मद्वारा दिये गये फलका उपभोग विरोधको प्राप्त नहीं होता ऐसा यहां कहा है ।

जीव मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध होनेके कारण तथा पुद्गलस्कन्ध स्वभावसे स्निग्ध होनेके कारण [वे] बंध-अवस्थामें-परमाणुद्वन्द्वोंकी भांति—[विशिष्ट प्रकारसे] अन्योन्य-अवगाहके ग्रहण द्वारा बद्धरूपसे रहते हैं। जब वे परस्पर पृथक् होते हैं तब उदय पाकर खिर जानेवाले पुद्गलकाय सुखदुःखरूप आत्मपरिणामोंके निमित्तमात्र होनेकी अपेक्षा निश्चयसे, और इष्टानिष्ट विषयोंके निमित्तमात्र होनेकी अपेक्षा व्यवहारसे, सुखदुःखरूप फल देते हैं, तथा जीव निमित्तमात्रभूत द्रव्यकर्मसे निष्पन्न होनेवाले सुखदुःखरूप आत्मपरिणामोंके भोक्ता होनेकी अपेक्षा निश्चयसे, और द्रव्यकर्मके उदयसे संपादित इष्टानिष्ट विषयोंके भोक्ता होनेकी अपेक्षा व्यवहारसे, उस प्रकारका [सुखदुःखरूप] फल भोगते हैं इस प्रकार जीवके भोक्तृत्वगुणका भी व्याख्यान हुआ ॥ ६७॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा ६७

अथाकृतकर्मणः कथं फलं भुंक्ते जीव इति योसौ पूर्वपक्षः कृतस्तत्र फलभोक्तृत्वविषये नयविभागेन युक्तिं दर्शयति, जीवा पोग्गलकाया—जीवकायाः पुद्गलकायाश्च । कथंभूताः । अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा—अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः स्वकीयस्वकीयरागादिस्निग्धरूक्षादिपरिणामनिमित्तेन पूर्वमेवान्योन्यावगाहेन संश्लिष्टरूपेण प्रतिबद्धाः संतः तिष्ठन्ति तावत् । काले विजुज्जमाणा—उदयकाले स्वकीयफलं दत्वा वियुज्यमाना निर्जरां गच्छंतः । किं कुर्वन्ति । दिंति—निर्विकारचिदानंदैकस्वभावजीवस्य मिथ्यात्वरागादिभिः सहैकत्वरुचिरूपं मिथ्यात्वं तैरेव सहैकत्वप्रतिपत्तिरूपं मिथ्याज्ञानं तथैवैकत्वपरिणतिरूपं मिथ्याचारित्रमिति मिथ्यात्वादित्रयपरिणतजीवानां पुद्गलाः कर्तारो ददति प्रयच्छंति । किं ददति ? सुहदुक्खं—अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्विपरीतं परमाकुलत्वोत्पादकमभ्यंतरे निश्चयेन हर्षविषादरूपं व्यवहारे पुनर्बहिर्विषये विविधेष्टानिष्टेन्द्रियविषयप्राप्तिरूपं कटुकविषरसास्वादस्वभावं सांसारिकसुखदुःखं भुंजंति--वीतरागपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादभोजनरहिता जीवा निश्चयेन भावरूपं व्यवहारेण द्रव्यरूपं च भुंजंते सेवंत इत्यभिप्रायः ॥ ६७ ॥ एवं भोक्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता ।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ६७

उत्थानिका—आगे शिष्यने जो पूर्वपक्ष किया था कि विना किये हुए कर्मोंका फल जीव

किस तरह भोगता है उसीका उत्तर नय विभागसे जीव फलको भोगता है—ऐसा युक्तिपूर्वक दिखाते हैं।

अन्वयसहित सामान्यार्थः–(जीवा) संसारी जीव और (पुग्गलकाया) द्रव्य कर्मवर्गणाओंके पुंज (अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा) परस्पर एक दूसरेमें गाढ़ रूपसे बंध रहे हैं [काले] उदयकालमें [विजुज्जमाणा] पुद्गल जीवसे वियोग पाते हुए [सुहदुक्खं] साता या असाता रूप सुख दुःख [दिंति] देते हैं [भुंजंति] तब जीव उनको भोगते हैं।

विशेषार्थ–संसारी जीवोंके अपने २ रागादि परिणामोंके निमित्तसे तथा पुद्गलोंमें स्निग्ध रूक्ष गुणके कारण द्रव्य कर्मवर्गणाएं जीवके प्रदेशोंमें जो पहलेसे ही बंधी हुई होती हैं वे ही अपनी स्थितिके पूरी होते हुए उदयमें आती हैं तब अपने अपने फलको प्रगट कर झड़ जाती हैं—उसी समय वे कर्म अनाकुलता लक्षण जो पारमार्थिक सुख है उससे विपरीत परम आकुलताको उत्पन्न करनेवाले सुख तथा दुःखको उन जीवोंको मुख्यतासे देती हैं जो मिथ्यादृष्टि हैं अर्थात् जो निर्विकार चिदानंदमई एक स्वभावरूप जीवको और मिथ्यात्व रागादि भावोंको एक रूप ही मानते हैं और जो मिथ्याज्ञानी हैं अर्थात् जिनको यह ज्ञान है कि जीव राग द्वेष मोहादिरूप ही होते हैं तथा जो मिथ्याचारित्री हैं अर्थात् जो अपनेको रागादिके परिणमनमें ही रत रखते हैं ऐसे मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र में परिणमन करते हुए जीव अभ्यंतरमें अशुद्ध निश्चयसे हर्ष या विषादरूप तथा व्यवहारसे बाहरी पदार्थोंमें नानाप्रकार इष्ट अनिष्ट इन्द्रियोंके विषयोंके प्राप्तिरूप मधुर या कटुक विषके रसके आस्वादरूप सांसारिक सुख या दुःखको, वीतराग परमानंदमई सुखामृतके रसास्वादके भोगको न पाते हुए भोगते हैं। निश्चयसे तो वे अपने भावोंको ही भोगते हैं, व्यवहारसे वे पदार्थोंको भोगते हैं ऐसा अभिप्राय जानना ॥६७॥

इस प्रकार कर्मसंयोगकी मुख्यतासे गाथा कहीं।

समय व्याख्या गाथा ६८

कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्योपसंहारोऽयम्।

तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स।
भोत्ता दु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं ॥ ६८ ॥

तस्मात्कर्म कर्तृ भावेन हि संयुतमथ जीवस्य।
भोक्ता तु भवति जीवश्चेतकभावेन कर्मफलम् ॥ ६८ ॥

तत एतत् स्थितं निश्चयेनात्मनः कर्तृ, व्यवहारेण जीवभावस्य, जीवोऽपि निश्चयेनात्मभावस्य कर्ता, व्यवहारेण कर्मण इति। यथात्रोभयनयाभ्यां कर्म कर्तृ, तथैकेनापि नयेन न भोक्तृ। कुतः? चैतन्यपूर्वकानुभूतिसद्भावाभावात्। ततश्चेतनत्वात् केवल एव जीवः कर्म-

फलभूतानां कथंचिदात्मनः सुखदुःखपरिणामानां कथंचिदिष्टानिष्टविषयाणां भोक्ता प्रसिद्ध इति ॥ ६७ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ६८

अन्वयार्थः—[तस्मात्] इसलिये [अथ जीवस्य भावेन हि संयुतम्] जीवके भावसे संयुक्त (निमित्त सहित) ऐसा (कर्म) कर्म (द्रव्यकर्म) (कर्तृ) कर्ता है (-निश्चयसे अपना कर्ता और व्यवहारसे जीवभावका कर्ता, परन्तु वह भोक्ता नहीं है)। (तु) और (जीवः) (मात्र) जीव ही (चेतकभावके कारण) (कर्मफलम्) कर्मफलका (भोक्ता भवति) भोक्ता होता है ॥

टीकाः—यह, कर्तृत्व और भोक्तृत्वकी व्याख्याका उपसंहार है।

इसलिये (पूर्वोक्त कथनसे) ऐसा निश्चित हुआ कि—कर्म निश्चयसे अपना कर्ता है, व्यवहारसे जीव भावका कर्ता है; जीव भी निश्चयसे अपने भावका कर्ता है, व्यवहारसे कर्मका कर्ता है।

जिस प्रकार यहां दोनों नयोंसे कर्म कर्ता है, उसी प्रकार एक भी नयसे वह भोक्ता नहीं है। किसलिये ? क्योंकि उसे चैतन्यपूर्वक अनुभूतिका सद्भाव नहीं है। इसलिये चेतनपनेके कारण मात्र जीव ही कर्मफलका—कथंचित् आत्माके सुखदुःखपरिणामोंका और कथंचित् इष्टानिष्ट विषयोंका—भोक्ता प्रसिद्ध है ॥ ६८ ॥

संस्कृत तात्पर्यवृत्ति गाथा—६८

अथ कर्तृत्वभोक्तृत्वोपसंहारः कथ्यते। तम्हा-यस्मात्पूर्वोक्तनयविभागेन जीवकर्मणोः परस्परोपादानकर्तृत्वं नास्ति तस्मात्कारणात्, कम्म कत्ता-कर्म कर्तृ भवति। केषां। निश्चयेन स्वकीयभावानां व्यवहारेण रागादिजीवभावानां जीवोपि व्यवहारेण द्रव्यकर्मभावानां निश्चयेन स्वकीयचैतन्यभावानां। कथंभूतं सत्कर्म स्वकीयभावानां कर्तृ भवति। संजुदा-संयुक्तं अध-अथो। केन संयुक्तं। भावेण मिथ्यात्व रागादिभावेन परिणामेन, जीवस्स—जीवस्य जीवोपि कर्मभावेन संयुक्त इति भोक्ता दु-भोक्ता पुनः। हवदि भवति। कोसौ। जीवो-निर्विकारचिदानंदैकानुभूतिरहितो जीवः। केन कृत्वा। चेदगभावेण-परमचैतन्यप्रकाशविपरीतेनाशुद्धचेतकभावेन। किं भोक्ता भवति। कम्मफलं-शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मतत्त्वभावनोत्पन्नं यत्सहजशुद्धपरमसुखानुभवनफलं तस्माद्विपरीतं सांसारिकसुखदुःखानुभवनरूपं शुभाशुभकर्मफलमिति भावार्थः ॥ ६८ ॥ एवं पूर्वगाथा कर्मभोक्तृत्वमुख्यत्वेन, इयं तु गाथा कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुपसंहारमुख्यत्वेनेति गाथाद्वयं गतं।

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ६८

उत्थानिका—आगे कर्ता भोक्तापनेका कथन संकोच करते हैं।

अन्वयसहित सामान्यार्थः—(तम्हा) इसलिये (कम्मं) द्रव्यकर्म (जीवस्स) जीवके [भावेण संजुदो] भावसे संयोग होता हुआ [हि] निश्चयसे [कत्ता] अपनी कर्मरूप अवस्थाओंका कर्ता है (अध) ऐसे ही जीव भी द्रव्यकर्मके उदयके निमित्तसे अपने रागादि भावों

का कर्ता है (दु) परंतु [जीवो] जीव अकेला (चेदगभावेण) अपने अशुद्ध चेतनभावसे (कम्मफलं) कर्मोंके फलका [भोत्ता] भोगनेवाला (हवदि) होजाता है।

विशेषार्थ-क्योंकि पहले यह कह चुके हैं कि निश्चयसे जीव द्रव्य कर्मका उपादान कारण नहीं है और द्रव्यकर्म जीवके भावका उपादान कारण नहीं है इसलिये द्रव्यकर्म उपादानरूपसे अपने ज्ञानावरणादि परिणामोंका कर्ता है। व्यवहारसे जीवके रागादि भावोंका कर्ता है, ऐसे ही जीव भी निश्चयसे अपने ही चैतन्य भावोंका कर्ता है। व्यवहारसे द्रव्यकर्मबंधका कर्ता है। यह पुद्गल द्रव्य जीवसम्बन्धी मिथ्यात्व रागादि भावके निमित्तसे संयुक्त होकर अपने कर्मरूप अवस्थाओंका कर्ता है। ऐसे ही जीव भी पूर्व कर्मोंके उदयके निमित्तसे रागादि भावोंका कर्ता है। तथा यह जीव अकेला निर्विकार चिदानंदमई एक अनुभूतिसे रहित होता हुआ अपने परम चैतन्यके प्रकाशसे विपरीत अशुद्ध चेतकभावसे, शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव परमात्म तत्वकी भावना से उत्पन्न जो सहज ही शुद्ध परम सुखका अनुभव रूप फल उससे विपरीत, सांसारिक सुख और दुःखके अनुभवरूप शुभ या अशुभ कर्मके फलको भोगता है यह तात्पर्य है ॥ ६८ ॥

इस तरह पूर्वगाथामें कर्मोंके भोक्तापनेकी मुख्यतासे यहां कर्मका कर्ता और भोक्तापना दोनोंके संकोच कथनकी मुख्यतासे दो गाथाएं कहीं।

समय व्याख्या गाथा ६६

कर्मसंयुक्तत्वमुखेन प्रभुत्वगुणव्याख्यानमेतत्।

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥ ६६ ॥

एवं कर्ता भोक्ता भवन्नात्मा स्वकैः कर्मभिः।
हिंडते पारमपारं संसारं मोहसंछन्नः ॥ ६६ ॥

एवमयमात्मा प्रकटितप्रभुत्वशक्तिः स्वकैः कर्मभिर्गृहीतकर्तृत्वभोक्तृत्वाधिकारोऽनादि-मोहावच्छन्नत्वादुपजातविपरीताभिनिवेशः अत्यस्तमितसम्यग्ज्ञानज्योतिः सांतमनंतं वा संसारं परिभ्रमतीति ॥ ६६ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ६६

अन्वयार्थः-(एवं) इस प्रकार (स्वकैः कर्मभिः) अपने कर्मोंसे (कर्ता भोक्ता भवन्) कर्ता भोक्ता होता हुआ (आत्मा) आत्मा (मोहसंछन्नः) मोहाच्छादित वर्तता हुआ (पारम् अपारं संसारं) सांत अथवा अनंत संसारमें (हिंडते) परिभ्रमण करता है।

टीकाः-यह, कर्मसंयुक्तपनेकी मुख्यतासे प्रभुत्वगुणका व्याख्यान है।

इस प्रकार प्रगट प्रभुत्वशक्तिके कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्तृत्व एवं भोक्तृत्वका अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इस आत्माको, अनादि मोहाच्छादितपनेके कारण विपरीत अभिनिवेशकी उत्पत्ति होनेसे सम्यग्ज्ञानज्योति अस्त होगई है, इसलिये वह सांत अथवा अनंत संसारमें परिभ्रमण करता है ६६

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा —६९

अथ पूर्वं भणितमपि प्रभुत्वं पुनरपि कर्मसंयुक्तत्वमुख्यत्वेन दर्शयति. एवं कत्ता भोत्ता होज्जं निश्चयेन कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वरहितोपि व्यवहारेणैवं पूर्वोक्तनयविभागेन कर्ता भोक्ता च भूत्वा। स कः। अप्पा-आत्मा। कैः कारणभूतैः। सगेहि कम्मेहिं—स्वकीयशुभाशुभद्रव्यभावकर्मभिः । एवंभूतः सन् किं करोति। हिंडदि-हिंडते भ्रमति। कं। संसारं निश्चयनयेनानंतसंसारव्याप्तिरहितत्वेनानंतज्ञानादिगुणाधारात्परमात्मनो विपरीतं चतुर्गतिसंसारं। पुनरपि किं विशिष्टं। पारमपारं-भव्यापेक्षया सपारं अभव्यापेक्षया त्वपारं। पुनरपि कथंभूतः स आत्मा? मोहसंछण्णो-विपरीताभिनिवेशोत्पादकमोहरहितत्वेन निश्चयेनानंतसद्दर्शनादिशुद्धगुणोपि व्यवहारेण दर्शनचारित्रमोहसंच्छन्नः प्रच्छादित इत्यभिप्रायः ॥ ६९ ॥ एवं कर्मसंयुक्तत्वमुख्यत्वेन गाथा गता।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा—६९

उत्थानिका—आगे पहले जिस प्रभुत्व स्वभावको बताया था उसीको फिर संयोगपनेकी मुख्यतासे बताते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(एवं) जैसा ऊपर कह चुके हैं इस तरह [अप्पा] यह संसारी आत्मा (सगेहिं कम्मेहिं) अपने ही शुभ अशुभ भाव कर्मोंके द्वारा [कत्ता] कर्ता (भोत्ता) और भोक्ता (होज्जं) हो करके (मोहसंछण्णो) मोह या मिथ्यादर्शनसे छाया हुआ (पारम्) पार होने योग्य (अपारं) अथवा न पार होने योग्य (संसारं) संसारमें (हिंडति) भ्रमण किया करता है।

विशेषार्थ—यद्यपि निश्चयनयसे भाव कर्म और द्रव्य कर्मका कर्ता तथा भोक्ता जीव नहीं है किन्तु अपने शुद्ध भावका ही कर्ता और भोक्ता है तथापि व्यवहारसे ही जैसा पहले कह चुके हैं अशुद्ध निश्चयनयसे अपने ही शुभ अशुभ भावोंका और व्यवहारसे शुभ अशुभ द्रव्य कर्मोंका कर्ता और भोक्ता हुआ इस चार गतिमई संसारमें भ्रमण किया करता है। यह संसार निश्चयनयसे अनंत संसारकी व्याप्तिसे रहित होनेके कारण अनंत ज्ञानादिगुणोंके आधारभूत परमात्मासे विपरीत है तथा भव्यकी अपेक्षा पार होने योग्य तथा अभव्यकी अपेक्षा पार होने योग्य नहीं है। यह संसारी आत्मा निश्चयनयसे विपरीत अभिप्रायको पैदा करनेवाले मोहसे रहित है और अनंत सम्यग्दर्शन आदि शुद्ध गुणोंका धारी है तो भी व्यवहारसे दर्शनमोह और चारित्रमोहकर्मसे आच्छादित होता है॥ ६९ ॥

समय व्याख्या गाथा —७०

कर्मवियुक्तत्वमुखेन प्रभुत्वगुणव्याख्यानमेतत् ।

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो ।
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥ ७०

उपशांतक्षीणमोहो मार्गं जिनभाषितेन समुपगतः ।
ज्ञानानुमार्गचारी निर्वाणपुरं व्रजति धीरः ॥ ७० ॥

अयमेवात्मा यदि जिनाज्ञया मार्गमुपगम्योपशांतक्षीणमोहत्वात्प्रहीणविपरीताभिनिवेशः समुद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिः कर्तृत्वभोक्तृत्वाधिकारं परिसमाप्य सम्यक्प्रकटितप्रभुत्वशक्तिर्ज्ञानस्यैवानुमार्गेण चरति, तदा विशुद्धात्मतत्त्वोपलंभरूपमपवर्गनगरं विगाहत इति ॥ ७० ॥

हिंदी समय व्याख्या गाथा ७०

अन्वयार्थः—(जिनभाषितेन मार्गं समुपगतः) जो (पुरुष) जिनवचन द्वारा मार्गको प्राप्त करके (उपशांतक्षीणमोहः) उपशांतक्षीणमोह होता हुआ (अर्थात् जिसे दर्शनमोहका उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम हुआ है ऐसा होता हुआ) (ज्ञानानुमार्गचारी) ज्ञानानुमार्गमें विचरता है (-ज्ञानका अनुसरण करनेवाले मार्गमें वर्तता है), (धीरः) वह धीर पुरुष (निर्वाणपुरं व्रजति) निर्वाणपुरको प्राप्त होता है।

टीकाः—यह, कर्मवियुक्तपनेकी मुख्यतासे प्रभुत्वगुणका व्याख्यान है ।

जब यही आत्मा जिनाज्ञा द्वारा मार्गको प्राप्त करके, उपशांतक्षीणमोहपनेके कारण (दर्शनमोहके उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमके कारण) जिसे विपरीत अभिनिवेश नष्ट हो जानेसे सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा होता हुआ, कर्तृत्व और भोक्तृत्वके अधिकारको समाप्त करके सम्यक्रूपसे प्रगट प्रभुत्वशक्तिवान होता हुआ ज्ञानका ही अनुसरण करनेवाले मार्गमें विचरता है (आचरण करता है), तब वह विशुद्ध आत्मतत्त्वकी उपलब्धिरूप अपवर्गनगरको (मोक्षपुरको) प्राप्त करता है ॥ ७० ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ७०

अथात्रापि पूर्वोक्तमपि प्रभुत्वं पुनरपि कर्मरहितत्वमुख्यत्वेन प्रतिपादयति,--उवसंतखीणमोहो उपशांतक्षीणमोहः अत्रोपशमशब्देनौपशमिकसम्यक्त्वं क्षीणशब्देन क्षायिकसम्यक्त्वं द्वाभ्यां तु क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमिति ग्राह्यं । मग्गं-भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं, समुवगदो-समुपगतः प्राप्तः, केन ? जिणभासिदेण-वीतरागसर्वज्ञभाषितेन । णाणं-निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं अभेदेन तदाधारं शुद्धात्मानं वा, अणु-अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य तं ज्ञानगुणमात्मानं वा । मग्गचारी-पूर्वोक्तनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गचारी । एवंगुणविशिष्टो भव्यवरपुण्डरीकः, वजदि—व्रजति गच्छति । किं ? णिव्वाणपुरं-अव्याबाधसुखाद्यनंतगुणास्पदं शुद्धात्मोपलंभलक्षणं निर्वाणनगरं । पुनरपि किंविशिष्टः स भव्यः । धीरो-धीरः घोरोप-

सर्गपरीषहकालेपि निश्चयरत्नत्रयलक्षणसमाधेरच्युतः पाण्डवादिवदिति भावार्थः ॥ ७० ॥ इति कर्मरहितत्वव्याख्यानेन द्वितीयगाथा गता।

एवं "ओगाढगाढ" इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण परिहारगाथासप्तकं गतं। इति जीवास्तिकायव्याख्यानरूपेषु प्रभुत्वादिनवाधिकारेषु मध्ये पंचभिरंतरस्थलैः समुदायेन "जीवा अणाइणिहणा" इत्याद्यष्टादशगाथाभिः कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयस्य यौगपद्यव्याख्यानं समाप्तम्।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा-७०

उत्थानिका—अथानंतर पहलेके ही प्रभुत्वको फिर भी कर्मरहितपनेकी मुख्यतासे बताते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—[जिणभासिदेण] जिनेन्द्र कथनके द्वारा [मग्गं] मोक्षमार्गको [समुवगदो] भलेप्रकार प्राप्त करता हुआ [णाणाणुमग्गचारी] सम्यग्ज्ञानके अनुसार धर्मके मार्गपर चलनेवाला [धीरो] सहनशील धीर भव्य जीव [उवसंतखीणमोहो] मोहको पहले उपशम पीछे मोहको क्षय करके [णिव्वाणपुरं] मोक्षनगरको [वजदि] चला जाता है।

विशेषार्थ—वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्गको प्राप्त करता हुआ अर्थात् अच्छी तरह समझता हुआ कोई भव्योंमें मुख्य प्राणी निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानको या ज्ञानके आधारभूत शुद्ध आत्माको अपने लक्ष्य या आश्रयमें लेकर उसीके अनुकूल निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्गपर चलता हुआ तथा उपशम सम्यक्त, क्षयोपशम तथा क्षायिक सम्यक्तको पाताहुआ और परम धीर वीर होकर घोर उपसर्गके सहनेके समयमें भी निश्चय रत्नत्रयमई समाधिको पांडवादिकी तरह न त्यागता हुआ, मोहका सर्वथा क्षय करके अव्याबाध सुख आदि अनंतगुण समूहरूप तथा शुद्धात्माके लाभरूप निर्वाणनगरको चलाजाता है ॥ ७० ॥

इस तरह कर्मरहितपनेके व्याख्यानसे दूसरी गाथा कही इसी तरह "ओगाढगाढ" इत्यादि पूर्वोक्त पाठके क्रमसे पूर्वपक्षका समाधानरूप सात गाथाएं पूर्ण हुईं। जीवास्तिकायके व्याख्यानरूप नव अधिकारोंके मध्यमें पांच अंतरस्थलोंसे समुदाय रूपसे "जीवा अणाईणिहणा" इत्यादि अठारह गाथाओंसे कर्तापना भोक्तापना और कर्मसंयुक्तपना इन तीनका एक साथ कथन पूरा हुआ।

समय व्याख्या गाथा ७१—७२

अथ जीवविकल्पा उच्यन्ते

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो होदि।
चदुसंकमणो भणिदो पंचग्गगुणप्पधाणो य ॥ ७१ ॥
छक्कापक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभंगसब्भावो।
अट्ठासओ णवट्ठो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥ ७२ ॥

एक एव महात्मा स द्विविकल्पस्त्रिलक्षणो भवति ।
चतुश्चंक्रमणो भणितः पञ्चाग्रगुणप्रधानश्च ॥ ७१ ॥
षट्कापक्रमयुक्तः उपयुक्तः सप्तभङ्गसद्भावः ।
अष्टाश्रयो नवार्थो जीवो दशस्थानगो भणितः ॥ ७२ ॥

स खलु जीवो महात्मा नित्यचैतन्योपयुक्तत्वादेक एव ज्ञानदर्शनभेदाद् द्विविकल्पः, कर्मफलकार्यज्ञानचेतनाभेदेन लक्ष्यमाणत्वात्त्रिलक्षणः, ध्रौव्योत्पादविनाशभेदेन वा, चतसृषु गतिषु चंक्रमणत्वाच्चतुश्चंक्रमणः, पञ्चभिः पारिणामिकौदयिकैरग्रगुणैः प्रधानत्वात्पञ्चाग्रगुणप्रधानः, चतसृषु दिक्षूर्ध्वमधश्चेति भवांतरसंक्रमणषट्केनापक्रमेण युक्तत्वात्षट्कापक्रमयुक्तः, अस्तिनास्त्यादिभिः सप्तभंगैः सद्भावो यस्येति सप्तभंगसद्भावः अष्टानां कर्मणां गुणानां वा आश्रयत्वादष्टाश्रयः, नवपदार्थरूपेण वर्तनान्नवार्थः, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिसाधारणप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियरूपेषु दशसु स्थानेषु गतत्वाद्दशस्थानग इति ॥ ७१–७२ ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ७१—७२

अब जीवके भेद कहे जाते हैं।

अन्वयार्थः—(स महात्मा) वह महात्मा (एकः एव) एक ही है, (द्विविकल्पः) दो भेदवाला है और (त्रिलक्षणः भवति) त्रिलक्षण वाला है, (चतुश्चंक्रमणः) और उसके चतुर्विध भ्रमणवाला (च) तथा [पंचाग्रगुणप्रधानः] पांच मुख्य गुणोंसे (भावोंसे) प्रधानतावाला (भणितः) कहा है। (उपयुक्तः जीवः) उपयोगी ऐसा वह जीव (षट्कापक्रमयुक्तः) छह अपक्रम सहित, (सप्तभंगसद्भावः) सात भंगपूर्वक सद्भाववान, (अष्टाश्रयः) आठके आश्रयरूप, (नवार्थः) नौ-अर्थरूप और (दशस्थानगः) दशस्थानगत (भणितः) कहा गया है।

टीकाः—वह जीव महात्मा (१) वास्तवमें नित्यचैतन्य-उपयोगी होनेसे "एक ही" है (२) ज्ञान और दर्शन ऐसे भेदोंके कारण "दो भेदवाला" है. [३] कर्मफलचेतना, कार्यचेतना [कर्म चेतना] और ज्ञानचेतना ऐसे भेदों द्वारा अथवा ध्रौव्य, उत्पाद और विनाश ऐसे भेदों द्वारा लक्षित होनेसे "त्रिलक्षण [तीन लक्षणवाला)" है (४) चार गतियोंमें भ्रमण करता है इसलिये "चतुर्विध भ्रमणवाला" है, [५] पारिणामिक, औदयिक इत्यादि पांच मुख्य गुणों द्वारा प्रधानता होनेसे "पांच मुख्य गुणोंसे प्रधानतावाला" है(६) चार दिशाओंमें, ऊपर और नीचे इस प्रकार षड्विध भवान्तरगमनरूप अपक्रमसे युक्त होनेके कारण (अर्थात् अन्य भवमें जाते हुए उपरोक्त छह दिशाओंमें गमन होता है इसलिये) "छह अपक्रम सहित" है, [७] अस्ति, नास्ति आदि सात भंगों द्वारा जिसका सद्भाव है एसा होने से "सात भंगपूर्वक सद्भाववान" है [८] (ज्ञानावरणीयादि) आठ कर्मोंके अथवा (सम्यक्त्वादि) आठ गुणोंके आश्रयभूत होनेसे "आठके आश्रयरूप" है, [९] नव पदार्थरूपसे वर्तता है इसलिये "नव-अर्थरूप"

है, (१०) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण वनस्पति, प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियरूप दस स्थानोंमें प्राप्त होनेसे "दसस्थानगत" है ॥ ७१—७२ ॥

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ७१—७२

अथ तस्यैव नवाधिकारकथितजीवास्तिकायस्य पुनरपि दशविकल्पैर्विंशतिविकल्पैर्वा विशेषव्याख्यानं करोति । एक्को चेव महप्पा—सर्वसुवर्णसाधारणेन षोडशवर्णिकगुणेन यथा सुवर्णराशिरेकः तथा सर्वजीवसाधारणकेवलज्ञानाद्यनंतगुणसमूहेन शुद्धजीवजातिरूपेण संग्रहनयेनैकश्चैव महात्मा अथवा उवजुत्तो—सर्वजीवसाधारणलक्षणेन केवलज्ञानदर्शनोपयोगेनोपयुक्तत्वात्परिणतत्वादेकः । कश्चिदाह । यथैकोपि चंद्रमा बहुषु जलघटेषु भिन्न भिन्नरूपो दृश्यते तथैकोपि जीवो बहुशरीरेषु भिन्नभिन्नरूपेण दृश्यत इति । परिहारमाह । बहुषु जलघटेषु चंद्रकिरणोपाधिवशेन जलपुद्गला एव चंद्राकारेण परिणता न चाकाशस्थचंद्रमाः । अत्र दृष्टांतमाह । यथा देवदत्तमुखोपाधिवशेन नानादर्पणानां पुद्गला एव नानामुखाकारेण परिणमन्ति न च देवदत्तमुखं नानारूपेण परिणमति । यदि परिणमति तदा दर्पणस्थं मुखप्रतिबिंबं चैतन्यं प्राप्नोति न च तथा, तथैकचंद्रमा अपि नानारूपेण न परिणमतीति । किं च । न चैकब्रह्मनामा कोपि दृश्यते प्रत्यक्षेण यश्चंद्रवन्नानारूपेण भविष्यति इत्यभिप्रायः । सो दुवियप्पो—दर्शनज्ञानभेदद्वयेन संसारिमुक्तद्वयेन भव्याभव्यद्वयेन वा स द्विविकल्पः । तिलक्खणो हवदि—ज्ञानकर्मकर्मफलचेतनात्रयेणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयेण द्रव्यगुणपर्यायत्रयेण वा त्रिलक्षणो भवति । चदुसंकमो य भणिदो—यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निर्विकारचिदानंदैकलक्षणसिद्धगतिस्वभावस्तथापि व्यवहारेण मिथ्यात्वरागादिपरिणतः सन्नरकादिचतुर्गतिसंक्रमणो भणितः । पंचग्गगुणप्पहाणो य—यद्यपि निश्चयेन क्षायिकशुद्धपारिणामिकभावद्वयलक्षणस्तथापि सामान्येनौदयिकादिपंचाग्रगुणप्रधानश्च ॥ छक्कावक्कमजुत्तो—षट्केनापक्रमेण युक्तः अस्य वाक्यस्यार्थः कथ्यते—अपगतो विनष्टः विरुद्धक्रमः प्रांजलत्वं यत्र स भवत्यपक्रमो वक्र इति ऊर्ध्वाधोमहादिक्चतुष्टयगमनरूपेण षड्विधेनापक्रमेण मरणांते युक्त इत्यर्थः सा चैवानुश्रेणिगतिरिति । सत्तभंगसब्भावो स्यादस्तीत्यादि सप्तभंगीसद्भावः । अट्ठासवो—यद्यपि निश्चयेन वीतरागलक्षणनिश्चयसम्यक्त्वाद्यष्टगुणाश्रयस्तथापि व्यवहारेण ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मास्रवः । णवट्ठ—यद्यपि निर्विकल्पसमाधिस्थानां निश्चयेन सर्वजीवसाधारणत्वेनाखंडैकज्ञानरूपः प्रतिभाति तथापि व्यवहारेण नानावर्णिकागतसुवर्णवन्नवपदार्थरूपः । दह ठाणियो भणियो—यद्यपि निश्चयेन शुद्धबुद्धैकलक्षणस्तथापि व्यवहारेण पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणवनस्पतिद्वयद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियरूपदशस्थानगतः । स कः । जीवो—जीवपदार्थः एवं दशविकल्परूपो भवति । अथवा द्वितीयव्याख्यानेन पृथगिमानि दशस्थानानि उपयुक्तपदस्य पृथग्व्याख्याने कृते सति तान्यपि दशस्थानानि भवंतीत्युभयमेलापकेन विंशतिभेदः स्यादिति भावार्थः ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

हिन्दी तात्पर्यवृत्ति गाथा ७१—७२

उत्थानिका—आगे उसी ही नव अधिकारोंसे वर्णित जीवास्तिकायका विशेष व्याख्यान दश भेदोंसे या बीस भेदोंसे करते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थः-(उवउत्तो) उपयोगवान (एक्को चेव महप्पा) यह एक महान आत्मा जातिरूपसे एक ही प्रकार है। (सो दुवियप्पो) वही जीव दो प्रकार है (तिलक्खणो होदि) वही तीन लक्षणवाला होता है। (चदुचंकमणो भणिदो) वही चारगतिमें घूमनेसे चार प्रकार कहा गया है। (पंचग्गगुणप्पधाणो य) वही पांच मुख्यभावोंको धारनेसे पांचरूप है। (छक्कापक्कमजुत्तो) वही छः दिशाओंमें गमन करनेवाला है इससे छः भेदरूप है। (सत्तभङ्ग-सब्भावो) वही सात भंगोंसे सिद्ध होता है इससे सातरूप है। (अट्ठासओ) यही आठ गुणोंका आश्रय है इससे आठरूप है। (णवत्थो) यही नव पदार्थोंमें व्यापक होनेसे नवरूप है। (दस-ठाणगो) यही दश स्थानोंमें प्राप्त है इससे (जीवो) यह जीव दशरूप (भणिदो) कहा गया है।

विशेषार्थ–जैसे सुवर्ण अपने शुद्ध सोलहवर्णपनेके गुणकी अपेक्षा सर्व सुवर्णमें साधारण है, इससे सुवर्णराशि एक है तैसे ही सर्वजीवोंमें साधारण पाए जानेवाले केवलज्ञान आदि अनंत गुणोंके समूहकी अपेक्षा अर्थात् शुद्ध जीवजातिपनेकी अपेक्षा संग्रहनयसे एक रूप ही यह जीव द्रव्य है अथवा सर्व जीवोंमें केवलदर्शन और केवलज्ञानरूप उपयोग मौजूद है। इस साधारण लक्षणकी अपेक्षा जीवराशि एक प्रकार है। यहां किसीने कहा कि जैसे एक ही चन्द्रमा बहुतसे जलके भरे हुए घडोंमें भिन्न भिन्न रूप दिखलाई पडता है तैसे एक ही जीव मानो, जो बहुतसे शरीरमें भिन्न भिन्न रूपसे दिखलाई पडता है। इस शंकाका समाधान करते हैं कि बहुतसे जलके घडोंमें चन्द्रमाकी किरणकी उपाधिके वशसे जलके पुद्गल ही चन्द्रमाके आकारमें परिणत होगए हैं, न कि आकाशमें स्थित चंद्रमा अनेकरूप हुआ है। इसमें भी दृष्टांत है–जैसे नानादर्पणोंमें देवदत्तके मुखकी उपाधिके वससे अर्थात् दर्पणोंकी स्वच्छतामें मुख झलकनेसे नानादर्पणोंके पुद्गल ही नानामुखके आकारसे परिणमन करगए हैं। देवदत्तका मुख अनेक मुखरूप नहीं परिणमन कर गया है। यदि ऐसा हो तो दर्पणमें स्थित मुखका प्रतिबिम्ब चैतन्य-भावको प्राप्त होजावे सो ऐसा होता नहीं। इसी तरह एक चंद्रमा भी नानारूपसे नहीं परिण-मन करता है। तथा ब्रह्म नामका कोई भी एक पदार्थ दिखलाई नहीं पडता है जो चन्द्रमाकी तरह नाना प्रकार हो जायगा। इससे यह अभिप्राय है कि एक जीव नाना जीवोंमें नहीं बदल सक्ता है मात्र जाति अपेक्षा या साधारण गुणकी अपेक्षा सर्व जीव एक प्रकार हैं तथा यह जीव द्रव्य–दर्शन ज्ञान उपयोगकी अपेक्षा या संसारी और मुक्तकी अपेक्षा या भव्य और अभ-व्यकी अपेक्षा दो प्रकार है। सोई जीव ज्ञानचेतना, कर्मचेतना या कर्मफलचेतनाकी अपेक्षा या उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अपेक्षा या सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्रकी अपेक्षा या द्रव्य गुण पर्यायकी अपेक्षा तीन लक्षणधारी है। यद्यपि शुद्ध निश्चयनयसे निर्विकार, चिदानन्दमय

एक लक्षण रखनेसे सिद्ध गतिमें रहनेका स्वभाव रखता है तथापि व्यवहारसे मिथ्यादर्शन और रागद्वेषादि भावोंमें परिणमन करता हुआ नरकादि चार गतियोंमें भ्रमण करनेवाला होनेसे चार प्रकार कहा गया है। यद्यपि निश्चयनयसे क्षायिकभाव और शुद्ध पारिणामिकभाव इन दो लक्षणोंको रखता है तथापि सामान्यसे औदयिक आदि पांच मुख्य भावोंका धरनेवाला होनेसे पांच प्रकार है तथा यही जीव छः उपक्रमसे युक्त है इससे छः प्रकार है। इस वाक्यका अर्थ यह है कि जिसमें विरुद्ध क्रम नष्ट हो गया हो उसको उपक्रम कहते है अर्थात् यह जीव ऊपर नीचे तथा चार दिशा—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर इनमें मरणके अन्तमें जाता है, जैसा कि कहा है– "अनुश्रेणि गतिः" कि जीवका गमन श्रेणीवद्ध होता है। टेढ़ा विदिशाओंमें नहीं जाता है। इसी कारण छः प्रकार है। यही जीव द्रव्य स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्तिनास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य इन सात भंगोंसे सिद्ध किया जाता है इससे सात प्रकार है। यद्यपि यह जीव निश्चयनयसे वीतराग लक्षणमई सम्यक्त आदि आठ गुणोंका आधार है तथापि व्यवहारसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके आश्रव सहित है इससे आठ प्रकार है। यद्यपि यह जीव निर्विकल्प समाधिमें रहनेवालोंको निश्चयसे एक अखंड ज्ञानरूप प्रतिभासित होता है जो गुण सर्व जीवोंमें साधारण पाया जाता है तथापि व्यवहारसे नाना सुवर्णके पदार्थोंमें फैले हुए सुवर्णकी तरह जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निजरा, मोक्ष, पुण्य, पाप इन नौ पदार्थोंमें व्यापनेसे नौ रूप है। यद्यपि निश्चयनयसे शुद्धबुद्ध एक लक्षणका धारी है तथापि व्यवहारनयसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति, साधारण वनस्पति, द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय. चौन्द्रिय, पंचेन्द्रियरूप होनेसे दस स्थानगत या दसरूप है। अथवा यदि इन पृथ्वी आदिके दस स्थानोंको अलग २ ले लेवें और उपयुक्त पदका पृथक् व्याख्यान करलेने पर उसके भी दस स्थान होते हैं उन दोनोंको मिलानेसे यही जीव वीस भेदरूप हो जाता है। यह भावार्थ है ॥ ७१–७२ ॥

समय व्याख्या गाथा ७३

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसवंधेहिं सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥ ७३ ॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैः सर्वतो मुक्तः।
ऊर्ध्वं गच्छति शेषा विदिग्वर्जां गतिं यांति ॥ ७३ ॥

बद्धजीवस्य षड्गतयः कर्मनिमित्ताः। मुक्तस्याप्यूर्ध्वगतिरेका स्वाभाविकीत्यत्रोक्तम् ॥७३॥

॥ इति जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्या समाप्ता ॥

हिन्दी समय व्याख्या गाथा ७३

अन्वयार्थः—(प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैः) प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेश-बंधसे (सर्वतः मुक्तः) सर्वतः मुक्त जीव (ऊर्ध्वं गच्छति) ऊर्ध्वगमन करता है, (शेषाः) शेष जीव (भवान्तरमें जाते हुए) (विदिग्वर्जां गतिं यांति) विदिशाएं छोडकर गमन करते हैं।

टीकाः—बद्ध जीवको कर्मनिमित्तक षड्विध गमन (छह दिशाओंमें गमन) होता है, मुक्त जीव को भी स्वाभाविक ऐसा एक ऊर्ध्वगमन होता है।—ऐसा यहां कहा है॥ ७३॥

इस प्रकार जीवद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान समाप्त हुआ।

संस्कृत तात्पर्य वृत्ति गाथा ७३

अथ मुक्तस्योर्ध्वगतिः संसारिणां मरणकाले षड्गतय इति प्रतिपादयति,—पयडिट्ठिदि अणुभाग पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को—प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैर्विभावरूपैः समस्तरागादिविभावरहितेन शुद्धात्मा-नुभूतिलक्षणध्यानबलेन सर्वतो मुक्तोपि, उड्ढं गच्छदि-स्वाभाविकानंतज्ञानादिगुणैर्युक्तः सन्नेकसमयलक्षणा-विग्रहगत्योर्ध्वं गच्छति। सेसा—शेषाः संसारिणो जीवाः, विदिसावज्जं गदिं जंति-मरणान्ते विदिग्वर्ज्यां पूर्वोक्तषट्कापक्रमलक्षणमनुश्रेणिसंज्ञां गतिं गच्छन्ति इति। अत्र गाथासूत्रे "सदसिव संखो मक्कडि बुद्धो णेइयाइगो य वइसेसा। ईसर मंडलि दंसण विदूसणट्ठं कयं अट्ठं" (गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ६६-६८ इति गाथोक्ताष्टमतांतरनिषेधार्थं "अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा। अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा" इति द्वितीयगाथोक्तलक्षणं सिद्धस्वरूपमुक्तमित्यभिप्रायः॥ ७३॥ इति जीवास्तिकायसंबंधे नवाधिकाराणां चूलिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रयं ज्ञातव्यं।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण "जीवोत्ति हवदि चेदा" इत्यादि नवाधिकारसूचनार्थं गाथैका, प्रभुत्वमुख्यत्वेन गाथाद्वयं, जीवत्वकथनेन गाथात्रयं, स्वदेहप्रमितिरूपेण गाथाद्वयं, अमूर्तत्वगुणज्ञापनार्थं गाथात्रयं, त्रिविधचैतन्यकथनेन गाथाद्वय, तदनंतरं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयज्ञापनार्थं गाथा एकोनविंशतिः, कर्तृत्वभो-क्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा अष्टादश, चूलिकारूपेण गाथात्रयमिति सर्वसमुदायेन त्रिपंचाशद्गाथाभिः पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये जीवास्तिकायनामा 'चतुर्थोंतरा-धिकारः' समाप्तः।

हिन्दी तात्पर्य वृत्ति गाथा ७३

उत्थानिका—आगे कहते हैं कि मुक्त जीवोंकी ऊपरको गति होती है और संसारी जीवोंकी मरणकालमें छः दिशाओंमें गति होती है—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—[पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं] प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभाग बन्ध, और प्रदेशबन्ध इन चार प्रकारके बन्धोंसे [सव्वदो] सर्वतरहसे [मुक्को] छुटा हुआ जीव [उड्ढं] ऊपरको सीधा [गच्छदि] जाता है। [सेसा] बाकी संसारी जीव

[विदिसावज्जं] चार विदिशाओंको छोडकर शेप छः दिशाओंमें [गदिं] गतिमें जानेकी अपेक्षा [जंति] जाते हैं।

विशेपार्थ—जब यह जीव समस्त रागादिभावोंसे रहित होकर शुद्धात्मानुभूतिमई ध्यानके बलसे प्रकृति आदि चाररूप द्रव्यकर्म बंधोंसे और सर्व विभाव भावोंसे बिलकुल छूट जाता है तब यह अपने स्वाभाविक अनंतज्ञानादि गुणोंसे भूषित होता हुआ एक समय में ही अविग्रहगतिसे ऊपरको जाकर लोकके अग्रभागमें तिष्ठ जाता है। मुक्त जीवोंके सिवाय शेप संसारी जीव मरणके अन्तमें छः दिशाओंमें श्रेणीरूपसे जाते हैं। उद्धृत गाथार्थ—सिद्ध भगवान आठ कर्मोंसे रहित हैं इस विशेपण के द्वारा[१] जो जीवको सर्वदा सर्वकर्ममलसे अलिप्त व सदामुक्तरूप ईश्वर मानते हैं ऐसे सदाशिवमतका निराकरण किया गया है [२] यदि कर्मबन्ध न हो तो आत्माको मुक्ति का साधन वृथा हो तथा जीवके मुक्ति न माननेवाले मीमांसक मतका निराकरण किया है [३] सिद्ध भगवान परम शीतल या सुखी भए हैं। इस विशेपणसे जो मुक्तिमें आत्माके सुखका अभाव मानते हैं उन सांख्य मतवालोंका निराकरण है। (४) वे सिद्ध भगवान कभी फिर कर्मरूपी अञ्जनसे लिप्त नहीं होते हैं, इससे निरञ्जन हैं इस विशेपणसे मस्करी सन्यासीके मतका निराकरण है, जो मुक्त होनेके पीछे फिर कर्मबन्ध होना व संसार होना मानते हैं। (५) वे सिद्ध भगवान अविनाशी हैं। कभी अपने शुद्ध चैतन्य द्रव्यके स्वभावको नहीं त्यागते हैं। इस विशेपणसे बौद्धमतका निराकरण है जो परमार्थसे कोई नित्यद्रव्य नहीं मानते हैं। क्षणक्षण विनाशीक चैतन्यको संतानवर्ती मानते हैं (६) वे सिद्ध महाराज सम्यक्त आदि आठ गुण धारी हैं। इस विशेपणसे ज्ञानादि गुणोंके अत्यन्त अभावको मुक्ति माननेवाले नैयायिक और वैशेपिक मतका निराकरण है (७) वे सिद्ध भगवान कृतकृत्य हैं। कुछ करना नहीं है परम संतुष्ट हैं। इस विशेपणसे ईश्वरको सृष्टिकर्ता माननेवालोंका निराकरण है। (८) वे सिद्ध भगवान लोकाकाशके अग्रभागमें निवास करते हैं। इस विशेपणसे मंडलीकमतका निराकरण है जो कहते हैं कि आत्मा ऊर्ध्वगमन स्वभावसे सदा ही करता रहता है, कहीं भी विश्राम नहीं लेता है। इस गाथासे आठ मतान्तरों काखंडन हुआ।

सिद्ध भगवान आठ प्रकार कर्मोंसे रहित हैं—अर्थात् मोह कर्मने क्षायिक सम्यक्तको, ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मने केवलज्ञान केवलदर्शन गुणोंको, अन्तरायने अनंतवीर्यको, नामकर्मने सूक्ष्म गुणको, आयुकर्मने अवगाहना गुणको, गोत्रकर्मने अगुरुलघुगुणको, वेदनीयने अव्याबाध गुणको ढक रक्खा था सो आठकर्मके नाश होनेसे सिद्धोंके आठ गुण प्रगट होगये हैं और लोकाग्रपर निवास है इस दूसरी गाथा में कहेगये लक्षण के द्वारा सिद्धका स्वरूप कहागया ॥७३॥

इसतरह जीवास्तिकायके सम्बन्धमें नव अधिकारोंकी चूलिकाके व्याख्यानको करते हुए तीन गाथाएं कहीं।

इस तरह पूर्वमें कहे प्रमाण 'जीवोत्ति हवदि चेदा।' इत्यादि नव अधिकारकी सूचनाके लिये गाथा एक, प्रभुत्वकी मुख्यतासे गाथा दो, जीवत्वको कहते हुए गाथा तीन, स्वदेह प्रमाण है ऐसा कहते हुए गाथा दो, अमूर्त गुण बतानेके लिये गाथा तीन, तीन प्रकार चेतनाको कहते हुए गाथा दो, फिर ज्ञानदर्शन उपयोगको समझानेके लिये गाथा उगनीस, कर्तापना भोक्तापना और कर्मसंयुक्तपनाके व्याख्यानकी मुख्यतासे गाथा अठारह, चूलिका रूपसे गाथा तीन इस तरह सर्व समुदायसे त्रेपन गाथाओंको पंचास्तिकाय छः द्रव्यको कहनेवाले प्रथम महाअधिकार में जीवास्तिकाय नामका चौथा अन्तर अधिकार समाप्त हुआ।



अथ पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यान

पुद्गलद्रव्यविकल्पादेशोऽयम् ।

खंधा य खंधदेसा खंधपदेसा य होंति परमाणू ।
इदि ते चदुव्वियप्पा पुग्गलकाया मुणेयव्वा ॥ ७४ ॥

स्कंधाश्च स्कंधदेशाः स्कंधप्रदेशाश्च भवन्ति परमाणवः।
इति ते चतुर्विकल्पाः पुद्गलकाया ज्ञातव्याः ॥ ७४ ॥

पुद्गलद्रव्याणि हि कदाचित्स्कंधपर्यायेण, कदाचित्स्कंधदेशपर्यायेण, कदाचित्स्कंधप्रदेशपर्यायेण कदाचित्परमाणुत्वेनात्र तिष्ठन्ति। नान्या गतिरस्ति । इति तेषां चतुर्विकल्पत्वमिति ॥ ७४ ॥

अब पुद्गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान है।

अन्वयार्थः–(ते पुद्गलकायाः) पुद्गलकायके (चतुर्विकल्पाः) चार भेद (ज्ञातव्याः) जानना (स्कंधाः च) स्कंध, (स्कंधदेशाः) स्कंधदेश, (स्कंध प्रदेशाः) स्कंधप्रदेश (च) और (परमाणवः भवन्ति इति) परमाणु।

टीकाः—यह पुद्गलद्रव्यके भेदोंका कथन है।

पुद्गलद्रव्य कदाचित् स्कंधपर्यायसे, कदाचित् स्कंधदेशरूप पर्यायसे कदाचित् स्कंधप्रदेशरूप पर्याय और कदाचित् परमाणुरूपसे यहां (लोकमें) होते हैं, अन्य कोई गति नहीं है। इस प्रकार उनके चार भेद हैं ॥ ७४ ॥

अथानंतरं चिदानंदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्भिन्ने हेयरूपे पुद्गलास्तिकायाधिकारे गाथादशकं भवति। तद्यथा। पुद्गलस्कंधव्याख्यानमुख्यत्वेन "खंदा य खंददेसा" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथापंचकं, तत्र गाथा पंचकमध्ये परमाणुस्वरूपकथनेन "सव्वेसिं खंदाणं" मित्यादिगाथासूत्रमेकं, अथ परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणार्थं "आदेसमत्त" इत्यादि सूत्रमेकं, तदनंतरं शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनमुख्यत्वेन "सद्दो खंदप्पभावो" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारेण समयादिव्यवहारकालमुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्याकथनेन च "णिच्चो णाणवगासो" इत्यादि सूत्रमेकं, तदनंतरं परमाणुद्रव्ये रसवर्णादिव्याख्यानमुख्यत्वेन "एयरस वण्ण" इत्यादि गाथासूत्रमेकं, एवं परमाणुद्रव्यप्ररूपणरूपेण द्वितीयस्थले समुदायेन गाथापंचकं गतं। अथ पुद्गलास्तिकायोपसंहाररूपेण "उवभोज्ज" इत्यादि सूत्रमेकं। एवं गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण पुद्गलाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा। पुद्गलद्रव्यविकल्पचतुष्टयं कथ्यते:,

खंदा य खंददेसा खंदपदेसा य होंति-स्कंधाः स्कंधदेशाः स्कंधप्रदेशाश्चेति त्रयः स्कंधा भवन्ति। परमाणू—परमाणवश्च भवन्ति। इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा-इति स्कंधत्रयं परमाणवश्चेति भेदेन चतुर्विकल्पास्ते पुद्गलकाया ज्ञातव्या इति। अत्रोपादेयभूतानंतसुखरूपाच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणत्वाद्धेयतत्त्वमिति भावार्थः॥ ७४॥

हिं०ता०-उत्थानिका-अथानंतर चिदानंदमई एक स्वभावधारी शुद्ध जीवास्तिकायसे भिन्न त्यागने योग्य पुद्गलास्तिकायके अधिकारमें गाथाएं दस हैं। उनमें पुद्गलोंके स्कंध होते हैं इस व्याख्यानकी मुख्यतासे "खंदा य खंददेसो" इत्यादि पाठक्रमसे गाथाएं चार हैं, फिर परमाणुके व्याख्यानकी मुख्यतासे दूसरे स्थलमें गाथाएं पांच हैं इन पांचमें परमाणुके स्वरूपको कहते हुए "सव्वेसिं खंदाणं" इत्यादि गाथा सूत्र एक है। परमाणुओंसे पृथ्वी, जल आदि भेद भिन्न २ होते हैं इस बातको खंडन करते हुए 'आदेसमत्त' इत्यादि सूत्र एक है फिर शब्द पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है इसके स्थापनकी मुख्यतासे 'सद्दो खंधप्पभवो' इत्यादि सूत्र एक है। फिर परमाणु द्रव्यके प्रदेशके आधारसे समय आदि व्यवहार काल होता है इसकी मुख्यतासे एकत्व आदि संख्याको कहते हुए 'णिच्चोणाणवगासो' इत्यादि सूत्र एक है फिर परमाणु द्रव्यमें रस वर्ण आदिके व्याख्यानकी मुख्यतासे 'एयरसवण्ण' इत्यादि गाथा सूत्र एक है इस तरह परमाणु द्रव्यके प्ररूपणमें दूसरे स्थलमें समुदायसे गाथा पांच हैं। फिर पुद्गलास्तिकायको संकोचते हुए 'उवभोज्ज' इत्यादि सूत्र एक है। इस तरह दश गाथातक तीन स्थलसे पुद्गलके अधिकारमें समुदायपातनिका कही। आगे पुद्गलके चार भेद कहते हैं।

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(खंधा) स्कंध (य) और (खंधदेसा) स्कंध देश (य) तथा (खंध पदेशा) स्कन्ध प्रदेश ऐसे तीन प्रकार स्कंध तथा (परमाणू) परमाणु (होंति) होते हैं। (इदि) ये (चदुवियप्पा) चार भेदरूप (ते पोग्गलकाया) वे पुद्गलकाय (मुणेयव्वा) जानने चाहिये।

विशेषार्थ—यहां ग्रहण करने योग्य अनन्त सुखरूप शुद्ध जीवास्तिकायसे विलक्षण होनेसे यह पुद्गलद्रव्य हेयतत्त्व है ऐसा तात्पर्य है ॥ ७४ ॥

खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसो त्ति।
अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेव अविभागी ॥ ७५ ॥

स्कंधः सकलसमस्तस्तस्य त्वर्धं भणन्ति देश इति।
अर्धार्धं च प्रदेशः परमाणुश्चैवाविभागी ॥ ७५ ॥

पुद्गलद्रव्यविकल्पनिर्देशोऽयम्। अनंतानंतपरमाण्वारब्धोऽप्येकः स्कंधो नाम पर्यायः। तदर्धं स्कंधदेशो नाम पर्यायः। तदर्धार्धं स्कंधप्रदेशो नाम पर्यायः। एवं भेदवशात् द्व्यणुकस्कंधादनंताः स्कंधप्रदेशपर्यायाः। निर्विभागैकप्रदेशः स्कंधस्यांत्यो भेदः परमाणुरेकः। पुनरपि द्वयोः परमाण्वोः संघातादेको द्व्यणुकस्कंधपर्यायः। एवं संघातवशादनंताः स्कंधपर्यायाः। एवं भेदसंघाताभ्यामप्यनंता भवंतीति। ७५॥

अन्वयार्थः-(सकलसमस्तः) सकल-समस्त (पुद्गलपिंडात्मक सम्पूर्ण वस्तु) वह (स्कंधः) स्कंध है, [तस्य अर्धं तु] उसके अर्धको (देशः इति भणन्ति) देश कहते हैं, (अर्धार्धं च) अर्धका अर्ध वह (प्रदेशः) प्रदेश है (च) और (अविभागी) अविभागी वह (परमाणुः एव) परमाणु है।

टीकाः—यह पुद्गलद्रव्यके भेदोंका वर्णन है।

अनंतानन्त परमाणुओंसे निर्मित होने पर भी जो एक हो वह स्कंध नामकी पर्याय है, उसकी आधी स्कंधदेश नामक पर्याय है, आधीकी आधी स्कंधप्रदेश नामकी पर्याय है। इस प्रकार भेदके कारण द्वि—अणुक स्कंधपर्यंत अनन्त स्कंधप्रदेशरूप पर्यायें होती हैं। निर्विभाग-एक-प्रदेशवाला, स्कंधका अन्तिम अंश वह एक परमाणु है।

पुनश्च- दो परमाणुओंके संघातसे (मिलनेसे) एक द्विअणुक-स्कन्धरूप पर्याय होती है। इस प्रकार संघातके कारण (द्विअणुक-स्कन्धकी भांति त्रिअणुक-स्कन्ध, चतुरणुक-स्कन्ध इत्यादि) अनंत स्कन्धरूप पर्यायें होती हैं।

इसी प्रकार भेद-संघात दोनोंसे भी अनंत (स्कन्धरूप पर्यायें) होती हैं॥ ७५॥

सं०ता०-अथ पूर्वोक्तस्कंधादिचतुर्विकल्पानां प्रत्येकलक्षणं कथयति, खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति। अद्धद्धं च पदेसो--सकलसमस्तलक्षणः स्कंधो भवति तदर्धलक्षणो देशो भवति तदर्द्धार्द्धलक्षणः प्रदेशो भवति। तथाहि--समस्तोपि विवक्षितघटपटाद्यखण्डरूपः सकल इत्युच्यते तस्यानंतपरमाणुपिंडस्य स्कंधसंज्ञा भवति। तत्र दृष्टांतमाह--षोडशपरमाणुपिंडस्य स्कंधकल्पना कृता तावत्। एकैकपरमाणोरपनयेन नवपरमाणुपिंडे स्थिते ये पूर्वविकल्पा गतास्तेपि सर्वे स्कंधा भण्यंते, अष्टपरमाणुपिंडे जाते देशो भवति। तत्राप्येकैकापनयनेन पंचपरमाणुपिंडपर्यंतं ये विकल्पा गतास्तेषामपि देशसंज्ञा भवति, परमा-

णुचतुष्टयपिंडे स्थिते प्रदेशसंज्ञा भण्यते पुनरप्येकैकापनयनेन द्वयणुकस्कंधे स्थिते ये विकल्पा गतास्तेषामपि प्रदेशसंज्ञा भवति। परमाणू चेव अविभागी-परमाणुश्चैवाविभागीति। पूर्वं भेदेन स्कंधा भणिता इदानीं संघातेन कथ्यंते—परमाणुद्वयं संघातेन द्वयणुकस्कंधो भवति त्रयाणां संघातेन त्र्यणुक इत्याद्यनंतपर्यंता ज्ञातव्याः। एवं भेदसंघाताभ्यामप्यनंता भवंतीति। अत्रोपादेयभूतात्परमात्मतत्त्वात्पुद्‌गलानां यद्भिन्नत्वेन परिज्ञानं तदेव फलमिति तात्पर्यं ॥ ७५ ॥

हिं०त०—उत्थानिका—आगे पहले कहे हुए स्कंध आदि चार भेदोंमेंसे प्रत्येकका लक्षण कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थः-(खंधं) स्कन्ध (सयलसमत्थं) बहुतसे परमाणुओंका समुदाय है (तस्स दु अद्धं) उसके ही आधे परमाणुओंका (देसोत्ति) स्कंध देश होता है (च) और (अद्धद्धं) उस आधेके भी आधेका (पदेसो) स्कंध प्रदेश होता है। (चेव) और (परमाणू) परमाणु (अविभागी) विभाग रहित सबसे सूक्ष्म होता है।

विशेषार्थ—मिले हुए समुदायको घट पट आदि अखंडरूप एक को सकल कहते हैं, यह अनंत परमाणुओंका एक पिंड है इसीको स्कंध संज्ञा है। यहां दृष्टांत कहते हैं कि जैसे सोलह परमाणुओंको पिंडरूप करके एक स्कंध बना इसमें एक २ परमाणु घटाते हुए नव परमाणुओंके स्कंध तक स्कंधके भेद होंगे अर्थात् नौ परमणुओंका जघन्य स्कंध सोलह परमाणुओंका उत्कृष्ट स्कंध शेष मध्यके भेद जानने। आठ परमाणुओंके पिंडको स्कंधदेश कहेंगे क्योंकि वह सोलहसे आधा रह गया इसमेंसे भी एक २ परमाणु घटाते हुए पांच परमाणुके स्कंध तक स्कंधदेशके भेद होंगे उनमें जघन्य स्कंधदेश पांच परमाणुओंका तथा उत्कृष्ट आठ परमाणुओंका व मध्यके अनेक भेद हैं। चार परमाणुओंके पिंडको स्कंधप्रदेश संज्ञा कही जाती है इसमेंसे भी एक २ परमाणु घटाते हुए दो परमाणुके स्कंध तक प्रदेशके भेद हैं अर्थात् जघन्य स्कंध प्रदेश दो परमाणु स्कंध है उत्कृष्ट चार परमाणुका स्कंध है, मध्य तीन परमाणुका स्कंध है—ये स्कंधके भेद जानने। सबसे छोटे विभाग रहित पुद्‌गलको परमाणु कहते हैं। परमाणुओंके परस्पर मिलनेसे स्कंध बनते हैं। दो परमाणुओंका द्वयणुक स्कंध होगा, तीन परमाणुओंके संघातसे त्र्यणुक स्कंध होगा। इसी तरह अनन्तपरमाणुओं तकके स्कन्ध जानने चाहिये। इसतरह भेद और संघात तथा भेदसंघात दोनोंसे अनन्त प्रकारके स्कंध होजाते हैं अर्थात् परमाणु या स्कन्धोंके मिलनेसे स्कंध बनते हैं तथा बडे स्कन्धोंके भेदसे छोटे स्कंध बनते हैं तथा कुछ परमाणुओंके निकल जानेसे व कुछ के मिलजाने से ऐसे भेदसंघात दोनोंसे स्कंध बनते हैं।

यहां यह तात्पर्य है कि ग्रहण करने योग्य परमात्मतत्त्वसे ये सब पुद्‌गल भिन्न हैं यही अनुभव होना इस पुद्‌गलके ज्ञानका फल है ॥ ७५ ॥

स्कंधानां पुद्‌गलव्यवहारसमर्थनमेतत्।

बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पुग्गलो त्ति ववहारो।

ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं ॥ ७६ ॥

बादरसौक्ष्म्यगतानां स्कंधानां पुद्गलः इति व्यवहारः ।
ते भवन्ति षट्प्रकारास्त्रैलोक्यं यैः निष्पन्नम् ॥ ७६ ॥

स्पर्शरसगंधवर्णगुणविशेषैः षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिः पूरणगलनधर्मत्वात् स्कंधव्यक्त्याविर्भावतिरोभावाभ्यामपि च पूरणगलनोपपत्तेः परमाणवः पुद्गला इति निश्चीयन्ते । स्कन्धास्त्वनेकपुद्गलमयैकपर्यायत्वेन पुद्गलेभ्योऽनन्यत्वात्पुद्गला इति व्यवह्रियंते, तथैव च बादरसूक्ष्मत्वपरिणामविकल्पैः षट्प्रकारतामापद्य त्रैलोक्यरूपेण निष्पद्य स्थितवंत इति । तथा हि—बादरबादराः, बादराः, बादरसूक्ष्माः, सूक्ष्मबादराः, सूक्ष्माः, सूक्ष्मसूक्ष्मा इति । तत्र छिन्नाः स्वयं संधानासमर्थाः काष्ठपाषाणादयो बादरबादराः । छिन्नाः स्वयं संधानसमर्थाः क्षीरघृततैलतोयरसप्रभृतयो बादराः । स्थूलोपलंभा अपि छेत्तुं भेत्तुमादातुमशक्याः छायातपतमोज्योत्स्नादयो बादरसूक्ष्माः । सूक्ष्मत्वेऽपि स्थूलोपलंभाः स्पर्शरसगंधशब्दाः सूक्ष्मबादराः । सूक्ष्मत्वेऽपि हि करणानुपलभ्याः कर्मवर्गणादयः सूक्ष्माः । अत्यंतसूक्ष्माः कर्मवर्गणाभ्योऽधो द्व्यणुकस्कंधपर्यन्ताः सूक्ष्मसूक्ष्मा इति ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थः—(बादरसौक्ष्म्यगतानां) बादर और सूक्ष्मरूपसे परिणत (स्कन्धानां) स्कन्धोंको (पुद्गलः) "पुद्गल" (इति) ऐसा (व्यवहारः) व्यवहार है। (ते) वे (षट्प्रकाराः भवन्ति) छह प्रकारके हैं, (यैः) जिनसे [त्रैलोक्यं] तीन लोक (निष्पन्नं) निष्पन्न हैं।

टीकाः—स्कन्धोंमें "पुद्गल" ऐसा जो व्यवहार है उसका यह समर्थन है।

(१) जिनमें षट्स्थानपतित वृद्धिहानि होती है ऐसे स्पर्श-रस-गंध,वर्णरूप गुणविशेषोंके कारण (परमाणु) पूरण-गलन-धर्मवाले होनेसे तथा (२) स्कन्धव्यक्तिके (-स्कन्धपर्यायके) आविर्भाव और तिरोभावकी अपेक्षासे भी (परमाणुओंमें) पूरण-गलन घटित होनेसे परमाणु पुद्गल हैं एसा निश्चय किया जाता है। स्कन्ध तो अनेकपुद्गलमय एकपर्यायपनेके कारण पुद्गलोंसे अनन्य होनेसे पुद्गल हैं एसा व्यवहार किया जाता है तथा [वे] बादरत्व और सूक्ष्मत्वरूप परिणामोंके भेदों द्वारा छह प्रकारोंको प्राप्त करके तीन लोकरूप होकर रहे हैं। वे छह प्रकारके स्कन्ध इस प्रकार हैं:-(१) बादरबादर, (२) बादर, (३) बादरसूक्ष्म, (४) सूक्ष्मबादर, (५) सूक्ष्म, (६) सूक्ष्मसूक्ष्म। वहां, (१) काष्ठपाषाणादिक (स्कन्ध) जो कि छेदन होने पर स्वयं नहीं जुड़ सकते, बादरबादर हैं, (२) दूध, घी, तेल, जल, रस आदि (स्कन्ध), जो कि छेदन होने पर स्वयं जुड जाते हैं, बादर हैं (३) छाया, धूप, अंधकार, चांदनी आदि (स्कन्ध) स्थूल होने पर भी जिनका छेदन, भेदन अथवा (हस्तादि द्वारा) ग्रहण नहीं किया जा सकता बादरसूक्ष्म हैं, (४) स्पर्श-रस-गंध-शब्द, जो कि सूक्ष्म होने पर भी स्थूल ज्ञात होते हैं, सूक्ष्मबादर हैं, (५) कर्मवर्गणादि (स्कन्ध) कि जिन्हें सूक्ष्मपना है तथा जो इन्द्रियोंसे ज्ञात न हों ऐसे हैं, वे सूक्ष्म हैं (६) कर्मवर्गणासे नीचेके द्विअणुक-स्कन्ध तकके (स्कन्ध) जो कि अत्यन्त सूक्ष्म हैं वे सूक्ष्मसूक्ष्म हैं ॥ ७६ ॥

सं०ता०–अथ स्कंधानां व्यवहारेण पुद्गलत्वं व्यवस्थापयति,—बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पोग्गलोत्ति ववहारो–बादरसूक्ष्मगतानां स्कंधानां पुद्गल इति व्यवहारो भवति। तद्यथा। यथा शुद्धनिश्चयेन सत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्योसौ जीवति स किल सिद्धरूपो जीवः व्यवहारेण पुनरायुःप्रभृत्यशुद्धप्राणैर्योसौ जीवति गुणस्थानमार्गणादिभेदेन भिन्नः सोपि जीवः तथा "वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत्। कुर्वन्ति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः" इति श्लोककथितलक्षणाः परमाणवः किल निश्चयेन पुद्गला भण्यंते। व्यवहारेण पुनर्द्व्यणुकाद्यनंतपरमाणुपिंडरूपाः बादरसूक्ष्मगतस्कंधा अपि व्यवह्रियंते। ते होंति छप्पयारा–ते भवन्ति षट्प्रकाराः। यैः किं कृतं। णिप्पण्णं जेहिं तेलोक्कं–यैर्निष्पन्नं त्रैलोक्यमिति। इदमत्र तात्पर्यं लोक्यंते जीवादिपदार्था यत्र स लोक इतिवचनात् पुद्गलादिषड्द्रव्यैर्निष्पन्नोऽयं लोकः न चान्येन केनापि पुरुषविशेषेण क्रियते ध्रियते वेति॥ ७६॥

हिं०ता०–उत्थानिका–आगे कहते हैं कि स्कंधोंमें व्यवहारनयसे पुद्गलपना है–

अन्वयसहित सामान्यार्थ–(बादरसुहुमगदाणं) बादर और सूक्ष्म परिणमनको प्राप्त (खंधाणं) स्कन्धोंको (पोग्गलोत्ति) ये पुद्गल हैं ऐसा (ववहारो) व्यवहार है। (ते) वे स्कन्ध (छप्पयारा) छः प्रकारके (होंति) होते हैं (जेहिं) जिनसे (तेलोक्कं) यह तीन लोक (णिप्पण्णं) रचा हुआ है।

विशेषार्थ–शुद्ध निश्चयनयसे सुख सत्ता चैतन्य बोध आदि शुद्ध प्राणोंसे जो जीता है वह वास्तवमें सिद्ध स्वरूप जीव है। व्यवहारसे जो आयु, बल, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास अशुद्ध प्राणोंसे जीता है तथा जिसके चौदह गुणस्थान व चौदह मार्गणा आदिके भेदसे अनेक भेद हैं सो भी जीव हैं। वैसे ही निश्चयसे परमाणु ही पुद्गल द्रव्य कहे जाते हैं जैसा कि इस श्लोकमें कहा गया है–

जो स्पर्श, रस, गंध वर्णके परिणमन द्वारा पूरण गलन करते रहते हैं अर्थात् जिनमें ये चार गुण अपने अंशोंमें वृद्धि हानि किया करते हैं वे परमाणु स्कन्धोंकी तरह पुद्गल कहे जाते हैं। व्यवहार नयसे दो परमाणुके स्कंधसे लगाकर अनन्त परमाणुओंके पिंड तक बादर तथा सूक्ष्म अवस्थाको प्राप्त जो स्कन्ध हैं उनको भी पुद्गल हैं ऐसा व्यवहार किया जाता है। वे छः प्रकार हैं जिनसे ही तीन लोककी रचना है। यहां यह तात्पर्य है कि जहां जीव आदि पदार्थ दिखलाई पडते हैं उसे ही लोक कहते हैं। इस वचनसे पुद्गल आदि छः द्रव्योंसे यह लोक रचा हुआ है और अन्य किसी विशेष पुरुषने न इसे बनाया है, न यह किसीके द्वारा नाश होता है और न यह किसीके द्वारा धारण किया हुआ है॥ ७६॥

परमाणुव्याख्येयम्।

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू।

सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ॥ ७७ ॥

सर्वेषां स्कंधानां योऽन्त्यस्तं विजानीहि परमाणुम् !
स शाश्वतोऽशब्दः एकोऽविभागी मूर्तिभवः ॥ ७७ ॥

उक्तानां स्कंधरूपपर्यायाणां योऽन्त्यो भेदः स परमाणुः । स तु पुनर्विभागाभावादविभागी, निर्विभागैकदेशत्वादेकः, मूर्तद्रव्यत्वेन सदाप्यविनश्वरत्वान्नित्यः, अनादिनिधनरूपादिपरिणामोत्पन्नत्वान्मूर्तिभवः, रूपादिपरिणामोत्पन्नत्वेऽपि शब्दस्य परमाणुगुणत्वाभावात्पुद्गलस्कन्धपर्यायत्वेन वक्ष्यमाणत्वाच्चाशब्दो निश्चीयत इति ॥ ७७ ॥

अन्वयार्थः—(सर्वेषां स्कन्धानां) सर्व स्कन्धोंका (यः अन्त्यः) जो अंतिम भाग (तं) उसे (परमाणुम् विजानीहि) परमाणु जानो (सः) वह (अविभागी) अविभागी, (एकः) एक, (एक प्रदेशी) (शाश्वतः) शाश्वत, (मूर्तिभवः) मूर्तिप्रभव (मूर्तरूपसे उत्पन्न होनेवाला) और (अशब्दः) अशब्द है ।

टीकाः—यह, परमाणुकी व्याख्या है ।

पूर्वोक्त स्कन्धरूप पर्यायोंका जो अन्तिम भेद (छोटे-से छोटा अंश) वह परमाणु है । और वह तो, विभागके अभावके कारण अविभागी है, निर्विभाग-एकप्रदेशी होनेसे एक है, मूर्तद्रव्यरूपसे सदैव अविनाशी होनेसे नित्य है, अनादि-अनंत रूपादिके परिणामसे उत्पन्न होनेके कारण मूर्तिप्रभव है, और रूपादिके परिणामसे उत्पन्न होने पर भी अशब्द है ऐसा निश्चित है, क्योंकि शब्द परमाणुका गुण नहीं है तथा उसका [शब्दका] आगे (७९ वीं गाथामें) पुद्गलस्कन्धपर्यायरूपसे कथन है ॥ ७७ ॥

सं०ता०—अथ तानेव षड्भेदान् विवृणोतिः—

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा । कम्मातीदा येवं छब्भेया पोग्गला होंति

पृथिवी जलं च छाया चक्षुर्विषयं विहाय चतुरिन्द्रियविषयाः कर्मप्रायोग्याः कर्मातीता इति षड्भेदाः पुद्गला भवन्ति । ते च कथंभूताः ? स्थूलस्थूलाः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्माः सूक्ष्मस्थूलाः सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्माः इति । तद्यथा । ये छिन्नाः संतः स्वयमेव संधातुमसमर्थास्ते स्थूलस्थूलाः भूपर्वतादयः, ये तु छिन्नाः संतः तत्क्षणादेव संधानेन स्वयमेव समर्थास्ते स्थूलाः सर्पिस्तैलजलादयः, ये तु हस्तेनादातुं देशांतरं नेतुं अशक्यास्ते स्थूलसूक्ष्माः छायातपादयः, ये पुनर्लोचनविषया न भवन्ति ते सूक्ष्मस्थूलाश्चतुरिन्द्रियविषया, ये तु ज्ञानावरणादिकर्मवर्गणायोग्यास्ते सूक्ष्मा इन्द्रियज्ञानाविषयाः, ये चात्यंतसूक्ष्मत्वेन कर्मवर्गणातीतास्ते सूक्ष्मसूक्ष्माः कर्मवर्गणातीतेभ्यो अत्यंतसूक्ष्मा द्व्यणुकस्कंधपर्यंता इति तात्पर्यं ॥ १ ॥ एवं प्रथमस्थले स्कंधव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं समाप्तं ।

हिं०ता०—सामान्यार्थ—(अन्वय सुगम है) पृथ्वी, जल, छाया, चक्षुके विषयको छोडकर चार इंद्रियोंके विषय, कर्मोंके योग्य पुद्गल और कर्मोंसे सूक्ष्म स्कंध ऐसे छः भेदरूप पुद्गल होते हैं

विशेषार्थ–पुद्गलोंके छः भेद हैं (१) स्थूल स्थूल (२) स्थूल (३) स्थूल सूक्ष्म (४) सूक्ष्म स्थूल (५) सूक्ष्म (६) सूक्ष्म सूक्ष्म। जो खंड किये जानेपर स्वयमेव मिल न सकें वे स्थूल स्थूल हैं। जैसे पर्वत, पृथ्वी, घट, पट आदि। जो अलग अलग किये जानेपर उसी क्षण ही स्वयं मिल सक्ते हैं वे स्थूल हैं जैसे घी, तेल जल, आदिक। जिनको देखते हुए भी हाथसे पकड़कर अन्य स्थानमें नहीं लेजा सक्ते वे स्थूल सूक्ष्म हैं जैसे छाया, आतप, प्रकाश आदि। जो आंखोंसे नही दिखलाई पड़ें वे सूक्ष्म स्थूल हैं जैसे आंखके सिवाय अन्य चार इंद्रियोंके विषय वायु, रस, गंध, शब्द आदि। सूक्ष्म जो किसी भी इन्द्रियसे न जाने जांय ऐसे पुद्गल जैसे ज्ञानावरणादि कर्मके योग्य वर्गणाएं और सूक्ष्मसूक्ष्म पुद्गल वे हैं, जो इन कर्म-वर्गणाओंसे भी सूक्ष्म दो अणुके स्कंधतक हैं ॥ १ ॥

(यह गाथा अमृतचंद्रकृत वृत्तिमें नहीं है)।

इस तरह प्रथमस्थलमें स्कंधके व्याख्यानकी मुख्यतासे चार गाथाएं कहीं।

सं०ता०–तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यतया द्वितीयस्थले गाथापंचकं कथ्यते। तथाहि। शाश्वतादिगुणोपेतं परमाणुद्रव्यं प्रतिपादयति, सव्वेसिं खंदाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू–यथा य एव कर्मस्कंधानामंतो विनाशस्तमेव शुद्धात्मानं विजानीहि तथा य एव षड्विधस्कंधानामंतोऽवसानो भेदस्तं परमाणुं विजानीहि। सो–स च। कथंभूतः। सस्सदो–यथा परमात्मा टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावेन द्रव्यार्थिकनयेनाविनश्वरत्वात् शाश्वतः तथा पुद्गलद्रव्यत्वेनाविनश्वरत्वात्परमाणुरपि नित्यः। असद्दो–यथा शुद्धजीवास्तिकायो निश्चयेन स्वसंवेदनज्ञानविषयोपि शब्दविषयः शब्दरूपो वा न भवतीत्यशब्दः तथा हि परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोपि व्यक्तिरूपेण शब्दपर्यायरूपो न भवतीत्यशब्दः। एक्को–यथा शुद्धात्मद्रव्यं निश्चयेन परोपाधिरहितत्वेन केवलमसहायमेकं भण्यते तथा परमाणु द्रव्यमपि द्व्यणुकादिपरोपाधिरहितत्वात्केवलमसहायमेकं भवत्येकप्रदेशत्वाद्वा अविभागी। यथा परमात्मद्रव्यं निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशमपि विवक्षिताखंडैकद्रव्यत्वेन भागाभावादविभागी तथा परमाणुद्रव्यमपि निरंशत्वेन भागाभावादविभागी। पुनश्च कथंभूतः स परमाणुः। मुत्तिभवो–अमूर्तात्परमात्मद्रव्याद्विलक्षणा या तु स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्तिस्तया समुत्पन्नत्वात् मूर्तिभव इति सूत्राभिप्रायः ॥ ७७ ॥ इति परमाणुस्वरूपकथनेन द्वितीयस्थले प्रथमगाथा गता।

हिं०ता०–उत्थानिका–अथानन्तर परमाणुके व्याख्यानकी मुख्यतासे दूसरे स्थलमें पांच गाथाएं कही जाती हैं। प्रथम कहते है कि परमाणु नित्यपने आदि गुणोंको रखनेवाला है।

अन्वयसहित सामान्यार्थ–(सव्वेसिं) सर्व (खंधाणं) स्कन्धोंका (जो अंतो) जो अन्तिम भेद है (तं) उसको (परमाणु) परमाणु (वियाण) जानो (सो) वह (सस्सदो) अविनाशी है, (असदो) शब्दरहित है, (एक्को) एक है, (अविभागी) विभागरहित हैं तथा (मुत्तिभवो) मूर्तिक है।

विशेषार्थ—जो कोई सर्व कर्मस्कन्धोंको नाश कर देता है उसको शुद्धात्मा जानों। इसी तरह जो ऊपर कहे छः प्रकार स्कंधोंका अंतिम भेद है उसको परमाणु जानो। जैसे परमात्मा टंकोत्कीर्ण ज्ञाता दृष्टा एक स्वभावरूप होनेसे द्रव्यार्थिकनयसे नाशरहित है इससे शाश्वत है। इसी तरह पुद्गलपनेके स्वभावको कभी न छोडनेसे यह परमाणु भी नित्य है। जैसे शुद्ध जीवास्तिकाय निश्चयसे स्वसंवेदन ज्ञानका विषय होनेपर भी शब्दोंका विषय या शब्दरूप न होनेसे अशब्द है तैसे यह परमाणु भी यद्यपि शक्तिरूपसे शब्दका कारण है तथापि व्यक्तिरूपसे शब्द पर्यायरूप नहीं है इससे अशब्द है। जैसे शुद्धात्माद्रव्य निश्चयसे परकी उपाधि विना केवल सहायरहित एक कहा जाता है तैसे परमाणुद्रव्य भी द्वयणुक आदि परकी उपाधिसे रहित होनेके कारणसे केवल सहायरहित एक है अथवा एकप्रदेशी होनेसे एक है। जैसे परमात्माद्रव्य निश्चयसे लोकाकाशप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है तो भी अपने अखंड एक द्रव्यपनेकी अपेक्षा भागरहित अविभागी है तैसे ही परमाणुद्रव्य भी अंशरहित होनेसे विभागरहित अविभागी है। फिर वह परमाणु अमूर्तीक परमात्मद्रव्यसे विलक्षण जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण मूर्ति उससे उत्पन्न होनेसे मूर्तिभत्र है या मूर्तीक है, ऐसा अभिप्राय है ॥ ७७ ॥

ऐसा परमाणुका स्वरूप कहते हुए दूसरे स्थलमें प्रथम गाथा कही।

परमाणूनां जात्यंतरत्वनिरासोऽयम्।

आदेसमेत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु।
सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो ॥७८॥

आदेशमात्रमूर्त्तः धातुचतुष्कस्य कारणं यस्तु।
स ज्ञेयः परमाणुः परिणामगुणः स्वयमशब्दः ॥ ७८ ॥

परमाणोर्हि मूर्तत्वनिबन्धनभूताः स्पर्शरसगंधवर्णा आदेशमात्रेणैव भिद्यंते, वस्तुतस्तु यथा तस्य स एव प्रदेश आदिः, स एव मध्यं, स एवांतः इति, एवं द्रव्यगुणयोरविभक्तप्रदेशत्वात् य एव परमाणोः प्रदेशः, स एव स्पर्शस्य, स एव रसस्य, स एव गंधस्य, स एव रूपस्येति। ततः क्वचित्परमाणौ गंधगुणे, क्वचित् गंधरसगुणयोः, क्वचित् गंधरसरूपगुणेषु अपकृष्यमाणेषु तदविभक्तप्रदेशः परमाणुरेव विनश्यतीति न तदपकर्षो युक्तः। ततः पृथिव्यप्तेजोवायुरूपस्य धातुचतुष्कस्यैक एव परमाणुः कारणं परिणामवशात् विचित्रो हि परमाणोः परिणामगुणः क्वचित्कस्यचिद् गुणस्य व्यक्ताव्यक्तत्वेन विचित्रां परिणतिमादधाति। यथा च तस्य परिणामवशादव्यक्तो गंधादिगुणोऽस्तीति प्रतिज्ञायते, न तथा शब्दोऽप्यव्यक्तोऽस्तीति ज्ञातुं शक्यते तस्यैकप्रदेशस्यानेकप्रदेशात्मकेन शब्देन सहैकत्वविरोधादिति ॥ ७८ ॥

अन्वयार्थः- (यः तु) जो (आदेशमात्रमूर्त्तः) आदेशमात्रसे मूर्त है और (धातुचतुष्कस्य कारणं) जो [पृथ्वी आदि] चार धातुओंका कारण है (सः) वह (परमाणुः ज्ञेयः) परमाणु जानना (परिणामगुणः) जो कि परिणामगुणवाला है और (स्वयम् अशब्दः) स्वयं अशब्द है।

टीकाः—परमाणु भिन्न-भिन्न जातिके होनेका यह खंडन है।

मूर्तत्वके कारणभूत स्पर्श-रस-गंध-वर्णका, परमाणुसे आदेशमात्र द्वारा (कथन मात्र में) ही भेद किया जाता है, वस्तुतः तो जिस प्रकार परमाणुका वही प्रदेश आदि है, वही मध्य है और वही अन्त है, उसी प्रकार द्रव्य और गुणके अभिन्न प्रदेश होनेसे, जो परमाणुका प्रदेश है, वही स्पर्शका है, वही गंधका है, वही रसका है वही रूपका है। इसलिये किसी परमाणुमें गंधगुण कम हो, (निकाल लिया जाय) किसी परमाणुमें गंधगुण और रसगुण कम हो, किसी परमाणुमें गंधगुण, रसगुण और रूपगुण कम हो, तो उस गुणसे अभिन्न प्रदेशी परमाणु ही विनष्ट हो जायेगा। इसलिये किसी भी गुणकी न्यूनता युक्त (उचित) नहीं है। इसलिये पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुरूप चार धातुओंका परिणामके कारण, एक ही परमाणु कारण है क्योंकि विचित्र ऐसा परमाणुका परिणामगुण कहीं किसी गुणकी व्यक्ताव्यक्तता द्वारा विचित्र परिणतिको धारण करता है।

और जिस प्रकार परमाणुमें परिणामके कारण अव्यक्त गंधादिगुण हैं ऐसा ज्ञात होता है उसी प्रकार शब्द भी अव्यक्त है ऐसा नहीं जाना जा सकता, क्योंकि एकप्रदेशी परमाणुको अनेकप्रदेशात्मक शब्दके साथ एकत्व होनेमें विरोध है ॥ ७८ ॥

सं०ता०-अथ पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवो न संतीति निश्चिनोति, आदेसमेत्तमुत्तो--आदेशमात्रमूर्तः आदेशमात्रेण संज्ञादिभेदेनैव परमाणोर्मूर्तत्वनिबंधनभूता वर्णादिगुणा भिद्यंते पृथक् क्रियंते न च सत्ताप्रदेशभेदेन। वस्तुतस्तु य एव परमाणोरादिमध्यांतभूतप्रदेशः स एव रूपादिगुणानामपि अथवा मूर्त इत्यादिश्यते कथ्यते न च दृष्ट्या दृश्यते तेनादेशमात्रमूर्तः, धाउचउक्कस्स कारणं जो दु—निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावैरपि पृथिव्यादिजीवैर्व्यवहारेणानादिकर्मोदयवशेन यानि पृथिव्यप्तेजोवायुधातुचतुष्कसंज्ञानि शरीराणि गृहीतानि तिष्ठन्ति तेषामन्येषां च जीवेनागृहीतानां हेतुत्वेन निमित्तत्वाद्धातुचतुष्कस्य कारणं यस्तु 'सो णेओ परमाणू' यः पूर्वं कथित एकोपि परमाणुः पृथिव्यादिधातुचतुष्करूपेण कालांतरेण परिणमति स परमाणुरिति ज्ञेयः। परिणामगुणो औदयिकादिभावचतुष्टयरहितत्वेन पारिणामिकगुणः। पुनः किंविशिष्टः। सयमसद्दो-एकप्रदेशत्वेन कृत्वानंतपरमाणुपिंडलक्षणेन शब्दपर्यायेण सह विलक्षणत्वात्स्वयं व्यक्तिरूपेणाशब्द इति सूत्रार्थः ॥ ७८ ॥ एवं परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणकथनेन द्वितीयगाथा गता।

हिं० ता०-उत्थानिका—आगे कहते हैं कि पृथ्वी आदि जातिके भिन्न २ परमाणु नहीं होते हैं

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जो दु) जो कोई (आदेसमत्तमुत्तो) मूर्तीक कहलाता है व (धादुचदुक्कस्स कारणं) चार धातुओंका कारण है (परिणामगुणो) परिणमन होना जिसका

स्वभाव हैं व जो (सयम्) स्वयं (असद्दो) शब्दरहित है (सो परमाणू) सो परमाणु (णेओ) जानना चाहिये।

विशेषार्थ–परमाणुमें वर्णादि गुण रहते हैं उनका भेद संज्ञा आदिकी अपेक्षासे ही है प्रदेशोंकी अपेक्षा उनका भेद नहीं किया जा सक्ता है। वे वर्णादि गुण परमाणुमें सर्वांग व्यापक हैं। वस्तुस्वरूप यह है कि जो आदि मध्य अंतप्रदेश परमाणुका है वही उसके भीतर व्याप्त उसके रूपादि गुणोंका है अथवा वह परमाणु मूर्तीक कहा जाता है, दृष्टिसे नहीं देखा जाता है तो भी रूपादि कारणोंसे परमाणु मूर्तीक है। निश्चयनयसे पृथ्वी, आप, तेज, वायुकायिक जीव शुद्ध बुद्ध एक स्वभावधारी हैं परन्तु व्यवहारनयसे अनादिकर्मोंके उदयके वशसे जो उन जीवोंने पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु नामके शरीर ग्रहण कर रक्खे हैं उन शरीरोंके तथा उन जीवोंसे न ग्रहण किये हुए पृथ्वी, जल, अग्नि व वायुकायके स्कंधोंके उपादान कारण परमाणु हैं इससे ये परमाणु चार धातुओंके कारण हैं। यह परमाणु जड होनेसे औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक क्षायिक इन चार भावोंसे रहित केवल अपने पारिणामिकभावोंको रखनेवाला होनेसे परिणमनशील है। एक ही परमाणु कालांतरमें बदलते बदलते पृथ्वी या जल या अग्नि या वायु हो जाता है। यह परमाणु एक प्रदेशी होता है इससे यह अनंत परमाणुओंका पिंड रूप जो शब्दपर्याय है उससे विलक्षण है। इसलिये स्वयं व्यक्तरूपसे शब्दरहित है ऐसा परमाणु जानना चाहिये ॥ ७८ ॥

इस तरह परमाणुओंमें पृथ्वी आदिकी जातिका भेद है इसको खंडन करते हुए दूसरी गाथा कही।

शब्दस्य पुद्गलस्कंधपर्यायत्वख्यापनमेतत्।

सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो।
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादिगो णियदो ॥ ७९ ॥

शब्दः स्कंधप्रभवः स्कंधः परमाणुसंगसङ्घातः।
स्पृष्टेषु तेषु जायते शब्द उत्पादिको नियतः ॥ ७९ ॥

इह हि बाह्यश्रवणेन्द्रियावलम्बितो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिः शब्दः। स खलु स्वरूपेणानंतपरमाणूनामेकस्कंधो नाम पर्यायः। बहिरंगसाधनीभूतमहास्कन्धेभ्यः तथाविधपरिणामेन समुत्पद्यमानत्वात् स्कंधप्रभवः, यतो हि परस्पराभिहतेषु महास्कंधेषु शब्दः समुपजायते। किं च स्वभावनिर्वृत्ताभिरेवानन्तपरमाणुमयीभिः शब्दयोग्यवर्गणाभिरन्योन्यमनुप्रविश्य समंततोऽभिव्याप्य पूरितेऽपि सकले लोके यत्र यत्र बहिरंगकारणसामग्री समुदेति तत्र तत्र ताः शब्दत्वेन

स्वयं विपरिणमंत इति शब्दस्य नियतमुत्पाद्यत्वात् स्कंधप्रभवत्वमिति ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थः-(शब्दः स्कन्धप्रभवः) शब्द स्कन्धजन्य है। (स्कन्धः परमाणुसङ्गसङ्घातः) स्कन्ध परमाणुदलका संघात है, (तेपु स्पृष्टेपु) और वे स्कन्ध स्पर्शित होने—टकरानेसे (शब्दः जायते) शब्द उत्पन्न होता है, (नियतः उत्पादिकः) इस प्रकार वह (शब्द) नियतरूपसे उत्पाद्य है।

टीकाः—शब्द पुद्गलस्कन्धपर्याय है ऐसा यहां दर्शाया है।

इस लोकमें, बाह्य श्रवणेन्द्रिय द्वारा अवलम्बित, भावेन्द्रिय द्वारा जाननेयोग्य ऐसी जो ध्वनि वह शब्द है। वह [शब्द] वास्तवमें स्वरूपसे अनंत परमाणुओंके एक स्कन्धरूप पर्याय है। बहिरंग साधनभूत (-बाह्य-कारणभूत) महास्कन्धों द्वारा तथाविध परिणामरूप (शब्दपरिणामरूप) उत्पन्न होनेसे वह स्कन्धजन्य है, क्योंकि महास्कन्ध परस्पर टकरानेसे शब्द उत्पन्न होता है। पुनश्च यह बात विशेष समझाई जाती है:—एकदूसरेमें प्रविष्ट होकर सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित ऐसी जो स्वभावनिष्पन्न ही (-अपने स्वभावसे ही निर्मित), अनंतपरमाणुमयी शब्दयोग्य-वर्गणाओंसे समस्त लोक भरपूर होने पर भी जहां जहां बहिरंगकारणसामग्री उदित होती है वहां-वहां वे वर्गणाएं शब्दरूपसे स्वयं परिणमित होती हैं, इस प्रकार शब्द नियतरूपसे (अवश्य) उत्पाद्य है, इसलिये वह स्कन्धजन्य है ॥ ७६ ॥

सं०ता०--अथ शब्दस्य पुद्गलस्कंधपर्यायत्वं दर्शयति,—सद्दो--श्रवणेन्द्रियावलम्बनो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिविशेषः शब्दः। स च किंविशिष्टः। खंदप्पभवो-स्कंधेभ्यः सकाशादुत्पन्नः प्रभवः इति स्कंधप्रभवः। स्कंधलक्षणं कथ्यते। खंदो परमाणुसंगसंघादो--स्कंधो भवति। कथंभूतः। परमाणुसंगसंघातः अनंतपरमाणुसंगानां समूहानामपि संघातः समुदायः। इदानीं स्कंधेभ्यः सकाशाच्छब्दस्य प्रभवत्वमुत्पत्तिं कथयति। पुट्ठेसु तेसु--स्पृष्टेषु तेषु पूर्वोक्तेषु स्कंधेषु स्पृष्टेषु लग्नेषु परस्परं संघट्टितेषु सत्सु, जायदि--जायते प्रभवति। स कः कर्ता। सद्दो-पूर्वोक्तशब्दः। अयमत्राभिप्रायः। द्विविधाः स्कंधा भवन्ति भाषावर्गणायोग्या ये तेऽभ्यंतरे कारणभूताः सूक्ष्मास्ते च निरंतरं लोके तिष्ठन्ति, ये तु बहिरंगकारणभूतास्ताल्वोष्ठपुटव्यापारघंटाभिघातमेघादयस्ते स्थूलाः क्वापि क्वापि तिष्ठन्ति न सर्वत्र यत्रैवमुभयसामग्री समुदिता तत्र भाषावर्गणाः शब्दरूपेण परिणमन्ति न सर्वत्र। स च शब्दः किं विशिष्टः। उप्पादिगो णियदो--भाषावर्गणा स्कंधेभ्य उत्पद्यते इत्युत्पादकः नियतो निश्चितः न चाकाशद्रव्यरूपस्तद्गुणो वा यद्याकाशगुणो भवति तर्हि श्रवणेन्द्रियविषयो न भवति। कस्मात्? आकाशगुणस्यामूर्तत्वादिति। अथवा "उप्पादिगो" प्रायोगिकः पुरुषादिप्रयोगप्रभवः "णियदो" नियतो वैश्रसिको मेघादिप्रभवः। अथवा भाषात्मको भाषारहितश्चेति, भाषात्मको द्विविधोऽक्षरात्मकोऽनक्षरात्मकश्चेति। अक्षरात्मकः संस्कृतप्राकृतादिरूपेणार्यम्लेच्छभाषाहेतुः, अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादिशब्दरूपो दिव्यध्वनिरूपश्च। इदानीमभाषात्मकः कथ्यते। सोपि द्विविधो प्रायोगिको वैश्रसिकश्चेति। प्रायोगिकस्तु ततविततघनसुषिरादिः। तथा चोक्तं। "ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकं। घनं तु कंसतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः॥" वैश्रसिकस्तु-मेघादिप्रभवः पूर्वोक्त एव। इदं सर्वं हेयतत्त्वमेतस्माद्भिन्नं शुद्धात्मतत्त्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ७६ ॥ एवं शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनामुख्यत्वेन तृतीयगाथा गता।

हिं०ता०—उत्थानिका—आगे कहते हैं कि शब्द पुद्गलद्रव्यकी पर्याय है—

अन्वयसहित सामान्यार्थः—(सद्दो) शब्द) खंधप्पभवो) स्कन्धसे उत्पन्न होता है। (खंधो) वह स्कन्ध (परमाणुसंगसंघादो) अनंत परमाणुओंके समूहके मेलसे बनता है। (तेसु पुट्ठेसु) उन स्कंधोंके परस्पर स्पर्श होनेपर (णियदो) निश्चयसे (उप्पादगो) भाषावर्गणाओंसे होनेवाला (सद्दो) शब्द (जायदि) उत्पन्न होता है।

विशेषार्थ—स्कन्ध दो प्रकारके यहां लेने योग्य हैं। एक तो भाषावर्गणा योग्य स्कन्ध जो शब्दके भीतरी या मूल कारण हैं और सूक्ष्म हैं तथा निरन्तर लोकमें तिष्ठ रहे हैं। दूसरी बाहरी कारणरूप स्कन्ध जो ओठ आदिका व्यापार घंटा आदिका हिलाना व मेघादिकका संयोग ये स्थूल स्कन्ध हैं। ये कहीं कहीं लोकमें हैं सर्व ठिकाने नहीं है। जहां इस अंतरंग बहिरंग दोनों सामग्रीका मेल होता है वहीं भाषावर्गणा शब्दरूपसे परिणमन कर जाती हैं, सर्व जगह नहीं। ये शब्द नियमसे भाषावर्गणाओंसे उत्पन्न होते हैं। इनका उपादान कारण भाषावर्गणा है, न कि यह शब्द आकाश द्रव्यका गुण है। यदि यह शब्द आकाशका गुण हो तो कर्ण इंद्रियसे सुनाई न पडे क्योंकि आकाशका गुण अमूर्तीक होना चाहिये। अथवा गाथामें जो 'उप्पादगो' शब्द है उससे यह लेना कि यह शब्द 'प्रायोगिक' है। पुरुष आदिकी प्रेरणासे पैदा होता है और 'णियदो' शब्द है उससे यह लेना कि शब्द 'वैश्रसिक' या स्वाभाविक है जैसे मेघ आदिसे होता है। अथवा शब्दके दो भेद हैं—भाषारूप और अभाषारूप। भाषात्मक शब्द दो प्रकार है—अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक। जो संस्कृत प्राकृत आदि रूप आर्य्य व अनार्योंके वचन-व्यवहारका कारण है सो अक्षरात्मक है। द्वीन्द्रिय आदिके शब्द तथा श्री केवली महाराजकी दिव्यध्वनि सो अनक्षरात्मक है। अब अभाषारूपको कहते हैं, इसके भी दो भेद हैं—एक प्रायोगिक दूसरे वैश्रसिक। जो पुरुषके प्रयोगसे हो सो प्रायोगिक है जैसे तत वितत, घन, सुषिरादि बाजोंके शब्द। कहा है—

वीणा, सितार आदि तारके बाजोंको तत जानना चाहिये। ढोल आदिको वितत, घंटा घडियाल आदिके शब्दको घन तथा बांसरी आदि फूंकके बाजोंको सुषिर कहते हैं। जो मेघ आदिके कारणसे शब्द होते हैं वे वैश्रसिक या स्वाभाविक हैं। तात्पर्य यह है कि यह सब त्यागने योग्य तत्त्व हैं इनसे भिन्न शुद्धात्मीक तत्त्व ग्रहण करने योग्य है॥ ७९॥

इस प्रकार शब्द पुद्गलद्रव्यकी पर्याय है। इस बातकी स्थापनाकी मुख्यतासे तीसरी गाथा कही।

परमाणोरेकप्रदेशत्वख्यापनमेतत्।

णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेदा।

खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं ॥ ८० ॥

नित्यो नानवकाशो न सावकाशः प्रदेशतो भेत्ता ।
स्कंधानामपि च कर्ता प्रविभक्ता कालसंख्यायाः ॥ ८० ॥

परमाणुः स खल्वेकेन प्रदेशेन रूपादिगुणसामान्यभाजा सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यः। एकेन प्रदेशेन तदविभक्तवृत्तीनां स्पर्शादिगुणानामवकाशदानान्नानवकाशः। एकेन प्रदेशेन द्व्यादिप्रदेशाभावादात्मादिनात्ममध्येनात्मांतेन न सावकाशः। एकेन प्रदेशेन स्कंधानां भेद-निमित्तत्वात् स्कंधानां भेत्ता। एकेन प्रदेशेन स्कंधसंघातनिमित्तत्वात्स्कंधानां कर्ता। एकेन प्रदेशेनैकाकाशप्रदेशातिवर्तितद्गतिपरिणाममापन्नेन समयलक्षणकालविभागकरणात् कालस्य प्रविभक्ता। एकेन प्रदेशेन तत्सूत्रितद्व्यादिभेदपूर्विकायाः स्कंधेषु द्रव्यसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेन तदवच्छिन्नैकाकाशप्रदेशपूर्विकायाः क्षेत्रसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेनैकाकाशप्रदेशातिवर्तितद्ग-तिपरिणामावच्छिन्नसमयपूर्विकायाः कालसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेन तद्विवर्तिजघन्यवर्णादिभा-वाववोधपूर्विकाया भावसंख्यायाः प्रविभागकरणात् प्रविभक्ता संख्याया अपीति ॥ ८० ॥

अन्वयार्थः—(प्रदेशतः) प्रदेश द्वारा (नित्यः) परमाणु नित्य है, (न अनवकाशः) अनव-काश नहीं है, (न सावकाशः) सावकाश नहीं है, (स्कन्धानाम् भेत्ता) स्कन्धोंका भेदनेवाला (अपि च कर्ता) तथा करनेवाला है और (कालसंख्यायाः प्रविभक्ता) काल तथा संख्याको विभाजित करनेवाला है (अर्थात् कालका विभाजन करता है और संख्याका माप करता है।)

टीकाः—यह, परमाणुके एकप्रदेशीपनेका कथन है।

जो परमाणु है, वह वास्तवमें एक प्रदेश द्वारा-जो कि रूपादिगुणसामान्यवाला है उसके द्वारा सदैव अविनाशी होनेसे नित्य है, वह वास्तवमें एक प्रदेश द्वारा उससे (-प्रदेशसे) अभिन्न अस्तित्ववाले स्पर्शादिगुणोंको अवकाश देता है इसलिये अनवकाश नहीं है, वह वास्तवमें एक प्रदेश द्वारा (उसमें) द्वि-आदि प्रदेशोंका अभाव होनेसे, स्वयं ही आदि, स्वयं ही मध्य और स्वयं ही अन्त होनेके कारण (अर्थात् निरंश होनेके कारण) सावकाश नहीं है, वह वास्तवमें एक प्रदेश द्वारा स्कन्धोंके भेदका निमित्त होनेसे स्कन्धोंका भेदन करने वाला है, वह वास्तवमें एक प्रदेश द्वारा स्कन्धके संघातका निमित्त होनेसे स्कन्धोंका कर्ता है, वह वास्तवमें एक प्रदेश द्वारा-जो कि एक आकाशप्रदेशका अतिक्रमण करनेवाले (-लांघनेवाले) अपने गतिपरिणामको प्राप्त होता है उसके द्वारा-'समय' नामक कालका विभाग करता है इसलिये कालका विभाजक है। वह वास्तवमें एक प्रदेश द्वारा संख्याका भी विभाजक है, क्योंकि [१] वह एक प्रदेश द्वारा, उससे, रचे जानेवाले दो आदि भेदों पूर्वक द्रव्यसंख्याका विभाग स्कन्धोंमें करता है, (२) वह एक प्रदेश द्वारा, उसके जितनी मर्यादावाले एक आकाशप्रदेश पूर्वक क्षेत्रसंख्याके विभाग करता है,

(३) वह एक प्रदेश द्वारा, एक आकाशप्रदेशका अतिक्रमकरनेवाले उस गतिपरिणामजितनी मर्यादावाले समय पूर्वक कालसंख्याका विभाग करता है, (४) वह एक प्रदेश द्वारा, उसमें विवर्तन पानेवाले (-परिवर्तित, परिणमित) जघन्य वर्णादिक भावको जाननेवाले ज्ञान पूर्वक भावसंख्याका विभाग करता है इस कारण वह संख्याका विभाजन करने वाला भी है ।

१ विभाजक=विभाग करनेवाला, मापनेवाला । स्कन्धोंमें द्रव्यसंख्याका माप (अर्थात् वे कितने अणुओं-परमाणुओंसे बने हैं ऐसा माप) करनेमें अणुओंकी परमाणुओंकी अपेक्षा आती है, अर्थात् वैसा माप परमाणु द्वारा होता है । क्षेत्रके मापका एकक (एकम) 'आकाशप्रदेश' है और आकाशप्रदेशकी व्याख्यामें परमाणुकी अपेक्षा आती है, इसलिये क्षेत्रका माप भी परमाणु द्वारा होता है । कालके मापका एकक 'समय' है और समयकी व्याख्यामें परमाणुकी अपेक्षा आती है, इसलिये कालका माप भी परमाणु द्वारा होता है । ज्ञानभावके (-ज्ञानपर्यायके) मापका एकक "परमाणुमें परिणमित जघन्य वर्णादिभावको जाने उतना ज्ञान" है और उसमें परमाणुकी अपेक्षा आती है, इसलिये भावका (-ज्ञानभावका) माप भी परमाणु द्वारा होता है । इस प्रकार परमाणु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका माप करनेके लिये गज समान है ।)

२ एक परमाणुप्रदेश बराबर आकाशके भागको (-क्षेत्रको) 'आकाशप्रदेश' कहा जाता है । वह 'आकाशप्रदेश' क्षेत्रका 'एकक' है । [गिनतीके लिये, किसी वस्तुके जितने परिमाणको एक माप माना जाये, उतने परिमाणको उस वस्तुका एकक कहा जाता है]

३ परमाणुको एक आकाश प्रदेशसे दूसरे अनन्तर आकाशप्रदेशमें (मंदगतिसे) जाते हुए जो समय लगता है उसे 'समय' कहा जाता है ।

सं०ता०-अथ परमाणोरेकप्रदेशत्वं व्यवस्थापयति, णिच्चो—नित्यः । कस्मात् । पदेसदो-प्रदेशतः परमाणोः खलु एकेन प्रदेशेन सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यो भवति । णाणवगासो--नानवकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन स्वकीयवर्णादिगुणानामवकाशदानात्सावकाशः । ण सावगासो-न सावकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन द्वितीयादिप्रदेशाभावान्निरवकाशः । भेत्ता खंदाणं--भेत्ता स्कंधानां । कत्ता अवि य—कर्ता अपि च स्कंधानां जीववत् । तद्यथा । यथायं जीवः स्वप्रदेशगतरागादिविकल्परूपनिस्नेहभावेन परिणतः सन् कर्मस्कंधानां भेत्ता विनाशको भवति तथा परमाणुरप्येकप्रदेशगतनिस्नेहभावेन परिणतः सन् स्कंधानां विघटनकाले भेत्ता भेदको भवति । यथा स एव जीवो निस्नेहात्परमात्मतत्त्वाद्विपरीतेन स्वप्रदेशगतमिथ्यात्वरागादिस्निग्धभावेन परिणतः सन्नवतरज्ञानावरणादिकर्मस्कंधानां कर्ता भवति तथा स एव परमाणुरेकप्रदेशगतस्निग्धभावेन परिणतः सन् द्व्यणुकादिस्कंधानां कर्ता भवति । अत्र योसौ स्कंधानां भेदको भणितः स कार्यपरमाणुरुच्यते यस्तु कारकस्तेषां स कारणपरमाणुरिति कार्यकारणभेदेन द्विधा परमाणुर्भवति । तथा चोक्तं । "स्कंधभेदाद्भवेदाद्यः स्कंधानां जनकोऽपरः ।"

अथवा भेदविषये द्वितीयव्याख्यानं क्रियते । परमाणुरयं । कस्मात् ? एकप्रदेशत्वेन बहुप्रदेशस्कंधाद्भिन्नत्वात् । स्कंधोयं कस्मात् ? बहुप्रदेशत्वेनैकप्रदेशत्वेनैकप्रदेशपरमाणोर्भिन्नत्वादिति । पविभत्ता-कालसंखाणं-प्रविभक्ता कालसंख्ययोर्जीववदेव । यथा, एकप्रदेशस्थकेवलज्ञानांशेनैकसमयेन भगवान् केवली समयरूपव्यवहारकालस्य संख्यायाश्च प्रविभक्ता परिच्छेदको ज्ञायको भवति, तथा परमाणुरप्येकप्रदेशेन मंदगत्याऽणोरणवंतरव्यतिक्रमणलक्षणेन कृत्वा समयरूपव्यवहारकालस्य संख्यायाश्च प्रविभक्ता भेदको भवतीति । संख्या कथ्यते । द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण संख्या चतुर्विधा भवति । सा च जघन्योत्कृष्टभेदेन प्रत्येकं द्विविधा । एकपरमाणुरूपा जघन्या द्रव्यसंख्येति अनंतपरमाणुपुंजरूपोत्कृष्टद्रव्यसंख्येति, एकप्रदेशरूपा जघन्या क्षेत्रसंख्या अनंतप्रदेशरूपोत्कृष्टा क्षेत्रसंख्या, एकसमयरूपा जघन्या व्यवहारकालसंख्या अनंतसमयरूपोत्कृष्टव्यवहारकालसंख्या । परमाणुद्रव्ये वर्णादीनां सर्वजघन्या तु या शक्तिः सा जघन्या भावसंख्या तस्मिन्नेव परमाणुद्रव्ये सर्वोत्कृष्टा तु या वर्णादिशक्तिः सा तूत्कृष्टा भावसंख्येति । एवं जघन्योत्कृष्टा प्रत्येकं द्रव्यक्षेत्रकालभावसंख्या ज्ञातव्याः ॥ ८० ॥ एवं परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारं कृत्वा समयादिव्यवहारकालकथनमुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्याकथनेन च द्वितीयस्थले चतुर्थगाथा गता ।

हिं० ता०—उत्थानिका—आगे स्थापित करते हैं कि परमाणु एक प्रदेशी होता है—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—यह परमाणु (णिच्चो) नित्य है (पदेसदो) क्योंकि एक प्रदेशपना इसका कभी मिटता नहीं है । (णाणवकासो) किसीको अवकाश न दे ऐसा नहीं है (ण सावकासो) अवकाश नहीं भी देनेवाला है क्योंकि एक प्रदेशमात्र है । (खंधाणं वि य कत्ता भेत्ता) स्कन्धोंका कर्ता तथा उनका भेदनेवाला है । व (कालसंखाणं) कालकी समय आदि संख्याका (पविहत्ता) विभाग करनेवाला है ।

विशेषार्थ—जैसे यह जीव अपने प्रदेशोंमें प्राप्त रागादि विकल्परूप स्नेहके त्यागभावसे परिणमन करता हुआ कर्मस्कंधोंका भेदनेवाला या नाश करनेवाला होजाता है तैसे यह परमाणु एक प्रदेशमें बंध योग्य चिकनेपनेके चले जानेसे परिणमन करता हुआ स्कंधोंसे अलग होता हुआ स्कंधोंका भेदनेवाला होता है । तथा जैसे वही जीव स्नेहरहित परमात्मतत्त्वसे विपरीत अपने प्रदेशोंमें प्राप्त मिथ्यात्व रागादि रूप चिकने भावोंसे परिणमन करता हुआ नवीन ज्ञानावरणादि कर्मस्कंधोंका कर्ता होजाता है तैसे ही यह परमाणु अपने एक प्रदेशमें प्राप्त बंधयोग्य स्निग्धगुणसे परिणमन करता हुआ द्वेअणुक आदि स्कन्धोंका कर्ता होता है । यहां स्कंधोंसे अलग होनेवाला है वह कार्य परमाणु कहा जाता है तथा जो स्कन्धोंका करता है वह कारण परमाणु है । इस तरह कार्य कारणके भेदसे परमाणु दो तरहका है । जैसा कहा है—

पहला कार्य परमाणु स्कन्धोंके भेदसे व दूसरा कारण परमाणु स्कन्धोंके उत्पन्न करनेसे कहलाता है । यह परमाणु एक प्रदेशी होनेसे बहुत प्रदेशरूप स्कन्धोंसे भिन्न है । स्कन्ध इसी लिये कहलाता है कि उसमें बहुत परमाणु होनेसे वह बहु प्रदेशी होता है सो वह एकप्रदेशी

परमाणुसे भिन्न होता है। जैसे एक प्रदेशमें रहे हुए केवलज्ञानके अंशसे ही केवली भगवान एक समयरूप व्यवहार कालको तथा उसकी अनंत संख्याओंके ज्ञाता हैं तैसे ही एक परमाणु भी एकप्रदेशी होकर मंद गतिसे एक कालाणुसे पासवाले दूसरे कालाणुको उल्लंघन करता हुआ समयरूप सूक्ष्म व्यवहारकालका और उसकी संख्याका भेद करनेवाला होता है। संख्या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूपसे चार प्रकारकी होती है सो जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे दो दो प्रकार है। एक परमाणुरूप जघन्य द्रव्यसंख्या है। अनन्त परमाणुके पुंजरूप उत्कृष्ट द्रव्यसंख्या हैं। एक प्रदेशरूप जघन्य क्षेत्र संख्या है। अनंत प्रदेशरूप उत्कृष्ट क्षेत्रसंख्या है। एक समय रूप जघन्य व्यवहार काल संख्या है। अनंत रूप उत्कृष्ट व्यवहारकाल संख्या है। परमाणु द्रव्यमें वर्णादि गुणोंकी जो जघन्य शक्ति सो जघन्य भाव संख्या है उस ही परमाणु द्रव्यमें सबसे उत्कृष्ट जो वर्णादिकी शक्ति है सो उत्कृष्ट भाव संख्या है। इसतरह जघन्य व उत्कृष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी संख्या जानना योग्य है॥ ८०॥

इस तरह परमाणु द्रव्यके एक प्रदेशको आधार करके समय आदि व्यवहार कालके कथन की मुख्यतासे व एक आदि संख्याको कहते हुए दूसरे स्थलमें चार गाथाएं कहीं।

परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायवृत्तिप्ररूपणमेतत्।

एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥ ८१॥

एकरसवर्णगंधं द्विस्पर्शं शब्दकारणमशब्दम्।
स्कंधांतरितं द्रव्यं परमाणुं तं विजानीहि॥ ८१॥

सर्वत्रापि परमाणौ रसवर्णगंधस्पर्शाः सहभुवो गुणाः। ते च क्रमप्रवृत्तैस्तत्र स्वपर्यायैर्वर्तंते तथा हि—पञ्चानां रसपर्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते। पञ्चानां वर्णपर्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते। उभयोर्गंधपर्याययोरन्यतरेणैकेनैकदा गंधो वर्तते। चतुर्णां शीतस्निग्धशीतरूक्षोष्णस्निग्धोष्णरूक्षरूपाणां स्पर्शपर्यायद्वन्द्वानामन्यतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते। एवमयमुक्तगुणवृत्तिः परमाणुः शब्दस्कंधपरिणतिशक्तिस्वभावात् शब्दकारणम्। एकप्रदेशत्वेन शब्दपर्यायपरिणतिवृत्त्यभावादशब्दः। स्निग्धरूक्षत्वप्रत्ययबंधवशादनेकत्वपरिणतिरूपस्कंधांतरितोऽपि स्वभावमपरित्यजन्नुपात्तसंख्यत्वादेक एव द्रव्यमिति॥ ८१॥

अन्वयार्थ- (तं परमाणुं) वह परमाणु [एकरसवर्णगंधं] एक रसवाला, एक वर्णवाला, एक गंधवाला तथा (द्विस्पर्शं) दो स्पर्शवाला है, [शब्दकारणम्] शब्दका कारण है, (अशब्दम्)

अशब्द है और (स्कंधांतरितं) स्कन्धके भीतर हो तथापि (द्रव्यं) निश्चयसे एक ही द्रव्य है ऐसा (विजानीहि) जानो।

टीकाः-यह, परमाणुद्रव्यमें गुण-पर्याय वर्तनेका (गुण और पर्याय होनेका) कथन है।

सर्वत्र परमाणुमें रस-वर्ण-गंध-स्पर्श सहभावी गुण होते हैं, और वे गुण उसमें क्रमवर्ती निज पर्यायों सहित वर्तते हैं। वह इस प्रकार है—पांच रसपर्यायोंमेंसे एक समय कोई एक (पर्याय) सहित रस वर्तता है, पांच वर्णपर्यायोंमेंसे एक समय किसी एक (पर्याय) सहित वर्ण वर्तता है, दो गंधपर्यायोंमेंसे एक समय किसी एक (पर्याय) सहित गंध वर्तता है, शीत-स्निग्ध, शीत-रूक्ष उष्ण-स्निग्ध, और उष्ण-रूक्ष इन चार स्पर्शपर्यायोंके युगलमेंसे एक समय किसी एक युगल सहित स्पर्श वर्तता है। इस प्रकार जिसमें गुणोंका वर्तन (-अस्तित्व) कहा गया है ऐसा यह परमाणु शब्दस्कन्धरूपसे परिणमित होनेकी शक्तिरूप स्वभाववाला होनेसे शब्द का कारण है, एकप्रदेशी होनेके कारण शब्दपर्यायपरिणतिरूप वृत्ति के अभावसे अशब्द है, और स्निग्धरूक्षत्वके कारण बंध होनेसे अनेक परमाणुओंकी एकत्वपरिणतिरूप स्कन्धके भीतर रहा हो तथापि स्वभावको न छोडता हुआ, संख्याको प्राप्त होनेसे (अर्थात् परिपूर्ण एककी भांति पृथक् गिनतीमें आनेसे) अकेला ही द्रव्य है ॥ ८१ ॥

सं०ता०-अथ परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायस्वरूपं कथयति, "एयरसवण्णगंधं दोफासं-एकरसवर्णगंधद्विस्पर्शः। तथाहि-तत्र परमाणौ तिक्तादिपंचरसपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते शुक्लादिपंचवर्णपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते सुरभिरसुरभिरूपगंधपर्याययोर्द्वयोरेकतरेणैकेनैकदा गन्धो वर्तते शीतस्निग्धशीतरूक्ष उष्णस्निग्धउष्णरूक्षाणां चतुर्णां स्पर्शपर्यायद्वंद्वानामेकतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते। सद्कारणमसद्द-शब्दकारणोप्यशब्द आत्मवत्। यथात्मा व्यवहारेण ताल्वोष्ठपुटव्यापारेण शब्दकारणभूतोपि निश्चयेनातीन्द्रियज्ञानविषयत्वाच्छब्दज्ञानविषयो न भवति शब्दादिपुद्गलपर्यायरूपो वा न भवति तेन कारणेनाशब्दः तथा परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोप्येकप्रदेशत्वेन शब्दव्यक्त्यभावादशब्दः। खंदंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि-यमेवमुक्तवर्णादिगुणशब्दादिपर्यायवृत्तिविशिष्टस्कंधांतरितं द्रव्यरूपस्कंधपरमाणुं विजानीहि परमात्मवदेव। तद्यथा। यथा परमात्मा व्यवहारेण द्रव्यभावरूपकर्मस्कंन्धांतर्गतोपि निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभाव एव तथा परमाणुरपि व्यवहारेण स्कंधांतर्गतोपि निश्चयनयेन स्कंधबहिर्भूतशुद्धद्रव्यरूप एव। अथवा स्कंधांतरित इति कोऽर्थः स्कंधात्पूर्वमेव भिन्न इत्यभिप्रायः ॥ ८१ ॥ एवं परमाणुद्रव्यवर्णादिगुणस्वरूपशब्दादिपर्यायस्वरूपकथनेन पंचमगाथा गता। इति परमाणुद्रव्यरूपेण द्वितीयस्थले समुदायेन गाथापंचकं गतं।

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे परमाणु द्रव्यमें गुणपर्यायका स्वरूप कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थः-(एयरसवण्णगंधं दो फासं) जिसमें एक कोई रस एक कोई वर्ण एक कोई गंध व दो स्पर्श हों (सद्दकारणं) जो शब्दका कारण हो (असद्द) स्वयं शब्द रहित हो (खंधंतरिदं) जो स्कंधसे जुदा हो (तं दव्वं) उस द्रव्यको (परमाणुं) परमाणु

(वियाणेहि) जानो।

विशेषार्थ–परमाणुमें तीखा, चरपरा, कसायला, खट्टा, मीठा, इन पांच रसोंमेंसे एक रस एक कालमें रहता है। शुक्ल, पीत, रक्त, काला, नीला इन पांच वर्णोंमेंसे एक वर्ण एक कालमें रहता है। सुगंध, दुर्गंध दो प्रकार गंध पर्यायोंमेंसे एक कोई गंध एक कालमें रहती हैं। शीत व उष्ण स्पर्शोंमें एक कोई स्पर्श तथा स्निग्ध रूक्ष स्पर्शोंमें एक कोई स्पर्श ऐसे दो स्पर्श एक कालमें रहते हैं। जैसे यह आत्मा व्यवहारनयसे अपने तालु ओठ आदिके व्यापारसे शब्दका कारण होता हुआ भी निश्चयनयसे अतीन्द्रिय ज्ञानका विषय होनेसे शुद्धज्ञानका विषय है, शब्दका विषय नही है और न वह स्वयं शब्दादि पुद्गल पर्यायरूप होता है इस कारणसे शब्द-रहित है, तैसे परमाणु भी शब्दका कारणरूप होकर भी एकप्रदेशी होनेसे शब्दकी प्रगटता नहीं करनेसे अशब्द है व जो ऊपर कहे हुए वर्णादि गुण व शब्द आदि पर्याय सहित स्कन्ध है उससे भिन्न द्रव्यरूप परमाणु है उसे परमात्माके समान जानो। जैसे परमात्मा व्यवहारसे द्रव्य कर्म और भावकर्मके भीतर रहता हुआ भी निश्चयसे शुद्ध बुद्ध एक स्वभावरूप ही है तैसे परमाणु भी व्यवहारसे स्कन्धोंके भीतर रहता हुआ भी निश्चयसे स्कंधसे बाहर शुद्ध द्रव्यरूप ही है। अथवा स्कंधांतरितका अर्थ है कि स्कंधसे पहलेसे ही भिन्न है यह अभिप्राय है ॥ ८१ ॥

इसतरह परमाणु द्रव्य है और उसके वर्णादि गुणस्वरूपपना व उससे शब्दादि पर्याय होती हैं। इत्यादि कहते हुए पांचमी गाथा पूर्ण हुई। ऐसे परमाणु द्रव्यकी अपेक्षा दूसरे स्थलमें पांच गाथाएं कहीं।

सकलपुद्गलविकल्पोपसंहारोऽयम्।

उवभोज्जमिंदिएहिं य इंदियकाया मणो य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पुग्गलं जाणे ॥ ८२ ॥

उपभोग्यमिन्द्रियैश्चेन्द्रियकाया मनश्च कर्माणि।
यद्भवति मूर्तमन्यत् तत्सर्वं पुद्गलं जानीयात् ॥ ८२ ॥

इन्द्रियविषयाः स्पर्शरसगंधवर्णशब्दाश्च, द्रव्येन्द्रियाणि स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि, कायाः औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि, द्रव्यमनः द्रव्यकर्माणि, नोकर्माणि, विचित्र-पर्यायोत्पत्तिहेतवोऽनंता अनंताणुवर्गणाः, अनंता असंख्येयाणुवर्गणाः, अनंताः संख्येयाणुव-र्गणाः, द्व्यणुकस्कंधपर्यंताः, परमाणवश्च, यदन्यदपि मूर्तं तत्सर्वं पुद्गलविकल्पत्वेनोपसंह-र्तव्यमिति ॥ ८२ ॥

–इति पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम्।

अन्वयार्थः—(इन्द्रियैः उपभोग्यम् च) इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य विषय, [इन्द्रियकायाः] इन्द्रिय शरीर, (मनः) मन, (कर्माणि) कर्म (च) और (अन्यत् यत्) अन्य जो कुछ (मूर्तं भवति) मूर्त हो (तत् सर्वं) वह सब (पुद्गलं जानीयात्) पुद्गल जानो।

टीका:—यह, सर्व पुद्गलभेदोंका उपसंहार है।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्दरूप (पांच) इन्द्रियविषय, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्ररूप (पांच) द्रव्येन्द्रियां, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणरूप (पांच) शरीर, द्रव्यमन, द्रव्यकर्म, नोकर्म, विचित्र पर्यायोंकी उत्पत्तिके हेतुभूत अनंत अनंताणुक वर्गणाएं, अनंत असंख्याताणुक वर्गणाएं और द्वि-अणुक स्कन्ध तक की अनंत संख्याताणुक वर्गणाएं तथा परमाणु, तथा अन्य जो कुछ मूर्त हो वह सब पुद्गलके भेदरूपसे समेटना।

इस प्रकार पुद्गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान समाप्त हुआ।

सं०ता०—अथ सकलपुद्गलभेदानामुपसंहारमावेदयति, उवभोज्जमिंदियेहिं य—वीतरागातींद्रियसुखास्वादरहितानां जीवानां यदुपभोग्यं पंचेन्द्रियविषयस्वरूपं। इंदियकाया—अतीन्द्रियात्मस्वरूपाद्विपरीतानीन्द्रियाणि अशरीरात्मपदार्थात्प्रतिपक्षभूता औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंज्ञाः पंचकायाः, मणोय—मनोगतविकल्पजालरहितात् शुद्धजीवास्तिकायाद्विपरीतं मनश्च, कम्माणि—कर्मरहितात्मद्रव्यात् प्रतिकूलानि ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माणि। जं हवदि मुत्तिमण्णं—अमूर्तात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूतमन्यदपि यन्मूर्तं प्रत्येकानंतसंख्येयासंख्येयानंताणुस्कंधरूपमनंताविभागिपरमाणुराशिरूपं च तं 'सव्वं पोग्गलं जाणे' तत्सर्वमन्यच्च नोकर्मादिकं पुद्गलं जानीहि। इति पुद्गलद्रव्योपसंहारः॥ ८२॥

एवं पुद्गलास्तिकायोपसंहाररूपेण तृतीयस्थले गाथैका गता इति पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारे गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण पुद्गलास्तिकायनामा पंचमोंतराधिकारः समाप्तः॥

हिं० ता०—उत्थानिका—आगे सर्व पुद्गलके भेदोंका संकोच करते हुए कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(इंदिएहिं उवभोज्जं) इंद्रियोंसे भोगने योग्य पदार्थ (य) और (इंदिय) पांच इन्द्रियें (काया) पांच प्रकारके शरीर (मणो य) और मन तथा (कम्माणि) आठ कर्म (जं अण्णं मुत्तं हवदि) इत्यादि जो कुछ दूसरा मूर्तीक पदार्थ है (तं सव्वं) उस सर्वको (पोग्गलं) पुद्गल द्रव्य (जाणे) जानो।

विशेषार्थ—जिनको वीतराग अतीन्द्रिय सुखका स्वाद नहीं आता है उन जीवोंके भोगनेयोग्य जो पांचों इन्द्रियोंके पदार्थ हैं, अतीन्द्रिय आत्मस्वरूपसे विपरीत जो पांच इन्द्रिये हैं अशरीर आत्मपदार्थके प्रतिपक्षी जो औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्मण शरीर ऐसे पांच शरीर हैं, मन सम्बन्धी विकल्पजालोंसे रहित शुद्ध जीवास्तिकायसे भिन्न जो मन है, कर्मरहित आत्मद्रव्यसे प्रतिकूल जो ज्ञानावरणादि आठ कर्म हैं तथा अमूर्तीक आत्मस्वभावसे विरोधी

और जो कुछ दूसरे मूर्तीक द्रव्य हैं जैसे संख्यात, असंख्यात व अनंत पुद्गल परमाणुओंके स्कन्ध हैं उन सर्वको पुद्गल जानो ॥ ८२ ॥

इस तरह पुद्गलास्तिकायका संकोच करते हुए तीसरे स्थलमें गाथा एक कही । ऐसे पंचास्तिकाय छःद्रव्यके प्रतिपादक पहले महाअधिकारमें दश गाथाओंतक पुद्गलास्तिकाय नामका पञ्चम अन्तर अधिकार समाप्त हुआ ।

अथ धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं ।

धर्मस्वरूपाख्यानमेतत् ।

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं ।
लोगागाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं ॥ ८३ ॥

धर्मास्तिकायोऽरसोऽवर्णगंधोऽशब्दोऽस्पर्शः ।
लोकावगाढः स्पृष्टः पृथुलोऽसंख्यातप्रदेशः ॥ ८३ ॥

धर्मो हि स्पर्शरसगंधवर्णानामत्यंताभावादमूर्तस्वभावः । तत एव चाशब्दः । सकललोकाकाशाभिव्याप्यावस्थितत्वाल्लोकावगाढः । अयुतसिद्धप्रदेशत्वात् स्पृष्टः । स्वभावादेव सर्वतो विस्तृतत्वात् पृथुलः । निश्चयनयेनैकप्रदेशोऽपि व्यवहारनयेनासंख्यातप्रदेश इति ॥ ८३ ॥

अब धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायका व्याख्यान है ।

अन्वयार्थः-(धर्मास्तिकायः) धर्मास्तिकाय (अस्पर्शः) अस्पर्श, (अरसः) अरस, (अवर्णगंधः) अगंध, अवर्ण और (अशब्दः) अशब्द है, (लोकावगाढः) लोकव्यापक है, (स्पृष्टः) अखण्ड, (पृथुलः) विशाल और (असंख्यातप्रदेशः) असंख्यातप्रदेशी है ।

टीकाः—यह, धर्म के (धर्मास्तिकायके) स्वरूपका कथन है ।

स्पर्श, रस, गंध और वर्णका अत्यन्त अभाव होनेसे धर्म (धर्मास्तिकाय) वास्तवमें अमूर्तस्वभाववाला है, और इसोलिये अशब्द है, समस्त लोकाकाशमें व्याप्त होकर रहनेसे लोकव्यापक है, अयुतसिद्ध (असंयोगी) प्रदेशवाला होनेसे अखण्ड है, स्वभावसे ही सर्वतः विस्तृत होनेसे विशाल है, निश्चयनयसे एकप्रदेशी (अखण्ड) होनेपर भी व्यवहारनयसे असंख्यातप्रदेशी है ॥ ८३ ॥

सं०ता०-अथानंतरमनंतकेवलज्ञानादिरूपादुपादेयभूतात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्ने हेयरूपे धर्माधर्मास्तिकायाधिकारे गाथासप्तकं भवति तत्र गाथासप्तकमध्ये धर्मास्तिकायस्वरूपकथनमुख्यत्वेन "धम्मत्थिकायमरस" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरमधर्मास्तिकायस्वरूपनिरूपणमुख्यत्वेन 'जह हवदि' इत्यादि गाथासूत्रमेकं, अथ धर्माधर्मोभयसमर्थनमुख्यत्वेन तयोरस्तित्वाभावे दूषणमुख्यत्वेन च 'जादो अलोग' इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयमिति । एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण धर्माधर्मास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा—

धर्मास्तिकायस्वरूपं कथयति—धम्मत्थिकायं-धर्मास्तिकायो भवति । अरसमवण्णमगंधमसद्दम् प्फासं-रसवर्णगंधशब्दस्पर्शरहितः । लोगागाढं—लोकव्यापकः, पुट्ठं-निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपरिणतजीवप्रदेशेषु परमानंदैकलक्षणसुखरसास्वादसमरसीभाववत् सिद्धक्षेत्रे सिद्धराशिवत् पूर्णघटे जलवत् तिलेषु तैलवद्वा स्पृष्टः परस्परप्रदेशव्यवधानरहितत्वेन निरंतरः न च निर्जनप्रदेशे भावितात्ममुनिसमूहवन्नगरे जनचयवद्वा सांतरः, पिहुलं—अभव्यजीवप्रदेशेषु मिथ्यात्वरागादिवल्लोके नभोवद्वा पृथुलोऽनाद्यंतरूपेण स्वभावविस्तीर्णः न च केवलिसमुद्धाते जीवप्रदेशवल्लोके वस्त्रादिप्रदेशविस्तारवद्वा पुनरिदानीं विस्तीर्णः । पुनरपि किंविशिष्टः । असंखादियपदेसं-निश्चयेनाखंडैकप्रदेशोपि सद्भूतव्यवहारेण लोकाकाशप्रमितासंख्यातप्रदेश इति सूत्रार्थः ॥ ८३ ॥

हिंदीता०—उत्थानिका—अथानन्तर अनन्तकेवलज्ञानादिरूप उपादेयभूत शुद्ध जीवास्तिकायसे भिन्न त्यागने योग्य धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायके अधिकारमें सात गाथाओंतक कथन है। इन सात गाथाओंके मध्यमें धर्मास्तिकायके कथनकी मुख्यतासे 'धम्मत्थिकायमरसं' इत्यादि पाठक्रमसे गाथाएं तीन हैं। फिर अधर्मास्तिकायके स्वरूपके निरूपणकी मुख्यतासे 'जह हवदि' इत्यादि गाथा सूत्र एक है। फिर धर्म अधर्म दोनोंके समर्थनकी मुख्यतासे उनका अस्तित्व न माननेसे जो दोष होंगे उनके कहनेकी मुख्यतासे 'जादो अलोग' इत्यादि पाठक्रमसे गाथाएं तीन हैं। इस तरह सात गाथाओंसे तीन स्थलोंके द्वारा धर्म अधर्मास्तिकायके व्याख्यानमें समुदायपातनिका है। पहले धर्मास्तिकायके स्वरूपको कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थः—(धम्मत्थिकायम्) धर्मास्तिकाय (अरसं) पांचरससे रहित है (अवण्णगंधं) पांचवर्ण और दो गंधसे रहित है (असद्दम्) शब्द रहित है (अप्फासं) आठ स्पर्श रहित है (लोगागाढं) लोकाकाशमें व्यापक है (पुट्ठं) सब प्रकार स्पर्श किये हुए है, प्रदेश खंडित नहीं है (पिहुलं) फैला हुआ है व (असंखादियपदेसं) असंख्यात प्रदेशोंको रखनेवाला है।

विशेषार्थ—यह धर्मास्तिकाय अमूर्तीक द्रव्य है। जैसे निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानमें परिणमन करते हुए जीवके प्रदेशोंमें परमानंदमई एक सुखरसका आस्वादमई समतारस सर्व जगह स्पर्श करता है व जैसे सिद्धक्षेत्रमें सिद्धराशि सर्व क्षेत्रमें स्पर्श किये हुए है व जैसे पूर्ण घटमें जल भरा होता है या जैसे तिलोंमें तैल होता है इसतरह यह धर्मास्तिकाय परस्पर अन्तररहित स्पर्शरूप है। जैसे किसी निर्जनवनमें आत्माकी भावना करनेवाले मुनिसमूह बैठे हों व जैसे किसी नगर में मनुष्योंका समूह तिष्ठा है इसतरह धर्मास्तिकाय अन्तरसहित नहां है। तथा जैसे अभव्य जीवके प्रदेशोंमें मिथ्यात्व रागादिभाव सदासे फैला हुआ है अथवा लोकमें आकाश फैला हुआ है। इसी तरह यह धर्मास्तिकाय अनादिसे अनन्त कालतक अपने स्वभावसे ही लोकमात्रमें फैला हुआ

है। जैसे जीवके प्रदेश केवलिसमुद्घातमें लोकव्यापी कभी होते हैं व वस्त्रादिके प्रदेश जो कभी फैलने सकुडते रहते हैं। इस तरह अभी ही फैला नहीं है किन्तु अनादिसे अनन्त कालतक लोकव्यापी स्वभावको रखनेवाला है। यद्यपि निश्चयसे अखंड प्रदेशोंको एक समूहरूपसे रखनेवाला है तथापि सद्भूतव्यवहारनयसे लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशोंका धारी है यह सूत्रका अर्थ है ॥ ८३ ॥

धर्मस्यैवावशिष्टस्वरूपाख्यानमेतत्।

अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं।
गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥ ८४ ॥

अगुरुकलघुकैः सदा तैः अनंतैः परिणतः नित्यः।
गतिक्रियायुक्तानां कारणभूतः स्वयमकार्यः ॥ ८४ ॥

अपि च धर्मः अगुरुलघुभिर्गुणैरगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबंधनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदैः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनंतैः सदा परिणतत्वादुत्पादव्ययवत्त्वेऽपि स्वरूपादप्रच्यवनान्नित्यः। गतिक्रियापरिणतानामुदासीनाविनाभूतसहायमात्रत्वात्कारणभूतः। स्वास्तित्वमात्रनिर्वृत्तत्वात् स्वयमकार्य इति ॥ ८४ ॥

अन्वयार्थ-(अनंतैः तैः अगुरुकलघुकैः) वह (धर्मास्तिकाय) अनंत ऐसे जो अगुरुलघु (गुण, अंश) उन-रूप (सदा परिणतः) सदैव परिणमित होता है, (नित्यः) नित्य है, (गतिक्रियायुक्तानां) गतिक्रियायुक्त (द्रव्यों) को (कारणभूतः) कारणभूत (निमित्तकारण) है और (स्वयम् अकार्यः) स्वयं अकार्य है।

टीकाः—यह, धर्मके ही शेष स्वरूपका कथन है।

पुनश्च, धर्म [धर्मास्तिकाय] अगुरुलघु गुणोंरूपसे अर्थात् अगुरुलघुत्व नामका जो स्वरूपप्रतिष्ठत्वके कारणभूत स्वभाव उसके अविभाग प्रतिच्छेदोंरूपसे—जो कि प्रतिसमय होनेवाली षट्स्थानपतित वृद्धिहानिवाले अनंत हैं उनके रूपसे—सदैव परिणमित होनेसे उत्पादव्ययवाला है, तथापि स्वरूपसे च्युत नहीं होता इसलिये नित्य है, गतिक्रियारूपसे परिणमित होनेमें (जीव-पुद्गलोंको) उदासीन अविनाभावी सहायमात्र होनेसे गतिक्रियापरिणामको कारणभूत है, अपने अस्तित्वमात्रसे निष्पन्न होनेके कारण स्वयं अकार्य है ॥ ८४ ॥

सं०ता०-अथ धर्मस्यैवावशिष्टस्वरूपं प्रतिपादयति,-अगुरुगलहुगेहि सदा तेहि अणंतेहि परिणदं-अगुरुलघुकैः सदा तैरनंतैः परिणतः प्रतिसमयसंभवतषट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनंतैरविभागपरिच्छेदैः परिणतः येऽगुरुलघुकगुणाः स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबंधनभूतास्तैः कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययपरिणतोपि

द्रव्यार्थिकनयेन. णिच्चं-नित्यं। गतिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं—गतिक्रियायुक्तानां कारणभूतः यथा सिद्धो भगवानुदासीनोपि सिद्धगुणानुरागपरिणतानां भव्यानां सिद्धगतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोपि स्वभावेनैव गतिपरिणतजीवपुद्गलानामुदासीनोपि गतिसहकारिकारणं भवति। सयमकज्जं-स्वयमकार्यः यथा सिद्धः स्वकीयशुद्धास्तित्वेन निष्पन्नत्वादन्येन केनापि न कृत इत्यकार्यः तथा धर्मोपि स्वकीयास्तित्वेन निष्पन्नत्वादकार्य इत्यभिप्रायः॥ ८४॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे धर्मद्रव्यका ही शेष स्वरूप कहते हैं-

अन्वयसहित सामान्यार्थ—यह धर्मद्रव्य (तेहिं) उन (अणंतेहि) अनंत (अगुरुगलघुगेहिं) अगुरुलघु गुणोंके द्वारा (सया) सदा (परिणदं) परिणमन करनेवाला है (णिच्चं) अवि-नाशी है, (गदिकिरियाजुत्ताणं) गमनक्रिया संयुक्त जीव पुद्गलोंके लिये (कारणभूदं) निमित्तकारण है (सयम्) स्वयम् (अकज्जं) किसीका कार्य्य नहीं है।

विशेषार्थ—वस्तुके स्वभावकी प्रतिष्ठाके कारण अगुरुलघु गुण होते हैं ये हरसमय षटस्थान पतित वृद्धि हानिरूप होनेवाले अनन्त अविभाग परिच्छेदोंसे परिणमन करते हुए रहते हैं इन हीके द्वारा पर्यायार्थिक नयसे यह धर्मद्रव्य उत्पाद व्यय सहित है तो भी द्रव्यार्थिक नयसे नित्य है। जैसे सिद्ध भगवान उदासीन हैं तो भी जो भव्य जीव उन सिद्धोंके गुणोंमें प्रीति करते हैं उनके लिये वे सिद्ध भगवान सिद्ध-गतिकी प्राप्तिमें सहकारी कारण हैं तैसे ही यह धर्म द्रव्य भी गमन करते हुए जीव और पुद्गलोंकी तरफ उदासीन है तो भी उनकी गतिके लिये सहकारी कारण है। जैसे सिद्ध भगवान अपनी ही शुद्ध सत्तासे रचित हैं, उनको किसीने बनाया नहीं है इसलिये वे अकार्य हैं वैसे ही यह धर्म द्रव्य भी अपने ही अस्तित्वसे रचित है इसलिये किसी का किया हुआ नहीं है, अकार्य है यह अभिप्राय है॥ ८४॥

धर्मस्य गतिहेतुत्वे दृष्टांतोऽयम्।

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहकरं हवदि लोए।
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणाहि॥ ८५॥

उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके।
तथा जीवपुद्गलानां धर्मं द्रव्यं विजानीहि॥८५॥

यथोदकं स्वयमगच्छदगमयच्च स्वयमेव गच्छतां मत्स्यानामुदासीनाविनाभूतसहायकार-णमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति, तथा धर्मोऽपि स्वयगच्छन् अगमयंश्च स्वयमेव गच्छतां जीव-पुद्गलानामुदासीनाविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति इति॥ ८५॥

अन्वयार्थ--[यथा] जिस प्रकार [लोके] जगतमें [उदकं] पानी (मत्स्यानां) मछलियों को (गमनानुग्रहकरं भवति) गमनमें अनुग्रह करता है, (तथा) उसी प्रकार (धर्मद्रव्यं) धर्मद्रव्य (जीव-पुद्गलानां) जीव पुद्गलोंको गमनमें अनुग्रह करता है (सहायक होता है) ऐसा (विजानीहि) जानो।

टीकाः–यह, धर्मके गतिहेतुत्वका दृष्टान्त है।

जिस प्रकार पानी स्वयं गमन न करता हुआ और (परको) गमन न कराता हुआ, स्वयमेव गमन करती हुई मछलियोंको उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारणमात्ररूपसे गमनमें अनुग्रह करता है, उसी प्रकार धर्म [धर्मास्तिकाय) भी स्वयं गमन न करता हुआ और (परको) गमन न कराता हुआ, स्वयमेव गमन करते हुए जीव पुद्गलोंको उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारणमात्ररूपसे गमनमें अनुग्रह करता है (सहायक होता है) ॥ ८५ ॥

सं०ता०–अथ धर्मस्य गतिहेतुत्वे लोकप्रसिद्धदृष्टांतमाह,–उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके तथैव जीवपुद्गलानां धर्मद्रव्यं विजानीहि हे शिष्य। तथाहि—यथा हि जलं स्वयमगच्छन्मत्स्यानप्रेरयत्सत्तेषां स्वयं गच्छतां गतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोपि स्वयमगच्छत्परानप्रेरयंश्च स्वयमेव गतिपरिणतानां जीवपुद्गलानां गतेः सहकारिकारणं भवति। अथवा भव्यानां सिद्धगतेः पुण्यवत्। तद्यथा। यथा रागादिदोषरहितः शुद्धात्मानुभूतिसहितो निश्चयधर्मो यद्यपि सिद्धगतेरुपादानकारणं भव्यानां भवति तथा निदानरहितपरिणामोपार्जिततीर्थकरप्रकृत्युत्तमसंहननादिविशिष्टपुण्यरूपधर्मोपि सहकारिकारणं भवति, तथा यद्यपि जीवपुद्गलानां गतिपरिणतेः स्वकीयोपादानकारणमस्ति तथापि धर्मास्तिकायोपि सहकारिकारणं भवति। अथवा भव्यानामभव्यानां वा—यथा चतुर्गतिगमनकाले यद्यप्यभ्यंतरशुभाशुभपरिणाम उपादानकारणं भवति तथापि द्रव्यलिङ्गादि दानपूजादिकं वा बहिरंगशुभानुष्ठानं च बहिरंगसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां यद्यपि स्वयमेव निश्चयेनाभ्यंतरेऽन्तरंगसामर्थ्यमस्ति तथापि व्यवहारेण धर्मास्तिकायोपि गतिकारणं भवतीति भावार्थः ॥ ८५ ॥ एवं प्रथमस्थले धर्मास्तिकायव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं।

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे धर्मद्रव्यके गतिहेतुपना होनेमें लोक प्रसिद्ध दृष्टांत कहते हैं–

अन्वयसहित सामान्यार्थः—(जह) जैसे (उदयं) जल (लोए) इस लोकमें (मच्छाणं) मछलियोंके लिये (गमणाणुग्गहपरं) गमनमें उपकारक है (तह) तैसे (धम्मं दव्वं) धर्म द्रव्यको (जीवपुग्गलाणं) जीव और पुद्गलोंके गमनमें उपकारक (वियाणेहि) जानो।

विशेषार्थ–जैसे जल स्वयं न चलता हुआ, न मछलियोंको चलनेकी प्रेरणा करता हुआ उन मछलियोंके स्वयं चलते हुए उनके गमनमें सहकारी कारण होजाता है वैसे यह धर्म द्रव्य भी स्वयं नहीं चलता हुआ, न दूसरोंको चलनेकी प्रेरणा करता हुआ स्वयमेव गमन करते हुए जीव और पुद्गलोंकी गमन क्रियामें सहकारी कारण होजाता है। अथवा जैसे भव्य जीवोंको

सिद्ध अवस्थाकी प्राप्तिमें पुण्य सहकारी कारण है। वह इस तरह पर है कि यद्यपि रागादिसे रहित व शुद्धात्मानुभव सहित निश्चयधर्म भव्य जीवोंके लिये सिद्ध गतिका उपादान कारण है तथापि निदान रहित परिणामोंसे बांधा हुआ तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति व उत्तम संहननादि विशेष पुण्यरूप कर्म अथवा शुभ धर्म सहकारी कारण हैं। अथवा जैसे भव्य और अभव्य दोनोंके लिये चारों गतियोंके गमनके समयमें यद्यपि उनके भीतरका शुभ या अशुभ परिणाम उपादान कारण है तोभी द्रव्यलिंग आदि धारण व दान पूजादि करना या और बाहरी शुभ अनुष्ठान करना बाहरी सहकारी कारण हैं। तैसे ही जीव और पुद्गलोंके गमनमें यद्यपि उनमें निश्चय से स्वयं भीतरी शक्ति मौजूद है तोभी व्यवहारसे धर्मास्तिकाय उनके गमनमें सहकारी कारण है ऐसा तात्पर्य है।। ८५ ।।

इसतरह प्रथम स्थलमें धर्मास्तिकायके व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथाएं कहीं।

अधर्मस्वरूपाख्यानमेतत्।

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ।। ८६ ।।

यथा भवति धर्मद्रव्यं तथा तज्जानीहि द्रव्यमधर्माख्यम्।
स्थितिक्रियायुक्तानां कारणभूतं तु पृथिवीव ।। ८६ ।।

यथा धर्मः प्रज्ञापितस्तथाऽधर्मोपि प्रज्ञापनीयः। अयं तु विशेषः। स गतिक्रियायुक्तानामुदकवत्कारणभूतः, एषः पुनः स्थितिक्रियायुक्तानां पृथिवीवत्कारणभूतः। यथा पृथिवी स्वयं पूर्वमेव तिष्ठंती परमस्थापयंती च स्वयमेव तिष्ठतामश्वादीनामुदासीनाविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन स्थितिमनुगृह्णाति तथाऽधर्मोऽपि स्वयं पूर्वमेव तिष्ठन् परमस्थापयंश्च स्वयमेव तिष्ठतां जीवपुद्गलानामुदासीनाविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन स्थितिमनुगृह्णातीति ।। ८६ ।।

अन्वयार्थः—(यथा) जिस प्रकार [धर्मद्रव्यं भवति] धर्मद्रव्य है (तथा) उसी प्रकार (अधर्माख्यम् द्रव्यम्) अधर्म नामका द्रव्य भी (जानीहि) जानो, (तत् तु) परन्तु वह [स्थितिक्रिया युक्तानाम्) स्थितिक्रियायुक्तको (पृथिवी इव) पृथिवीकी भांति (कारणभूतम्) कारणभूत है (अर्थात् स्थितिक्रियापरिणत जीव—पुद्गलोंको सहायक है)।

टीकाः—यह, अधर्मके स्वरूपका कथन है।

जिस प्रकार धर्मका प्रज्ञापन किया गया उसी प्रकार अधर्मका भी प्रज्ञापन करना योग्य है। परन्तु यह (निम्नोक्तानुसार) अन्तर है, वह (धर्मास्तिकाय) गतिक्रियायुक्तको पानीकी भांति कारणभूत है और यह (अधर्मास्तिकाय) स्थितिक्रियायुक्तको पृथ्वीकी भांति कारणभूत है। जिस प्रकार पृथ्वी स्वयं

पहलेसे ही स्थितिरूप (स्थिर) वर्तती हुई तथा परको स्थिति (स्थिरता) न कराती हुई, स्वयमेव स्थिति-रूपसे परिणमित अश्वादिकको उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारणमात्रकी भांति स्थितिमें अनुग्रह करती है, उसी प्रकार अधर्म [अधर्मास्तिकाय] भी स्वयं पहलेसे ही स्थितिरूपसे वर्तता हुआ, और परको स्थिति न कराता हुआ, स्वयमेव स्थितिरूप परिणमित होते हुए जीव पुद्गलोंको उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारणमात्रपनेसे स्थितिमें अनुग्रह करता है॥ ८६॥

सं०ता०-अथाधर्मास्तिकायस्वरूपं कथ्यते,—यथा भवति धर्मद्रव्यं तथार्थं कर्तुं जानीहि हे शिष्य द्रव्यमधर्माख्यं। तच्च कथंभूतं। स्थितिक्रियायुक्तानां कारणभूतं पृथिवीवत्। तथाहि-यथा पूर्वमरसादिविशेषणविशिष्टं धर्मद्रव्यं व्याख्यातं तथा अधर्मद्रव्यमपि तद्रूपं ज्ञातव्यं, अयं तु विशेषः-तन्मत्स्यानां जलवज्जीव पुद्गलानां गतेर्बहिरंगसहकारिकारणं इदं तु यथा पृथिवी स्वयं पूर्वं तिष्ठंती परं स्थापयंती तुरंगादीनां स्थितेर्बहिरंगसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां स्थापयत्स्वयं च पूर्वं तिष्ठत्सत् स्थितेस्तेषां कारणमिति पथिकानां छायावद्वा। अथवा शुद्धात्मस्वरूपे या स्थितिस्तस्या निश्चयेन वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनं कारणं व्यवहारेण पुनरर्हत्सिद्धादिपरमेष्ठिगुणस्मरणं च यथा तथा जीवपुद्गलानां निश्चयेन स्वकीयस्वरूपमेव स्थितेरुपादानकारणं व्यवहारेण पुनरधर्मद्रव्यं चेति सूत्रार्थः॥ ८६॥ एवमधर्मद्रव्यव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथासूत्रमेकं गतं।

हिन्दी ता०-उत्थानिका-आगे अधर्मास्तिकायको कहते हैं--

अन्वय सहित सामान्यार्थ-[तु] तथा [जह] जैसे [धम्मदव्वं] धर्मद्रव्य [हवदि] है [तह] तैसे [तं] उस [अधमक्खं] अधर्म नामके [दव्वं] द्रव्यको [जाणेह] जानो जो [पुढवीव] पृथ्वीके समान [ठिदिकिरियाजुत्ताणं] स्थिति क्रिया करते हुए जीव पुद्गलोंको [कारणभूदं] निमित्त कारण है।

विशेषार्थ-जैसे पहिले धर्मद्रव्यके सम्बन्धमें कहा था कि वह रस आदिसे रहित अमूर्तीक है, नित्य है, अकृत्रिम है, परिणमनशील है व लोकव्यापी है तैसे ही अधर्म द्रव्यको जानना चाहिये। विशेष यह है कि धर्मद्रव्य तो मछलियोंके लिये जलकी तरह जीव पुद्गलोंके गमनमें बाहरी सहकारी कारण है। यह अधर्म द्रव्य जैसे पृथिवी स्वयं पहलेसे ठहरी हुई दूसरोंको न ठहराती हुई घोडे आदिकोंके ठहरनेमें बाहरी सहकारी कारण है वैसे स्वयं पहलेसे ही ठहरा हुआ व जीव पुद्गलोंको न ठहराता हुआ उनके स्वयं ठहरते हुए उनके ठहरनेमें सहकारी कारण है। अथवा जैसे छाया पथिकोंके ठहरनेमें कारण होती है अथवा जैसे शुद्ध आत्म स्वरूपमें जो ठहरना है उसका कारण निश्चयनयसे वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान है तथा व्यवहार नयसे उसका कारण अर्हंत, सिद्ध आदि पांच परमेष्ठियोंके गुणोंका स्मरण है तैसे जीव पुद्गलों

के ठहरनेमें निश्चयनयसे उनका ही स्वभाव उनकी स्थितिके लिये उपादान कारण है, व्यवहार नयसे अधर्म द्रव्य है यह सूत्रका अर्थ है ॥ ८६ ॥

इसतरह अधर्मद्रव्यका व्याख्यान करते हुए दूसरे स्थलमें गाथासूत्र एक समाप्त हुआ।

धर्माधर्मसद्भावे हेतूपन्यासोऽयम् ।

जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी ।
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य ॥ ८७ ॥

जातमलोकलोकं ययोः सद्भावतश्च गमनस्थिती ।
द्वावपि च मतौ विभक्तावविभक्तौ लोकमात्रौ च ॥ ८७ ॥

धर्माधर्मौ विद्येते, लोकालोकविभागान्यथानुपपत्तेः । जीवादिसर्वपदार्थानामेकत्र वृत्तिरूपो लोकः । शुद्धैकाकाशवृत्तिरूपोऽलोकः । तत्र जीवपुद्गलौ स्वरसत एव गतितत्पूर्वस्थितिपरिणामापन्नौ । तयोर्यदि गतिपरिणामं तत्पूर्वस्थितिपरिणामं वा स्वयमनुभवतोर्बहिरङ्गहेतू धर्माधर्मौ न भवेताम्, तदा तयोर्निरर्गलगतिस्थितिपरिणामत्वादलोकेऽपि वृत्तिः केन वार्येत । ततो न लोकालोकविभागः सिद्धयेत । धर्माधर्मयोस्तु जीवपुद्गलयोर्गतितत्पूर्वस्थित्योर्बहिरंगहेतुत्वेन सद्भावेऽभ्युपगम्यमाने लोकालोकविभागो जायत इति । किञ्च धर्माधर्मौ द्वावपि परस्परं पृथग्भूतास्तित्वनिर्वृत्तत्वाद्विभक्तौ । एकक्षेत्रावगाढत्वादविभक्तौ । निष्क्रियत्वेन सकललोकवर्तिनोर्जीवपुद्गलयोर्गतिस्थित्युपग्रहकरणाल्लोकमात्राविति ॥ ८७ ॥

अन्वयार्थः-(गमनस्थिती) (जीव-पुद्गलकी) गति स्थिति (च) तथा (अलोकलोकं) अलोक और लोकका विभाग, (ययोः सद्भावतः) उन दो द्रव्योंके सद्भावसे (जातम्) होता है। (च) और (द्वौ अपि) ये दोनों (विभक्तौ) विभक्त, (अविभक्तौ) अविभक्त (च) और (लोकमात्रौ) लोकप्रमाण (मतौ) कहे गये हैं।

टीकाः—यह, धर्म और अधर्मके सद्भावकी सिद्धिके लिये हेतु दर्शाया गया है।

धर्म और अधर्म विद्यमान हैं क्योंकि लोक और अलोकका विभाग अन्यथा नहीं बन सकता। जीवादि सर्व पदार्थोंके एकत्र अस्तित्वरूप लोक है, शुद्ध एक आकाशके अस्तित्वरूप अलोक है। वहां जीव और पुद्गल स्वरससे ही (स्वभावसे ही) गतिपरिणामको तथा गतिपूर्वक स्थितिपरिणामको प्राप्त होते हैं। यदि गतिपरिणाम अथवा गतिपूर्वक स्थितिपरिणामका स्वयं अनुभव करनेवाले उन जीव पुद्गलको वहिरंगहेतु धर्म और अधर्म न हों, तो जीव पुद्गलके निरर्गल गतिपरिणाम और स्थितिपरिणाम होनेसे अलोकमें भी उनका (जीव—पुद्गलका) होना किससे निवारा जा सकता है ? (किसीसे नही निवारा जा सकता) इसलिये लोक और अलोकका विभाग सिद्ध नहीं होगा किन्तु यदि जीव-पुद्गलकी

गतिके और गतिपूर्वकस्थितिके बहिरंग हेतुओंके रूपमें धर्म और अधर्मका सद्भाव स्वीकार किया जाये तो लोक और अलोकका विभाग (सिद्ध) होता है। (इसलिये धर्म और अधर्म विद्यमान हैं।) धर्म और अधर्म दोनों परस्पर पृथग्भूत अस्तित्वसे निष्पन्न होनेसे विभक्त [भिन्न] हैं, एकक्षेत्रावगाही होनेसे अविभक्त (अभिन्न) हैं, समस्त लोकमें प्रवर्तमान जीव-पुद्गलोंको गति—स्थितिमें निष्क्रियरूपसे अनुग्रह करते हैं इसलिये लोकप्रमाण हैं॥ ८७॥

सं०ता०-अथ धर्माधर्मसद्भावे साध्ये हेतुं दर्शयति, जादो-जातं। किं कर्तृ। अलोगलोगो—लोकालोकद्वयं। कस्माज्जातं। जेसिं सब्भावदो य—ययोर्धर्माधर्मयोः स्वभावतश्च। न केवलं लोकालोकद्वयं जातं। गमणठिदी-गतिस्थितिश्च तौ द्वौ। कथंभूतौ। दोवि य मया-द्वौ धर्माधर्मौ मतौ संमतौ स्तः अथवा पाठांतरं "अमया" अमयौ न केनापि कृतौ। विभत्ता-विभक्तौ भिन्नौ,अविभत्ता-अविभक्तौ, लोयमेत्ता य-लोकमात्रौ चेति। तद्यथा-धर्माधर्मौ विद्येते लोकालोकसद्भावात् षड्द्रव्यसमूहात्मको लोकः तस्माद्बहिर्भूतं शुद्धमाकाशमलोकः, तत्र लोके गतिं तत्पूर्वकस्थितिमास्कंदतोः स्वीकुर्वतोर्जीवपुद्गलयोर्यदि बहिरंगहेतुभूतधर्माधर्मौ न स्यातां तदा लोकाद्बहिर्भूतबाह्यभागेपि गतिः केन नाम निषिध्यते। न केनापि ततो लोकालोकविभागादेव ज्ञायते धर्माधर्मौ विद्येते। तौ च किंविशिष्टौ। भिन्नास्तित्वनिष्पन्नत्वान्निश्चयनयेन पृथग्भूतौ एकक्षेत्रावगाहत्वादसद्भूतव्यवहारनयेन सिद्धराशिवदभिन्नौ सर्वदैव निःक्रियत्वेन लोकव्यापकत्वाल्लोकमात्राविति सूत्रार्थः॥ ८७॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे धर्म और अधर्मद्रव्यकी सत्ताको सिद्ध करनेके लिये हेतु दिखाते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ-[जेसिं] जिन धर्म अधर्म द्रव्योंकी [सब्भावदो] सत्ता होनेसे [अलोगलोगो] अलोक और लोक [जादो] हुए हैं [य] और [गमणठिदी] जीव पुद्गलोंकी गमन और स्थिति होती है [दो वि य] वे दोनों ही धर्म अधर्म [विभत्ता] परस्पर भिन्न व [अविभत्ता] एक जगह रहनेसे अभिन्न [य लोयमेत्ता] और लोकाकाश प्रमाण [मतौ] माने गए हैं।

विशेषार्थ-वृत्तिकारने "अमया" पाठांतर लेकर यह अर्थ किया है कि ये दोनों ही किसी के किये नहीं हैं अकृत्रिम हैं। जो छः द्रव्योंका समूह है उसे लोक कहते हैं, उससे बाहर जो शुद्ध आकाश मात्र है उसको अलोक कहते हैं। इस लोक और अलोककी सत्ता है इसीसे धर्म और अधर्मकी सत्ता सिद्ध है। यदि इस लोकमें जीव और पुद्गलोंके चलनेमें और चलते चलते ठहर जानेमें बाहरी निमित्तकारण धर्म और अधर्म द्रव्य न होवें तो लोकके बाहरीभागमें गमन को कौन निषेध कर सक्ता है? कोई भी रोकनेवाला न हो तब लोक और अलोकका विभाग ही न रहे, परन्तु जब लोक और अलोक हैं तब यह जाना जाता है कि अवश्य धर्म और अधर्म

द्रव्य हैं। इन दोनोंकी सत्ता भिन्न २ है, ये निश्चयसे जुदे हैं। दोनों एक क्षेत्रमें अवगाह पारहे हैं इससे असद्भूत व्यवहारनयसे जैसे सिद्धराशि एक क्षेत्रमें रहनेसे अभिन्न है वैसे ये अभिन्न हैं। ये दोनों सदा ही क्रियारहित हैं तथा लोकव्यापी होनेसे लोकमात्र हैं यह सूत्रका अर्थ है ॥ ८७ ॥

धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वेऽप्यत्यंतौदासीन्याख्यापनमेतत्‌ :

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स ।
हवदि गदिस्स प्पसरो जीवाणं पुग्गलाणं च ॥ ८८ ॥

न च गच्छति धर्मास्तिको गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य ।
भवति गतेः सः प्रसरो जीवानां पुद्‌गलानां च ॥ ८८ ॥

यथा हि गतिपरिणतः प्रभञ्जनो वैजयंतीनां गतिपरिणामस्य हेतुकर्ताऽवलोक्यते न तथा धर्मः। स खलु निष्क्रियत्वात्‌ न कदाचिदपि गतिपरिणाममेवापद्यते। कुतोऽस्य सहकारित्वेन परेषां गतिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वम्‌। किंतु सलिलमिव मत्स्यानां जीवपुद्‌गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवासौ गतेः प्रसरो भवति। अपि च यथा गतिपूर्वस्थितिपरिणतस्तुरंगोऽश्ववारस्य स्थितिपरिणामस्य हेतुकर्तावलोक्यते न तथाऽधर्मः। स खलु निष्क्रियत्वात्‌ न कदाचिदपि गतिपूर्वस्थितिपरिणाममेवापद्यते। कुतोऽस्य सहस्थतिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वम्‌ किं तु पृथिवीवत्तुरंगस्य जीवपुद्‌गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवासौ गतिपूर्वस्थितेः प्रसरो भवतीति ॥ ८८ ॥

अन्वयार्थः—(धर्मास्तिकः) धर्मास्तिकाय (न गच्छति) गमन नहीं करता (च) और (अन्यद्रव्यस्य) अन्य द्रव्यको (गमनं न कारयति) गमन नहीं कराता, (सः) वह (जीवानां पुद्‌गलानां च) (जीवों तथा पुद्‌गलोंको) (गतेः प्रसरः) गतिका प्रसारक (भवति) होता है।

टीका:-धर्म और अधर्म गति और स्थितिके हेतु होने पर भी वे अत्यन्त उदासीन हैं ऐसा यहां कथन है।

जिस प्रकार गतिपरिणत पवन ध्वजाओंके गतिपरिणामका हेतुकर्ता दिखाई देता है, उस प्रकार धर्म नहीं है। वह (धर्म) वास्तवमें निष्क्रिय होनेसे कभी गति परिणामको ही प्राप्त नहीं होता, तो फिर उसे सहकारीपने से परके गतिपरिणामका हेतुकर्तृत्व कैसे होगा ? (-नहीं हो सकता।) किन्तु जिस प्रकार पानी मछलियोंको (गतिपरिणाममें) मात्र आश्रयरूप कारणपनेसे गतिका उदासीन ही प्रसारक है, उसी प्रकार धर्म जीवपुद्‌गलोंको (गतिपरिणाममें) मात्र आश्रयरूप कारणपनेसे गतिका उदासीन ही प्रसारक है।

और (अधर्मास्तिकायके सम्बन्धमें भी ऐसा है कि) जिस प्रकार गतिपूर्वकस्थितिपरिणत अश्व अश्वसवारके (गतिपूर्वक) स्थितिपरिणामका हेतुकर्ता दिखाई देता है, उस प्रकार अधर्म नहीं है। वह (अधर्म) वास्तवमें निष्क्रिय होनेसे कभी गतिपूर्वक स्थितिपरिणामको ही प्राप्त नहीं होता, तो फिर उसे सहस्थायीपनेसे परके गतिपूर्वक स्थितिपरिणामका हेतुकर्तृत्व कहांसे होगा ? (नहीं हो सकता) किन्तु जिस प्रकार पृथ्वी अश्वको (गतिपूर्वक स्थितिपरिणाममें) मात्र आश्रयरूप कारणकी भांति गतिपूर्वक स्थितिकी उदासीन ही प्रसारक है, उसी प्रकार अधर्म जीव-पुद्गलोंको (गतिपूर्वक स्थितिपरिणाममें) मात्र आश्रयरूप कारणपनेसे गतिपूर्वक स्थितिका उदासीन ही प्रसारक है॥ ८८॥

सं०ता०-अथ धर्माधर्मौ गतिस्थितिहेतुत्वविषयेऽत्यंतोदासीनाविति निश्चिनोति, ण य गच्छदि-नैव गच्छति। स कः। धम्मत्थी-धर्मास्तिकायः। गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स-गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य, हवदि-तथापि भवति। स कः। पसरो-प्रसरः प्रवृत्तिः। कस्याश्च। गदिस्स य-गतेश्च। केषां गतेः। जीवाणं पोग्गलाणं च जीवानां पुद्गलानां चेति। तथाहि यथा तुरंगमः स्वयं गच्छन् स्वकीयारोहकस्य गमनहेतुर्भवति न तथा धर्मास्तिकायः ? कस्मात् ? निष्क्रियत्वात् किंतु यथा जलं स्वयं तिष्ठत्सत्स्वयं गच्छतां मत्स्यानामौदासीन्येन गतेर्निमित्तं भवति तथा धर्मोपि स्वयं तिष्ठन्सन् स्वकीयोपादानकारणेन गच्छतां जीवपुद्गलानामप्रेरकत्वेन बहिरंगगतिनिमित्तं भवति। यद्यपि धर्मास्तिकाय उदासीनो जीवपुद्गलगतिविषये तथापि जीवपुद्गलानां स्वकीयोपादानबलेन जलं मत्स्यानामिव गतिहेतुर्भवति, अधर्मस्तु पुनः स्वयं तिष्ठत्सन् स्वकीयोपादानकारणेन तिष्ठतां जीवपुद्गलानां तिष्ठतामश्वादीनां पृथिवीवत्पथिकानां छायावद्वा स्थितेर्बहिरंगहेतुर्भवतीति भगवतां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवानामभिप्रायः॥ ८८॥

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे यह निश्चय करते हैं कि धर्म और अधर्म गति और स्थितिके कारण होते हैं तथापि उन क्रियाओंके प्रति स्वयं अत्यंत उदासीन हैं प्रेरक नहीं हैं।

अन्वयसहित विशेषार्थः-(धम्मत्थी) धर्मास्तिकाय (ण य गच्छदि) न तो स्वयं गमन करता है (ण अण्णदवियस्स गमणं करेदि) न दूसरे द्रव्योंको गमन कराता है तौभी (स) वह (जीवाणं पोग्गलाणं च) जीवोंकी और पुद्गलोंकी (गती) गतिमें (पसरो) प्रवर्तक या निमित्त होता है।

विशेषार्थ-जैसे घोडा स्वयं चलता हुआ अपने ऊपर चढे हुए सवारके गमनका कारण होता है ऐसा धर्मास्तिकाय नहीं है, क्योंकि वह क्रियारहित है, किंतु जैसे जल स्वयं ठहरा हुआ है तौ भी स्वयं अपनी इच्छासे चलती हुई मछलियोंके गमनमें उदासीनपनेसे निमित्त हो जाता है, वैसे धर्म द्रव्य भी स्वयं ठहरा हुआ अपने ही उपादान कारणसे चलते हुए जीव और पुद्गलोंको विना प्रेरणा किये हुए उनके गमनमें बाहरी निमित्त हो जाता है। यद्यपि धर्मास्तिकाय उदासीन है तौभी जीव पुद्गलोंकी गतिमें हेतु होता है। जैसे जल उदासीन है तौभी वह

मछलियोंके अपने ही उपादान बलसे गमनमें सहकारी होता है। जैसे स्वयं ठहरते हुए घोडोंको पृथ्वी व पथिकोंको छाया सहायक है वैसे ही अधर्मास्तिकाय स्वयं ठहरा हुआ है तौभी अपने उपादान कारण से ठहरे हुए जीव और पुद्गलोंकी स्थितिमें बाहरी कारण होता है ऐसा भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवका अभिप्राय है ॥ ८८ ॥

धर्माधर्मयोरौदासीन्ये हेतूपन्यासोऽयम् ।

विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि ।
ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥ ८९ ॥

विद्यते येषां गमनं स्थानं पुनस्तेषामेव संभवति ।
ते स्वकपरिणामैस्तु गमनं स्थानं च कुर्वन्ति ॥ ८९ ॥

धर्मः किल न जीवपुद्गलानां कदाचिद्गतिहेतुत्वमभ्यस्यति, न कदाचित्स्थितिहेतुत्वमधर्मः तौ हि परेषां गतिस्थित्योर्यदि मुख्यहेतू स्यातां तदा येषां गतिस्तेषां गतिरेव न स्थितिः, येषां स्थितिस्तेषां स्थितिरेव न गतिः । तत एकेषामपि गतिस्थितिदर्शनादनुमीयते न तौ तयोर्मुख्यहेतू । किंतु व्यवहारनयव्यवस्थापितौ उदासीनौ । कथमेवं गतिस्थितिमतां पदार्थानां गतिस्थिती भवत इति चेत्, सर्वे हि गतिस्थितिमंतः पदार्थाः स्वपरिणामैरेव निश्चयेन गतिस्थिती कुर्वंतीति । ८९ ।

—इति धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् ।

अन्वयार्थः—(येषां गमनं विद्यते) जिनके गति होती है (तेषाम् एव पुनः स्थानं संभवति) उन्हींके फिर स्थिति होती है [और जिन्हें स्थिति होती है उन्हीको फिर गति होती है]। (ते तु) वे (गतिस्थितिमान पदार्थ) तो (स्वकपरिणामैः) अपने परिणामोंसे (गमनं स्थानं च) गति और स्थिति (कुर्वन्ति) करते हैं।

टीकाः—यह, धर्म और अधर्मकी उदासीनताके सम्बन्धमें हेतु कहा गया है।

वास्तवमें धर्म जीव-पुद्गलोंको कभी गतिहेतु नही होता, अधर्म कभी स्थितिहेतु नही होता, क्योंकि वे परको गतिस्थितिके यदि मुख्य हेतु (प्रेरक हेतु) हों, तो जिन्हें गति हो उन्हें गति ही रहना चाहिये, स्थिति नही होना चाहिये, और जिन्हें स्थिति हो उन्हें स्थिति ही रहना चाहिये, गति नही होना चाहिये। किन्तु एकको ही [उसी एक पदार्थको) गति और स्थिति देखनेमें आती है, इसलिये अनुमान हो सकता है कि वे [धर्म-अधर्म] गति-स्थितिके मुख्य हेतु नही हैं, किन्तु व्यवहारनयस्थापित (व्यवहारनय द्वारा स्थापित—कथित) उदासीन हेतु हैं।

प्रश्नः—ऐसा हो तो गतिस्थितिमान पदार्थोंको गतिस्थिति किस प्रकार होती है ?

उत्तर:-वास्तवमें समस्त गतिस्थितिमान पदार्थ अपने परिणामोंसे ही निश्चयसे गतिस्थिति करते हैं ॥ ८६ ॥

इस प्रकार धर्मद्रव्यास्तिकाय और अधर्मद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान समाप्त हुआ।

सं०ता०-अथ धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वोदासीनविषये युक्तिमुद्योतयति,—विद्यते येषां गमनं स्थानं पुनस्तेपामेव संभवति ते जीवपुद्गला: स्वकपरिणामैरेव स्थानं गमनं च कुर्वंतीति। तथाहि—धर्मस्तावत्क्वापि काले गतिहेतुत्वं न त्यजति न चाधर्मः स्थितिहेतुत्वं, तौ यदि गतिस्थित्योर्मुख्यहेतू स्यातां तदा गतिस्थितिकाले परस्परं मत्सरो भवति। कथमिति चेत्? येषां गतिस्तेषां सर्वदैव गतिरेव न च स्थितिः येषां पुनः स्थितिस्तेषां सर्वदैव स्थितिरेव न च गतिः। न तथा दृश्यते। किंतु ये गतिं कुर्वन्ति त एव पुनरपि स्थितिं कुर्वन्ति, ये स्थितिं कुर्वन्ति त एव पुनर्गतिं कुर्वन्ति। ततो ज्ञायते न तौ धर्माधर्मौ गतिस्थित्योर्मुख्यहेतू। यदि मुख्यहेतू न भवेतां तर्हि गतिस्थितिमतां जीवपुद्गलानां कथं गतिस्थिती इति चेत्? ते निश्चयेन स्वकीयपरिणामैरेव गमनं स्थितिं च कुर्वंतीति। अत्र सूत्रे निर्विकारचिदानंदैकस्वभावादुपादेयभूतात् शुद्धात्मतत्त्वाद्भिन्नत्वाद्धेयतत्त्वमित्यभिप्रायः ॥८६॥ एवं धर्माधर्मोभयव्यवस्थापनमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतं।

इति गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेण पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये धर्माधर्मव्याख्यानरूपेण षष्ठांतराधिकारः समाप्तः।

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे फिर प्रगट करते हैं कि धर्म और अधर्म गति और स्थितिके करनेमें बिलकुल उदासीन हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जेसिं) जिन जीव और पुद्गलोंका (गमणं) गमन (पुण) तथा (ठाणं) तिष्ठना (विज्जदि) होता है (तेसिमेव) उनहीका गमन व स्थान (संभवदि) संभव है (ते) वे जीव और पुद्गल (सगपरिणामेहिं दु) अपनी ही गमन और स्थितिके परिणमनकी शक्तिसे (गमणं ठाणं च) गमन और तिष्ठना (कुव्वंति) करते रहते हैं।

विशेषार्थ-धर्मद्रव्य कभी अपने गमनहेतुपनेको छोडता नहीं है तैसे ही अधर्म कभी स्थिति हेतुपनेको छोडता नही है। यदि ये ही गमन और स्थिति करानेमें मुख्य प्रेरक कारण हो जावें तो गति और स्थितिमें परस्पर ईर्षा होजावे। जिन द्रव्योंकी गति हो वे सदा ही चलते रहें और जिनकी स्थिति हो वे सदा ठहरे ही रहें उनकी कभी गति न हो। ऐसा नहीं दिखलाई पडता है, किन्तु यह देखा जाता है कि जो गमन करते हैं वे ही ठहरते हैं या जो ठहरे हुए हैं वे ही गमन करते हैं। इसीसे सिद्ध है कि ये धर्म और अधर्म मुख्य हेतु नहीं हैं। यदि ये मुख्य हेतु नहीं हैं तो जीव और पुद्गलोंकी कैसे गति और स्थिति होती है। इसलिये कहते हैं कि वे निश्चयसे अपनी ही परिणमन शक्तियोंसे गति या स्थिति करते हैं। यहां यह अभिप्राय है कि निर्विकार चिदानंदमई एक स्वभाव जो परमात्मतत्त्व है वही उपादेय है, उस शुद्धात्मतत्त्वसे भिन्न ये धर्म अधर्मद्रव्य हैं इसलिये ये हेयतत्त्व हैं ॥ ८६ ॥

इसतरह धर्म अधर्म द्रव्य दोनोंकी स्थापनाकी मुख्यतासे तीसरे स्थलमें गाथा तीन कहीं ऐसे सात गाथाओंमें तीन स्थलोंके द्वारा पंचास्तिकाय छः द्रव्यके प्रतिपादक प्रथम महाअधिकारके मध्यमें धर्म अधर्मका व्याख्यानरूप छठा अंतर अधिकार पूर्ण हुआ।

आकाशद्रव्यास्तिकायस्वरूपाख्यानमेतत्,—

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं॥ ९०॥

सर्वेषां जीवानां शेषाणां तथैव पुद्गलानां च।
यद्ददाति विवरमखिलं तल्लोके भवत्याकाशं॥ ९०॥

षड्द्रव्यात्मके लोके सर्वेषां शेषद्रव्याणां यत्समस्तावकाशनिमित्तं विशुद्धक्षेत्ररूपं तदाकाशमिति॥ ९०॥

अब आकाशद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान है।

अन्वयार्थः—(लोके) लोकमें (जीवानाम्) जीवोंको (च) और [पुद्गलानाम्] पुद्गलोंको (तथा एव) वैसे ही (सर्वेषाम् शेषाणाम्) शेष समस्त द्रव्योंको (यद्) जो (अखिलं विवरं) सम्पूर्ण अवकाश [ददाति) देता है, (तद्) वह [आकाशम् भवति] आकाश है।

टीकाः—यह, आकाशके स्वरूपका कथन है।

षट्द्रव्यात्मक लोकमें शेष सभी द्रव्योंको जो परिपूर्ण अवकाशका निमित्त है, वह आकाश है-जो कि [आकाश] विशुद्धक्षेत्ररूप है॥ ९०॥

सं० तात्पर्यवृत्तिः—अथानंतरं शुद्धबुद्धैकस्वभावान्निश्चयमोक्षकारणभूतात्सर्वप्रकारोपादेयरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्न आकाशास्तिकायः सप्तगाथापर्यंतं कथ्यते। तत्र गाथासप्तकमध्ये प्रथमतस्तावल्लोकालोकाकाशद्वयस्वरूपकथनमुख्यत्वेन "सव्वेसिं जीवाणं" इत्यादि गाथाद्वयं, अथ आकाशमेव गतिस्थितिद्वयं करिष्यति धर्माधर्माभ्यां किं प्रयोजनमिति पूर्वपक्षनिराकरणमुख्यत्वेन "आगासं अवगासं" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वात्समानपरिमाणत्वाच्चासद्भूतव्यवहारेणैकत्वं भिन्नलक्षणत्वान्निश्चयेन पृथक्त्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन "धम्माधम्मागासा" इत्यादि सूत्रमेकं। एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका। तद्यथा—

आकाशस्वरूपं कथयति,—सव्वेसिं जीवाणं-सर्वेषां जीवानां। सेसाणं तह य-शेषाणां तथैव च धर्माधर्मकालानां, पोग्गलाणं च—पुद्गलानां च। जं देदि-यत्कर्तृ ददाति। किं। विवरं-विवरं छिद्रं अवकाशमवगाहं, अखिलं—समस्तं तं-तत्पूर्वोक्तं, लोगे—लोकविषये। हवदि आगासं-आकाशं

भवति। अत्राह शिवकुमारमहाराजनामा-हे भगवन्! लोकस्तावदसंख्यातप्रदेशः तत्र लोके निश्चयनयेन नित्यनिरंजनज्ञानमयपरमानंदैकलक्षणाः अनंतानंतजीवास्तेभ्योप्यनंतगुणाः पुद्गला लोकाकाशप्रमितप्रदेशप्रमाणाः कालाणवो धर्माधर्मौ चेति सर्वे कथमवकाशं लभंत इति। भगवानाह-एकापवरके अनेकप्रदीपप्रकाशवदेकगूढनागरसगद्याणके बहुसुवर्णवदेकस्मिन्नुष्ट्रीक्षीरघटे मधुघटवदेकस्मिन् भूमिगृहे जयघंटादिशब्दवद्विशिष्टावगाहगुणेनासंख्येयप्रदेशेपि लोके अनंतसंख्या अपि जीवादयोऽवकाशं लभंत इत्यभिप्रायः॥ ९०॥

हिंदीता०-उत्थानिका-अथानंतर शुद्धबुद्ध एक स्वभावरूप शुद्ध जीवास्तिकाय है जो निश्चयसे मोक्षका कारण है व सर्व तरह ग्रहण करने योग्य है। उससे भिन्न जो आकाश अस्तिकाय है, उसका वर्णन सात गाथाओंमें करते हैं। तहां सात गाथाओंके मध्यमें पहले ही लोकाकाश और अलोकाकाश दोनोंका स्वरूप कहते हुए "सव्वेसिं जीवाणं" इत्यादि गाथाएं दो हैं। आगे आकाश ही गति या स्थिति दोनों करलेगा। धर्म और अधर्म द्रव्योंकी क्या आवश्यक्ता है? ऐसे पूर्व पक्ष निराकरण करनेकी मुख्यतासे "आगासं अवगासं" इत्यादि पाठक्रमसे गाथाएं चार हैं। फिर धर्म अधर्म और लोकाकाश एक क्षेत्रमें अवगाह पानेसे व समान मापके होनेसे असद्भूत व्यवहारसे एक हैं तो भी निश्चयसे भिन्न २ लक्षण रखनेसे भिन्न २ हैं ऐसा कहते हुए "धम्माधम्मागासा" इत्यादि सूत्र एक है। इसतरह सात गाथाओंसे तीन स्थलोंके द्वारा आकाश अस्तिकायके कथनमें समुदाय पातनिका है।

हिन्दीता०- अब आकाश का स्वरूप कहते हैं-

अन्वयसहित सामान्यार्थः-(सव्वेसिं) सर्व ही (जीवाणं) जीवोंको (तह य) तथा (पोग्गलाणं) पुद्गलोंको (च) और (सेसाणं) शेप धर्म, अधर्म व कालको (जं) जो (विवरं) अवकाश (देदि) देता है (तं) सो (अखिलं) संपूर्ण (आगासं) आकाश (लोए) इस लोकमें (हवदि) होता है।

विशेषार्थ-यहां शिवकुमार महाराजने कहा कि--हे भगवान्! यह लोक तो असंख्यात प्रदेशी है। इस लोकमें निश्चयनयसे नित्य ही कर्मांजनसे रहित ज्ञान और परमानन्दमई लक्षणधारी अनन्तानंत जीव हैं उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल हैं। लोकाकाशके प्रदेशोंके प्रमाण भिन्न भिन्न कालाणु हैं तथा एक धर्म और एक अधर्मद्रव्य है ये सब किस तरह इस लोकाकाशमें अवकाश पालेते हैं। भगवान कुन्दकुन्द महाराज उत्तर देते हैं कि-जैसे एक कोठरीमें अनेक दीपोंका प्रकाश व एक गूढ नागरसके गुटकेमें बहुतसा सुवर्ण व एक ऊंटनीके दूधके भरे घटमें मधुका भरा घट व एक तहखानेमें जयजयकार शब्द व घंटा आदिका शब्द विशेष अवगाहना गुणके कारण अवकाश पाते हैं वैसे असंख्यात प्रदेशी लोकमें अनन्तानन्त जीवादि भी अवकाश पासक्ते हैं॥ ९०॥

लोकाद्बहिराकाशसूचनेयं,—

जीवापुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा।
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥ ९१ ॥

जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मौ च लोकतोऽनन्ये।
ततोऽनन्यदन्यदाकाशमंतव्यतिरिक्तं ॥ ९१ ॥

जीवादीनि शेषद्रव्याण्यवधृतपरिमाणत्वाल्लोकादनन्यान्येव। आकाशं त्वनंतत्वाल्लोकादनन्यदन्यच्चेति ॥ ९१ ॥

अन्वयार्थः—[जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मौ च] जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म (तथा काल) (लोकतः अनन्ये) लोकसे अनन्य हैं, [अंतव्यतिरिक्तम् आकाशम्] अंत रहित ऐसा आकाश (ततः) उससे (लोकसे) [अनन्यत् अन्यत्] अनन्य तथा अन्य है।

टीकाः—यह, लोकके बाहर (भी) आकाश होनेकी सूचना है।

जीवादि शेष द्रव्य (-आकाशके अतिरिक्त द्रव्य) मर्यादित परिमाणवाले होनेके कारण लोकसे अनन्य ही हैं, आकाश तो अनंत होनेके कारण लोकसे अनन्य तथा अन्य है ॥ ९१ ॥

सं०ता०—अथ षड्द्रव्यसमवायो लोकस्तस्माद्बहिरनंतमाकाशमलोक इति प्रकटयति-जीवा—जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मद्वयं चकारात्कालश्च। एते सर्वे कथंभूताः। लोगदो अणण्णा—लोकात्सकाशादनन्ये। तत्तो तस्माल्लोकाकाशात् अणण्णमण्णं आगासं—अनन्यदन्यच्चाकाशं यदन्यदलोकाकाशं। तत्किं प्रमाणं ? अंतवदिरित्तं—अन्तव्यतिरिक्तमनंतमिति। अत्र सूत्रे यद्यपि सामान्येन पदार्थानां लोकादनन्यत्वं भणितं तथापि निश्चयेन मूर्तिरहितत्वकेवलज्ञानत्वसहजपरमानंदत्वनित्यत्वनिरंजनत्वादिलक्षणेन शेषद्रव्येभ्यो जीवानामन्यत्वं स्वकीयस्वकीयलक्षणेन शेषद्रव्याणां च जीवेभ्यो भिन्नत्वं। तेन कारणेन ज्ञायते संकरव्यतिकरदोषो नास्तीति भावः ॥ ९१ ॥ एवं लोकालोकाकाशद्वयस्वरूपसमर्थनरूपेण प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतं।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे कहते हैं कि छः द्रव्योंका समुदाय लोक है उससे बाहर अनंत आकाश अलोक है।

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(जीवा) अनंत जीव (पोग्गलकाया) अनंत पुद्गल स्कंध व अणु (धम्माधम्मा) धर्म अधर्मद्रव्य (य) और असंख्यात कालद्रव्य (लोगदो) इस लोकसे (अणण्णा) बाहर नहीं है। (तत्तो) इस लोकाकाशसे (अणण्णं) जो जुदा नहीं है ऐसा (अण्णं) शेष (आयासं) आकाश (अंतवदिरित्तं) अंतरहित अनंत है।

विशेषार्थ—इस सूत्रमें सामान्यसे पदार्थोंका लोकाकाशसे एकपना कहा गया है तथापि निश्चयसे सर्व ही जीव जो मूर्ति रहित हैं, केवलज्ञानमय हैं, सहज परमानंदमई हैं, नित्य हैं और कर्म मैलसे शून्य है सो अपने लक्षणोंसे शेषद्रव्योंसे भिन्न हैं तथा शेषद्रव्य भी अपने २ लक्षणोंको रखते हुए जीवोंसे भिन्न हैं। इस कारणसे यह जाना जाता है कि परस्पर एकक्षेत्रमें रहते हुए भी इनमें संकर व्यतिकर दोष नहीं आता है, अर्थात् कोई द्रव्य किसीसे मिलकर एक नहीं हो जाता है, न कोई द्रव्य बिखरकर अनेक हो जाता है॥ ९१॥

इसतरह लोकाकाश और अलोकाकाश दोनोंके स्वरूपका समर्थन करते हुए प्रथमस्थलमें दो गाथाएं कहीं।

आकाशस्यावकाशैकहेतोर्गतिस्थितिहेतुत्वशङ्कायां दोषोपन्यासोऽयम्,—

आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि।
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ॥ ९२॥

आकाशमवकाशं गमनस्थितिकारणाभ्यां ददाति यदि।
ऊर्ध्वंगतिप्रधानाः सिद्धाः तिष्ठन्ति कथं तत्र॥ ९२॥

यदि खल्वाकाशमवगाहिनामवगाहहेतुर्गतिस्थितिमतां गतिस्थितिहेतुरपि स्यात्, तदा सर्वोत्कृष्टस्वाभाविकोर्ध्वगतिपरिणता भगवंतः सिद्धा बहिरङ्गांतरङ्गसाधनसामग्र्यां सत्यामपि कुतस्तत्राकाशे तिष्ठंति इति॥ ९२॥

अन्वयार्थः—[यदि आकाशम्] यदि आकाश (गमनस्थितिकारणाभ्याम्) गति-स्थितिके कारण सहित [अवकाशं ददाति] अवकाश देता हो (अर्थात् यदि आकाश अवकाशहेतु भी हो और गति स्थितिहेतु भी हो) तो (ऊर्ध्वंगतिप्रधानाः सिद्धाः) ऊर्ध्वगतिप्रधान सिद्ध (तत्र) उसमें (आकाशमें) (कथम्) क्यों [तिष्ठन्ति] स्थिर हों? (आगे गमन क्यों न करें?)

टीकाः—जो मात्र अवकाशका ही हेतु है ऐसा जो आकाश उसमें गतिस्थितिहेतुत्व (भी) होने की शंका की जाये तो दोष आता है उसका यह कथन है।

यदि आकाश, जिस प्रकार वह अवगाहवालोंको अवगाहहेतु है उसी प्रकार, गतिस्थितिवालोंको गति-स्थितिहेतु भी हो, तो सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक ऊर्ध्वगतिसे परिणत सिद्धभगवन्त, बहिरंग अंतरंग साधन रूप सामग्री होने पर भी, क्यों (-किस कारण) उसमें-आकाशमें-स्थिर हों॥ ९२॥

सं०ता०—अथाकाशं जीवादीनां यथावकाशं ददाति तथा यदि गतिस्थिती अपि ददाति तदा दोषं दर्शयति, आयासं-आकाशं कर्तृ, देदि जदि-ददाति यदि चेत्? किं। अवगासं-अवकाशमवगाहं। कथं, सह। काभ्यां। गमणठिदिकारणेहिं--गमनस्थितिकारणाभ्यां। तदा किं दूषणं। उड्ढं गदिप्पधाणा--निर्विकारविशिष्टचैत-

न्यप्रकाशमात्रेण कारणसमयसारभावनाबलेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिविनाशं कृत्वा पश्चात्स्वाभाविकोर्ध्वगतिस्वभावाः संतः । के ते । सिद्धा--स्वभावोपलब्धिसिद्धिरूपाः सिद्धा भगवंतः, चिट्ठंति किह--तिष्ठन्ति कथं । कुत्र ? तत्थ—तत्र लोकाग्र इति । अत्र सूत्रे लोकाद्बहिर्भागेप्याकाशं तिष्ठति तत्र किं न गच्छंतीति भावार्थः ॥ ९२ ॥

हिंदी ता०--उत्थानिका--आगे दिखलाते हैं कि यदि कोई ऐसा माने कि जैसे आकाश, जीव आदि द्रव्योंको अवकाश देता है वैसा वह गमन और स्थिति भी करानेमें सहायक होगा तो ऐसा मानना दोषसहित है:–

अन्वयसहित सामान्यार्थ–(जदि) यदि (आगासं) आकाश द्रव्य (गमणट्ठिदिकारणेहिं) गमन और स्थितिका हेतु होता हुआ (अवगासं) अवकाश (देदि) देता हो तो (किध) किस तरह (सिद्धा) सिद्ध महाराज (उड्ढंगदिप्पधाणा) जिनका स्वभाव ऊपरको जानेका है (तत्थ) वहां लोकके अग्रभागमें (चिट्ठन्ति) ठहर सक्ते हैं।

विशेपार्थ–निर्विकार विशेप चैतन्यके प्रकाशरूप कारण समयसारमई भावनाके बलसे जिन्होंने नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गतिका नाश करके स्वभावकी प्राप्तिरूप सिद्ध अवस्था पाई है ऐसे सिद्ध भगवान स्वभावसे ऊपरको गमन करते हैं । वे यदि आकाशके ही निमित्त-कारणसे जावें तो वे अनंत आकाशमें जासक्ते हैं, क्योंकि आकाश लोकसे बाहर भी है । परंतु वे बाहर नहीं जाते हैं कारण यही है कि वहां धर्म द्रव्य नहीं है । जहांतक धर्म द्रव्य है वहींतक गमनमें सहकारीपना है ॥ ९२ ॥

स्थितिपक्षोपन्यासोऽयम् ,–

जह्मा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
तह्मा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थित्ति ॥ ९३ ॥

यस्मादुपरिस्थानं सिद्धानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
तस्माद्गमनस्थानमाकाशे जानीहि नास्तीति ॥ ९३ ॥

यतो गत्वा भगवंतः सिद्धाः लोकोपर्यवतिष्ठंते, ततो गतिस्थितिहेतुत्वमाकाशे नास्तीति निश्चेतव्यम् । लोकालोकावच्छेदकौ धर्माधर्मावेव गतिस्थितिहेतू मंतव्याविति ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थः-[यस्मात्] चूंकि [जिनवरैः] जिनवरोंने (सिद्धानाम्) सिद्धोंकी [उपरिस्थानं] लोकके ऊपर स्थिति (प्रज्ञप्तम्) कही है, (तस्मात्) इसलिये (गमनस्थानम् आकाशे न अस्ति) गति स्थिति (हेतुपना) आकाशमें नही होता (इति जानीहि) ऐसा जानो ।

टीकाः-(यह, स्थितिपक्ष सम्बन्धी कथन है ।

चूंकि सिद्ध भगवन्त गमन करके लोकके ऊपर स्थिर होते हैं अतः गतिस्थितिहेतुत्व आकाशमें नहीं है ऐसा निश्चय करना, लोक और अलोकका विभाग करनेवाले धर्म तथा अधर्मको ही गति तथा स्थितिके हेतु मानना ॥ ६३ ॥

सं०ता० अथ स्थितिपक्षं प्रतिपादयति,--यस्मादुपरि स्थानं सिद्धानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं तस्माद् गमनस्थान-माकाशे नास्ति जानीहीति । तथाहि--यस्मात्पूर्वगाथायां भणितं लोकाग्रेऽवस्थानं । केषां ? अंजनसिद्धपादुका-सिद्धगुटिकासिद्धदिग्विजयसिद्धखड्गसिद्धादि लौकिकसिद्धविलक्षणानां सम्यक्त्वाद्यष्टगुणांतर्भूतनिर्नामनिर्गो-त्रामूर्तत्वाद्यनंतगुणलक्षणानां सिद्धानां तस्मादेव ज्ञायते नभसि गतिस्थितिकारणं नास्ति किंतु धर्माधर्मावेव गतिस्थित्योः कारणमित्यभिप्रायः ॥ ६३ ॥

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे स्थिति पक्षको कहते हैं–

अन्वयसहित सामान्यार्थ–(जह्मा) क्योंकि [जिणवरेहिं] श्री जिनेन्द्रोंने (सिद्धाणं) सिद्धोंका [उवरिट्ठाणं] लोकके अग्रभागमें तिष्ठना (पण्णत्तं) कहा है (तह्मा) इसलिये (आयासे) आकाशमें [गमणट्ठाणं] गमन और स्थितिमें सहकारीपना (णत्थित्ति) नहीं है ऐसा [जाण] जानो ।

विशेषार्थ–सिद्ध भगवान अनन्तसिद्ध, पादुकासिद्ध, गुटिकासिद्ध, दिग्विजयसिद्ध, खड्गसिद्ध इत्यादि लौकिक सिद्धोंसे विलक्षण हैं। जिनके सम्यग्दर्शन आदि आठ गुण मुख्य हैं इनही में गर्भित नामरहित, गोत्ररहित, मूर्तिरहितपना आदि अनंतगुण हैं ऐसे सिद्धोंका निवास लोकके अग्रभागमें है जैसा पहली गाथामें कह चुके हैं। इसीसे ही जाना जाता है कि आकाशमें गति और स्थिति कारणपना नहीं है, किन्तु धर्म और अधर्म ही गति और स्थितिको कारण हैं, यह अभिप्राय है ॥ ६३ ॥

आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वाभावे हेतूपन्यासोऽयम्,–

जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं ।
पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवुड्ढी ॥ ६४ ॥

यदि भवति गमनहेतुराकाशं स्थानकारणं तेषां ।
प्रसजत्यलोकहानिर्लोकस्य चांतपरिवृद्धिः ॥ ६४ ॥

नाकाशं गतिस्थितिहेतुः लोकालोकसीमव्यवस्थायास्तथोपपत्तेः । यदि गतिस्थित्योराकाशमेव निमित्तमिष्येत्, तदा तस्य सर्वत्र सद्भावाज्जीवपुद्गलानां गतिस्थित्योर्निःसीमत्वात्प्रतिक्षणमलोको हीयते । पूर्वं पूर्वं व्यवस्थाप्यमानश्चांतो लोकस्योत्तरोत्तरपरिवृद्ध्या विघटते । ततो न तत्र तद्धेतुरिति ॥ ६४ ॥

अन्वयार्थः--[यदि] यदि (आकाशं) आकाश (तेषाम्) जीव-पुद्गलोंको (गमनहेतुः) गतिहेतु और [स्थानकारणं] स्थितिहेतु (भवति) हो तो (अलोकहानिः) अलोककी हानिका (च) और (लोकस्य अन्तपरिवृद्धिः) लोकके अन्तकी वृद्धिका (प्रसजति) प्रसंग आये।

टीका:--यहां, आकाशको गतिस्थितिहेतुत्वका अभाव होने सम्बन्धी हेतु उपस्थित किया गया है।

आकाश गतिस्थितिका हेतु नहीं है, क्योंकि लोक और अलोककी सीमाकी व्यवस्था इसी प्रकार बन सकती है। यदि आकाशको ही गति स्थितिका निमित्त माना जाये, तो आकाशका सद्भाव सर्वत्र होनेके कारण जीव-पुद्गलोंकी गतिस्थितिकी कोई सीमा न रहनेसे प्रतिक्षण अलोककी हानि होगी और पहले-पहले व्यवस्थापित हुआ लोकका अन्त उत्तरोत्तर वृद्धि पानेसे लोकका अन्त ही टूट जायेगा। इसलिये आकाश गति स्थिति हेतु नहीं है ॥ ९४ ॥

सं०ता०-अथाकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वाभावे साध्ये पुनरपि कारणं कथयति, जदि हवदि—यदि चेद्भवति। स कः। गमणहेदू—गमनहेतुः। किं। आयासं—आकाशं, न केवलं गमनहेतुः ? ठाणकारणं—स्थितिकारणं। केषां। तेसिं-तेषां जीवपुद्गलानां। तदा किं दूषणं भवति। पसयदि-प्रसजति प्राप्नोति। सा का। अलोगहाणी—अलोकहानिः न केवलमलोकहानिः, लोगस्स य अंतपरिवड्ढी-लोकस्य चांतपरिवृद्धिरिति। तद्यथा—यद्याकाशं गतिस्थित्योः कारणं च भवति तदा तस्याकाशस्य लोकबहिर्भागेपि सद्भावात्तत्रापि जीवपुद्गलानां गमनं भवति ततश्चालोकस्य-हानिर्भवति लोकांतस्य तु वृद्धिर्भवति न च तथा, तस्मात्कारणात् ज्ञायते नाकाशं स्थितिगत्योः कारणमित्यभिप्रायः ॥ ९४ ॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे आकाशमें गति और स्थितिमें कारणपना नहीं है, इसकी सिद्धि करनेको और भी कारण बताते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थः—[जदि] यदि (आगासं) आकाश द्रव्य [तेसिं] उन जीव पुद्गलोंके (गमणहेदू) गमनका कारण व (ठाणकारणं) ठहरनेका कारण [हवदि] होजावे तो (अलोगहाणी) अलोकाकाशकी हानि [पसजदि] होजावे [य] और [लोगस्स] लोकाकाशकी [अंतपरिवुड्ढी] मर्यादा बढ़ जावे।

विशेषार्थ—यदि आकाश गति व स्थितिमें कारण हो तो लोकाकाशके बाहर भी आकाशकी सत्ता है तब जीव और पुद्गलोंका गमन अनंत आकाशमें भी हो जावे इससे अलोकाकाश न रहे और लोककी हद बढजावे लेकिन ऐसा नहीं है। इसी कारणसे यह सिद्ध है कि आकाश गति और स्थितिके लिये कारण नहीं है ॥ ९४ ॥

आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वनिरासव्याख्योपसंहारोऽयम्,—

तह्मा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं।
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥ ९५ ॥

तस्माद्धर्माधर्मौ गमनस्थितिकारणे नाकाशं ।
इति जिनवरैः भणितं लोकस्वभावं शृण्वताम् ॥ ९५ ॥

धर्माधर्मावेव गतिस्थितिकारणे नाकाशमिति ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थः—(तस्मात) इसलिये (गमनस्थितिकारणे) गति और स्थितिके कारण (धर्माधर्मौ) धर्म और अधर्म हैं, (न आकाशम्) आकाश नहीं है। (इति) ऐसा (लोकस्वभावं शृण्वताम्) लोकस्वभावके श्रोताओंको (जिनवरैः भणितम्) जिनवरोंने कहा है।

टीका:—यह, आकाशको गतिस्थितिहेतुत्व होनेके खंडन सम्बन्धी कथनका उपसंहार है।

धर्म और अधर्म ही गति और स्थितिके कारण हैं, आकाश नहीं ॥ ९५ ॥

सं०ता०—अथाकाशस्य गतिस्थितिकारणनिराकरणव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते, तस्माद्धर्माधर्मौ गमनस्थितिकारणे, न चाकाशं इति जिनवरैर्भणितं। केषां संबन्धित्वेन । भव्यानां । किंकुर्वतां । समवशरणे लोकस्वभावं शृण्वतामिति भावार्थः ॥ ९५ ॥ एवं धर्माधर्मौ गतिस्थित्योः कारणं न चाकाशमिति कथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतं।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे आकाश गति व स्थितिमें कारण नहीं है इसी व्याख्यानको संकोच करके कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—[तह्मा] इस कारणसे [धम्माधम्मा] धर्म अधर्म [गमणट्ठिदिकारणाणि] गमन और स्थितिमें सहकारी कारण है, [आगासं ण] आकाश कारण नहीं है [इदि] ऐसा [सुणंताणं] समवशरणमें लोकका स्वभाव सुननेवाले भव्योंको [जिणवरेहिं] जिनेन्द्र देवोंने [भणिदं] कहा है ।' ९५ ॥

इस तरह धर्म अधर्म गति और स्थितिमें कारण हैं, न कि आकाश ऐसा कहते हुए दूसरे स्थलमें गाथाएं चार समाप्त हुई।

धर्माधर्मलोकाकाशानामवगाहवशादेकत्वेऽपि वस्तुत्वेनान्यत्वमत्रोक्तम् ,—

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा ।
पुधगुवलद्धविसेसा करिंति एगत्तमण्णत्तं ॥ ९६ ॥

धर्माधर्माकाशान्यपृथग्भूतानि समानपरिमाणानि ।
पृथगुपलब्धविशेषाणि कुर्वंत्येकत्वमन्यत्वं ॥ ९६ ॥

धर्माधर्मलोकाकाशानि हि समानपरिमाणत्वात्सहावस्थानमात्रेणैवैकत्वभाञ्जि । वस्तुतस्तु व्यवहारेण गतिस्थित्यवगाहहेतुत्वरूपेण निश्चयेन विभक्तप्रदेशत्वरूपेण विशेषेण पृथगु-

पलभ्यमानेनान्यत्वभाञ्ज्येव भवंतीति ॥ ९६ ॥

इत्याकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम्।

अन्वयार्थः—(धर्माधर्माकाशानि) धर्म, अधर्म और आकाश (लोकाकाश) [समानपरिमाणानि) समानपरिमाणवाले (अपृथग्भूतानि) अपृथग्भूत होनेसे तथा (पृथगुपलब्धविशेषाणि) पृथक् उपलब्ध (भिन्न-सिद्ध) विशेषवाले होनेसे (एकत्वम् अन्यत्वम्) एकत्व तथा अन्यत्वको (कुर्वंति) करते हैं (प्राप्त होते हैं) ।

टीका:-यहां धर्म, अधर्म और लोकाकाशका अवगाहकी अपेक्षासे एकत्व होने पर भी वस्तुरूपसे अन्यत्व कहा गया है।

धर्म, अधर्म और लोकाकाश समान परिमाणवाले होनेके कारण साथ रहनेमात्रसे ही (-मात्र एकक्षेत्रावगाहकी अपेक्षासे ही) एकत्ववाले हैं, वस्तुतः तो, (१) व्यवहारसे गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व और अवगाहनहेतुत्वरूप (पृथक्-उपलब्ध विशेष द्वारा) तथा (२) निश्चयसे विभक्तप्रदेशत्वरूप पृथक् उपलब्ध विशेष द्वारा, वे अन्यत्ववाले ही हैं ॥ ९६ ॥

सं०ता०-अथ धर्माधर्माकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वाद्व्यवहारेणैकत्वं निश्चयेन भिन्नत्वं दर्शयति,-धम्माधम्मागासा-धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याणि भवन्ति। किंविशिष्टानि । अपुधभूदा समाणपरिमाणा—व्यवहारनयेनापृथग्भूतानि तथा समानपरिमाणानि च । पुनश्च किंरूपाणि । पुधगुवलद्धविसेसा-निश्चयेन पृथग्रूपेणोपलब्धविशेषाणि । इत्थंभूतानि संति किं कुर्वन्ति ? करेंति-कुर्वन्ति, एयत्तमण्णत्तं-व्यवहारेणैकत्वं निश्चयेनान्यत्वं चेति । तथाहि—यथायं जीवः पुद्गलादिपंचद्रव्यैः सह शेषजीवांतरैश्चैकक्षेत्रावगाहित्वाद्व्यवहारेणैकत्वं करोति निश्चयेन तु समस्तवस्तुगतानंतधर्मयुगपत्प्रकाशेन परमचैतन्यविलासलक्षणज्ञानगुणेन भिन्नत्वं च तथा धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याण्येकक्षेत्रावगाहेनाभिन्नत्वात्समानपरिमाणत्वाच्चोपचरितासद्भूतव्यवहारेण परस्परमेकत्वं कुर्वन्ति, निश्चयनयेन गतिस्थित्यवगाहरूपस्वकीयस्वकीयलक्षणैर्नानात्वं चेति सूत्रार्थः ॥ ९६ ॥ एवं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकत्वान्यत्वकथनरूपेण तृतीयस्थले गाथासूत्रं गतं । इति पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्यानरूपः सप्तमोंतराधिकारः समाप्तः ।

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे धर्म, अधर्म, आकाश एक क्षेत्रमें अवगाह पारहे हैं इसलिये इनमें व्यवहारसे एकपना है परन्तु निश्चयसे भिन्नपन है ।

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(धम्माधम्मागासा) धर्म अधर्म और आकाश (समाणपरिमाणा) समान परिमाणको रखनेवाले हैं अतएव [अपुधब्भूदा] अलग नहीं हैं, परन्तु [पुधगुवलद्धविसेसा] अलग २ अपने २ द्रव्यपनेको रखते हैं इसलिये (एगत्तं) एकपने [अण्णत्तं] व अनेकपनेको [करंति] करते हैं ।

विशेषार्थ-व्यवहारसे धर्म, अधर्म व लोकाकाश एक समान असंख्यात प्रदेशको रखने-

वाले हैं इसलिये इनमें एकता है, परन्तु निश्चयसे ये तीनों अपने अपने स्वभाव में है, इससे अनेकता या भिन्नता है। जैसे यह जीव पुद्गल आदि पांच द्रव्योंके साथ व अन्य जीवोंके साथ एक क्षेत्रमें अवगाहरूप रहनेसे व्यवहारसे एकपनेको बताता है, परन्तु निश्चयनयसे भिन्नपनेको प्रगट करता है, क्योंकि यह जीव एक समयमें सर्व पदार्थोंमें प्राप्त अनंत स्वभावोंको प्रकाश करने वाले परमचैतन्यके विलासरूप अपने ज्ञान गुणसे शोभायमान है। तैसे ही धर्म, अधर्म और लोकाकाश द्रव्य एक क्षेत्रमें अवगाहरूप होनेसे अभिन्न हैं तथा समान प्रदेशोंका परिमाण रखते हैं इसलिये उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे परस्पर एकता करते हैं, परन्तु निश्चयनयसे अपने अपने गति स्थिति व अवगाह लक्षणको रखनेसे नानापना या भिन्नपना करते हैं—यह सूत्रका अर्थ है ॥ ९६ ॥

इसतरह धर्म, अधर्म व लोकाकाशमें एकता व अनेकताको कहते हुए तीसरे स्थलमें गाथा-सूत्र कहा।

इसतरह पंचास्तिकाय छः द्रव्यके प्रतिपादक महाअधिकारके मध्यमें सात गाथाओं तक तीन स्थलोंके द्वारा आकाश नाम अस्तिकायका व्याख्यानरूप सातमा अन्तर अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ चूलिका। अत्र द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं चोक्तम् ,—

आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥ ९७ ॥

आकाशकालजीवा धर्माधर्मौ च मूर्तिपरिहीनाः।
मूर्तं पुद्गलद्रव्यं जीवः खलु चेतनस्तेषु ॥ ९७ ॥

स्पर्शरसगंधवर्णसद्भावस्वभावं मूर्तं। स्पर्शरसगंधवर्णाऽभावस्वभावममूर्तं, चैतन्यसद्भाव-स्वभावं चेतनं। चैतन्याभावस्वभावमचेतनं। तत्रामूर्तमाकाशं, अमूर्तः कालः, अमूर्तः स्वरूपेण जीवः पररूपावेशान्मूर्तोऽपि, अमूर्तो धर्मः, अमूर्तोऽधर्मः मूर्तः पुद्गल एवैक इति। अचेतन-माकाशं, अचेतनः कालः, अचेतनो धर्मः, अचेतनोऽधर्मः, अचेतनः पुद्गलः, चेतनो जीव एवैक इति ॥ ९७ ॥

अन्वयार्थः—(आकाशकालजीवाः) आकाश, काल, जीव, (धर्माधर्मौ च) धर्म और अधर्म (मूर्तिपरिहीनाः) अमूर्त हैं, (पुद्गलद्रव्यं मूर्तं) पुद्गलद्रव्य मूर्त है। (तेषु) उनमें (जीवः) जीव (खलु) वास्तवमें (चेतनः) चेतन है।

टीकाः—यहां द्रव्योंका मूर्तामूर्तपना और चेतना चेतनपना कहा गया है।

स्पर्श रस-गंध-वर्णका सद्भाव जिसका स्वभाव है वह मूर्त है, स्पर्श-रस-गंध वर्णका अभाव

जिसका स्वभाव है वह अमूर्त है। चैतन्यका सद्भाव जिसका स्वभाव है वह चेतन है, चैतन्यका अभाव जिसका स्वभाव है वह अचेतन है। वहां, आकाश अमूर्त है, काल अमूर्त है, जीव स्वरूपसे अमूर्त है, पर-रूपमें प्रवेश द्वारा (–मूर्त द्रव्यके संयोगकी अपेक्षासे) मूर्त भी है, धर्म अमूर्त है, अधर्म अमूर्त है, पुद्‌गल ही एक मूर्त है। आकाश अचेतन है, काल अचेतन है, धर्म अचेतन है, अधर्म अचेतन है, पुद्‌गल अचेतन है, जीव ही एक चेतन है ॥ ६७ ॥

सं०ता०–तदनंतरमष्टगाथापर्यंतं पंचास्तिकायषड्‌द्रव्यचूलिकाव्याख्यानं करोति । तत्र गाथाष्टकमध्ये चेतनाचेतनमूर्तामूर्तत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन "आयास" इत्यादि गाथासूत्रमेकं, अथ सक्रियनिःक्रियत्वमुख्यत्वेन "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि सूत्रमेकं, पुनश्च प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तत्वकथनमुख्यत्वेन "जे खलु इंदियगेज्झा" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ नवजीर्णपर्यायादिस्थितिरूपो व्यवहारकालः जीवपुद्‌गलादीनां पर्यायपरिणतेः सहकारिकारणभूतः कालाणुरूपो निश्चयकाल इति कालद्वयव्याख्यानमुख्यत्वेन "कालो परिणामभवो" इत्यादि गाथाद्वयं, तस्यैव कालस्य द्रव्यलक्षणसंभवात् द्रव्यत्वं द्वितीयादिप्रदेशाभावादकायत्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन 'एदे कालागासा' इत्यादि सूत्रमेकं, अथ पंचास्तिकायांतर्गतस्य केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धजीवास्तिकायस्य वीतरागनिर्विकल्पसमाधिपरिणतिकाले निश्चयमोक्षमार्गभूतस्य भावनाफलप्रतिपादनरूपेण 'एवं पवयणसारं' इत्यादि गाथाद्वयं । इत्यष्टगाथाभिः षट्स्थलैश्चूलिकायां समुदायपातनिका । तद्यथा–

द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं प्रतिपादयति, स्पर्शरसगंधवर्णवत्या मूर्त्या रहितत्वादमूर्ता भवन्ति । ते के । आकाशकालजीवधर्माधर्माः किंतु जीवो यद्यपि निश्चयेनामूर्ताखंडैकप्रतिभासमयत्वादमूर्तस्तथापि रागादिरहितसहजानंदैकस्वभावात्मतत्त्वभावनारहितेन जीवेन यदुपार्जितं मूर्तं कर्म तत्संसर्गाद्व्यवहारेण मूर्तोपि भवति स्पर्शरसगंधवर्णवत्त्वान्मूर्तं पुद्‌गलद्रव्यं संशयादिरहितत्वस्वपरपरिच्छित्तिसमर्थानंतचैतन्यपरिणतत्वाज्जीवः खलु चेतकस्तेषु स्वपरप्रकाशकचैतन्याभावान् शेषाण्यचेतनानीति भावार्थः ॥ ६७ ॥ एवं चेतनाचेतनमूर्तामूर्तप्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथासूत्रं गतं ।

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे आठ गाथाओंतक पांच अस्तिकाय और छ द्रव्यकी चूलिकाका व्याख्यान करते हैं। इन आठ गाथाओंके मध्यमें चेतन, अचेतन, मूर्तीक व अमूर्तीकपनेको कहनेकी मुख्यतासे "आयास" इत्यादि गाथा सूत्र एक है फिर सक्रियपना और निःक्रियपना कहनेकी मुख्यतासे "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि सूत्र एक है फिर मूर्त अमूर्तका लक्षण कहते हुये 'जे खलु इंदियगेज्झा' इत्यादि सूत्र एक है। फिर नव जीर्ण पर्यायकी स्थितिरूप व्यवहारकाल है तथा जीव पुद्‌गलादिकोंकी पर्यायकी परिणतिमें सहकारी कारण निश्चयकाल है। इस तरह दोनों प्रकारके कालके व्याख्यानकी मुख्यतासे "कालो परिणामभवो" इत्यादि गाथाएं दो हैं उसही कालमें द्रव्यका लक्षण संभव होता है इससे उसमें द्रव्यपना है तथा द्वितीय आदि प्रदेश नहीं हैं इससे अकायपना है, ऐसा कहनेकी मुख्यतासे "एदे कालागासा" इत्यादि

सूत्र एक है। फिर पांच अस्तिकायोंके भीतर केवलज्ञान व केवलदर्शनरूप शुद्ध जीवास्तिकाय गर्भित है। यह जब वीतराग निर्विकल्प समाधिमें परिणमन करता है तब निश्चय मोक्षमार्गरूप होता है इस निश्चय मोक्षमार्गकी भावनाका फल कहते हुए 'एवं पवयणसारं' इत्यादि गाथाएं दो हैं। इसतरह आठ गाथाओंसे छः स्थलोंके द्वारा चूलिकामें समुदायपातनिका कही।

अब द्रव्योंके मूर्त अमूर्त्तपनेको व चेतन अचेतनपनेको कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(आगासकालजीवा) आकाश, काल, जीव, (धम्माधम्मा) धर्म और अधर्म (मुत्तिपरिहीणा) मूर्तिरहित अमूर्तिक हैं, (पोग्गलदव्वं) पुद्गलद्रव्य (मुत्तं) मूर्तीक है। (तेसु) इन छहोंमें (खलु) निश्चयसे (जीवो) जीव द्रव्य (चेदणो) चेतन है।

विशेषार्थ—जिसमें स्पर्श रस गंध वर्ण हो उसको मूर्ति कहते हैं व जिनमें ये गुण न हों उनको अमूर्तीक कहते हैं। ये अमूर्तीक द्रव्य पुद्गलको छोडकर पांच हैं। यद्यपि जीव निश्चयसे अमूर्तीक अखंड एक प्रतिभासमयीपनेसे अमूर्तीक है तथापि रागादिरहित सहज आनंदमई एक स्वभावरूप आत्मतत्त्वकी भावनासे रहित जीवने जो मूर्तीक कर्म बांधे हैं उन कर्मोंकी संगतिसे व्यवहारनयसे यह मूर्तीक भी कहलाता है। संशय आदिसे रहित होकर आप और परको जाननेको समर्थ जो अनन्त चैतन्यकी परिणति उसको रखनेसे यह जीव वास्तवमें चेतनेवाला चेतन है तथा अन्य पांच द्रव्योंमें स्वपर प्रकाशक चैतन्यगुण नहीं है इससे वे पांचों अचेतन हैं यह तात्पर्य है ॥ ६७ ॥

इसतरह चेतन अचेतन मूर्त अमूर्तको प्रतिपादन करनेकी मुख्यतासे गाथासूत्र समाप्त हुआ

अथ सक्रियनिष्क्रियत्वमुक्तम्।

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा।
पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु ॥ ६८ ॥

जीवाः पुद्गलकायाः सह सक्रिया भवन्ति न च शेषाः।
पुद्गलकरणा जीवाः स्कंधाः खलु कालकरणास्तु ॥ ६८ ॥

प्रदेशांतरप्राप्तिहेतुः परिस्पंदनरूपपर्यायः क्रिया। तत्र सक्रिया बहिरंगसाधनेन सहभूताः जीवाः, सक्रिया बहिरंगसाधनेन सहभूताः पुद्गलाः। निष्क्रियमाकाशं, निष्क्रियो धर्मः, निष्क्रियोऽधर्मः, निष्क्रियः कालः। जीवानां सक्रियत्वस्य बहिरंगसाधनं कर्मनोकर्मोपचयरूपाः पुद्गला इति ते पुद्गलकरणाः। तदभावान्निःक्रियत्वं सिद्धानाम्। पुद्गलानां सक्रियत्वस्य बहिरंगसाधनं परिणामनिर्वर्तकः काल इति ते कालकरणाः। न च कर्मादीनामिव कालस्याभावः। ततो न सिद्धानामिव निष्क्रियत्वं पुद्गलानामिति ॥ ६८ ॥

अन्वयार्थः-(सह जीवाः पुद्गलकायाः) बाह्य करण सहित स्थित जीव और पुद्गल (सक्रियाः भवन्ति) सक्रिय हैं, (न च शेषाः) शेष द्रव्य सक्रिय नहीं हैं, (जीवाः) जीव (पुद्गलकरणाः) पुद्गल-करणवाले (-जिन्हें सक्रियपनेमें पुद्गल बहिरंग साधन हो ऐसे) हैं (स्कन्धाः खलु कालकरणाः तु) और स्कन्ध अर्थात् पुद्गल तो कालकरणवाले (-जिन्हें सक्रियपनेमें काल बहिरंग साधन हो ऐसे) हैं।

टीकाः-यहां (द्रव्योंका) सक्रिय-निष्क्रियपना कहा गया है।

प्रदेशान्तरप्राप्तिका हेतु ऐसी जो परिस्पन्दरूप पर्याय, वह क्रिया है। वहां, बहिरंग साधनके साथ रहनेवाले जीव सक्रिय हैं, बहिरंग साधनके साथ रहनेवाले पुद्गल सक्रिय हैं। आकाश निष्क्रिय है, धर्म निष्क्रिय है, अधर्म निष्क्रिय है, काल निष्क्रिय है।

जीवोंको सक्रियपनेका बहिरंग साधन कर्म नोकर्मके संचयरूप हैं, इसलिये जीव पुद्गलकरणवाले हैं। उसके अभावके कारण सिद्धोंको निष्क्रियपना है। पुद्गलोंको सक्रियपनेका बहिरंग साधन परिणाम-निष्पादक काल है, इसलिये पुद्गल कालकरणवाले हैं।

कर्मादिककी भांति कालका अभाव नहीं होता, इसलिये सिद्धोंकी भांति पुद्गलोंको निष्क्रियपना नहीं होता॥ ९८॥

सं०ता०-अथ द्रव्याणां सक्रियनिःक्रियत्वं कथयति, जीवाः पुद्गलकाया सह सकिरिया हवंति-सक्रिया भवंति। कथं। सह। सह कोर्थः। बहिरंगसहकारिकारणैः सहिताः। ण य सेसा—न च जीवपुद्गलाभ्यां शेषद्रव्याणि सक्रियाणि। जीवानां सक्रियत्वे बहिरंगनिमित्तं कथ्यते। पोग्गलकरणा जीवा—मनोवचन-कायव्यापाररूपक्रियापरिणतैर्निःक्रियनिर्विकारशुद्धात्मानुभूतिभावनाच्युतैर्जीवैर्ये समुपार्जिताः कर्मनो-कर्मपुद्गलास्त एव करणं कारणं निमित्तं येषां ते जीवाः पुद्गलकरणा भण्यंते। खंदा—स्कंधा स्कंधशब्देनात्र स्कंधाणुभेदभिन्ना द्विधा पुद्गला गृह्यन्ते। ते च कथंभूताः? सक्रियाः। कैःकृत्वा? कालकरणेहिं—परिणाम-निर्वर्तककालाणुद्रव्यैः खलु स्फुटं। अत्र यथा शुद्धात्मानुभूतिबलेन कर्मक्षये जाते कर्मनोकर्मपुद्गलाना-मभावात्सिद्धानां निःक्रियत्वं भवति, न तथा पुद्गलानां। कस्मात्? कालस्य सर्वदैव वर्णवत्या मूर्त्या रहि-तत्वादमूर्तस्य विद्यमानत्वादिति भावार्थः॥ ९८॥ एवं सक्रियनिःक्रियत्वमुख्यत्वेन गाथा गता।

हिंदी ता०-उत्थानिका—आगे द्रव्योंमें क्रियावानपना और निःक्रियपना बताते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थः-(जीवा) जीव और (पोग्गलकाया) पुद्गलकाय ये दो द्रव्य (सह) बाहरी कारणोंके होनेपर (सकिरिया) क्रिया सहित (हवंति) होते हैं (सेसा) शेष चार द्रव्य (ण य) क्रियावान नहीं हैं। (जीवा) जीव (पुग्गलकरणा) पुद्गलोंकी सहायतासे और (खंधा) पुद्गलोंके स्कन्ध (खलु) वास्तवमें (कालकरणा दु) कालद्रव्यके कारणसे क्रियावान होते हैं।

विशेषार्थ—जीवोंने क्रिया रहित निर्विकार शुद्धात्माके अनुभवकी भावनासे गिरकर अपने

मन, वचन, कायकी हलनचलन क्रियाकी परिणतियोंसे जो द्रव्यकर्म या नोकर्म पुद्गल एकत्र किये हैं वे ही जीवोंकी क्रियामें कारण होते हैं तथा पुद्गलोंके स्कन्ध और परमाणु इन दो प्रकारके पुद्गलोंके परिणमन होनेमें बाहरी कारण कालाणुरूप द्रव्य है, उनके निमित्तसे ये क्रियावान होते हैं। यहां यह तात्पर्य है कि जीव जो शुद्धात्मानुभवकी भावनाके बलसे कर्मोंका क्षयकर तथा सर्व द्रव्यकर्म और नोकर्म पुद्गलोंका अभाव करके सिद्ध हो जाते हैं और तब वे क्रियारहित होजाते हैं ऐसा पुद्गलोंमें नहीं होता है, क्योंकि काल जो वर्णादिसे रहित अमूर्तीक है सो सदा ही विद्यमान रहता है। उसके निमित्तसे पुद्गल यथासम्भव क्रिया करते रहते हैं ९८

इसतरह सक्रिय निःक्रियपनेकी मुख्यतासे गाथा समाप्त हुई।

मूर्तामूर्तलक्षणाख्यानमेतत्।

जे खलु इन्दियगेज्झा बिसया जीवेहिं होंति ते मुत्ता।
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥९९॥

ये खलु इन्द्रियग्राह्या विषया जीवैर्भवन्ति ते मूर्ताः।
शेषं भवत्यमूर्तं चित्तमुभयं समाददाति ॥ ९९ ॥

इह हि जीवैः स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुर्भिरिन्द्रियैस्तद्विषयभूताः स्पर्शरसगंधवर्णस्वभावा अर्था गृह्यन्ते। श्रोत्रेन्द्रियेण तु त एव तद्विषयहेतुभूतशब्दाकारपरिणता गृह्यन्ते। ते कदाचित्स्थूलस्कंधत्वमापन्नाः कदाचित्सूक्ष्मत्वमापन्नाः कदाचित् परमाणुत्वमापन्नाः इन्द्रियग्रहणयोग्यतासद्भावाद् गृह्यमाणा अगृह्यमाणा वा मूर्ता इत्युच्यंते। शेषमितरत् समस्तमप्यर्थजातं स्पर्शरसगंधवर्णाभावस्वभावमिन्द्रियग्रहणयोग्यताया अभावादमूर्तमित्युच्यते। चित्तग्रहणयोग्यतासद्भावभाग्भवति तदुभयमपि, चित्तं ह्यनियतविषयमप्राप्यकारि मतिश्रुतज्ञानसाधनीभूतं मूर्तममूर्तं च समाददातीति ॥ ९९ ॥

–इति चूलिका समाप्ता।

अन्वयार्थः–(ये खलु) जो पदार्थ (जीवैः इन्द्रियग्राह्याः विषयाः) जीवोंके इन्द्रियग्राह्य विषय हैं (ते मूर्ताः भवन्ति) वे मूर्त हैं और [शेष] शेष पदार्थसमूह (अमूर्तं भवति) अमूर्त है। (चित्तम्) चित्त (मन) (उभयं) उन दोनोंको [मूर्त अमूर्त को] (समाददाति) ग्रहण करता है (जानता है)।

टीका:–यह, मूर्त और अमूर्तके लक्षणका कथन है।

इस लोकमें जीवों द्वारा स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय द्वारा उनके विषयभूत, स्पर्श रस गंध वर्णस्वभाववाले पदार्थ ग्रहण होते हैं और श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा वही पदार्थ उसके (श्रोत्रेन्द्रियके) विषयहेतुभूत शब्दाकार परिणमित हुए ग्रहण होते हैं। वे (वे पदार्थ), कदाचित् स्थूल-

स्कन्धपनेको प्राप्त होते हुए, कदाचित् सूक्ष्मत्वको प्राप्त होते हुए और कदाचित् परमाणुपनेको प्राप्त होते हुए इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होते हों या न होते हों, इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होने की योग्यताका (सदैव) सद्भाव होनेसे मूर्त कहलाते हैं।

स्पर्श-रस-गंध—वर्णका अभाव जिसका स्वभाव है ऐसा शेष अन्य समस्त पदार्थसमूह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होनेकी योग्यताके अभावके कारण 'अमूर्त' कहलाता है।

वे दोनों (पूर्वोक्त दोनों प्रकारके अर्थात् मूर्त अमूर्त पदार्थ) चित्त (मन) द्वारा ग्रहण होनेकी योग्यताके सद्भाववाले हैं, चित्त-जो कि अनियत विषयवाला, अप्राप्यकारी और मतिश्रुतज्ञानको साधनभूत है वह मूर्त तथा अमूर्तको ग्रहण करता है (जानता है) ॥ ९९ ॥

इस प्रकार चूलिका समाप्त हुई।

सं०ता०--अथ पुनरपि प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तस्वरूपं कथयति,-जे खलु इन्दियगेज्झा विसया—ये खलु इन्द्रियैः करणभूतैर्ग्राह्या विषयाः कर्मतापन्नाः। कैः कर्तृभूतैः। जीवेहिं—विषयसुखानंदरतैर्नीरागनिर्विकल्पनिजानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादच्युतैर्बहिर्मुखजीवैः, होंति ते मुत्ता-भवन्ति ते मूर्ताः विषयातीतस्वाभाविकसुखस्वभावात्मतत्त्वविपरीतविषयास्ते च सूक्ष्मत्वेन केचन यद्यपीन्द्रियविषयाः वर्तमानकाले न भवन्ति तथापि कालांतरे भविष्यंतीतीन्द्रियग्रहणयोग्यतासद्भावादिन्द्रियग्रहणयोग्या भण्यंते। सेसं हवदि अमुत्तं-अमूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखादिगुणाधारं यदात्मद्रव्यं तत्प्रभृति पंचद्रव्यरूपं पुद्गलादन्यत् यच्छेषं तद्भवत्यमूर्तं। चित्तं उभयं समादियदि-चित्तमुभयं समाददाति। चित्तं हि मतिश्रुतज्ञानयोरुपादानकारणभूतमनियतविषयं च तच्च श्रुतज्ञानस्वसंवेदनज्ञानरूपेण यदात्मग्राहकं भावश्रुतं तत्प्रत्यक्षं यत्पुनर्द्वादशांगचतुर्दशपूर्वरूपपरमागमसंज्ञं तच्च मूर्तामूर्तोभयपरिच्छित्तिविषये व्याप्तिज्ञानरूपेण परोक्षमपि केवलज्ञानसदृशमित्यभिप्रायः। तथा चोक्तं। "सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो। सुदणाणं च परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं" ॥ ९९ ॥ एवं प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तस्वरूपकथनगाथा गता।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे फिर भी अन्य प्रकारसे मूर्त और अमूर्तका स्वरूप कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(जीवेहिं) जीवोंके द्वारा (खलु) निश्चय करके (जे विषया) जो जो पदार्थ (इंदियगेज्झा) इंद्रियोंकी सहायतासे ग्रहणयोग्य (हुंति) होते हैं (ते मुत्ता) वे मूर्तीक हैं। (सेसं) शेष सर्व जीवादि पांच द्रव्य (अमुत्तं) अमूर्तीक (हवदि) होते हैं। (चित्तं) मन (उभयं) मूर्तीक अमूर्तीक दोनोंको (समादियदि) ग्रहण करता है।

विशेषार्थ—जो जीव विषयसुखके आनंदमें रत हैं तथा वीतराग निर्विकल्प आत्मानन्दमई सुखामृतरसके आस्वादसे बाहर हैं वे जिन इन्द्रिय विषयोंको ग्रहण करते हैं वे मूर्तीक हैं। वे इन्द्रियोंके विषय, विषयोंसे रहित स्वाभाविक सुख स्वभावधारी आत्मतत्त्वसे विपरीत हैं। इन पुद्गल मूर्तीक द्रव्योंमें कोई ऐसे सूक्ष्म होते हैं जो वर्तमानकालमें इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहणमें नहीं

आते हैं तथापि कालांतरमें जब वे इंद्रियोंके द्वारा ग्रहण किये जानेलायक योग्यताको प्राप्त कर लेंगे तब वे इन्द्रियोंसे ग्रहण योग्य होजांयगे। अमूर्तीक अतींद्रिय ज्ञान और सुखादि गुणोंका आधार जो आत्मद्रव्य है उसको लेकर पुद्गलके सिवाय जो पांच द्रव्य हैं वे अमूर्तीक हैं। चित्त मूर्त अमूर्त दोनोंको ग्रहण करता है।

यह चित्त मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका उपादान कारण है। इसका विषय नियत नहीं है। उनमेंसे जो भावश्रुत स्वसंवेदनज्ञान रूपसे आत्माको ग्रहण करनेवाला है वह प्रत्यक्ष है तथा जो श्रुतज्ञान बारह अंग चौदह पूर्वरूप परमागम नामसे है वह मूर्तीक अमूर्तीक दोनोंको जाननेको समर्थ है। यह ज्ञान व्याप्ति-ज्ञानकी अपेक्षासे परोक्ष है, तोभी केवलज्ञानके समान है। जैसा कहा है-

ज्ञानकी अपेक्षा श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों ही समान होते हैं तोभी श्रुतज्ञान परोक्ष है, तथा केवलज्ञान प्रत्यक्ष है ॥ ९९ ॥

इसतरह प्रकारांतर से मूर्त अमूर्तका स्वरूप कथन करते हुए गाथा समाप्त हुई।

व्यवहारकालस्य निश्चयकालस्य च स्वरूपाख्यानमेतत् ।

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो ।
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो ॥ १०० ॥

कालः परिणामभवः परिणामो द्रव्यकालसंभूतः ।
द्वयोरेष स्वभावः कालः क्षणभंगुरो नियतः ॥ १०० ॥

तत्र क्रमानुपाती समयाख्यः पर्यायो व्यवहारकालः, तदाधारभूतं द्रव्यं निश्चयकालः । तत्र व्यवहारकालो निश्चयकालपर्यायरूपोपि जीवपुद्गलानां परिणामेनावच्छिद्यमानत्वात्तत्परिणामभव इत्युपगीयते, जीवपुद्गलानां परिणामस्तु बहिरंगनिमित्तभूतद्रव्यकालसद्भावे सति संभूतत्वाद् द्रव्यकालसंभूत इत्यभिधीयते । तत्रेदं तात्पर्यं व्यवहारकालो जीवपुद्गलपरिणामेण निश्चीयते, निश्चयकालस्तु तत्परिणामान्यथानुपपत्त्येति । तत्र क्षणभंगी व्यवहारकालः सूक्ष्मपर्यायस्य तावन्मात्रत्वात्, नित्यो निश्चयकालः स्वगुणपर्यायाधारद्रव्यत्वेन सर्वदैवाविनश्वरत्वादिति ॥ १०० ॥

अन्वयार्थः-[कालः परिणामभवः] काल परिणामसे उत्पन्न होता है (अर्थात् व्यवहारकालका माप जीव-पुद्गलोंके परिणाम द्वारा होता है।) [परिणामः द्रव्यकालसंभूतः] परिणाम द्रव्यकालसे उत्पन्न होता है।—[द्वयोः एषः स्वभावः] यह, दोनोंका स्वभाव है। (कालः क्षणभंगुरः नियतः) काल क्षणभंगुर तथा नित्य है।

टीका:-यह, व्यवहारकाल तथा निश्चयकालके स्वरूपका कथन है।

वहां, 'समय' नामकी जो क्रमिक पर्याय सो व्यवहारकाल है, उसके आधारभूत द्रव्य सो निश्चय काल है।

वहां, व्यवहारकाल निश्चयकालकी पर्यायरूप होने पर भी जीव-पुद्गलोंके परिणामसे मपता है ज्ञात होता है, इसलिये "जीव-पुद्गलोंके परिणामसे उत्पन्न होनेवाला" कहलाता है, और जीव-पुद्गलोंके परिणाम बहिरंग-निमित्तभूत द्रव्यकालके सद्भावमें उत्पन्न होनेके कारण "द्रव्यकालसे उत्पन्न होनेवाले" कहलाते हैं। वहां तात्पर्य यह है कि—व्यवहारकाल जीव-पुद्गलोंके परिणाम द्वारा निश्चित होता है, और निश्चयकाल जीव-पुद्गलोंके परिणामकी अन्यथा अनुपपत्ति द्वारा (अर्थात् जीव-पुद्गलोंके परिणाम अन्य प्रकारसे नहीं बन सकते इसलिये) निश्चित होता है।

वहां, व्यवहारकाल क्षणभंगी है, क्योंकि वह मात्र सूक्ष्म पर्याय जितना ही (समयमात्र जितना ही) है, निश्चयकाल नित्य है, क्योंकि वह अपने गुण पर्यायोंके आधारभूत द्रव्यरूपसे सदैव अविनाशी है १००

सं०ता०--अथ व्यवहारकालस्य निश्चयकालस्य च स्वरूपं व्यवस्थापयति,-कालो—समयनिमिषघटिकादिवसादिरूपो व्यवहारकालः। स च कथंभूतः । परिणामभवो—मंदगतिरूपेणाणोरण्वंतरव्यतिक्रमणं नयनपुटविघटनं जलभाजनहस्तविज्ञानरूपपुरुषचेष्टितं दिनकरबिंबागमनमित्येवं स्वभावः पुद्गलद्रव्यक्रियापर्यायरूपः परिणामस्तेन व्यज्यमानत्वात्प्रकटीक्रियमाणत्वाद्धेतोर्व्यवहारेण पुद्गलपरिणामभव इत्युपनीयते, परमार्थेन तु कालाणुद्रव्यरूपनिश्चयकालस्य पर्यायः। परिणामो, दव्वकालसंभूदो—अणोरण्वंतरव्यतिक्रमणप्रभृतिपूर्वोक्तपुद्गलपरिणामस्तु शीतकाले पाठकस्याग्निवत् कुम्भकारचक्रभ्रमणविषयेऽधस्तनशिलावद्बहिरङ्गसहकारिकारणभूतेन कालाणुरूपद्रव्यकालेनोत्पन्नत्वाद् द्रव्यकालसंभूतः दोण्हं एस सहाओ—द्वयोर्निश्चयव्यवहारकालयोरेषः पूर्वोक्तः स्वभावः। स किंरूपः व्यवहारकालः ? पुद्गलपरिणामेन व्यज्यमानत्वात्परिणामजन्यः। निश्चयकालस्तु परिणामजनकः। कालो खणभंगुरो—समयरूपो व्यवहारकालः क्षणभंगुरः, णियदो—स्वकीयगुणपर्यायाधारत्वेन सर्वदैवाविनश्वरत्वाद् द्रव्यकालो नित्य इति। अत्र यद्यपि काललब्धिवशेन भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणं मोक्षमार्गं प्राप्य जीवो रागादिरहितनित्यानंदैकस्वभावमुपादेयभूतं पारमार्थिकसुखं साधयति तथा जीवस्तस्योपादानकारणं न च काल इत्यभिप्रायः । तथा चोक्तं—'आत्मोपादानसिद्ध' मित्यादिरिति॥ १००॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे व्यवहार और निश्चयकालका स्वरूप दिखाते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थः—(कालो) व्यवहार काल (परिणामभवो) पुद्गलोंके परिणामनसे उत्पन्न होता है (परिणामो) पुद्गलादिका परिणमन (दव्वकालसंभूदो) द्रव्यकालके द्वारा होता है (दोण्हं) दोनोंका (एस) ऐसा (सहावो) स्वभाव है। (कालो) यह व्यवहार काल (खणभंगुरो) क्षणभंगुर है (णियदो) परन्तु निश्चयकाल अविनाशी है।

विशेषार्थ—समय, निमिष, घडी, दिन आदिको व्यवहारकाल कहते हैं। जब एक पुद्गल

का परमाणु एक कालाणुसे निकटवर्ती कालाणुपर मंदगतिसे उल्लंघ कर जाता है तब समय नामका सबसे सूक्ष्म व्यवहारकाल प्रगट होता है अर्थात् इतनी देरको समय कहते हैं। आंखोंकी पलक लगानेसे निमिष, जलके वर्तन, हाथके विज्ञान आदि पुरुषकी चेष्टासे एक घडी, तथा सूर्यके बिम्बके आनेसे दिन प्रगट होता है। इत्यादि रूपसे पुद्गलद्रव्यकी हलन चलन रूप पर्यायको परिणाम कहते हैं। उससे जो प्रगट होता है इसलिये इस व्यवहारकालको व्यवहारमें पुद्गलपरिणामसे उत्पन्न हुआ कहते हैं, निश्चयसे यह कालाणुरूप निश्चय कालकी पर्याय है। एक अणुका दूसरे अणुको उल्लंघकर मंदगतिसे जाना आदि पूर्वोक्त पुद्गलका परिणाम, जैसे शीतकालमें विद्यार्थीको अग्नि पढनेमें सहकारी है व कुम्हारके चाकके भ्रमणमें नीचेकी शिला सहकारी है वैसे बाहरी सहकारी कारण कालाणुरूप द्रव्यकालके द्वारा उत्पन्न होता है इसलिये परिणमनको द्रव्यकालसे उत्पन्न हुआ कहते हैं। व्यवहारकाल पुद्गलोंके परिणमनसे उत्पन्न होता है इसलिये परिणामजन्य है तथा निश्चयकाल परिणामोंको उत्पन्न करनेवाला है इसलिये परिणामजनक है। तथा समयरूप सबसे सूक्ष्म व्यवहारकाल क्षणभंगुर है तथा अपनेही गुण और पर्यायोंका आधाररूप होनेसे निश्चय कालद्रव्य नित्य है। यहां यह तात्पर्य है कि यद्यपि काल-लब्धिके वशसे यह जीव भेद और अभेद रत्नत्रय या व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयरूप मोक्ष-मार्गको प्राप्त करके रागादिसे रहित व नित्य आनंदरूप एक स्वभावमई ग्रहण करने योग्य पारमार्थिक सुखको साधन करता है तथापि अपने इस साधनका उपादान कारण जीव है, काल नहीं है। जैसा कहा है—मोक्ष आत्माके ही उपादान कारणसे सिद्ध है॥ १००॥

नित्यक्षणिकत्वेन कालविभागख्यापनमेतत्।

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई॥ १०१॥

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः।
उत्पन्नप्रध्वंस्यपरो दीर्घांतरस्थायी॥ १०१॥

यो हि द्रव्यविशेषः 'अयं कालः, अयं कालः' इति सदा व्यपदिश्यते स खलु स्वस्य सद्भावमावेदयन् भवति नित्यः। यस्तु पुनरुत्पन्नमात्र एव प्रध्वंस्यते स खलु तस्यैव द्रव्यविशेषस्य समयाख्यः पर्याय इति। स तूत्संगितक्षणभंगोऽप्युपदर्शितस्वसंतानो नयबलाद्दीर्घांतरस्थाय्युपगीयमानो न दुष्यति, ततो न खल्वावलिकापल्योपमसागरोपमादिव्यवहारो विप्रतिपिध्यते। तदत्र निश्चयकालो नित्यः द्रव्यरूपत्वात्, व्यवहारकालः क्षणिकः पर्यायरूपत्वादिति॥ १०१॥

अन्वयार्थः—(कालः इति च व्यपदेशः) 'काल' ऐसा व्यपदेश (सद्भावप्ररूपकः) सद्भावका

प्ररूपक है इसलिये [नित्यः भवति] (निश्चयकाल) नित्य है। (उत्पन्नध्वंसी अपरः) दूसरा अर्थात् व्यवहार काल उपजता है और विनशता है तथा (दीर्घान्तरस्थायी) (प्रवाह-अपेक्षासे) दीर्घ स्थिति वाला भी है।

टीका:—कालके 'नित्य' और 'क्षणिक' ऐसे दो विभागोंका यह कथन है।

"यह काल है, यह काल है"—ऐसा करके जिस द्रव्यविशेषका सदैव व्यपदेश (निर्देश, कथन) किया जाता है, वह (निश्चयकाल) वास्तव में अपने सद्भावको प्रगट करता हुआ नित्य है, और जो उत्पन्न होते ही नष्ट होता है, वह (व्यवहारकाल) वास्तव में उसी द्रव्यविशेषकी 'समय' नामक पर्याय है। वह क्षणभंगुर होने पर भी अपनी संततिको (प्रवाहको) दर्शाता है इसलिये उसे नयके बलसे 'दीर्घकाल तक स्थित रहने वाला' कहने में दोष नहीं है, इसलिये आवलिका, पल्योपम, सागरोपम इत्यादि व्यवहारका निषेध नहीं किया जाता।

इस प्रकार यहां ऐसा कहा है कि निश्चयकाल द्रव्यरूप होनेसे नित्य है, व्यवहारकाल पर्यायरूप होनेसे क्षणिक है ॥ १०१ ॥

सं ता०—अथ नित्यक्षणिकत्वेन पुनरपि कालभेदं दर्शयति,—कालोत्ति य ववदेसो- काल इति व्यपदेशः संज्ञा। स च किं करोति। सब्भावपरूवगो हवदि—काल इत्यक्षरद्वयेन वाचकभूतेन स्वकीयवाच्यं परमार्थकालसद्भावं निरूपयति। क इव किं निरूपयति ? सिंहशब्द इव सिंहस्वरूपं सर्वज्ञशब्द इव सर्वज्ञस्वरूपमिति। एवं स्वकीयस्वरूपं निरूपयन् कथंभूतो भवति ? णिच्चो—यद्यपि काल इत्यक्षरद्वयरूपेण नित्यो न भवति तथापि कालशब्देन वाच्यं यद्द्रव्यकालस्वरूपं तेन नित्यो भवतीति निश्चयकालो ज्ञातव्यः। अवरो—अपरो व्यवहारकालः। स च किंरूपः। उप्पण्णप्पद्धंसी—यद्यपि वर्तमानसमयापेक्षयोत्पन्नप्रध्वंसी भवति तथापि पूर्वापरसमयसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन, दीहंतरट्ठाई—आवलिकापल्योपमसागरोपमादिरूपेण दीर्घांतरस्थायी च घटते नास्ति दोषः। एवं नित्यक्षणिकरूपेण निश्चयव्यवहारकालो ज्ञातव्यः। अथवा प्रकारांतरेण निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथ्यते। तथाहि—अनाद्यनिधनः समयादिकल्पनाभेदरहितः कालाणुद्रव्यरूपेण व्यवस्थितो वर्णादिमूर्तिरहितो निश्चयकालः, तस्यैव पर्यायभूतः सादिसनिधनः समयनिमिषघटिकादिविवक्षितकल्पनाभेदरूपो व्यवहारकालो भवतीति ॥ १०१ ॥ एवं निर्विकारनिजानंदसुस्थितचिच्चमत्कारमात्रभावनारतानां भव्यानां बहिरंगकाललब्धिभूतस्य निश्चयव्यवहारकालस्य निरूपणमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतं।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे फिर भी दिखलाते हैं कि काल नित्य भी है और क्षणिक भी है:—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(कालो त्ति य) काल ऐसा जो नाम है सो (सब्भावपरूवगो) सत्तारूप निश्चय कालका बतानेवाला है, वह कालद्रव्य (णिच्चो) अविनाशी (हवदि) होता है। (अवरो) दूसरा व्यवहारकाल (उप्पण्णप्पद्धंसी) उपजता और विनशता रहता है (दीहं-

तरह्राई) तथा यह समूहरूपसे दीर्घकालतक रहनेवाला कहा जाता है।

विशेषार्थ—काल जो शब्द जगतमें दो अक्षरोंका प्रसिद्ध है सो अपने वाच्यको जो निश्चय काल सत्तारूप है, उसको बताता है, जैसे सिंह शब्द सिंहके रूपको तथा 'सर्वज्ञ' शब्द सर्वज्ञके स्वरूपको बताता है। ऐसा अपने स्वरूपको बतानेवाला निश्चय कालद्रव्य यद्यपि दो अक्षररूपसे तो नित्य नहीं है तथापि काल शब्दसे कहने योग्य होनेसे नित्य है, ऐसा निश्चयकाल जानना योग्य है। व्यवहारकाल वर्तमान एक समयकी अपेक्षा उत्पन्न होकर नाश होनेवाला है, क्षणक्षण में विनाशीक है तौभी पूर्व और आगेके समयोंकी संतानकी अपेक्षासे व्यवहारनयसे आवली पल्य सागर आदि रूपसे दीर्घ काल तक रहनेवाला भी है। इसमें कोई दोष नहीं है। इसतरह निश्चयकाल नित्य है, व्यवहारकाल अनित्य है ऐसा जानना योग्य है। अथवा दूसरे प्रकारसे निश्चय और व्यवहारकालका स्वरूप कहते हैं— जो अनादि अनंत है समय आदिकी कल्पना या भेदसे रहित है। वर्णादि रहित अमूर्तीक है व कालाणु द्रव्यरूपसे आकाशमें स्थित है सो निश्चयकाल है, वह ही कालाणुद्रव्यकी पर्यायरूप सादिसांत समयरूप सूक्ष्मपर्याय व समयोंके समुदायकी अपेक्षा निमिष, घडी आदि कोई भी माना हुआ भेदरूप कालका नाम सो व्यवहारकाल है १०१

इस तरह निर्विकार निजानंदमें भले प्रकार ठहरे हुए चैतन्यके चमत्कार मात्रकी भावनामें जो भव्य जीव रत हैं उनके लिये वाहरी कारण काललब्धि है वही काल निश्चय और व्यवहार रूपसे दो प्रकार है उसके निरूपणकी मुख्यतासे चौथे स्थलमें दो गाथाएं कहीं।

कालस्य द्रव्यास्तिकायत्वविधिप्रतिषेधविधानमेतत्।

एदे कालागासा धम्माधम्मा य पुग्गला जीवा।
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं ॥ १०२ ॥

एते कालाकाशे धर्माधर्मौ च पुद्गला जीवाः।
लभंते द्रव्यसंज्ञां कालस्य तु नास्ति कायत्वम् ॥ १०२ ॥

यथा खलु जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानि सकलद्रव्यलक्षणसद्भावाद्द्रव्यव्यपदेशभाञ्जि भवन्ति, तथा कालोऽपि। इत्येवं षड्द्रव्याणि। किंतु यथा जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानां द्व्यादिप्रदेशलक्षणत्वमस्ति अस्तिकायत्वं, न तथा लोकाकाशप्रदेशसंख्यानामपि कालाणूनामेकप्रदेशत्वादस्त्यस्तिकायत्वम्। अत एव च पञ्चास्तिकायप्रकरणे न हीह मुख्यत्वेनोपन्यस्तः कालः। जीवपुद्गलपरिणामावच्छिद्यमानपर्यायत्वेन तत्परिणामान्यथानुपपत्त्यानुमीयमानद्रव्यत्वेनात्रैवांतर्भावितः॥ १०२ ॥

इति कालद्रव्यव्याख्यानं समाप्तम्।

अन्वयार्थः–[एते] यह (कालाकाशे) काल, आकाश, (धर्माधर्मौ) धर्म, अधर्म, (पुद्गलाः) पुद्गल (च) और (जीवाः) जीव (सत्र) [द्रव्यसंज्ञां लभंते] 'द्रव्य' संज्ञाको प्राप्त करते हैं, (कालस्य तु) परन्तु कालको [कायत्वम्] कायपना [न अस्ति] नहीं है।

टीका–यह, कालको द्रव्यपनेके विधानका और अस्तिकायपनेके निषेधका कथन है ;

जिस प्रकार वास्तवमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यके समस्त लक्षणोंका सद्भाव होनेसे 'द्रव्य' संज्ञाको प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार काल भी (द्रव्यके समस्त लक्षणोंका सद्भाव होनेसे) 'द्रव्य' संज्ञाको प्राप्त करता है। इस प्रकार छह द्रव्य हैं। किन्तु जिस प्रकार जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाशको द्वि-आदि प्रदेश जिसका लक्षण है ऐसा अस्तिकायपना है, उसी प्रकार कालाणुओंका–यद्यपि उनकी संख्या लोकाकाशके प्रदेशों जितनी है तथापि–एकप्रदेशीपनेके कारण अस्तिकायपना नही है। इसी ही कारण यहां पंचास्तिकायके प्रकरणमें मुख्यतः कालका कथन नहीं किया गया है, (परंतु) जीव-पुद्गलोंके परिणाम द्वारा ज्ञात होती हैं, ऐसी उसकी पर्यायें होनेसे तथा जीव-पुद्गलोंके परिणामकी अन्यथा अनुपपत्ति द्वारा जिसका अनुमान होता है ऐसा वह (काल) द्रव्य होनेसे, उसे यहां अन्तर्भूत किया गया है ॥ १०२ ॥

इस प्रकार कालद्रव्यका व्याख्यान समाप्त हुआ।

सं०ता०–अथ कालस्य द्रव्यसंज्ञाविधानं कायत्वनिषेधं च प्रतिपादयति–

एदे–एते प्रत्यक्षीभूताः, कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा–कालाकाशधर्माधर्मपुद्गलजीवाः कर्तारः। लब्भंति–लभंते। कां। दव्वसण्णं–द्रव्यसंज्ञां। कस्मादिति चेत् ? सत्तालक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुणपर्यायलक्षणं चेति द्रव्यपीठिकाकथितक्रमेण द्रव्यलक्षणत्रययोगात्। कालस्स य णत्थि कायत्तं–कालस्य च नास्ति कायत्वं। तदपि कस्मात्। विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावशुद्धजीवास्तिकायप्रभृतिपंचास्तिकायानां बहुप्रदेशप्रचयत्वलक्षणं कायत्वं यथा विद्यते न तथा कालाणूनां

"लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी मिव ते कालाणू असंखदव्वाणि"

इति गाथाकथितक्रमेण लोकाकाशप्रमितासंख्येयद्रव्याणामपीति। अत्र केवलज्ञानादिशुद्धगुणसिद्धत्वागुरुलघुत्वादिशुद्धपर्यायसहितशुद्धजीवद्रव्यादन्यद्रव्याणि हेयानीति भावः ॥ १०२ ॥ एवं कालस्य द्रव्यास्तिकायसंज्ञाविधिनिषेधव्याख्यानेन पंचमस्थले गाथासूत्रं गतं।

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे कहते हैं कि कालद्रव्य तो है परन्तु कायरूप नहीं है–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–[एदे] ये पूर्वमें कहे हुए [कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा] काल, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और जीव (दव्वसण्णं) द्रव्य नामको [लब्भंति] पाते हैं [दु] परन्तु [कालस्स] काल द्रव्यके [कायत्तं] कायपना [णत्थि] नहीं है।

विशेषार्थ–द्रव्यके लक्षण तीन हैं जैसा कि पीठिकाके व्याख्यानमें कहा गया है अर्थात् जिसमें सदा सत्ता पाई जावे, जिसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना हो तथा जो गुणपर्यायका धारी हो वह द्रव्य है इन छहोंमें ये तीनों लक्षण पाए जाते हैं, इसलिये ये छहोंद्रव्य हैं। इनमेंसे कालद्रव्य कायवान नहीं हैं क्योंकि जैसा वह प्रदेशोंका अखंड समुदायरूप कायपना विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावधारी शुद्ध जीवास्तिकाय आदि पांच अस्तिकायोंके है वैसा कालाणुओंके नहीं है जैसा कहा है–

जैसे रत्नोंका ढेर सब स्थान रोककर भी भिन्न २ रतनको रखता है वैसे कालाणु सब लोकाकाशमें एक एक प्रदेशपर एक एक करके व्याप्त हैं। तथापि वे परस्पर कभी मिलते नहीं हैं वे कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं। कालाणु गणना में लोकाकाश के प्रदेशों की संख्या के बराबर असंख्यात द्रव्य हैं। यहां यह तात्पर्य है कि केवलज्ञान आदि शुद्ध गुण सिद्धत्व अगुरुलघुत्व आदि शुद्धपर्याय सहित जो शुद्ध जीव द्रव्य है, उसके सिवाय शेष पांच द्रव्य त्यागने योग्य हैं ॥ १०२॥

इसतरह कालके अस्तिकायपना नहीं है, परन्तु द्रव्यसंज्ञा है ऐसा व्याख्यान करते हुए पांचमें स्थलमें गाथा सूत्र कहा।

तदवबोधफलपुरस्सरः पञ्चास्तिकायव्याख्योपसंहारोऽयम्।

एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता।
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं ॥ १०३ ॥

एवं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायसंग्रहं विज्ञाय।
यो मुञ्चति रागद्वेषौ स गाहते दुःखपरिमोक्षम् ॥ १०३ ॥

न खलु कालकलितपञ्चास्तिकायेभ्योऽन्यत् किमपि सकलेनापि प्रवचनेन प्रतिपाद्यते। ततः प्रवचनसार एवायं पञ्चास्तिकायसंग्रहः। यो हि नामामुं समस्तवस्तुतत्त्वाभिधायिनमर्थतोऽर्थितयावबुध्यात्रैव जीवास्तिकायांतर्गतमात्मानं स्वरूपेणात्यंतविशुद्धचैतन्यस्वभावं निश्चित्य परस्परकार्यकारणीभूतानादिरागद्वेषपरिणामकर्मबन्धसंततिसमारोपितस्वरूपविकारं तदात्वेऽनुभूयमानमवलोक्य तत्कालोन्मीलितविवेकज्योतिः कर्मबंधसंततिप्रवर्तिकां रागद्वेषपरिणतिमत्यस्यति, स खलु जीर्यमाणस्नेहो जघन्यस्नेहगुणाभिमुखपरमाणुवद् भाविबंधपराङ्मुखः पूर्वबंधात्प्रच्यवमानः शिखितप्तोदकदौस्थ्यानुकारिणो दुःखस्य परिमोक्षं विगाहत इति ॥१०३॥

अन्वयार्थः–[एवम्] इस प्रकार (प्रवचनसारं) प्रवचनके सारभूत [पंचास्तिकायसंग्रहं] 'पंचास्तिकायसंग्रहको' (विज्ञाय) जानकर [यः] जो (रागद्वेषौ) रागद्वेषको [मुञ्चति] छोडता है,

(सः) वह (दुःखपरिमोक्षम् गाहते) दुःखसे परिमुक्त होता है।

टीका:-यहां पंचास्तिकायके अवबोधका फल कहकर पंचास्तिकायके व्याख्यानका उपसंहार किया गया है।

वास्तवमें सम्पूर्ण प्रवचन. कालसहित पंचास्तिकायसे अन्य कुछ भी प्रतिपादित नहीं करता, इसलिये प्रवचनका सार ही यह 'पंचास्तिकायसंग्रह' है। जो पुरुष समस्तवस्तुतत्त्वका कथन करनेवाले इस 'पंचास्तिकायसंग्रह'को अर्थतः (अर्थानुसार यथार्थ रीति से) अर्थीरूपसे (हित प्राप्ति के हेतु से) जानकर, इसीमें कहे हुए जीवास्तिकायमें अन्तर्गत स्थित अपनेको (निज आत्माको) स्वरूपसे अत्यन्त विशुद्ध चैतन्यस्वभाववाला निश्चित करके परस्पर कार्यकारणभूत ऐसे अनादि रागद्वेपपरिणाम और कर्मबंधकी परम्परासे आरोपित स्वरूपविकारको उस काल अनुभवमें आता देखकर, उस समय विवेकज्योति प्रगट होनेसे कर्मबंधकी परम्पराका प्रवर्तन करनेवाली रागद्वेपपरिणतिको छोडता है; वह पुरुष, वास्तवमें जिसका स्नेह जीर्ण होता जाता है ऐसा, परमाणुकी भांति जघन्य स्नेहगुणके सन्मुख वर्तते हुये भावी बंधसे पराङ्मुख वर्तता हुआ-पूर्व बन्धसे छूटता हुआ, अग्नितप्त जलकी दुःस्थिति (खदबद होना) समान जो दुःख उससे परिमुक्त होता है ॥ १०३ ॥

सं०ता०-अथ पंचास्तिकायाध्ययनस्य मुख्यवृत्या तदंतर्गतशुद्धजीवास्तिकायपरिज्ञानस्य वा फलं दर्शयति,—

एवं—पूर्वोक्तप्रकारेण वियाणित्ता-विज्ञाय पूर्वं । कं। पंचत्थियसंगहं—पंचास्तिकायसंग्रहनामसंज्ञं ग्रंथं। किंविशिष्टं। पवयणसारं—प्रवचनसारं पंचास्तिकायषड्द्रव्याणां संक्षेपप्रतिपादकत्वात मुख्यवृत्त्या परमसमाधिरतानां मोक्षमार्गत्वेन सारभूतस्य शुद्धजीवास्तिकायस्य प्रतिपादकत्वाद्वा द्वादशांगरूपेण विस्तीर्णस्यापि प्रवचनस्य सारभूतं एवं विज्ञाय। किं करोति। जो मुयदि—यः कर्ता मुंचति। कौ कर्मतापन्नौ। रायदोसे-अनंतज्ञानादिगुणसहितवीतरागपरमात्मनो विलक्षणौ हर्षविषादलक्षणौ भाविरागादिदोषोत्पादककर्मास्रवजनकौ च रागद्वेषौ द्वौ। सो-सः पूर्वोक्तः ध्याता, गाहदि-गाहते प्राप्नोति। कं। दुक्खपरिमोक्खं-निर्विकारात्मोपलब्धिभावनोत्पन्नपरमाल्हादैकलक्षणसुखामृतविपरीतस्य नानाप्रकारशारीरमानसरूपस्य चतुर्गतिदुःखस्य परिमोक्षं मोचनं विनाशमित्यभिप्रायः ॥ १०३ ॥

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे पंचास्तिकायको पढनेका फल व मुख्यतासे इनमें अंतर्भूत जो शुद्ध जीवास्तिकाय है उसके ज्ञानका फल दिखलाते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थः-[एवं] इसतरह [पंचत्थियसंगहं] पंचास्तिकायका संग्रहरूप [पवयणसारं] इस परमागमको [वियाणित्ता] जानकरके [जो] जो कोई [रागदोसे] राग और द्वेपको [मुयदि] छोड देता है [सो] सो [दुक्खपरिमोक्खं] दुःखोंसे मुक्ति [गाहदि] पाता है।

विशेषार्थ-इस ग्रन्थका नाम पंचास्तिकाय संग्रह इस ही लिये है कि इसमें पांच अस्तिकाय

और छः द्रव्योंका संक्षेपसे कथन है। मुख्यतासे इसमें शुद्ध जीवास्तिकायका कथन है जो परम समाधिमें रत जीवोंको मोक्षमार्गपनेसे सारभूत है। यद्यपि द्वादशांग बहुत विस्ताररूप है तथापि यह ग्रन्थ उसीका सार है, जैसा पहले कह चुके हैं, उस तरह इस ग्रन्थको समझकर अनंत ज्ञानादिगुण सहित वीतराग परमात्मासे विलक्षण हर्ष विषादको तथा आगामीकालमें रागादिदोषोंको उत्पन्न करनेवाले कर्मोंके आश्रवको पैदा करनेवाले रागद्वेषको जो भव्यजीव छोड देता है, वहीं जीव निर्विकार आत्माकी प्राप्तिकी भावनासे उत्पन्न जो परम आल्हादरूप सुखामृत उससे विपरीत नाना प्रकार शारीरिक और मानसिक चार गति सम्बन्धी दुःख उससे छूट जाता है। यह अभिप्राय है ॥ १०३ ॥

दुःखविमोक्षकरणक्रमाख्यानमेतत् ।

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्जदो णिहदमोहो ।
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरापरो जीवो ॥ १०४ ॥

ज्ञात्वैतदर्थं तदनुगमनोद्यतो निहतमोहः ।
प्रशमितरागद्वेषो भवति हतपरापरो जीवः ॥ १०४ ॥

एतस्य शास्त्रस्यार्थभूतं शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानं कश्चिज्जीवस्तावज्जानीते। ततस्तमेवानुगंतुमुद्यमते । ततोऽस्य क्षीयते दृष्टिमोहः ततः स्वरूपपरिचयादुन्मज्जति ज्ञानज्योतिः। ततो रागद्वेषौ प्रशाम्यतः । ततः उत्तरः पूर्वश्च बंधो विनश्यति। ततः पुनर्बंधहेतुत्वाभावात् स्वरूपस्थो नित्यं प्रतपतीति ॥ १०४ ॥

इति समयव्याख्यायामंतर्नीतषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायवर्णनः प्रथमः श्रुतस्कंधः समाप्तः ॥१॥

अन्वयार्थः—[जीवः] जीव (एतद् अर्थं ज्ञात्वा) इस अर्थको जानकर (तदनुगमनोद्यतः) उसके अनुसरणका उद्यम करता हुआ (निहतमोहः) हतमोह होकर (दर्शनमोहका क्षय कर), (प्रशमितरागद्वेषः) रागद्वेषको प्रशमित-निवृत्त करके, (हतपरापरः भवति) उत्तर और पूर्व बंधका जिसके नाश हुआ है ऐसा होता है।

टीकाः—यह दुःखसे विमुक्त होनेके क्रमका कथन है।

प्रथम, कोई जीव इस शास्त्रके अर्थभूत शुद्धचैतन्यस्वभाववाले आत्माको जानता है, इसलिये (फिर) उसीके अनुसरणका उद्यम करता है, इसलिये उसे दृष्टिमोहका (दर्शन मोहका) क्षय होता है, इसलिये स्वरूपके परिचयके कारण ज्ञानज्योति प्रगट होती है, इसलिये रागद्वेष प्रशमित होते हैं-निवृत्त होते हैं, इसलिये उत्तर और पूर्व (-बादका और पहलेका) बंध विनष्ट होता है, इसलिये पुनः बंध होनेके हेतुत्वका अभाव होनेसे स्वरूपसे सदैव तपता है—प्रतापवंत वर्तता है ॥ १०४ ॥

इस प्रकार समयव्याख्या नामक टीकामें षड्द्रव्य-पंचास्तिकायवर्णन नामका
प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

सं०ता०–अथ दुःखमोक्षकारणस्य क्रमं कथयति,–

मुणिदूण—मत्वा विशिष्टस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा तावत्। कं। एदं—इमं प्रत्यक्षीभूतं नित्यानंदैकशुद्धजीवास्तिकायलक्षणं अत्थं—अर्थं विशिष्टपदार्थं, तमणु-तं शुद्धजीवास्तिकायलक्षणमर्थं अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य। गमणुज्जुदो-गमनोद्यतः तन्मयत्वेन परिणमनोद्यतः, णिहदमोहो-शुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वप्रतिबंधकदर्शनमोहाभावात्तदनंतरं निहतमोहो नष्टदर्शनमोहः। पसमिदरागदोसो निश्चलात्मपरिणतिरूपनिश्चयचारित्रप्रतिकूलचारित्रमोहोदयाभावात्तदनंतरं प्रशमितरागद्वेषः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वपरयोर्भेदज्ञाने सति शुद्धात्मरुचिरूपे सम्यक्त्वे तथैव शुद्धात्मस्थितिरूपे चारित्रे च सति पश्चात् हवदि-भवति। कथंभूतः। हदपरावरो-हतपरापरः। अत्र परमानंदज्ञानादिगुणाधारत्वात्परशब्देन मोक्षो भण्यते परशब्दवाच्यान्मोक्षादपरो भिन्नः परापरः संसार इति हेतोः विनाशितः परापरो येन स भवति हतपरापरो नष्टसंसारः। स कः। जीवो- भव्यजीवः॥ १०४॥ इति पंचास्तिकायपरिज्ञानफलप्रतिपादनरूपेण षष्ठस्थले गाथाद्वयं गतं।

एवं प्रथममहाधिकारमध्ये गाथाष्टकेन षड्भिः स्थलैश्चूलिकासंज्ञोष्टमोऽन्तराधिकारो ज्ञातव्यः।

अत्र पंचास्तिकायप्राभृतग्रंथे पूर्वोक्तक्रमेण सप्तगाथाभिः समयशब्दपीठिका, चतुर्दशगाथाभिर्द्रव्यपीठिका, पंचगाथाभिर्निश्चयव्यवहारकालमुख्यता, त्रिपंचाशद्गाथाभिर्जीवास्तिकायव्याख्यानं, दशगाथाभिः पुद्गलास्तिकायव्याख्यानं, सप्तगाथाभिर्धर्माधर्मास्तिकायद्वयविवरणं, सप्तगाथाभिराकाशास्तिकायव्याख्यानं, अष्टगाथाभिश्चूलिकामुख्यत्वमित्येकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टांतराधिकारा गताः॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादक्तं नाम
प्रथमो महाधिकारः समाप्तः॥ १॥

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे दुःखोंसे छूटनेका जो उपाय है उसका क्रम कहते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–[एतदट्ठं] इस ग्रन्थके सारभूत आत्म पदार्थको [मुणिऊण] जान करके [तदणुगमणुज्जुदो] उसका अनुभव करनेका उद्यमी [जीवो] जीव [णिहदमोहो] मिथ्यादर्शनका नाश करके [पसमियरागदोसो] राग द्वेषको शांत करता हुआ (हदपरावरो) संसारसे पार (हवदि) होजाता है।

विशेषार्थ–इह प्रत्यक्षीभूत नित्य आनंदमई एक शुद्ध जीवास्तिकाय रूप पदार्थको विशेष स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा जान करके व उसी शुद्ध जीवास्तिकाय रूप पदार्थका लक्ष्य करके उसी में तन्मई होनेका उद्यम करनेवाला कोई भव्यजीव 'शुद्धात्मा ही ग्रहण करने योग्य है' इस रुचिरूप सम्यग्दर्शनको रोकनेवाले दर्शनमोहका अभाव करके पीछे निश्चल आत्मामें परिणमन रूप

निश्चय चारित्रके प्रतिकूल चारित्रमोहका क्षय करके वीतरागी होजाता है । भावार्थ—पूर्वमें कहे प्रकारसे आपा परका भेदज्ञान होनेपर शुद्धात्माकी रुचिरूप सम्यग्दर्शन होता है फिर शुद्धात्मामें स्थितिरूप चारित्र होता है, पीछे इसी अभ्याससे संसारके पार होजाता है । यहां परमानंद व परमज्ञान आदि गुणोंका आधार होनेसे पर शब्दसे मोक्ष कहा जाता है—पर शब्दसे वाच्य जो मोक्ष उससे अपर अर्थात् भिन्न जो संसार उसका नष्ट करनेवाला होजाता है ॥ १०४ ॥

इस तरह पंचास्तिकायके ज्ञानका फल कहते हुए दो गाथाएं समाप्त हुई । इस तरह पहले महा अधिकारमें आठ गाथाओंके द्वारा छः स्थलोंसे चूलिका नामा आठवां अंतर अधिकार जानना योग्य है ।

इस पंचास्तिकाय नामके प्राभृत ग्रन्थमें पहले कहे हुए क्रमसे सात गाथाओंके द्वारा समय शब्दकी पीठिका है फिर चौदह गाथाओंमें द्रव्य पीठिका है । फिर पांच गाथाओंसे निश्चय व्यवहारकालकी मुख्यता है । फिर तिरेपन गाथाओंसे जीवास्तिकायका व्याख्यान है । फिर दश गाथाओंसे पुद्गलास्तिकायका व्याख्यान है । फिर सात गाथाओंसे धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय दोनोंका वर्णन है । फिर सात गाथाओंसे आकाशास्तिकायका व्याख्यान है । फिर आठ गाथाओंसे चूलिकाकी मुख्यता है इस तरह एकसौ ग्यारह गाथाओंके द्वारा आठ अंतर अधिकार समाप्त हुए । श्री अमृतचंद महाराजने १०४ गाथाओंकी ही टीका की है, छः गाथाएं ज्ञान सम्बन्धकी व एक पुद्गल स्कंधके भेदोंकी नहीं की है ।

इस प्रकार श्री जयसेन आचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति नामकी टीकामें पांच अस्तिकाय और छः द्रव्यको कहनेवाला प्रथम महा अधिकार समाप्त हुआ ॥ १ ॥



नव पदार्थ मोक्षमार्ग प्ररूपक

दूसरा अधिकार

द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेन शुद्धं बुधानामिह तत्त्वमुक्तम्।
पदार्थभंगेन कृतावतारं प्रकीर्त्यते संप्रति वर्त्म तस्य ॥ ७ ॥

(प्रथम, श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव पहले श्रुतस्कन्धमें क्या कहा गया है और दूसरे श्रुतस्कन्धमें क्या कहा जायेगा वह श्लोकद्वारा अति संक्षेपमें दर्शाते हैं:)

(श्लोकार्थ:—) यहां (इस शास्त्रके प्रथम श्रुतस्कन्धमें) द्रव्यस्वरूपके प्रतिपादन द्वारा बुध पुरुषोंको (बुद्धिमान जीवोंको) शुद्धतत्त्व (शुद्धात्म तत्त्व) का उपदेश दिया गया। अब पदार्थभेद द्वारा उपोद्घात करके (-नव पदार्थरूप भेद द्वारा प्रारम्भ करके) उसके मार्गका (-शुद्धात्मतत्त्वके मार्गका अर्थात् मोक्ष मार्गका) वर्णन किया जाता है। (७)

आप्तस्तुतिपुरस्सरा प्रतिज्ञेयम्।

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं।
तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि ॥ १०५॥

अभिवंद्य शिरसा अपुनर्भवकारणं महावीरम्।
तेषां पदार्थभंगं मार्गं मोक्षस्य वक्ष्यामि ॥ १०५॥

अमुना हि प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य मूलकर्तृत्वेनापुनर्भवकारणस्य भगवतः परमभट्टारकमहादेवाधिदेवश्रीवर्द्धमानस्वामिनः सिद्धिनिबंधनभूतां भावस्तुतिमासूत्र्य, कालकलितपंचास्तिकायानां पदार्थविकल्पो मोक्षस्य मार्गश्च वक्तव्यत्वेन प्रतिज्ञात इति ॥ १०५॥

अन्वयार्थ:—(अपुनर्भवकारणं) अपुनर्भवके (मोक्षके) कारणभूत (महावीरम्) श्री महावीरको (शिरसा अभिवंद्य) शिरसे वंदन करके, (तेषां पदार्थभङ्गं) उनषड्द्रव्योंके (नव) पदार्थरूपभेद तथा (मोक्षस्य मार्गं) मोक्षका मार्ग (वक्ष्यामि) कहूंगा।

टीका:—यह, आप्तकी स्तुतिपूर्वक प्रतिज्ञा है।

प्रवर्तमान महाधर्मतीर्थके मूल कर्ता जो अपुनर्भवके (मोक्षके) कारण हैं ऐसे भगवान, परम भट्टारक, महादेवाधिदेव श्री वर्द्धमानस्वामीकी, सिद्धत्वके निमित्तभूत भावस्तुति करके, कालसहित पंचास्तिकायका पदार्थभेद (अर्थात् छह द्रव्योंका नव पदार्थरूप भेद) तथा मोक्षका मार्ग कहनेकी इस गाथासूत्रमें प्रतिज्ञा की गई है ॥ १०५॥

सं०ता०-इत ऊर्ध्वं "अभिवंदिऊण सिरसा" इति इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पंचाशद्गाथापर्यंतं टीकाभिप्रायेणाष्टाधिकचत्वारिंशद्गाथापर्यंतं वा जीवादिनवपदार्थप्रतिपादको द्वितीयमहाधिकारः प्रारभ्यते।

तत्र तु दशांतराधिकारा भवन्ति। तेषु दशाधिकारेषु मध्ये प्रथमतस्तावन्नमस्कारगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयपर्यंतं व्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोतीति प्रथमांतराधिकारे समुदायपातनिका। तथाहि। अन्तिमतीर्थंकरपरमदेवं नत्वा पंचास्तिकायषड्द्रव्यसंबन्धिनं नवपदार्थभेदं मोक्षमार्गं च वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापुरःसरं नमस्कारं करोति,—अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं —अभिवंद्य प्रणम्य। केन। शिरसा उत्तमांगेन। कं। अपुनर्भवकारणं महावीरं। ततः किं करोमि। वोच्छामि-वक्ष्यामि। कं। तेसिं पयत्थभंगं—तेषां पंचास्तिकायषड्द्रव्याणां नवपदार्थभेदं। न केवलं नवपदार्थभेदं? मग्गं मोक्खस्स-मार्गं मोक्षस्येति। तद्यथा। मोक्षसुखसुधारसपानपिपासितानां भव्यानां पारंपर्येणानंतज्ञानादिगुणफलस्य मोक्षस्य कारणं महावीराभिधानमन्तिमजिनेश्वरं रत्नत्रयात्मकस्य प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य प्रतिपादकत्वात्प्रथमत एव प्रणमामीति गाथापूर्वार्धेन मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारं करोति ग्रंथकारः, तदनंतरमुत्तरार्धेन च शुद्धात्मरुचिप्रतीतिनिश्चलानुभूतिरूपस्याभेदरत्नत्रयात्मकस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य परंपरया कारणभूतं व्यवहारमोक्षमार्गं तस्यैव व्यवहारमोक्षमार्गस्यावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतान्नवपदार्थांश्च प्रतिपादयामीति प्रतिज्ञां च करोति। अत्र यद्यप्यग्रे चूलिकायां मोक्षमार्गस्य विशेषव्याख्यानमस्ति तथापि नवपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थमत्रापि भणितं। कथं संक्षेपसूचनमिति चेत्? नवपदार्थव्याख्यानं तावदत्र प्रस्तुतं। ते च कथंभूताः। व्यवहारमोक्षमार्गे विषयभूता इत्यभिप्रायः॥ १०५॥

हिंदीता०-पीठिका सूचनिका—पहले जो कथन द्रव्य स्वरूपका होचुका है उसके आगे "अभिवंदिऊण सिरसा" इस गाथाको आदि लेकर पाठ क्रमसे पचास गाथा तक या (अमृतचंद्र कृत) टीकाके अभिप्रायसे अडतालीस गाथा तक जीवादि नव पदार्थोंको बतानेवाला दूसरा महा अधिकार प्रारम्भ किया जाता है। इसके भीतर भी दश अंतर अधिकार हैं। उन दश अधिकारोंके भीतर पहले ही नमस्कारकी गाथाको आदि लेकर पाठ क्रमसे चार गाथा तक व्यवहार मोक्षमार्गकी मुख्यतासे आचार्य व्याख्यान करते हैं। इसतरह प्रथम अंतर अधिकारमें समुदाय पातनिका है।

हिंदी ता०—उत्थानिका—अब श्री कुन्दकुन्दाचार्य अन्तिम चौवीसवें तीर्थंकर परमदेवको नमस्कार करके "पंचास्तिकाय और छः द्रव्य संबंधी जो नव पदार्थोंका भेदरूप मोक्षमार्ग है" उसको कहूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(अपुणब्भवकारणं) जिस पदके पानेसे फिर जन्म न लेना पड़े ऐसे मोक्षके लिये जो निमित्त कारण हैं ऐसे (महावीरं) श्रीमहावीर भगवानको (सिरसा) मस्तक झुकाकर (अभिवंदिऊण) नमस्कार करके (तेसिं) उन पहले कहे गए पांच अस्तिकाय और छः द्रव्यके (पयत्थभंगं) नव पदार्थमई भेदको (मोक्खस्स मग्गं) जो मोक्षका मार्ग

बताता है (वोच्छामि) आगे कहूंगा।

विशेषार्थ—इस गाथामें पहली आधी गाथासे ग्रंथकारने मंगलके लिये अपने इष्टदेवताको नमस्कार किया है। इससे यह भी सूचित किया है कि श्री महावीरस्वामीका कथन प्रमाण है क्योंकि उन्होंने इस रत्नत्रयमई प्रवृत्तिमें आए हुए महा धर्मरूपी तीर्थका उपदेश किया था इसलिये वे अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी मोक्ष-सुख रूपी अमृतरसके प्यासे भव्य जीवोंके लिये, परम्परासे अनंत ज्ञान आदि गुणोंकी प्राप्तिरूप मोक्षके लिये सहकारी कारण हैं। इसके पीछे आधी गाथासे ग्रंथकर्ताने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं नव पदार्थोंका वर्णन करूंगा जो व्यवहार मोक्षमार्गके अंग सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके विषय हैं। यह व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्गका परम्परासे कारण है। जहां शुद्ध आत्माकी रुचि, प्रतीति व निश्चल अनुभूति होती है उसे अभेद रत्नत्रय या निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं। इस ग्रन्थमें यद्यपि आगे चूलिकामें मोक्षमार्गका विशेष व्याख्यान है तथापि नव पदार्थोंका संक्षेप कथन बतानेके लिये यहां भी कहा है क्योंकि ये नव पदार्थ व्यवहार मोक्षमार्गके विषय हैं, यह अभिप्राय है॥ १०५॥

मोक्षमार्गस्यैव तावत्सूचनेयम्।

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं॥ १०६॥

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं चारित्रं रागद्वेषपरिहीणम्।
मोक्षस्य भवति मार्गो भव्यानां लब्धबुद्धीनाम्॥ १०६॥

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव नासम्यक्त्वज्ञानयुक्तं, चारित्रमेव नाचारित्रं, रागद्वेषपरिहीणमेव न रागद्वेषापरिहीणम्, मोक्षस्यैव न भावतो बंधस्य, मार्ग एव नामार्गः, भव्यानामेव नाभव्यानां, लब्धबुद्धीनामेव नालब्धबुद्धीनां, क्षीणकषायत्वे भवत्येव न कषायसहितत्वे भवतीत्यष्टधा नियमोऽत्र द्रष्टव्यः॥ १०६॥

अन्वयार्थः—(सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं) सम्यक्त्व और ज्ञानसे संयुक्त (रागद्वेषपरिहीणम्) रागद्वेषसे रहित (चारित्रं) चारित्र (लब्धबुद्धीनाम्) लब्धबुद्धि (भेद विज्ञानी) (भव्यानां) भव्यजीवोंको (मोक्षस्य मार्गः) मोक्षका मार्ग (भवति) होता है।

टीकाः—प्रथम, मोक्षमार्गकी यह सूचना है।

सम्यक्त्व और ज्ञानसे ही युक्त,—न कि असम्यक्त्व और अज्ञानसे युक्त, चारित्र ही—न कि अचारित्र, रागद्वेष रहित ही—न कि रागद्वेष सहित, भावसे मोक्षका ही—न बंधका, मार्ग ही—न कि अमार्ग, भव्योंको ही—न कि अभव्योंको, लब्धबुद्धियोंको (ज्ञानियों को) ही—न कि अलब्धबुद्धियोंको, क्षीणकषायपनेमें ही होता है—न कि कषायसहितपनेमें। इस प्रकार आठ प्रकारसे नियम यहां देखना (समझना)॥ १०६॥

सं०ता०-अथ प्रथमतस्तावन्मोक्षमार्गस्य संक्षेपसूचनां करोति,--

सम्मत्तणाणजुत्तं---सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव न च सम्यक्त्वज्ञानरहितं, चारित्तं--चारित्रमेव, न चाचारित्रं। रागदोसपरिहीणं-रागद्वेषपरिहीनमेव, न च रागद्वेषसहितं। मोक्खस्स हवदि-स्वात्मोपलब्धिरूपस्य मोक्षस्यैव भवति, न च शुद्धात्मानुभूतिप्रच्छादकबंधस्य, मग्गो-अनंतज्ञानादिगुणसौख्यरत्नपूर्णस्य मोक्षनगरस्य मार्ग एव नैवामार्गः। भव्वाणं-शुद्धात्मस्वभावरूपव्यक्तियोग्यतासहितानां भव्यानामेव, न च शुद्धात्मस्वरूपव्यक्तियोग्यतारहितानामभव्यानां। लद्धबुद्धीणं-लब्धनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपबुद्धीनामेव न च मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपविषयानंदस्वसंवेदनकुबुद्धिसहितानां, क्षीणकषायशुद्धात्मोपलंभे सत्येव भवति न च सकषायाशुद्धात्मोपलंभे भवतीत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामष्टविधनियमोत्र द्रष्टव्यः। अन्वयव्यतिरेकस्वरूपं कथ्यते। तथाहि—सति संभवोऽन्वयलक्षणं, असत्यसंभवो व्यतिरेकलक्षणं, तत्रोदाहरणं-निश्चयव्यवहार-मोक्षकारणे सति मोक्षकार्यं संभवतीति विधिरूपोऽन्वय उच्यते, तत्कारणाभावे मोक्षकार्यं न संभवतीति निषेधरूपो व्यतिरेक इति। तदेव द्रढयति। यस्मिन्नग्न्यादिकारणे सति यद्धूमादिकार्यं भवति तदभावे न भवतीति तद्धूमादिकं तस्य कार्यमितरदग्न्यादिकं कारणमिति कार्यकारणनियम इत्यभिप्रायः॥ १०६॥

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे प्रथम ही मोक्षमार्गकी सूचना संक्षेपमें करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(लद्धबुद्धीणं) आत्मज्ञान प्राप्त (भव्वाणं) भव्य जीवोंके लिये (सम्मत्तणाणजुत्तं) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित तथा (रागदोसपरिहीणं) राग द्वेष रहित (चारित्तं) चारित्र (मोक्खस्स मग्गो) मोक्षका मार्ग (हवदि) होता है।

विशेषार्थ—शुद्ध आत्माके अनुभवको रोकनेवाला बंध है जब कि अपने आत्माकी प्राप्ति रूप मोक्ष है। मोक्षरूपी नगर अनंतज्ञान आदि गुणरूपी अमूल्य रत्नोंसे भरा है। उसी नगरका मार्ग सम्यक्त्व और सम्यग्ज्ञान सहित वीतराग चारित्र है इस मार्गपर वे भव्य जीव ही चल सक्ते हैं जिनको शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्रगटताकी योग्यता है तथा जिनको विकार रहित स्वसंवेदन ज्ञानरूप बुद्धि प्राप्त हो चुकी है। यह मोक्षमार्ग उन अभव्योंको नहीं मिलता जिनमें शुद्ध आत्माके स्वभावकी प्रगटताकी योग्यता नहीं है तथा उन भव्योंको भी नहीं मिलता जिनमें मिथ्या श्रद्धान सहित राग आदि परिणतिरूप विषयानंदमई स्वसंवेदनरूप कुबुद्धि पाई जाती है। जिनके कषायोंका नाश हो जानेपर शुद्ध आत्माकी प्राप्ति हो जाती है उनहीके यह पूर्ण मोक्षमार्ग होता है। जहांतक कषाय है और अशुद्ध आत्माका लाभ है वहांतक पूर्ण मोक्षमार्ग नहीं होता है। यहांपर अन्वय व व्यतिरेकसे आठ तरहका नियम देख लेना चाहिये। अन्वय व्यतिरेकका स्वरूप कहा जाता है—जिसके होते हुए कार्य संभव हो उसे अन्वय व जिसके न होते हुए कार्य संभव न हो उसे व्यतिरेक कहते हैं। जैसे यहां उदाहरण है कि—निश्चय व्यवहाररूप मोक्ष कारणके होते हुए ही मोक्ष कार्य होता है यह विधिरूप अन्वय कहा जाता है तथा इस मोक्ष कारणके अभाव होनेपर मोक्षरूपी कार्य नहीं होता है यह निषेधरूप व्यतिरेक है। इसीको और भी दृढ करते हैं

जैसे जहां अग्नि आदि कारण होंगे वहीं उसका धूआं आदि कार्य होसक्ते हैं जहां अग्नि आदिका अभाव होगा वहां उसके धूम्र आदि कार्य नहीं होंगे। क्योंकि धूमादि कार्यका अग्नि आदि कारण हैं इसतरह कार्य और कारणका नियम है यह अभिप्राय है॥ १०६॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां सूचनेयम्।

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं।
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं॥ १०७॥

सम्यक्त्वं श्रद्धानं भावानां तेषामधिगमो ज्ञानम्।
चारित्रं समभावो विषयेषु विरूढमार्गाणाम्॥ १०७॥

भावाः खलु कालकलितपंचास्तिकायविकल्परूपा नव पदार्थाः। तेषां मिथ्यादर्शनोदयापादिताश्रद्धानाभावस्वभावं भावांतरं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्वविनिश्चयबीजम्। तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयान्नौयानसंस्कारादि स्वरूपविपर्ययेणाध्यवसीयमानानां तन्निवृत्तौ समञ्जसाध्यवसायः सम्यग्ज्ञानं, मनाग्ज्ञानचेतनाप्रधानात्मतत्त्वोपलंभबीजम्। सम्यग्दर्शनज्ञानसन्निधानादमार्गेभ्यः समग्रेभ्यः परिच्युत्य स्वतत्त्वे विशेषेण रूढमार्गाणां सतामिन्द्रियानिंद्रियविषयभूतेष्वर्थेषु रागद्वेषपूर्वकविकाराभावान्निर्विकारावबोधस्वभावः समभावश्चारित्रं, तदात्वायतिरमणीयमनणीयसोऽपुनर्भवसौख्यस्यैकबीजम्। इत्येष त्रिलक्षणो मोक्षमार्गः पुरस्तान्निश्चयव्यवहाराभ्यां व्याख्यास्यते। इह तु सम्यग्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतानां नवपदार्थानामुपोद्घातहेतुत्वेन सूचित इति॥ १०७॥

अन्वयार्थः—(भावानां) भावोंका (-नव पदार्थोंका) (श्रद्धानं) श्रद्धान (सम्यक्त्वं) सम्यक्त्व है, [तेषाम् अधिगमः] उनका अवबोध (ज्ञानम्) ज्ञान है, (विरूढमार्गाणाम्) मार्ग पर आरूढ को (विषयेषु) विषयोंके प्रति वर्तता हुआ (समभावः) समभाव (चारित्रम्) चारित्र है।

टीका:—यह, सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्रकी सूचना है।

काल सहित पंचास्तिकायके भेदरूप नव पदार्थ वे वास्तवमें 'भाव' हैं। उन 'भावोंका' मिथ्या) दर्शनके उदयसे प्राप्त होनेवाला जो अश्रद्धान उसके अभावस्वभाववाला जो भावान्तर (अन्य भाव - श्रद्धान (अर्थात् नव पदार्थोंका श्रद्धान), वह सम्यग्दर्शन है—जो कि (सम्यग्दर्शन) शुद्ध चैतन्यरूप आत्मतत्त्वके विनिश्चयका बीज है। नौकागमनके संस्कारकी भांति मिथ्यादर्शनके उदयके कारण जो स्वरूपविपर्ययपूर्वक अध्यवसित होते हैं (भासित होते हैं) ऐसे उन 'भावोंका' ही (—नव पदार्थोंका ही), मिथ्यादर्शनके उदयकी निवृत्ति होने पर, जो सम्यक् अध्यवसाय (सत्य समझ, यथार्थ अवभास, सच्चा अवबोध) होना, वह सम्यग्ज्ञान है—जो कि कुछ अंशोंमें ज्ञानचेतनाप्रधान आत्मतत्त्वकी उपलब्धिका (अनुभूतिका) बीज है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके सद्भावके कारण समस्त अमार्गोंसे छूटकर जो स्वतत्त्वमें विशेष

रूपसे आरूढ मार्गवाले हुए हैं, उन्हें इन्द्रिय और मनके विषयभूत पदार्थोंके प्रति रागद्वेषपूर्वक विकारके अभावके कारण जो निर्विकारज्ञान स्वभाववाला समभाव होता है, वह चारित्र है-जो कि उस कालमें और आगामी कालमें रमणीय है और अपुनर्भवके (मोक्षके) महा सौख्यका एक बीज है।

—ऐसे इस त्रिलक्षण (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक) मोक्षमार्गका आगे निश्चय और व्यवहारसे व्याख्यान किया जायेगा । यहां तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके विषयभूत नव पदार्थोंके उपोद्घातके हेतुरूपसे (भूमिका रूपसे) उसकी सूचना दी गई है ॥ १०७॥

सं०ता०-अथ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयस्य विशेषविवरणं करोति,—

सम्यक्त्वं भवति । किं कर्तृ । सद्दहणं—मिथ्यात्वोदयजनितविपरीताभिनिवेशरहितं श्रद्धानं। केषां संबन्धि । भावाणं-पंचास्तिकायषड्द्रव्यविकल्परूपं जीवाजीवद्वयं जीवपुद्गलसंयोगपरिणामोत्पन्नास्रवादिपदार्थसप्तकं चेत्युक्तलक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानां । इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं । किंविशिष्टं । शुद्धजीवास्तिकायरुचिरूपस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य छद्मस्थावस्थायां साधकत्वेन बीजभूतं तदेव निश्चयसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वबीजभूतं । तेसिम्-तेषाम् नवपदार्थानामधिगमो नौयानसंस्काररूपविपरीतात् अनभिनिवेशगतिरधिगमः संशयादिरहितोऽवबोधः । णाणं-सम्यग्ज्ञानं इदं तु नव पदार्थविषयव्यवहारज्ञानं छद्मस्थावस्थायाम् आत्मविषयसंवेदनज्ञानस्य परंपरया बीजं, तदपि स्वसंवेदनज्ञानं केवलज्ञानबीजं भवति । चारित्तं-चारित्रं भवति । स कः । समभावो-समभावः । केषु । विषयेषु इन्द्रियमनोगतसुखदुःखोत्पत्तिरूपशुभाशुभविषयेषु । केषां भवति । विरूढमग्गाणं-पूर्वोक्तसम्यक्त्वज्ञानबलेन समस्तान्यमार्गेभ्यः प्रच्युत्य विशेषेण रूढमार्गाणां विरूढमार्गाणां परिज्ञातमोक्षमार्गाणां । इदं तु व्यवहारचारित्रं बहिरंगसाधकत्वेन वीतरागचारित्रभावनोत्पन्नपरमात्मतृप्तिरूपस्य निश्चयसुखस्य बीजं तदपि निश्चयसुखं पुनरक्षयानंतसुखस्य बीजमिति । अत्र यद्यपि साध्यसाधकभावज्ञापनार्थं निश्चयव्यवहारद्वयं व्याख्यातं तथापि नवपदार्थविषयरूपस्य व्यवहारमोक्षमार्गस्यैव मुख्यत्वमिति भावार्थः ॥ १०७॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारे मध्ये व्यवहारमोक्षमार्गकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन प्रथमोंतराधिकारः समाप्तः ।

हिंदी ता०-उत्थानिका आगे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रमई रत्नत्रयका व्याख्यान करते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(भावाणं) पदार्थोंका (सद्दहणं) श्रद्धान करना (सम्मत्तं) सम्यक्त है। (तेसिं) उनका (अधिगमः) जानपना (णाणं) सम्यग्ज्ञान है (विरूढमग्गाणं) मोक्षमार्गमें आरूढ जीवोंका (विसयेसु) इंद्रियोंके विषयोंमें (समभावः) समताभाव रहना (चारित्तं) सम्यक्चारित्र है।

विशेषार्थ-पांच अस्तिकाय छः द्रव्यके भेदसे जीव और अजीव दो पदार्थ हैं। इनमेंसे जीव और पुद्गलके संयोग भावसे आस्रव आदि अन्य सात पदार्थ उत्पन्न हुए हैं-जैसा इनका लक्षण कहा गया है वैसा इन नव जीवादि पदार्थोंका जो व्यवहार सम्यग्दर्शनके विषयभूत

है, मिथ्यात्वके उदयसे जो विपरीत अभिप्राय होता है उसको छोडकर श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन शुद्ध जीव ही ग्रहण करने योग्य है इस रुचिरूप निश्चय सम्यग्दर्शनका और अल्पज्ञ अवस्थामें आत्मा सम्बन्धी स्वसंवेदन ज्ञानका परंपरासे बीज है और यह स्वसंवेदन ज्ञान है सो अवश्य केवलज्ञानका बीज है। इन ही नव पदार्थोंका संशय रहित यथार्थ जानना सो सम्यग्ज्ञान है तथा इस सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके बलसे सर्व अन्य मार्गोंसे अलग होकर विशेषपने इस मोक्षमार्गपर आरूढ होनेवालोंका इंद्रिय और मनके भीतर आए हुए सुख या दुःखकी उत्पत्तिके कारण शुभ या अशुभ पदार्थोंमें समता या वीतराग भाव रखना सो सम्यक्चारित्र है। यह व्यवहारचारित्र बाहरी साधन है तथा यही वीतराग चारित्रकी भावनासे उत्पन्न जो परमात्म स्वभावमें तृप्ति रूप निश्चयसुख है उसका बीज है और वह निश्चयसुख अक्षय और अनन्तसुखका बीज है। यहांपर साध्य साधक भाव को बतलाने के लिये निश्चय और व्यवहार दोनों का कथन किया गया। किन्तु नव पदार्थ के विषय रूप व्यवहार मोक्ष मार्ग के ही मुख्यपना है ऐसा भावार्थ है ॥ १०७ ॥

इस तरह नव पदार्थके प्रतिपादक दूसरे महा अधिकार में व्यवहार मोक्षमार्गके कथनकी मुख्यतासे चार गाथाओंके द्वारा पहला अंतर अधिकार समाप्त हुआ।

अथ व्यवहारसम्यग्दर्शनं कथ्यते,-

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावदो भावे।
पुरिसस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदि जुत्ते ॥ १ ॥

एवं-पूर्वोक्तप्रकारेण जिणपण्णत्ते-जिनप्रज्ञप्तान् वीतरागसर्वज्ञप्रणीतान्, सद्दहमाणस्स—श्रद्धधतः भावदो-रुचिरूपपरिणामतः। कान् कर्मतापन्नान्। भावे-त्रिलोकत्रिकालविषयसमस्तपदार्थगतसामान्यविशेषस्वरूपपरिच्छित्तिसमर्थकेवलदर्शनज्ञानलक्षणात्मद्रव्यप्रभृतीन् समस्तभावान् पदार्थान्। कस्य। पुरिसस्स पुरुषस्य भव्यजीवस्य। कस्मिन् सति। आभिणिबोधे—आभिनिबोधे मतिज्ञाने सति मतिपूर्वकश्रुतज्ञाने वा दंसण सद्दे—दर्शनिकोयं पुरुष इति शब्दः, हवदि-भवति। कथंभूतो भवति। जुत्तो—युक्त उचित इति अत्र सूत्रे यद्यपि क्वापि निर्विकल्पसमाधिकाले निर्विकारशुद्धात्मरुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं स्पृशति तथापि प्रचुरेण बहिरंगपदार्थरुचिरूपं यद्व्यवहारसम्यक्त्वं तस्यैव तत्र मुख्यता। कस्मात्। विवक्षितो मुख्य इति वचनात्। तदपि कस्मात्। व्यवहारमोक्षमार्गव्याख्यानप्रस्तावादिति भावार्थः ॥ १ ॥

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे व्यवहार सम्यग्दर्शनको कहते हैं-

नोट-यह गाथा आ० श्री अमृतचंद्रजीकी वृत्तिमें नहीं है।

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(एवं) जैसा पहले कहा है (जिणपण्णत्ते) वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए (भावे) पदार्थोंको (भावदो) रुचिपूर्वक (सद्दहमाणस्स) श्रद्धान करनेवाले

(पुरिसस्स) भव्य जीवके (अभिणिबोधे) ज्ञानमें (दंसणसद्दो) सम्यग्दर्शनका शब्द (जुत्तो) उचित (हवदि) होता है।

विशेषार्थ—यहां पदार्थोंसे प्रयोजन है कि तीन लोक व तीन काल सम्बन्धी सर्व पदार्थोंके सामान्य तथा विशेष स्वरूप जाननेको समर्थ ऐसे केवल दर्शन और केवल ज्ञानमई लक्षणको रखने वाले आत्मा द्रव्यको आदि लेकर सर्व पदार्थ ग्रहण करने योग्य हैं। यहां इस सूत्रमें यद्यपि कोई निर्विकल्प समाधिके अवसर में निर्विकार शुद्ध आत्माकी रुचिरूप निश्चय सम्यक्तको स्पर्श करता है तथापि [तत्र] इस सूत्र में अधिकतर बाह्य पदार्थोंकी रुचि रूप जो व्यवहार सम्यक्त है उसीकी ही मुख्यता है, क्योंकि जिसकी विवक्षा हो वही मुख्य होजाता है। क्योंकि यहां व्यवहार मोक्षमार्गका प्रस्ताव है इसलिये उसीकी ही प्रधानता है ॥ १ ॥

पदार्थानां नामस्वरूपाभिधानमेतत् ।

जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं ।
संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठा ॥ १०८ ॥

जीवाजीवौ भावौ पुण्यं पापं चास्रवस्तयोः ।
संवरनिर्जरबंधा मोक्षश्च भवन्ति ते अर्थाः ॥ १०८ ॥

जीवः, अजीवः, पुण्यं, पापं, आस्रवः, संवरः, निर्जरा, बंधः, मोक्ष इति नवपदार्थानां नामानि । तत्र चैतन्यलक्षणो जीवास्तिक एवेह जीवः । चैतन्याभावलक्षणोऽजीवः स पंचधा पूर्वोक्त एव-पुद्गलास्तिकः, धर्मास्तिकः, अधर्मास्तिकः, आकाशास्तिकः, कालद्रव्यं चेति । इमौ हि जीवाजीवौ पृथग्भूतास्तित्वनिर्वृत्तत्वेन भिन्नस्वभावभूतौ मूलपदार्थौ । जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्ताः सप्तान्ये पदार्थाः । शुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामः पुद्गलानां च पुण्यम् । अशुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामः पुद्गलानां च पापम् । मोहरागद्वेषपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानाञ्चास्रवः । मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां च संवरः । कर्मवीर्यशातनसमर्थो बहिरङ्गान्तरंगतपोभिर्बृंहितशुद्धोपयोगो जीवस्य, तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानाञ्च निर्जरा । मोहरागद्वेषस्निग्धपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तेन कर्मत्वपरिणतानां जीवेन सहान्योन्यसंमूर्च्छनं पुद्गलानां च बंधः । अत्यंतशुद्धात्मोपलम्भो जीवस्य, जीवेन सहात्यन्तविश्लेषः कर्मपुद्गलानां च मोक्ष इति ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थ—(जीवाजीवौ भावौ) जीव और अजीव—दो भाव (अर्थात् मूल पदार्थ) तथा (तयोः) उन दो के (पुण्यं) पुण्य, (पापं च) पाप, (आस्रवः) आस्रव, (संवरनिर्जरबंधाः) संवर,

निर्जरा, बंध (च) और (मोक्षः) मोक्ष-(ते अर्थाः भवन्ति) वह (नव) पदार्थ होते हैं।

टीकाः-यह, पदार्थोंके नाम और स्वरूपका कथन है।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष-इस प्रकार नव पदार्थोंके नाम हैं।

उनमें, चैतन्य जिसका लक्षण है ऐसा जीवास्तिक ही (-जीवास्तिकाय ही) यहां जीव है। चैतन्य का अभाव जिसका लक्षण है वह अजीव है: वह (अजीव) पांच प्रकारसे पहले कहा ही है—पुद्गलास्तिक, धर्मास्तिक, अधर्मास्तिक, आकाशास्तिक और कालद्रव्य। यह जीव और अजीव (दोनों) पृथक् अस्तित्व द्वारा निष्पन्न होनेसे भिन्न जिनके स्वभाव हैं ऐसे (दो) मूल पदार्थ हैं।

जीव और पुद्गलके संयोग परिणामसे उत्पन्न होनेवाले सात अन्य पदार्थ हैं। जीवके शुभपरिणाम (वह पुण्य है) तथा वे (शुभ परिणाम) जिनका निमित्त है ऐसे पुद्गलोंके कर्मपरिणाम (-शुभकर्मरूप) वह पुण्य है। जीवके अशुभ परिणाम (वह पाप है) तथा वे (अशुभ परिणाम) जिनका निमित्त हैं ऐसे पुद्गलोंके कर्मपरिणाम वह पाप है। जीवके मोहरागद्वेषरूप परिणाम (वह आस्रव है) तथा वे (मोहरागद्वेषरूप परिणाम) जिनका निमित्त हैं ऐसे जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलोंके कर्मपरिणाम वह आस्रव है। जीवके मोहरागद्वेषरूप परिणामका निरोध (वह संवर है) तथा वह (मोहरागद्वेषरूप परिणामका निरोध) जिसका निमित्त है ऐसा जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलोंके कर्मपरिणामका निरोध वह संवर है। कर्मके वीर्यका (-कर्मकी शक्तिका) शातन (नष्ट) करनेमें समर्थ ऐसा जो बहिरंग और अंतरंग (बारह प्रकारके) तपों द्वारा वृद्धिको प्राप्त जीवका शुद्धोपयोग (वह निर्जरा है) तथा उसके प्रभावसे (-वृद्धिको प्राप्त शुद्धोपयोगके निमित्तसे) नीरस हुए ऐसे उपार्जित कर्मपुद्गलोंका एकदेश संक्षय वह निर्जरा है। जीवके, मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध परिणाम (वह बंध है) तथा उनके (-स्निग्ध परिणामोंके) निमित्तसे कर्मरूप परिणत पुद्गलोंका जीवके साथ अन्योन्य अवगाहन वह बंध है। जीवकी अत्यंत शुद्ध आत्मोपलब्धि (वह मोक्ष है) तथा कर्मपुद्गलोंका जीवसे अत्यन्त विश्लेष (वियोग) वह मोक्ष है॥ १०८॥

सं०ता०-अथानंतरं जीवादिनवपदार्थानां मुख्यवृत्त्या नाम गौणवृत्त्या स्वरूपं च कथयति,-

जीवाजीवौ द्वौ भावौ पुण्यपापद्वयमिति पदार्थद्वयं आस्रवपदार्थस्तयोः पुण्यपापयोः, संवरनिर्जराबंधमोक्षपदार्थचतुष्टयमपि तयोरेव। एवं ते प्रसिद्धा नव पदार्था भवंतीति नामनिर्देशः। इदानीं स्वरूपाभिधानं। तथाहि-ज्ञानदर्शनस्वभावो जीवपदार्थः, तद्विलक्षणः पुद्गलादिपंचभेदः पुनरप्यजीवः, दानपूजापडावश्यकादिरूपो जीवस्य शुभपरिणामो भावपुण्यं भावपुण्यनिमित्तेनोत्पन्नः सद्वेद्यादिशुभप्रकृतिरूपः पुद्गलपरमाणुपिंडो द्रव्यपुण्यं, मिथ्यात्वरागादिरूपो जीवस्याशुभपरिणामो भावपापं तन्निमित्तेनासद्वेद्याद्यशुभप्रकृतिरूपः पुद्गलपिंडो द्रव्यपापं, निरास्रवशुद्धात्मपदार्थविपरीतो रागद्वेषमोहरूपो जीवपरिणामो भावास्रवः. भावनिमित्तेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां योगद्वारेणागमनं द्रव्यास्रवः, कर्मनिरोधे समर्थो निर्विकल्पकात्मोपलब्धिपरिणामो भावसंवरः तेन भावनिमित्तेन नवतरद्रव्यकर्मागमनिरोधो द्रव्यसंवरः,

कर्मशक्तिशातनसमर्थो द्वादशतपोभिर्वृद्धिं गतः शुद्धोपयोगः यः सा संवरपूर्विका भावनिर्जरा तेन शुद्धोपयोगेन नीरसभूतस्य चिरंतनकर्मण एकदेशगलनं द्रव्यनिर्जरा, प्रकृत्यादिबंधशून्यपरमात्मपदार्थप्रतिकूलो मिथ्यात्वरागादिस्निग्धपरिणामो भावबंधः, भावबंधनिमित्तेन तैलम्रक्षितशरीरे धूलिबंधवज्जीवकर्मप्रदेशानामन्योन्यसंश्लेपो द्रव्यबंधः, कर्मनिर्मूलनसमर्थः शुद्धात्मोपलब्धिरूपजीवपरिणामो भावमोक्षः, भावमोक्षनिमित्तेन जीवकर्मप्रदेशानां निरवशेषः पृथग्भावो द्रव्यमोक्ष इति सूत्रार्थः ॥ १०८ ॥ एवं जीवाजीवादिनवपदार्थानां नवाधिकारसूचनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतं।

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे जीव आदि नव पदार्थोंके मुख्यतासे नाम तथा गौणतासे उनका स्वरूप कहते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जीवाजीवा भावा) जीव और अजीव पदार्थ (पुण्णं पावं च] तथा पुण्य और पाप (च) और (तेसिं) उनका (आसवं) आस्रव, (य) तथा (संवरणिज्जरबंधो मोक्खो) संवर, निर्जरा, बंध व मोक्ष (ते अट्ठा) ये पदार्थ (हवंति) होते हैं।

विशेषार्थ-यहां इन नौ पदार्थोंका कुछ स्वरूप कहते हैं-देखना जानना जिसका स्वभाव है वह जीव पदार्थ है। उससे भिन्न लक्षणवाला पुद्गल आदिके पांच भेद रूप अजीव पदार्थ है। दान, पूजा आदि छः आवश्यकोंको आदि लेकर जीवका शुभ भाव सो भाव पुण्य है-इस भाव पुण्यके निमित्तसे उत्पन्न जो सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतिरूप पुद्गल परमाणुओंका पिंड सो द्रव्य पुण्य है। मिथ्यादर्शन व राग आदिरूप जीवका अशुभ परिणाम सो भाव पाप है-उसके निमित्तसे प्राप्त जो असातावेदनीय आदि अशुभ प्रकृति रूप पुद्गलका पिंड सो द्रव्य पाप है। आस्रवरहित शुद्ध आत्मा पदार्थसे विपरीत जो रागद्वेष मोह रूप जीवका परिणाम सो भाव आस्रव है, इस भावके निमित्तसे कर्म-वर्गणाके योग्य पुद्गलोंका योगोंके द्वारा आना सो द्रव्यास्रव है। कर्मोंके रोकनेमें समर्थ जो विकल्परहित आत्माकी प्राप्तिरूप परिणाम सो भाव संवर है। इस भावके निमित्तसे नवीन द्रव्यकर्मोंके आनेका रुकना सो द्रव्यसंवर है। कर्मकी शक्तिको मिटानेको समर्थ जो बारह प्रकार तपोंसे बढता हुआ शुद्धोपयोग सो संवरपूर्वक भाव निर्जरा है। इस शुद्धोपयोगके द्वारा रस रहित होकर पुराने बंधे हुए कर्मोंका एकदेश झड जाना सो द्रव्य निर्जरा है। प्रकृति आदि बंधसे शून्य परमात्मा पदार्थसे प्रतिकूल जो मिथ्यादर्शन व राग आदि रूप चिकना भाव सो भावबंध है। इस भावबंधके निमित्तसे जैसे तेल लगे हुए शरीरमें धूल जम जाता है वैसे जीव और कर्मके प्रदेशोंका एक दूसरेमें मिल जाना सो द्रव्यबंध है। कर्मोंको मूलसे हटानेमें समर्थ जो शुद्ध आत्माकी प्राप्तिरूप जीवका परिणाम सो भावमोक्ष है। इस भावमोक्षके निमित्तसे जीव और कर्मके प्रदेशोंका सम्पूर्णपने भिन्न २ होजाना सो द्रव्यमोक्ष है। यह सूत्रका अर्थ है॥ १०८॥

इस तरह जीव अजीव आदि नव पदार्थोंके नव अधिकार इस ग्रंथमें हैं इस सूचनाकी मुख्यतासे एक गाथा सूत्र समाप्त हुआ।

अथ जीवपदार्थानां व्याख्यानं प्रपंचयति।

जीवस्वरूपोद्देशोऽयम्।

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा।
उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा ॥ १०९ ॥

जीवाः संसारस्था निर्वृत्ताः चेतनात्मका द्विविधाः।
उपयोगलक्षणा अपि च देहादेहप्रवीचाराः ॥ १०९ ॥

जीवाः हि द्विविधाः, संसारस्था अशुद्धा, निर्वृत्ताः शुद्धाश्च। ते खलूभयेऽपि चेतनास्वभावाः, चेतनापरिणामलक्षणेनोपयोगेन लक्षणीयाः। तत्र संसारस्था देहप्रवीचाराः, निर्वृत्ता अदेहप्रवीचारा इति ॥ १०९ ॥

अब जीवपदार्थका व्याख्यान विस्तारपूर्वक किया जाता है।

अन्वयार्थः-(जीवाः द्विविधाः) जीव दो प्रकारके हैं—(संसारस्थाः निर्वृत्ताः) संसारी और सिद्ध। (चेतनात्मकाः) वे चेतनात्मक (अपि च) तथा (उपयोगलक्षणाः) उपयोगलक्षणवाले हैं। (देहादेहप्रवीचाराः) संसारी जीव देहमें वर्तनेवाले अर्थात् देहसहित हैं और सिद्ध जीव देहमें न वर्तनेवाले अर्थात् देहरहित हैं।

टीकाः-यह, जीवके स्वरूपका कथन है।

जीव दो प्रकारके है-(१) संसारी अर्थात् अशुद्ध, और (२) सिद्ध अर्थात् शुद्ध। वे दोनों वास्तवमें चेतनास्वभाववाले हैं और चेतनापरिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होनेयोग्य (पहिचानेजानेयोग्य) हैं। उनमें संसारी जीव देहमें वर्तनेवाले अर्थात् देह सहित हैं और सिद्ध जीव देहमें न वर्तनेवाले अर्थात देहरहित हैं ॥ १०९ ॥

सं०ता०-तदनंतरं पंचदशगाथापर्यंतं जीवपदार्थाधिकारः कथ्यते। तत्र पंचदशगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावज्जीवपदार्थाधिकारसूचनमुख्यत्वेन "जीवा संसारत्था" इत्यादि गाथासूत्रमेकं अथ पृथ्वीकायादिस्थावरैकेंद्रियपंचमुख्यत्वेन "पुढवीय" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ विकलेन्द्रियत्रयंव्याख्यानमुख्यत्वेन 'संबुक्क' इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिचतुष्टयपंचेन्द्रियकथनरूपेण 'सुरणर' इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ भेदभावनामुख्यत्वेन हिताहितकर्तृत्वभोक्तृत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन च 'ण हि इंदियाणि' इत्यादि गाथाद्वयं, अथ जीवपदार्थोपसंहारमुख्यत्वेन तथैव अजीवपदार्थप्रारम्भमुख्यत्वेन च "एवमधिगम्म जीव" इत्यादि सूत्रमेकं। एवं पंचदशगाथाभिः षट्स्थलैर्द्वितीयांतराधिकारे समुदायपातनिका। तथाहि-

जीवस्वरूपं निरूपयति,-जीवाजीवा भवन्ति । किंविशिष्टाः । संसारत्था णिव्वादा-संसारस्था निर्वृताश्चैव । चेदणप्पगा दुविहा । चेतनात्मका उभयेपि कर्मचेतनाकर्मफलचेतनात्मकाः संसारिणः शुद्धचेतनात्मका मुक्ता इति, उवओगलक्खणा वि य-उपयोगलक्षणा अपि च । आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणाम उपयोगः केवलज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा मुक्ताः । क्षायोपशमिका अशुद्धोपयोगयुक्ताः संसारिणः । देहादेहप्पवीचारा-देहादेहप्रवीचाराः अदेहात्मतत्त्वविपरीतदेहसहिता देहप्रवीचाराः, अदेहाः सिद्धा इति सूत्रार्थः ।। १०६ ।। एवं जीवाधिकारसूचनगाथारूपेण प्रथमस्थलं गतं ।

आगेके कथनकी सूचना—आगे पंद्रह गाथातक जीव पदार्थका अधिकार कहा जाता है—इन पंद्रह गाथाओंके मध्यमें पहले जीव पदार्थके अधिकारकी सूचनाकी मुख्यतासे " जीवा संसारत्था " इत्यादि गाथासूत्र एक है, फिर पृथ्वीकाय आदि स्थावर एकेंद्रिय पांच होते हैं इसकी मुख्यतासे " पुढवी य " इत्यादि पाठक्रमसे गाथाएं चार हैं । फिर विकलेंद्रिय तीनके व्याख्यानकी मुख्यतासे 'संबुक' इत्यादि पाठके क्रमसे गाथाएं तीन हैं । फिर नारकी, तिर्यंच मनुष्य व देवगति सम्बन्धी चार प्रकार पंचेंद्रियोंका कथन करते हुए " सुरणर " इत्यादि पाठके क्रमसे गाथाएं चार हैं । फिर भेद भावनाकी मुख्यतासे हित अहितका कर्तापना और भोक्तापना कहनेकी मुख्यतासे " ण हि इन्दियाणि " इत्यादि गाथाएं दो हैं पश्चात् जीव पदार्थके संकोच कथनकी मुख्यतासे तथा जीव पदार्थके प्रारंभकी मुख्यतासे " एवमधिगम्म " इत्यादि सूत्र एक है । इसतरह पंद्रह गाथाओंसे छः स्थलोंके द्वारा दूसरे अन्तर अधिकारमें समुदायपातनिका कही ।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे जीवका स्वरूप कहते हैं—

अन्वयसहित सामान्यार्थ—(जीवा) जीव समुदाय (दुविहा) दो प्रकारका है (संसारत्था) संसारमें रहनेवाले संसारी (णिव्वादा) मुक्तिको प्राप्त सिद्ध (चेदणप्पगा) ये चैतन्यमई हैं, (उवओगलक्खणा) उपयोग रूप लक्षणके धारी भी हैं (य) और (देहादेहप्पवीचारा) शरीर भोगी तथा शरीर भोग रहित हैं । जो संसारी हैं वे शरीरसहित हैं तथा जो सिद्ध हैं वे शरीररहित हैं ।

विशेषार्थ—वृत्तिकारने चेतनात्मकका द्विविध विशेषण करके यह अर्थ किया है कि ये संसारी जीव अशुद्ध चेतनामई तथा मुक्त जीव शुद्ध चेतनामई हैं । अशुद्ध चेतनाके दो भेद हैं—कर्मचेतना और कर्मफल चेतना । रागद्वेष पूर्वक कार्य करनेका अनुभव सो कर्मचेतना है । तथा सुखी और दुःखी होने रूप अनुभव सो कर्मफलचेतना है । आत्माके शुद्ध ज्ञानानंदमई स्वभावका अनुभव सो शुद्ध ज्ञानचेतना है । चैतन्य गुणके भीतर होनेवाली परिणतिको उपयोग कहते हैं । कहा है—" चैतन्यानुविधायि परिणाम उपयोगः" । मुक्त जीवोंके केवलज्ञान और केवल दर्शन उपयोग हैं जब कि संसारी जीव अशुद्ध या क्षयोपशमरूप मतिज्ञानादि उपयोग

सहित हैं। संसारी जीव देहरहित आत्मतत्त्वसे विपरीत शरीरोंके धारी हैं जब कि सिद्ध जीव सर्व प्रकार शरीरसे रहित हैं ॥ १०९ ॥

इस तरह जीवाधिकारकी सूचनाकी गाथारूपसे प्रथम स्थल पूर्ण हुआ।

पृथिवीकायिकादिपंचभेदोद्देशोऽयम्।

पुढवी य उदगमगणी वाउ वणप्फदि जीवसंसिदा काया।
देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥ ११० ॥

पृथिवी चोदकमग्निर्वायुर्वनस्पतिः जीवसंश्रिताः कायाः।
ददति खलु मोहबहुलं स्पर्शं बहुका अपि ते तेषाम् ॥ ११० ॥

पृथिवीकायाः, अप्कायाः, तेजःकायाः, वायुकायाः, वनस्पतिकायाः इत्येते पुद्‌गलपरिणामा बंधवशाज्जीवानुसंश्रिताः, अवांतरजातिभेदाद्बहुका अपि स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमभाजां जीवानां बहिरंगस्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तिभूताः कर्मफलचेतनाप्रधानत्वान्मोहबहुलमेव स्पर्शोपलंभं संपादयन्तीति ॥ ११० ॥

अन्वयार्थ—(पृथिवी) पृथ्वीकाय, (उदकम्) अप्काय, (जलकाय) (अग्निः) अग्निकाय, (वायुः) वायुकाय (च) और (वनस्पतिः) वनस्पतिकाय (कायाः) यह कायें (जीवसंश्रिताः) जीवसहित हैं। (बहुकाः अपि ते) (अवान्तर जातियोंकी अपेक्षासे) उनकी भारी संख्या होनेपर भी वे सभी (तेषाम्) उनमें रहनेवाले जीवोंको (खलु) वास्तवमें (मोहबहुलं) अत्यन्त मोहसे संयुक्त (स्पर्शं ददति) स्पर्श देती हैं (अर्थात् स्पर्शज्ञानमें निमित्त होती हैं)।

टीका:—यह, (संसारी जीवोंके भेदोंसे) पृथ्वीकायिक आदि पांच भेदोंका कथन है।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय—ऐसे यह पुद्‌गलपरिणाम बंधवशात् (बंधके कारण) जीवसहित हैं। अवान्तर जातिरूप भेद करने पर वे अनेक होने पर भी वे सभी (पुद्‌गलपरिणाम), स्पर्शनेन्द्रियावरणके क्षयोपशमवाले जीवोंको बहिरंग स्पर्शनेन्द्रियकी रचनाभूत हुए कर्मफलचेतनाप्रधानपनेके कारण अत्यन्त मोह सहित ही स्पर्शोपलब्धि [ज्ञान] संप्राप्त कराते हैं ॥ ११० ॥

सं०ता०—अथ पृथिवीकायादिपंचभेदान् प्रतिपादयति,—पृथिवीजलाग्निवायुवनस्पतिजीवान् कर्मतापन्नान् संश्रिताः कायाः ददति प्रयच्छन्ति खलु स्फुटं। कं। मोहबहुलं स्पर्शविषयं बहुका अंतर्भेदैर्बहुसंख्या अपि ते कायास्तेषां जीवानामिति। अत्र स्पर्शनेन्द्रियादिरहितमखंडैकज्ञानप्रतिभासमयं यदात्मस्वरूपं तद्भावनारहितेनाल्पसुखार्थं स्पर्शनेन्द्रियविषयलांपट्यपरिणतेन जीवेन यदुपार्जितं स्पर्शनेन्द्रियजनकमेकेन्द्रियजातिनामकर्म यदुदयकाले स्पर्शनेन्द्रियक्षयोपशमं लब्ध्वा स्पर्शविषयज्ञानेन परिणमतीति सूत्राभिप्रायः ॥ ११० ॥

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे संसारी जीवोंके भीतर जो एकेन्द्री स्थावर जीव हैं उनके पांच भेदोंको कहते हैं-

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(पुढवी य उदगमगणीवाउवणप्फदिजीवसंसिदा) पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और वनस्पति जीवोंसे आश्रय किये हुए (काया) शरीर (बहुगा वि) बहुत प्रकारके हैं तौभी (ते) वे शरीर (तेसिं) उन जीवोंको (खलु) वास्तवमें (मोहबहुलं) मोह-गर्भित (फासं) स्पर्श इंद्रियके विषयको (देंति) देते हैं।

विशेषार्थ-यहां यह सूत्रका अभिप्राय है कि स्पर्शन इंद्रिय आदिसे रहित, अखंड एक ज्ञानका प्रकाशरूप आत्म-स्वरूप है उसकी भावनासे रहित होकर तथा अल्प संसारी सुखके लिये स्पर्शन इंद्रियके विषयमें लंपटी होकर इस जीवने जो स्पर्शनेंद्रिय मात्रको उत्पन्न करनेवाला एकेंद्रिय जाति नामा नामकर्म बांधा है उसीके उदयके कालमें यह संसारी जीव स्पर्शनेंद्रिय ज्ञान मात्र क्षयोपशमको पाकर एकेंद्री पर्यायमें मात्र स्पर्शके विषयके ज्ञानसे परिणमन करता है ॥ ११० ॥

ति त्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया ॥ १११ ॥

त्रयः स्थावरतनुयोगा अनिलानलकायिकाश्च तेषु त्रसाः।
मनःपरिणामविरहिता जीवा एकेन्द्रिया ज्ञेयाः ॥ १११ ॥

अन्वयार्थः-[तेषु] उनमें, (त्रयः) तीन (पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक) जीव (स्थावरतनुयोगाः) स्थावर शरीरके संयोगवाले हैं (च) तथा (अनिलानलकायिकाः) वायुकायिक और अग्निकायिक जीव (त्रसाः) त्रस हैं, [मनःपरिणामविरहिताः] वे सब मनपरिणामरहित (एकेन्द्रियाः जीवाः) एकेन्द्रिय जीव (ज्ञेयाः) जानना ॥ १११ ॥

सं०ता०-अथ व्यवहारेणाग्निवातकायिकानां त्रसत्वं दर्शयति--पृथिव्यब्वनस्पतयस्त्रयः स्थावरकाययोगात्संबंधात्स्थावरा भण्यंते। अनलानिलकायिकाः तेषु पंचस्थावरेषु मध्ये चलनक्रियां दृष्ट्वा व्यवहारेण त्रसा भण्यंते। यदि त्रसास्तर्हि किं मनो भविष्यति। नैवं। मणपरिणामविरहिदा-मनः परिणामविहीनास्तथा चैकेन्द्रियाश्च ज्ञेयाः। के ? जीवा इति। तत्र स्थावरनामकर्मोदयाद्भिन्नमनंतज्ञानादिगुणसमूहादभिन्नत्वं यदात्मतत्त्वं तदनुभूतिरहितेन जीवेन यदुपार्जितं स्थावरनामकर्म तदुदयाधीनत्वात् यद्यप्यग्निवातकायिकानां व्यवहारेण चलनमस्ति तथापि निश्चयेन स्थावरा इति भावार्थः ॥ १११ ॥

हिंदी ता०--उत्थानिका-आगे व्यवहारसे अग्नि और वायुकायिक जीवोंको त्रस नामसे कह सक्ते हैं ऐसा दिखाते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(तेसु) इन पांचोंमेंसे (ति त्थावरतणुजोगा) तीन कायिक अर्थात् पृथ्वी, जल, वनस्पतिकाय स्थिर शरीर होनेके कारणसे स्थावर हैं (य) तथा (अणिलाणलकाइया) वायुकाय और अग्निकाय धारी जीव (तसा) त्रस जीव कहलाते हैं। (एइंदिया जीवा) ये एकेन्द्रिय जीव (मणपरिणामविरहिदा) मनके परिणमनसे रहित असैनी हैं ऐसा (णेया) जाननेयोग्य है।

विशेषार्थ-स्थावर नामकर्मके उदयसे भिन्न तथा अनंतज्ञानादि गुण समूहसे अभिन्न जो आत्मतत्त्व है उसके अनुभवसे शून्य जीवने जो स्थावर नामकर्म बांधा है उसके उदय के आधीन होनेसे यद्यपि अग्नि और वायुकायिक जीवोंको व्यवहारनयसे चलनापना है तथापि निश्चयनयसे ये स्थावर ही हैं॥ १११ ॥ *

पृथिवीकायिकादीनां पंचानामेकेन्द्रियत्वनियमोऽयम्।

एदे जीवणिकाया पंचविधा पुढविकाइयादीया।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एगेंदिया भणिया॥ ११२ ॥

एते जीवनिकायाः पंचविधाः पृथिवीकायिकाद्याः।
मनःपरिणामविरहिता जीवा एकेन्द्रिया भणिताः॥ ११२॥

पृथिवीकायिकादयो हि जीवाः स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सत्येकेन्द्रिया अमनसो भवंतीति॥ ११२॥

अन्वयार्थः-[एते] इन (पृथिवीकायिकाद्याः) पृथ्वीकायिक आदि [पञ्चविधाः] पांच प्रकारके [जीवनिकायाः] जीवनिकायोंको (मनःपरिणामविरहिताः) मनपरिणाम रहित (एकेन्द्रियाः जीवाः) एकेन्द्रिय जीव [भणिताः] (सर्वज्ञने) कहा है।

टीकाः-यह पृथ्वीकायिक आदि पांच [-पंचविध] जीवोंके एकेन्द्रियपनेका नियम है।

पृथ्वीकायिक आदि जीव, स्पर्शनेन्द्रियके आवरणके क्षयोपशमके कारण तथा शेष इन्द्रियोंके आवरणका उदय तथा मनके आवरणका उदय होनेसे, मनरहित एकेन्द्रिय हैं॥ ११२॥

सं०ता०-अथ पृथ्वीकायिकादीनां पंचानामेकेन्द्रियत्वं नियमयति,—एते प्रत्यक्षीभूता जीवनिकायाः पंचविधाः पृथ्वीकायिकादयो जीवाः। ते कथंभूताः ? मनःपरिणामविरहिताः—न केवलं मनःपरिणामविरहिता एकेन्द्रियाश्च। कस्मिन् सतीत्थंभूताः भणिताः। वीर्यांतरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सतीति। अत्र सूत्रे विश्वोपाधिविमुक्तशुद्धसत्तामा-

---

* वायुकायिक तथा अग्निकायिक जीवोंको चलनक्रिया देखकर व्यवहारसे त्रस कहा जाता है; निश्चयसे तो वे भी स्थावरनामानामकर्माधीनपनेके कारण (यद्यपि उनके व्यवहारसे चलन है तथापि) स्थावर ही हैं।

प्रदेशकेन निश्चयनयेन यद्यपि पृथ्व्यादि पंचभेदरहिता जीवास्तथापि व्यवहारनयेनाशुद्धमनोगतरागाद्यपध्यानसहितेन शुद्धमनोगतस्वसंवेदनज्ञानरहितेन यद्बद्धमेकेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयेनामनसः एवैकेन्द्रियाश्च भवंतीत्यभिप्रायः ॥ ११२ ॥

हिंदी ता०–उत्थानिका--आगे ऐसा नियम करते हैं कि पांचों पृथ्वीकायिक आदि एकेंद्रिय ही होते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(एदे) ये (पुढविकाइगादीया) पृथ्वीकायिक आदि (पंचविहा) पांच प्रकारके (जीवणिकाया) जीवोंके समूह (मणपरिणामविरहिदा) मनके भावोंसे शून्य (एगेंदिया जीवा) एकेंद्रिय जीव (भणिता) कहे गए हैं।

विशेषार्थ–वीर्यान्तराय और स्पर्शनेंद्रिय आवरण मतिज्ञानके क्षयोपशमके लाभसे तथा अन्य इन्द्रिय आवरणके उदयसे तथा नोइन्द्रिय आवरणके उदयसे ये जीव स्पर्शन इन्द्रिय मात्रके धारी एकेंद्रिय होते हैं। यहां यह अभिप्राय है कि सर्व उपाधिसे रहित शुद्ध सत्ता मात्र पदार्थको कहनेवाली निश्चयनयसे यद्यपि जीव पृथिवी आदि पांच भेदोंसे शून्य हैं तथापि व्यवहारनयसे ये जीव एकेन्द्रिय जाति नामा नामकर्मके उदयसे मनरहित एकेन्द्रिय होते हैं। इस एकेन्द्रिय जाति नामकर्मका बन्ध तब होता है जब शुद्ध मनमें प्राप्त स्वसंवेदन ज्ञान न होकर अशुद्ध मनमें होनेवाला राग आदि रूप अपध्यान होता है ॥ ११२ ॥

एकेन्द्रियाणां चैतन्यास्तित्वे दृष्टांतोपन्यासोऽयम्।

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया ॥ ११३ ॥

अंडेषु प्रवर्धमाना गर्भस्था मानुषाश्च मूर्च्छां गताः।
यादृशास्तादृशा जीवा एकेन्द्रिया ज्ञेयाः ॥ ११३ ॥

अंडांतर्लीनानां, गर्भस्थानां, मूर्च्छितानां च बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनेऽपि येन प्रकारेण जीवत्वं निश्चीयते, तेन प्रकारेणैकेन्द्रियाणामपि, उभयेषामपि बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनस्य समानत्वादिति ॥ ११३ ॥

अन्वयार्थः—(अंडेषु प्रवर्धमानाः) अंडेमें वृद्धि पानेवाले प्राणी, (गर्भस्थाः) गर्भमें रहेहुए प्राणी (च) और (मूर्च्छां गताः मानुषाः) मूर्च्छा प्राप्त मनुष्य, (यादृशाः) जैसे (बुद्धिपूर्वक व्यापार रहित होते हुये भी) जीव हैं, (तादृशाः) वैसे ही (एकेन्द्रियाः जीवाः) एकेन्द्रिय भी जीव (ज्ञेयाः) जानना।

टीकाः—यह, एकेन्द्रियोंको चैतन्यका अस्तित्व होने सम्बंधी दृष्टान्तका कथन है।

अंडेमें रहेहुए, गर्भमें रहेहुए और मूर्च्छा पायेहुए (प्राणियों) के बुद्धिपूर्वक व्यापार नहीं देखा जाता तथापि जीवत्वका, जिस प्रकार निश्चय किया जाता है, उसी प्रकार एकेन्द्रियोंके जीवत्वका भी निश्चय किया जाता है, क्योंकि दोनोंमें बुद्धिपूर्वक व्यापारका अदर्शन समान है ॥ ११३ ॥

सं०ता०-अथ पृथिवीकायाद्येकेन्द्रियाणां चैतन्यास्तित्वविपये दृष्टान्तमाह—अंडेसु प्रवर्तमानास्तिर्यंचो गर्भस्था मानुषा मूर्छागताश्च यादृशा ईहापूर्वव्यवहाररहिता भवन्ति तादृशा एकेन्द्रियजीवा ज्ञेया इति। तथाहि-यथाण्डजादीनां शरीरपुष्टिं दृष्ट्वा बहिरंगव्यापाराभावेपि चैतन्यास्तित्वं गम्यते म्लानतां दृष्ट्वा नास्तित्वं च ज्ञायते तथैकेन्द्रियाणामपि। अयमत्र भावार्थः—परमार्थेन स्वाधीनतानंतज्ञानसुखसहितोपि जीवः पश्चादज्ञानेन पराधीनेन्द्रियसुखासक्तो भूत्वा यत्कर्म बध्नाति तेनांडजादिसदृशमेकेन्द्रियजं दुःखितं चात्मानं करोति ॥ ११३ ॥

एवं पंचस्थावरव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन द्वितीयस्थलं गतं।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवोंमें चेतना गुण है इसे बतानेके लिये दृष्टान्त कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जारिसया) जिस प्रकार (अंडेसु) अंडोंमें (पवड्ढंता) बढते हुए, (गब्भत्था) गर्भमें तिष्ठते हुए (य) और (मुच्छगया) मूर्छाको प्राप्त हुए (माणुसा) मनुष्य जीते हैं (तारिसया) उसी तरहसे (एगेंदिया जीवा) एकेन्द्रिय जीव (ज्ञेया) जानने योग्य हैं।

विशेषार्थ—जैसे अंडोंके भीतरके तिर्यंच व गर्भस्थ पशु या मनुष्य या मूर्छागत मानव इच्छापूर्वक व्यवहार करते नही दीखते हैं तैसे इन एकेंद्रियोंको जानना चाहिये अर्थात् अंडोंमें जन्मनेवाले प्राणियोंके शरीरकी पुष्टि या वृद्धिको देखकर बाहरी व्यापार करना न दीखनेपर भी भीतर चैतन्य है ऐसा जाना जाता है, यही बात गर्भमें आए हुए पशु या मानवोंकी भी है। गर्भ बढता जाता है इसीसे चेतनाकी सत्ता मालूम होती है। मूर्छागत मानव तुर्त मूर्छा छोड सचेत होजाता है। इस ही तरह एकेन्द्रियोंके भीतर भी जानना चाहिये। जब गर्भस्थ शरीर या अण्डे या मूर्छा प्राप्त प्राणी म्लानित होजाते अर्थात् बढते नहीं या उनके शरीरकी चेष्टा बिगड जाती तब यह अनुमान होता है कि उनमें जीव नहीं रहा उस ही तरह एकेन्द्रिय जीव जब म्लानित या मर्दित होजाते हैं तब वे जीवरहित अचित्त होजाते हैं। यहां यह भाव लेना योग्य है कि यह जीव निश्चयनयसे स्वाधीनता सहित अनंतज्ञान तथा अनंतसुख धारी है तथापि व्यवहार नयसे पराधीन इंद्रिय सुखमें आशक्त होकर जो कर्म बांधता है उस कर्मके उदयसे अण्डज आदिके समान एकेन्द्रिय होकर आत्माको दुःखोंमें पटक देता है ॥ ११३ ॥

इस तरह पांच स्थावरोंके व्याख्यानकी मुख्यतासे चार गाथाओंके द्वारा दूसरा स्थल पूर्ण हुआ।

द्वीन्द्रियप्रकारसूचनेयम् ।

संबुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी ।
जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवा ॥ ११४ ॥

शंबूकमातृवाहाः शङ्खाः शुक्तयोऽपादकाः च कृमयः ।
जानन्ति रसं स्पर्शं ये ते द्वीन्द्रियाः जीवाः ॥ ११४ ॥

एते स्पर्शनरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति स्पर्शरसयोः परिच्छेत्तारो द्वीन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥ ११४ ॥

अन्वयार्थः—[शंबूकमातृवाहाः] शंबूकघोघा, मातृवाह, [शङ्खाः) शंख, (शुक्तयः) सीप (च) और (अपादकाः कृमयः) पग रहित कृमि-(ये) जो कि (रसं स्पर्शं) रस और स्पर्शको (जानन्ति) जानते हैं (ते) वे-(द्वीन्द्रियाः जीवाः) द्वीन्द्रिय जीव हैं ।

टीकाः—यह, द्वीन्द्रिय जीवोंके प्रकारकी सूचना है ।

स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रियके आवरणके क्षयोपशमके कारण तथा शेष इन्द्रियोंके आवरणका उदय तथा मनके आवरणका उदय होनेसे स्पर्श और रसको जाननेवाले यह (शंबूक आदि) जीव मनरहित द्वीन्द्रिय जीव हैं ॥ ११४ ॥

सं०ता०-अथ द्वीन्द्रियभेदान् प्ररूपयति,—शंबूकमातृवाहा शंखशुक्त्यपादगकृमयः कर्तारः स्पर्शरसद्वयं जानंत्येते जीवा यतस्ततो द्वीन्द्रिया भवंतीति । तद्यथा शुद्धनयेन द्वीन्द्रियस्वरूपात्पृथग्भूतं केवलज्ञानदर्शनद्वयादपृथग्भूतं यत् शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तद्भावनोत्थसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादरहितैः स्पर्शनरसनेन्द्रियादिविषयसुखरसास्वादसहितैर्जीवैर्यदुपार्जितं द्वीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयकाले वीर्यांतरायस्पर्शरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति द्वीन्द्रिया अमनसो भवंतीति सूत्रार्थः ॥ ११४ ॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे द्वीद्रिंय जीवोंके भेदोंको कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(संबुक) संबूक एक जातीका क्षुद्र शंख, (मादुवाहा) मातृवाह (संखा) संख (सिप्पी) सीप (य) और (अपादगा) पांव रहित (किमी) कृमी जैसे गिंडोला कृमि, लट आदिक (जे) जो (रसं) रस या स्वादको व (फासं) स्पर्शको (जाणंति) जानते (ते) वे (जीवा) जीव (वेइंदिया) द्वीन्द्रिय हैं ।

विशेषार्थ—शुद्ध निश्चयनयसे यह जीव द्वीन्द्रियके स्वरूपसे पृथक् तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे अभिन्न अर्थात् तन्मय शुद्ध अस्तिकाय है । ऐसे शुद्ध आत्माकी भावनाके द्वारा जो सदा आनंदमई एक लक्षण सुख—रसका आस्वाद आता है उसको न पाकर स्पर्शन और

रसना इंद्रिय आदिके विषयोंके सुखके रसास्वादमें मगन जीवोंने जो द्वीन्द्रिय जातिनामा नाम-कर्मका बंध किया था उस कर्मके उदय कालमें वीर्यांतराय और स्पर्शनेंद्रिय रसनेंद्रियके आवरण नामा मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके लाभसे शेष इंद्रियोंके आवरण रूप कर्मोंके उदयहोनेपर तथा नोइन्द्रिय जो मन उसके आवरण रूप कर्मके उदय होनेपर ये जीव द्वीन्द्रिय विना मनके होते हैं ॥ ११४ ॥

त्रीन्द्रियप्रकारसूचनेयम् ।

जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छयादिया कीडा ।
जाणंति रसं फासं गंधं तेइन्दिया जीवा ॥ ११५ ॥

यूकाकुंभीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः कीटाः ।
जानन्ति रसं स्पर्शं गंधं त्रींद्रियाः जीवाः ॥ ११५ ॥

एते स्पर्शनरसनघ्राणेंद्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति स्पर्शरसगंधानां परिच्छेत्तारस्त्रीन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥ ११५ ॥

अन्वयार्थः—(यूकाकुंभीमत्कुणपिपीलिकाः) जूं, कुंभी, खटमल, चींटी और (वृश्चिकादयः) विच्छू आदि (कीटाः) जन्तु (रसं स्पर्शं गंधं) रस, स्पर्श और गंधको (जानन्ति) जानते हैं, (त्रीन्द्रियाः जीवाः) वे त्रीन्द्रिय जीव हैं ।

टीकाः—यह, त्रीन्द्रिय जीवोंके प्रकारकी सूचना है ।

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रियके और घ्राणेन्द्रियके आवरणके क्षयोपशमके कारण तथा शेष इन्द्रियोंके आवरणका उदय तथा मनके आवरणका उदय होनेसे स्पर्श, रस और गंधको जाननेवाले यह (जूं आदि) जीव मनरहित त्रीन्द्रिय जीव हैं ॥ ११५ ॥

सं०ता०-अथ त्रीन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति,—यूकामत्कुणकुंभीपिपीलिकाः पर्णवृश्चिकाश्च गणकीटकादयः कर्त्तारः स्पर्शरसगंधत्रयं जानन्ति यतस्ततः कारणात् त्रीन्द्रिया भवंतीति । तथाहि—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसमुत्पन्नवीतरागपरमानंदैकलक्षणसुखामृतरसानुभवच्युतैः स्पर्शनरसनाघ्राणेन्द्रियादिविषयसुखमूर्च्छितैर्जीवैर्यद् बद्धं त्रींन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयाधीनत्वेन वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति त्रीन्द्रिया अमनसो भवंतीति सूत्राभिप्रायः ॥ ११५ ॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे त्रीन्द्रियके भेदोंको कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जूगा) जूं (गुंभी) एक विषैला कीट, (मकुण) खटमल (पिपीलिका) चींटी (विच्छियादिया) बिच्छू आदि (कीडा) कीडे (रसं) स्वादको (फासं)

स्पर्शको (गंधं) गंधको (जाणंति) जानते हैं इसलिये ये (तेइंदिया जीवा) तीन इन्द्रियधारी जीव हैं।

विशेषार्थ-विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावमई आत्म पदार्थके अनुभवसे उत्पन्न जो वीतराग परमानंदमई एक सुखामृत रस उसके स्वादसे रहित होकर तथा स्पर्शन, रसना व नासिका इन्द्रियके विषयोंके सुखमें मूर्छित होकर जिन जीवोंने त्रीन्द्रिय जाति नामा नामकर्म बांध लिया है उसके उदयके आधीन होकर तथा वीर्यांतरायके और स्पर्शन, रसना, व घ्राणइन्द्रिय सम्बंधी मतिज्ञानके आवरणके क्षयोपशमके लाभ होनेसे तथा शेष इन्द्रियोंके मतिज्ञानावरणके उदय होनेपर तथा नोइन्द्रिय जो मन उसके आवरणके उदय होनेपर तेंद्रिय जीव मनरहित होते हैं। यह सूत्रका अभिप्राय है ॥ ११५ ॥

चतुरिन्द्रियप्रकारसूचनेयम्।

उद्दंसमसयमक्खियमधुकरिभमरा पतंगमादीया।
रूवं रसं च गंधं फासं पुण ते विजाणंति ॥ ११६ ॥

उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमराः पतंगाद्याः।
रूपं रसं च गंधं स्पर्शं पुनस्ते विजानन्ति ॥ ११६ ॥

एते स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमात् श्रोत्रेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति स्पर्शरसगंधवर्णानां परिच्छेत्तारश्चतुरिन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥ ११६ ॥

अन्वयार्थः-[पुनः] पुनश्च (उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमराः) डांस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भंवरा और (पतङ्गाद्याः ते) पतंगे आदि जीव (रूपं) रूप, (रसं) रस, (गंधं) गंध (च) और (स्पर्शं) स्पर्शको (विजानन्ति) जानते हैं। (वे चतुरिन्द्रिय जीव हैं।)

टीकाः—यह, चतुरिन्द्रिय जीवोंके प्रकारकी सूचना है।

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रियके आवरणके क्षयोपशमके कारण तथा श्रोत्रेन्द्रियके आवरणका उदय तथा मनके आवरणका उदय होनेसे स्पर्श, रस, गंध और वर्णको जाननेवाले यह (डांस आदि) जीव मनरहित चतुरिन्द्रिय जीव हैं ॥ ११६ ॥

सं०ता०-अथ चतुरिन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति,—उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमरपतंगाद्याः कर्तारः स्पर्शरसगंधवर्णान् जानन्ति यतस्ततः कारणाच्चतुरिन्द्रिया भवन्ति। तद्यथा—निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानभावनोत्पन्नसुखसुधारसपानविमुखैः स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुरादिविषयसुखानुभवाभिमुखैर्बहिरात्मभिर्यदुपार्जितं चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म तद्विपाकाधीना तथा वीर्यांतरायस्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् श्रोत्रेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति चतुरिन्द्रिया अमनसो भवंतीत्यभिप्रायः ॥ ११६ ॥

इति विकलेन्द्रियव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण तृतीयस्थलं गतं।

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे चार इन्द्रियधारी जीवोंके भेद बताते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(उद्ंस) डांस [मसय] मच्छर, [मक्खि] मक्खी, [मधुकर] मधुमक्खी, [भमरा] भौंरा [पतंगमादीया] पतंग आदिक [रूपं] वर्णको [रसं] स्वादको [च] और [गंधं] गंधको, [पुण] तथा [फासं] स्पर्शको [जाणंति] जानते हैं [ते त्रि] वे ही चौइन्द्रिय जीव हैं।

विशेषार्थ—जो मिथ्यादृष्टी जीव निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानकी भावनासे उत्पन्न जो सुख रूपी अमृतका पान उससे विमुख हैं तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु आदि इन्द्रियोंके विषयोंके सुखके अनुभवमें लीन हैं वे चौइन्द्रिय जाति नामा नामकर्म बांधते हैं। इस नाम कर्मके उदयके आधीन होकर तथा वीर्यान्तराय और स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु इन्द्रियका आवरणरूप मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमके लाभसे और कर्णेंद्रिय तथा नोइन्द्रियके आवरणके उदयसे चार-इन्द्रियधारी मन रहित होते हैं, यह अभिप्राय है॥ ११६॥

इसतरह विकलेन्द्रियके व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथाओंके द्वारा तीसरा स्थल पूर्ण हुआ।

पंचेन्द्रियप्रकारसूचनेयम्।

सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू।
जलचरथलचरखचरा बलिया पंचेंद्रिया जीवा॥ ११७॥

सुरनरनारकतिर्यञ्चो वर्णरसस्पर्शगंधशब्दज्ञाः।
जलचरस्थलचरखचरा बलिनः पंचेन्द्रिया जीवाः॥ ११७॥

अथ स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुः श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् नोइन्द्रियावरणोदये सति स्पर्शरसगंधवर्णशब्दानां परिच्छेत्तारः पंचेन्द्रिया अमनस्काः। केचित्तु नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमात् समनस्काश्च भवन्ति। तत्र देवमनुष्यनारकाः समनस्का एव, तिर्यञ्च उभयजातीया इति॥ ११७॥

अन्वयार्थः—(वर्णरसस्पर्शगंधशब्दज्ञाः) वर्ण, रस, स्पर्श, गंध और शब्दको जाननेवाले (सुरनरनारकतिर्यञ्चः) देव-मनुष्य-नारक-तिर्यंच—(जलचरस्थलचरखचराः) जो जलचर, स्थलचर, खेचर होते हैं वे—(बलिनः पञ्चेन्द्रियाः जीवाः) बलवान पंचेन्द्रिय जीव हैं।

टीकाः—यह, पंचेन्द्रिय जीवोंके प्रकारकी सूचना है।

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रियके आवरणके क्षयोपशमके कारण मनके आवरणका उदय होनेसे, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्दको जाननेवाले जीव मनरहित पंचेन्द्रिय जीव हैं, कुछ (पंचेन्द्रिय जीव) तो, उन्हें मनके आवरणका भी क्षयोपशम होनेसे, मनसहित (पंचेन्द्रिय

जीव) होते हैं।

उनमें, देव, मनुष्य और नारकी मनसहित ही होते हैं, तिर्यंच दोनों जातिके (अर्थात् मनरहित तथा मनसहित) होते हैं ॥ ११७ ॥

सं० ता०-पंचेन्द्रियभेदानावेदयति,-सुरनरनारकतिर्यंचः चत्वारः वर्णरसगंधस्पर्शशब्दज्ञा यतः कारणात्तः पंचेन्द्रियजीवा भवन्ति तेपु च मध्ये ये तिर्यंचस्ते केचन जलचरस्थलचरखचरा बलिनश्च भवन्ति। ते च के? जलचरमध्ये ग्राहसंज्ञाः स्थलचरेष्वष्टापदसंज्ञाः खचरेपु भेरुंडा इति। तद्यथा--निर्दोपिपरमात्मध्यानोत्पन्ननिर्विकारचिदानंदैकलक्षणसुखविपरीतं यदिन्द्रियसुखं तदासक्तैर्बहिर्मुखजीवैर्यदुपार्जितं पंचेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयं प्राप्य वीर्यांतरायस्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभान्नोइन्द्रियावरणोदये सति केचन शिक्षालाभोपदेशनशक्तिविकलाः पंचेन्द्रिया असंज्ञिनो भवन्ति, केचन पुनर्नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमलाभात्संज्ञिनो भवन्ति तेपु च मध्ये नारकमनुष्यदेवाः संज्ञिन एव, तिर्यंचः पंचेन्द्रियाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनो भवन्ति। एकेन्द्रियादिचतुरिन्द्रियपर्यंता असंज्ञिन एव। कश्चिदाह-क्षयोपशमविकल्परूपं हि मनो भण्यते। तत्तेपामप्यस्तीति कथमसंज्ञिनः। परिहारमाह-यथा पिपीलिकाया गंधविपये जातिस्वभावेनैवाहारादिसंज्ञारूपं पटुत्वमस्ति न चान्यत्र कार्यकारणव्याप्तिज्ञानविपये। अन्येपामप्यसंज्ञिनां तथैव। मनः पुनर्जगत्त्रयकालत्रयविपयव्याप्तिज्ञानरूपकेवलज्ञानप्रणीतपरमात्मादितत्त्वानां परोक्षपरिच्छित्तिरूपेण परिच्छेदकत्वात्केवलज्ञानसमानमिति भावार्थः ॥ ११७ ॥

हिन्दी ता०-उत्थानिका-आगे पंचेन्द्रियके भेदोंको कहते हैं-

अन्वयसहित सामान्यार्थ-[सुरणरणारयतिरिया] देव, मनुष्य, नारकी और तिर्यंच [जलचर-थलचर-खचरा] जो जलचर, भूमिचर तथा आकाशगामी हैं [बलिया] ऐसे बलवान [जीवा] जीव [वण्णरसफ्फासगंधसद्दण्हू] वर्ण, रस, स्पर्श, गन्ध और शब्दको समझनेवाले [पंचेंदिया] पंचेंद्रिय होते हैं।

विशेषार्थ-वृत्तिकारने यह अर्थ किया है कि तिर्यंच पंचेन्द्रियोंमें कोई २ बड़े बलवान् होते हैं जैसे जलचरोंमें ग्राह, थलचरोंमें अष्टापद, खचरोंमें भेरुण्डपक्षी। जो बहिरात्मा जीव दोपरहित परमात्माके ध्यानसे उत्पन्न निर्विकार चिदानन्दमई सुखसे विपरीत---इन्द्रियसुखमें आसक्त हैं वे पंचेन्द्रिय जाति नामका नामकर्म बांध लेते हैं उसके उदयको पाकर वीर्यांतराय कर्म तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्णइन्द्रिय ज्ञानके आवरण कर्मके क्षयोपशमके लाभसे तथा नोइन्द्रिय जो मन उसके द्वारा ज्ञानको आवरण करनेवाले कर्मके उदय होनेपर कोई जीव पंचेन्द्रिय मनरहित होते हैं तब वे शिक्षा, वार्तालाप, व उपदेश ग्रहणकी शक्तिसे शून्य होते हैं तथा कोई नोइन्द्रिय ज्ञानके आवरणके क्षयोपशमके लाभसे भी मनसहित सैनी पंचेन्द्रिय होते हैं। इन पंचेन्द्रिय जीवोंमें नारकी, मनुष्य और देव तो सब सैनी ही होते हैं-पंचेन्द्रिय तिर्यंच सैनी और असैनी दो भेदरूप हैं। तथा एकेन्द्रियसे ले चार इन्द्रिय तक तो सब असैनी ही

होते हैं। यहां किसीने शंका की कि असैनी जन्तुओंके भी क्षयोपशम ज्ञानसे विचार होता है तथा क्षयोपशमसे उठनेवाले विकल्पको ही मन कहते हैं यह विकल्प जब असैनीको है तब उनको असैनी क्यों कहा है इसका समाधान वृत्तिकार कहते हैं कि असैनीको कार्य कारणकी व्याप्तिका ज्ञान नहीं होता है–वे पहलेसे हरएक विषयमें यह नहीं विचार कर सक्ते कि ऐसा करनेसे यह लाभ होगा व यह हानि होगी–असैनी जीव अपने अपने स्वभावसे बिना हानि लाभ विचारे काम करते हैं जैसे–चींटी गन्धके विषयमें व आहार आदि संज्ञा रूपसे जो चतुराई रखती है वह उसके जातिस्वभावसे है, अन्य विषयोंमें उसका ज्ञान विचार नहीं कर सक्ता है। मनमें यह शक्ति है कि तीन जगत व तीन काल सम्बन्धी व्याप्तिज्ञान रूप केवलज्ञानमें जो परमात्मा आदि तत्त्व जाने गए हैं उनको परोक्ष रूपसे जान सक्ता है इसलिये वह केवलज्ञानके समान है, यह भावार्थ है ॥ ११७ ॥

इन्द्रियभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबंधत्वेनोपसंहारोऽयम् ।

देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया ।
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा ॥ ११८ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः मनुजाः पुनः कर्मभोगभूमिजाः ।
तिर्यञ्चः बहुप्रकाराः नारकाः पृथिवीभेदगताः ॥ ११८ ॥

देवगतिनाम्नो देवायुषश्चोदयाद्देवाः, ते च भवनवासिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकनिकायभेदाच्चतुर्धा। मनुष्यगतिनाम्नो मनुष्यायुषश्च उदयान्मनुष्याः। ते कर्मभोगभूमिजभेदात् द्वेधा। तिर्यग्गतिनाम्नस्तिर्यगायुषश्च उदयात्तिर्यञ्चः। ते पृथिवीशम्बूकयूकोद्दंशजलचरोरगपक्षिपरिसर्पचतुष्पदादिभेदादनेकधा। नरकगतिनाम्नो नरकायुषश्च उदयान्नारकाः। ते रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाभूमिजभेदात्सप्तधा। तत्र देवमनुष्यनारकाः पंचेन्द्रिया एव। तिर्यंचस्तु केचित्पंचेन्द्रियाः, केचिदेक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया अपीति ॥ ११८ ॥

अन्वयार्थः–[देवाः चतुर्णिकायाः] देवोंके चार निकाय हैं, (मनुजाः कर्मभोगभूमिजाः) मनुष्य कर्मभूमिज और भोगभूमिज ऐसे दो प्रकारके हैं, (तिर्यञ्चः बहुप्रकाराः) तिर्यंच अनेक प्रकारके हैं (पुनः) और (नारकाः पृथिवीभेदगताः) नारकोंके भेद उनकी पृथ्वियोंके भेद जितने हैं।

टीकाः–यह, इन्द्रियोंके भेदकी अपेक्षासे कहे गये जीवोंका चतुर्गतिसम्बन्ध दर्शाते हुए उपसंहार है।

देवगतिनाम और देवायुके उदयसे (अर्थात् देवगतिनामकर्म और देवायुकर्मके उदयके निमित्तसे) देव होते हैं, वे भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक निकायभेदोंके कारण चार प्रकारके हैं। मनुष्य गतिनाम और मनुष्यायुके उदयसे मनुष्य होते हैं, वे कर्मभूमिज और भोगभूमिज ऐसे भेदोंके कारण दो प्रकारके हैं। तिर्यंचगतिनाम और तिर्यंचायुके उदयसे तिर्यंच होते हैं, वे पृथ्वी, शंबूक, जूं, डांस, जलचर,

उरग, पक्षी, परिसर्प, चतुष्पाद (चोपाये) इत्यादि भेदोंके कारण अनेक प्रकारके हैं। नरकगतिनाम और नरकायुके उदयसे नारक होते हैं, वे रत्नप्रभाभूमिज, शर्कराप्रभाभूमिज, वालुकाप्रभाभूमिज, पंकप्रभाभूमिज, धूमप्रभाभूमिज, तमःप्रभाभूमिज और महातमःप्रभाभूमिज ऐसे भेदोंके कारण सात प्रकारके हैं।

उनमें, देव, मनुष्य और नारकी पंचेन्द्रिय ही होते हैं। तिर्यंच तो कुछ पंचेन्द्रिय होते हैं और कुछ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय भी होते हैं॥ ११८॥

सं०ता०—तथैकेन्द्रियादिभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबन्धित्वेनोपसंहारः कथ्यते,—भवनवासिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन देवाश्चतुर्णिकाया, भोगभूमिकर्मभूमिजभेदेन द्विविधा मनुष्याः, पृथिव्याद्येकेन्द्रियभेदेन शम्बूकयूकोद्दंशकादिविकलेन्द्रियभेदेन जलचरस्थलचरखचरद्विपदचतुःपदादिपंचेन्द्रियभेदेन तिर्यंचो बहुप्रकाराः। रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमः प्रभाभूमिभेदेन नारकाः सप्तविधा भवंतीति। अत्र चतुर्गतिविलक्षणा स्वात्मोपलब्धिलक्षणा या तु सिद्धगतिस्तद्भावनारहितैर्जीवैः सिद्धसदृशनिजशुद्धात्मभावनारहितैर्वा यदुपार्जितं चतुर्गतिनामकर्म तदुदयवशेन देवादिगतिपूत्पद्यंत इति सूत्रार्थः॥ ११८॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे एकेन्द्रिय आदिके भेदसे जिन जीवोंको कहा है उनके चार गति होती हैं ऐसा कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(देवा) देवगतिवाले जीव (चउण्णिकाया) चार समूह रूपसे चार प्रकार हैं। (पुण) और (मणुया) मनुष्य (कम्मभोगभूमीया) कर्मभूमि और भोगभूमिवाले हैं। (तिरिया) तिर्यंच गतिवाले (बहुप्पयारा) बहुत तरहके हैं (णेरइया) नारकी (पुढविभेयगदा) पृथ्वीके भेदके प्रमाण हैं।

विशेषार्थ—देवोंके चार समूह हैं, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। मनुष्योंके दो भेद हैं—एक वे जो भोगभूमिमें जन्मते हैं। दूसरे वे जो कर्मभूमिमें पैदा होते हैं। तिर्यंच बहु प्रकार हैं। पृथ्वी आदि पांच एकेन्द्रिय तिर्यंच हैं। शम्बूक आदि दो इन्द्रिय, जूआदि तीन इन्द्रिय, डांस आदि चार इन्द्रिय ऐसे तीन प्रकार विकलत्रय तिर्यंच हैं जलमें चलनेवाले, भूमिमें चलनेवाले तथा आकाशमें उडनेवाले एसे द्विपद चौपद आदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं। रत्न, शर्करा, वालुका, पंक, धूम, तम, महातम, ऐसी सात पृथिवी हैं जिनमें सात नरक हैं उनमें निवासी नारकी हैं। यहां सूत्रका भाव यह है कि जो जीव सिद्ध गतिकी भावनासे रहित हैं अथवा सिद्धके समान अपना शुद्ध आत्मा है इस भावनासे शून्य हैं उन जीवोंने जो नरकादि चार गति रूप नामकर्म बांधा है उसके उदयके आधीन ये जीव देव आदि गतियोंमें पैदा होते हैं॥ ११८॥

गत्यायुर्नामोदयनिर्वृत्तत्वाद् देवत्वादीनामनात्मस्वभावत्वोद्योतनमेतत्।

खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे च ते वि खलु।

पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा ॥ ११६ ॥

क्षीणे पूर्वनिबद्धे गतिनाम्नि आयुषि च तेऽपि खलु ।
प्राप्नुवन्ति चान्यां गतिमायुष्कं स्वलेश्यावशात् ॥ ११६ ॥

क्षीयते हि क्रमेणारब्धफलो गतिनामविशेष आयुर्विशेषश्च जीवानाम्। एवमपि तेषां गत्यंतरस्यायुरंतरस्य च कषायानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या भवति बीजं, ततस्तदुचितमेव गत्यंतरमायुरंतरञ्च ते प्राप्नुवन्ति। एवं क्षीणाक्षीणाभ्यामपि पुनः पुनर्नवीभूताभ्यां गतिनामायुःकर्मभ्यामनात्मस्वभावभूताभ्यामपि चिरमनुगम्यमानाः संसरंत्यात्मानमचेतयमाना जीवा इति ॥ ११६ ॥

अन्वयार्थः—(पूर्वनिबद्धे) पूर्वबद्ध (गतिनाम्नि आयुषि च) गतिनामकर्म और आयुषकर्म (क्षीणे) क्षीण होनेसे (ते अपि) वेही जीव (स्वलेश्यावशात) अपनी लेश्याके वश (खलु) वास्तवमें (अन्यां गतिम् आयुष्कं च) अन्य गति और आयुष्य (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त करते हैं।

टीकाः—यहां, गतिनामकर्म और आयुषकर्मके उदयसे निष्पन्न होते हैं इसलिये देवत्वादि अनात्मस्वभावभूत हैं ऐसा दर्शाया है

जीवोंके, जिसका फल प्रारम्भ हो जाता है ऐसा अमुक गतिनामकर्म और अमुक आयुषकर्म क्रमशः क्षयको प्राप्त होता है। ऐसा होने पर भी उन्हें कषाय-अनुरंजित योगप्रवृत्तिरूप लेश्या अन्य गति और अन्य आयुषका बीज होती है (अर्थात् लेश्या अन्य गतिनामकर्म और अन्य आयुषकर्मको बन्धका कारण होती है), इसलिये उसके उचित [उसके अनुसार) ही अन्य गति तथा अन्य आयुष वे प्राप्त करते हैं। इस प्रकार क्षीण-अक्षीणपनेको प्राप्त होने पर भी पुनः पुनः नवीन उत्पन्न होनेवाले गतिनामकर्म और आयुषकर्म (प्रवाहरूपसे)-यद्यपि वे अनात्मस्वभावभूत हैं तथापि-चिरकाल (जीवोंके) साथ साथ रहते हैं इसलिये, आत्माको न चेतनेवाले जीव संसरण करते हैं (अर्थात् आत्माका अनुभव न करनेवाले जीव संसारमें परिभ्रमण करते हैं) ॥ ११६ ॥

सं०ता०—अथ गतिनामायुःकर्मनिर्वृत्तत्वाद्देवत्वादीनामनात्मस्वभावत्वं दर्शयति—अथवा ये केचन वदन्ति-नान्यादृशं जगत्, देवो मृत्वा देव एव मनुष्या मृत्वा मनुष्या एवेति तन्निषेधार्थं,—क्रमेण दत्तफले क्षीणे सति। कस्मिन्। पूर्वनिबद्धे पूर्वोपार्जिते गतिनामकर्मण्यायुषि च तेपि खलु ते जीवाः कर्तारः खलु स्फुटं प्राप्नुवन्ति। किम्। अन्यदपूर्वं मनुष्यगत्यपेक्षया देवगत्यादिकं भवांतरे गतिनामायुष्कं च। कथंभूताः संतः ? स्वकीयलेश्यावशाः स्वकीयपरिणामाधीना इति। तद्यथा—"चंडो ण मुअइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहियो। दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स" इत्यादिरूपेण कृष्णादिषड्लेश्यालक्षणं गोम्मटशास्त्रादौ विस्तरेण भणितमास्ते तदत्र नोच्यते। कस्मात्। अध्यात्मग्रंथत्वात्। तथा संक्षेपेणात्र कथ्यते। कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या सा च शुभाशुभगतिनामकर्मण आयुः कर्मणश्च बीजं कारणं भवति तेन कारणेन तद्विनाशः कर्तव्यः। कथमिति चेत् ? क्रोधमानमायालोभरूपकषायोदयचतुष्काद्भिन्ने अनंत-

ज्ञानदर्शनसुखवीर्यचतुष्कादभिन्ने परमात्मनि यदा भावना क्रियते तदा कषायोदयविनाशो भवति तद्भावनार्थमेव शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारपरिहारे सति योगत्रयाभावश्चेति कषायोदयरंजितयोगप्रवृत्तिरूपलेश्याविनाशस्तदभावे गतिनामायुष्कर्मणोरभावस्तयोरभावेऽक्षयानंतसुखादिगुणस्य मोक्षस्य लाभ इति सूत्राभिप्रायः ॥ ११६॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे दिखलाते हैं कि गति नामा नामकर्म व आयु कर्मके उदयसे प्राप्त जो देव आदि गतियें हैं उनमें आत्माका स्वभावपना नहीं है। वे आत्माकी विभाव या अशुद्ध अवस्थाएं हैं। अथवा जो कोई वादी ऐसा कहते हैं कि जगतमें एक जीवकी अन्य अन्य अवस्थाएं नहीं होती हैं, देव मरके देव ही होता है, मनुष्य मरके मनुष्य ही होते हैं। उनके इस कथनका निषेध करनेके लिये कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—[पुव्वणिबद्धे] पूर्वमें बांधे हुए [गदिणामे] गतिनामा नाम कर्मके [च] और [आउसे] आयु कर्मके [खीणे] क्षय होजाने पर [तेवि] वे ही जीव [खलु] वास्तवमें [सलेस्सवसा] अपनी अपनी लेश्याके वससे [अण्णं] अन्य [गदिम्] गतिको [य] और [आउस्सं] आउको [पापुण्णंति] पाते हैं।

विशेषार्थ—ये संसारी जीव अपने २ परिणामोंके आधीन भिन्न २ गति व आयुको बांधकर जन्मते रहते हैं। कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छः लेश्याएं होती हैं इनका स्वरूप श्री गोम्मटसारमें विस्तारसे कहा है जैसे—कृष्ण लेश्याका स्वरूप यह है " चंडो ण मुचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहियो। दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥ ५०६ ॥" भावार्थ—जो प्रचंड तीव्र क्रोधी हो, वैर न छोड़े, बकनेका व युद्ध करनेका जिसका सहज स्वभाव हो, दयाधर्मसे रहित हो, दुष्ट हो, किसी गुरुजन आदिके वश न हो। ये लक्षण कृष्ण लेश्या वालोंके हैं।

यह अध्यात्म ग्रन्थ है इससे विशेष नहीं कहा है तथापि कुछ संक्षेपसे लिखते हैं- " कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिः लेश्या " यह लेश्याका लक्षण है। अर्थात् कषायोंके उदयसे रंगी हुई योगोंकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। यही शुभ अशुभ गतिनामा नामकर्म व आयुकर्मके बंधनेका बीज है इसलिये लेश्याका नाश करना योग्य है। जिसका उपाय यह है कि जब यह भावना की जाती है कि 'मैं क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चारों कषायोंके उदयसे भिन्न हूँ, तथा अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख तथा अनंत वीर्य इन चार अनंतचतुष्टयसे भिन्न नहीं हूं ऐसा मैं परमात्म स्वभावधारी हूँ' तब कषायोंके उदयका नाश होता है, इस भावनाके लिये ही शुभ या अशुभ मन वचन कायके व्यापारका त्याग किया जाता है। इसी ही क्रमसे तीनों योगोंका अभाव होजाता है तब कषायोंके उदयसे रंगी हुई योगोंकी प्रवृत्तिरूप लेश्याका भी

विनाश होजाता है। लेश्याके अभावसे गतिनामकर्म तथा आयुकर्मका भी अभाव होजाता है तब अक्षय अनंत सुखादि गुणोंसे पूर्ण मोक्षका लाभ होता है यह सूत्रका अभिप्राय है ॥ ११९ ॥

उक्तजीवप्रपंचोपसंहारोऽयम् ।

एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा ।
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य ॥ १२० ॥

एते जीवनिकाया देहप्रवीचारमाश्रिताः भणिताः ।
देहविहीनाः सिद्धाः भव्याः संसारिणोऽभव्याश्च ॥ १२० ॥

एते ह्युक्तप्रकाराः सर्वे संसारिणो देहप्रवीचाराः, अदेहप्रवीचारा भगवंतः सिद्धाः शुद्धा जीवाः। तत्र देहप्रवीचारत्वादेकत्वेऽपि संसारिणो द्विप्रकाराः भव्या अभव्याश्च । ते शुद्ध-स्वरूपोपलम्भशक्तिसद्भावासद्भावाभ्यां पाच्यापाच्यमुद्गवदभिधीयंत इति ॥ १२० ॥

अन्वयार्थः—(एते जीवनिकायाः) यह (पूर्वोक्त) जीवनिकाय (देहप्रवीचारमाश्रिताः) देहमें वर्तनेवाले अर्थात् देहसहित (भणिताः) कहे गये हैं, (देहविहीनाः सिद्धाः) देहरहित ऐसे सिद्ध हैं। (संसारिणः) संसारी (भव्याः अभव्याः च) भव्य और अभव्य ऐसे दो प्रकारके हैं।

टीकाः—यह उक्त (—पहले कहे गये) जीवविस्तारका उपसंहार है।

जिनके प्रकार (पहले) कहे गये ऐसे यह समस्त संसारी देहमें वर्तनेवाले (अर्थात् देहसहित) हैं, देहमें न वर्तनेवाले (अर्थात् देहरहित) ऐसे सिद्ध भगवंत हैं—जो कि शुद्ध जीव हैं। वहां, देहमें वर्तनेकी अपेक्षासे संसारी जीवोंका एक प्रकार होने पर भी वे भव्य और अभव्य ऐसे दो प्रकारके हैं। 'पाच्य' (पकनेयोग्य) और 'अपाच्य' (न पकने योग्य) मूंगकी भांति, जिनमें शुद्ध स्वरूपकी उपलब्धिकी (प्राप्ति की) शक्तिका सद्भाव है उन्हें 'भव्य' और जिनमें शुद्ध स्वरूपकी उपलब्धिकी शक्तिका असद्भाव है उन्हें 'अभव्य' कहा जाता है ॥ १२० ॥

सं०ता०—अथ पूर्वोक्तजीवप्रपंचस्य संसारिमुक्तभेदेनोपसंहारव्याख्यानं करोति,—एते जीवनिकाया निश्चयेन शुद्धात्मस्वरूपाश्रिता अपि व्यवहारेण कर्मजनितदेहप्रवीचाराश्रिता भणिताः, देहे प्रवीचारो वर्तना देहप्रवीचारः। निश्चयेन केवलज्ञानदेहस्वरूपा अपि कर्मजनितदेहविहीना भवन्ति। ते के ? शुद्धात्मोपलब्धि-युक्ताः सिद्धाः, संसारिणस्तु भव्या अभव्याश्चेति। तथाहि—केवलज्ञानादिगुणव्यक्तिरूपा या शुद्धिस्तस्याः शक्तिर्भव्यत्वं भण्यते तद्विपरीतमभव्यत्वं। किंवत् ? पाच्यापाच्यमुद्गवत् सुवर्णेतरपाषाणवद्वा शुद्धिशक्ति-यासौ सम्यक्त्वग्रहणकाले व्यक्तिमासादयति अशुद्धशक्तेर्यासौ व्यक्तिः सा चाशुद्धिरूपेण पूर्वमेव तिष्ठति तेन कारणेनानादिरित्यभिप्रायः ॥ १२० ॥ एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं पंचेन्द्रियव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थ-स्थलं गतं।

अत्र पंचेन्द्रिया इत्युपलक्षणं तेन कारणेन गौणवृत्त्या "तिरिया बहुप्पयारा ।" इति पूर्वोक्तगाथाखंडनैकेन्द्रियादिव्याख्यानमपि ज्ञातव्यं । उपलक्षणविषये दृष्टांतमाह-काकेभ्यो रक्षतां सर्पिरित्युक्ते मार्जारादिभ्योपि रक्षणीयमिति ।

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे पूर्वमें जो जीव पदार्थका कथन किया है उसीका संकोच व्याख्यान करते हुए संसारी और मुक्तके भेदोंको बताते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-[एदे] ये [जीवनिकाया] जीवोंके समूह [देहप्पविचारम्] शरीरमें वर्तनाको [अस्सिदा] आश्रय करनेवाले अर्थात् शरीरके द्वारा व्यापार करनेवाले (भणिदा) कहे गए हैं [देहविहूणा] जो शरीरसे रहित हैं वे [सिद्धा] सिद्ध हैं । [संसारिणो] संसारी जीव [भव्वा] भव्य [य] और [अभव्वा] अभव्य दो प्रकारके हैं ।

विशेषार्थ-निश्चय नयसे देखा जावे तो सर्व जीव शुद्ध आत्मस्वरूपके धारी हैं, केवल ज्ञानमई चैतन्य शरीरके स्वामी हैं तथा कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले शरीरसे रहित हैं । व्यवहारनयसे जो शरीरमें आश्रित हैं वे संसारी हैं, जो शरीर रहित हैं वे सिद्ध हैं । सिद्धोंको साक्षात् शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होगई है । संसारी जीवोंमें कोई भव्य हैं, कोई अभव्य हैं । जिनमें केवलज्ञान आदि गुणोंकी प्रगटता रूप शुद्धिकी शक्ति पाई जाती है वे भव्य हैं-जिनमें प्रगटतारूप शुद्धिकी शक्ति नहीं है वे अभव्य हैं-जैसे पकने योग्य मूंग और न पकने योग्य मूंग या सुवर्ण पाषाण और अन्ध पाषाण । पहलेमें स्वभावकी प्रगटताकी योग्यता है दूसरेमें नहीं है, यद्यपि मूंगपना व सुवर्णपना इनमें भी है । जिनमें शुद्ध होनेकी शक्ति होती है वह शक्ति सम्यग्दर्शन के ग्रहण के समय प्रगट होजाती है । पर जिन में वह शक्ति नहीं है वह सदा अशुद्ध रूपसे ही रहती है जैसे अनादिसे चली आ रही है ।। १२० ।

इसतरह चार गाथाओं तक पंचेन्द्रियके व्याख्यानकी मुख्यतासे चौथा स्थल पूर्ण हुआ ।

यहां पंचेन्द्रिय उपलक्षण पद है इस कारणसे गौणरूपसे "तिरिया बहुप्पयारा" इस पूर्वमें कहे हुए गाथाके खंडसे एकेंद्रिय आदिका व्याख्यान भी जानना योग्य है । इस उपलक्षणका दृष्टांत देते हैं । जैसे किसीने कहा, काकों या कौओंसे घीकी रक्षा करो तब इसका मतलब यह भी लिया जायगा कि बिलाव आदिसे भी घीकी रक्षा की जावे ।

व्यवहारजीवत्वैकांतप्रतिपत्तिनिरासोऽयम् ।

ण हि इन्दियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता ।
जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवंति ।। १२१ ।।

न हीन्द्रियाणि जीवाः कायाः पुनः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ताः ।
यद्भवति तेषु ज्ञानं जीव इति च तत्प्ररूपयन्ति ।। १२१ ।।

य इमे एकेन्द्रियादयः पृथिवीकायिकादयश्चानादिजीवपुद्गलपरस्परावगाहमवलोक्य व्यवहारनयेन जीवप्राधान्याज्जीवा इति प्रज्ञाप्यंते । निश्चयनयेन तेषु स्पर्शनादीन्द्रियाणि पृथिव्यादयश्च कायाः जीवलक्षणभूतचैतन्यस्वभावाभावान्न जीवा भवंतीति । तेष्वेव यत्स्वपरपरिच्छित्तिरूपेण प्रकाशमानं ज्ञानं तदेव गुणगुणिनोः कथञ्चिदभेदाज्जीवत्वेन प्ररूप्यत इति ॥ १२१ ॥

अन्वयार्थः—(न हि इन्द्रियाणि जीवाः) इन्द्रियां जीव नहीं हैं और (षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ताः कायाः पुनः) छह प्रकारकी शास्त्रोक्त कायें भी जीव नहीं हैं. (तेषु) उनमें (यद् ज्ञानं भवति) जो ज्ञान है (तत् जीवः) वह जीव है (इति च प्ररूपयन्ति) ऐसी (ज्ञानी) प्ररूपणा करते हैं ।

टीकाः—यह, व्यवहारजीवत्वके एकान्तकी प्रतिपत्तिका [मान्यता का] खंडन है ।

यह जो एकेन्द्रियादि तथा पृथ्वीकायिकादि 'जीव' कहे जाते हैं वे, अनादि जीवपुद्गलका परस्पर अवगाह देखकर व्यवहारनयसे जीवके प्राधान्य द्वारा (—जीवको मुख्यता देकर) 'जीव' कहे जाते हैं। निश्चयनयसे उनमें स्पर्शनादि इन्द्रियां तथा पृथ्वी आदि कायें, जीवके लक्षणभूत चैतन्यस्वभावके अभावके कारण, जीव नहीं हैं, उन्हींमें जो स्वपरकी ज्ञप्तिरूपसे प्रकाशित ज्ञान है वही, गुण-गुणीके कथंचित् अभेदके कारण, जीवरूपसे प्ररूपित किया जाता है ॥ १२१ ॥

सं०ता०—अथेन्द्रियाणि पृथिव्यादिकायाश्च निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति प्रज्ञापयंति,—इन्द्रियाणि जीवा न भवन्ति । न केवलमिन्द्रियाणि । पृथिव्यादिकायाः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ताः ये परमागमे तेपि । तर्हि किं जीवः ? यद्भवति तेषु मध्ये ज्ञानं जीव इति तत्प्ररूपयन्तीति । तद्यथा—अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण स्पर्शनादिद्रव्येंद्रियाणि तथैवाशुद्धनिश्चयेन लब्ध्युपयोगरूपाणि भावेन्द्रियाणि यद्यपि जीवा भण्यंते तथैव व्यवहारेण पृथिव्यादिषट्कायाश्च तथापि शुद्धनिश्चयेन यदतीन्द्रियममूर्तं केवलज्ञानांतर्भूतमनंतसुखादिगुणकदंबकं स जीव इति सूत्रतात्पर्यम् ॥ १२१ ॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे कहते हैं कि पांचोंइन्द्रियें तथा पृथ्वी आदि छः काय निश्चय नयसे जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा प्रगट करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(इन्द्रियाणि) पांच इन्द्रियें (पुण) तथा (छप्पयार) छः प्रकारके [काया] काय [हि] निश्चयनयसे [जीवा] जीव (ण) नहीं [पण्णत्ता] कहे गए हैं । [तेसु] उन इंद्रिय तथा कायोंमें [जं णाणं] जो ज्ञान [हवदि] है [तं] उसको जीवोत्ति य] जीव ऐसा [परूवंति] कहते हैं ।

विशेषार्थ—यद्यपि अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे स्पर्शन आदि पांच द्रव्य इन्द्रियोंको तथा अशुद्ध निश्चयनयसे लब्धि तथा उपयोगरूप भावइन्द्रियोंको जीव कहते हैं तैसे ही पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रसकायोंको व्यवहारनयसे जीव कहते हैं तथापि शुद्ध निश्चयनयसे जीव वह है जो इन्द्रियोंसे रहित अमूर्तीक केवलज्ञानमें अंतर्भूत अनंतसुख आदि गुणोंका समुदाय रूप है । यह तात्पर्य है ॥ १२१ ॥

अन्यासाधारणजीवकार्यख्यापनमेतत्।

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं बिभेदि दुक्खादो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं॥ १२२॥

जानाति पश्यति सर्वमिच्छति सौख्यं बिभेति दुःखात्।
करोति हितमहितं वा भुंक्ते जीवः फलं तयोः॥ १२२॥

चैतन्यस्वभावत्वात्कर्तृस्थायाः क्रियायाः ज्ञप्तेर्दृशेश्च जीव एव कर्ता, न तत्संबन्धः पुद्गलो, यथाकाशादि। सुखाभिलाषक्रियायाः दुःखोद्वेगक्रियायाः स्वसंवेदितहिताहितनिर्वर्तनक्रियायाश्च चैतन्यविवर्तरूपसंकल्पप्रभवत्वात्स एव कर्ता, नान्यः। शुभाशुभकर्मफलभूताया इष्टानिष्टविषयोपभोगक्रियायाश्च सुखदुःखस्वरूपस्वपरिणामक्रियाया इव स एव कर्ता, नान्यः। एतेनासाधारणकार्यानुमेयत्वं पुद्गलव्यतिरिक्तस्यात्मनो द्योतितमिति॥ १२२॥

अन्वयार्थः-(जीवः) जीव (सर्वं जानाति पश्यति) सब जानता है और देखता है, (सौख्यम् इच्छति) सुखकी इच्छा करता है, (दुःखात् बिभेति) दुःखसे डरता है (हितम् अहितम् करोति) हित-अहितको (शुभ-अशुभ भावोंको) करता है (वा) और (तयोः फलं भुंक्ते) उनके (शुभ अशुभ भावके) फलको भोगता है।

टीकाः-यह, अन्यसे असाधारण ऐसे जीवकार्योंका कथन है।

चैतन्यस्वभावपनेके कारण, कर्तृस्थित (कर्तामें रहनेवाली) क्रियाका-ज्ञप्ति तथा दृशिका-जीव ही कर्ता है, उससे सम्बन्धित पुद्गल उसका कर्ता नहीं है, जिस प्रकार आकाशादि उसके नहीं हैं। चैतन्यके विवर्तरूप (-परिवर्तनरूप) संकल्पकी उत्पत्ति (जीवमें) होनेके कारण, सुखकी अभिलाषारूप क्रियाका, दुःखके उद्वेगरूप क्रियाका तथा स्वसंवेदित हित-अहितकी निष्पत्तिरूप क्रियाका जीव ही कर्ता है, अन्य नहीं है। शुभाशुभ कर्मके फलभूत इष्टानिष्टविषयोपभोगक्रियाका, सुख—दुःखस्वरूप स्वपरिणामक्रियाकी भांति, जीव ही कर्ता है, अन्य नहीं।

इससे ऐसा समझाया कि (उपरोक्त) असाधारण कार्यों द्वारा पुद्गलसे भिन्न ऐसा आत्मा अनुमेय (-अनुमान कर सकनेयोग्य) है॥ १२२॥

सं०ता०-अथ ज्ञातृत्वादि कार्यं जीवस्य संभवतीति निश्चिनोति,—जानाति पश्यति। किं। सर्वं वस्तु, इच्छति। किं? सौख्यं। बिभेति कस्मात्। दुःखात्। करोति, किं। हितमहितं वा, भुंक्ते। स कः कर्ता। जीवः। किं? फलं। कयोः। तयोर्हिताहितयोरिति। तथाहि—पदार्थपरिच्छित्तिरूपायाः क्रियाया ज्ञप्तेर्दृशेश्च जीव एव कर्ता न तत्संबन्धः पुद्गलः, कर्मनोकर्मरूपः सुखपरिणतिरूपायाः इच्छाक्रियायाः स एव दुःखपरिणतिरूपाया भीतिक्रियायाः स एव च हिताहितपरिणतिरूपायाः कर्तृक्रियायाश्च स एव सुखदुःख फलानुभवनरूपाया भोक्तृक्रियायाश्च स एव कर्ता भवतीत्यसाधारणकार्येण जीवास्तित्वं ज्ञातव्यं। त

कर्तृत्वमशुभशुभशुद्धोपयोगरूपेण त्रिधा भिद्यते, अथवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मकर्तृत्वं तथैवाशुद्धनिश्चयेन रागादिविकल्परूपभावकर्मकर्तृत्वं शुद्धनिश्चयेन तु केवलज्ञानादिशुद्धभावानां परिणमनरूपं कर्तृत्वं नयत्रयेण भोक्तृत्वमपि तथैवेति सूत्रतात्पर्यं ।। तथा चोक्तं-

"पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।

चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं" ।। १२२ ।।

एवं भेदभावनामुख्यत्वेन प्रथमगाथा जीवस्यासाधारणकार्यकथनरूपेण द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयेन पंचमस्थलं गतं ।

हिन्दी ता०–उत्थानिका–आगे जानना देखना आदि कार्य जीवमें ही संभव होते हैं ऐसा निश्चय करते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–[जीव] यह संसारी जीव [सव्वं] सर्व पदार्थोंको [पस्सदि] देखता है (जाणदि) जानता है (सुक्खं) सुखको (इच्छदि) चाहता है (दुक्खादो) दुःखोंसे (विभेदि) डरता है [हिदम्] हितरूप अच्छा काम (अहिदम्) अहितरूप बुराकाम (कुव्वदि) करता है (वा) और (तेसिं) उन भले बुरे कामोंका (फलं) फल (भुंजदि) भोगता है ।

विशेषार्थ–पदार्थोंके जाननेरूप व देखनेरूप क्रियाका यह जीव ही कर्ता है, पुद्गल नहीं है, कर्म और नोकर्म शरीरादिके निमित्तसे होनेवाली सुखकी परिणति रूप इच्छाकी क्रियाका कर्ता भी यही जीव है, दुःखकी परिणतिसे भय करने रूप क्रियाका कर्ता भी यही जीव है, हित व अहितरूप क्रियाका कर्ता भी यही जीव है । व यही जीव सुख या दुःखकी अनुभवन रूप क्रियाका कर्ता है, ये सब असाधारण या मुख्य कार्य जीवके अस्तित्वको झलकाते है। जीवका कार्य अशुभ शुभ या शुद्धोपयोग रूपसे तीन तरहका भी कहा जाता है अथवा यह जीव उपचार रहित असद्भूत व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि का कर्ता है। अशुद्ध निश्चय नयसे रागद्वेषादि विकल्परूप भाव–कर्मका कर्ता है तथा शुद्ध निश्चयनयसे केवलज्ञानादि शुद्ध भावोंमें परिणमन रूप कार्यका कर्ता है। इसी तरह तीनों नयोंसे इस जीवके भोक्तापना भी है अर्थात् व्यवहारनयसे पुद्गल कर्मके फलका, अशुद्ध निश्चयनयसे मैं सुखी मैं दुःखी इस भावका तथा शुद्ध निश्चयनयसे आत्मीक आनंदका भोगनेवाला है। ऐसा ही कहा है–व्यवहार से पुद्गल कर्मोंका कर्ता है निश्चय से चेतना भावों का कर्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्ता है ।। १२२ ।।

जीवाजीवव्याख्योपसंहारोपक्षेपसूचनेयम् ।

एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं ।

अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं ।। १२३ ।।

एवमभिगम्य जीवमन्यैरपि पर्यायैर्बहुकैः।
अभिगच्छत्वजीवं ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैः॥ १२३॥

एवमनया दिशा व्यवहारनयेन कर्मग्रन्थप्रतिपादितजीवगुणमार्गणास्थानादिप्रपञ्चितविचित्रविकल्परूपैः, निश्चयनयेन मोहरागद्वेषपरिणतिसंपादितविश्वरूपत्वात्कदाचिदशुद्धैः कदाचित्तदभावाच्छुद्धैश्चैतन्यविवर्तग्रन्थिरूपैर्बहुभिः पर्यायैः जीवमधिगच्छेत्। अधिगम्य चैवमचैतन्यस्वभावत्वात् ज्ञानादर्थांतरभूतैरितः प्रपंच्यमानैर्लिङ्गैर्जीवसंबद्धमसंबद्धं वा स्वतो भेदबुद्धिप्रसिद्ध्यर्थमजीवमधिगच्छेदिति॥ १२३॥

इति जीवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

अन्वयार्थः—(एवम्) इस प्रकार (अन्यैः अपि बहुकैः पर्यायैः) अन्य भी बहुत-सी पर्यायों द्वारा (जीवम् अभिगम्य) जीवको जानकर (ज्ञानांतरितैः लिङ्गैः) ज्ञानसे अन्य ऐसे (जड) लिंगों द्वारा (अजीवम् अभिगच्छतु) अजीवको जानो।

टीकाः—यह, जीव-व्याख्यानके उपसंहारकी और अजीव-व्याख्यानके प्रारम्भकी सूचना है।

इस प्रकार इस निर्देशके अनुसार, (१) व्यवहारनयसे कर्मग्रन्थमें प्रतिपादित जीवस्थान-गुणस्थान-मार्गणास्थान इत्यादि द्वारा प्रपंचित विचित्र भेदरूप बहु पर्यायों द्वारा, तथा (२) निश्चयनयसे मोहरागद्वेषपरिणतिसंप्राप्त विश्वरूपताके (अनेकरूपताके) कारण कदाचित् अशुद्ध (ऐसे) और कदाचित उसके (अशुद्धताके) अभावके कारण शुद्ध ऐसी चैतन्यविवर्तग्रन्थिरूप बहु पर्यायों द्वारा, जीवको जानो। इस प्रकार जीवको जानकर, अचैतन्यस्वभावके कारण, ज्ञानसे अर्थान्तरभूत ऐसे, यहांसे (आगेकी गाथाओंमें) कहे जानेवाले लिंगों द्वारा, जीव-सम्बद्ध या जीव-असम्बद्ध अजीवको, अपनेसे भेदबुद्धिकी प्रसिद्धिके केलिये जानो॥ १२३॥

सं०ता०-अथ गाथापूर्वार्धेन जीवाधिकारव्याख्यानोपसंहारमुत्तरार्धेन चाजीवाधिकारप्रारंभं करोति,-एवमभिगम्य ज्ञात्वा। कं? जीवं अन्यैरपि पर्यायैर्बहुकैः पश्चादभिगच्छतु जानातु। कं। अजीवं ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैरिति। तद्यथा—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जीवपदार्थमधिगम्य। कैः। पर्यायैः। कथंभूतैः। पूर्वोक्तैः न केवलं पूर्वोक्तैः व्यवहारेण गुणस्थानजीवस्थानमार्गणास्थानभेदगतनामकर्मोदयादिजनितस्वकीयस्वकीयमनुष्यादिशरीरसंस्थानसंहननप्रभृतिबहिरंगाकारैर्निश्चयेनाभ्यंतरैः रागद्वेषमोहरूपैरशुद्धैस्तथैव च नीरागनिर्विकल्पचिदानंदैकस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसंजातपरमानंदसुस्थितसुखामृतरसानुभवसमरसीभावपरिणतमनोरूपैः शुद्धैश्चान्यैरपि। पश्चात् किं करोतु। जानातु। कं। अजीवं पदार्थं। कैः। लिंगैः चिन्हैः। किंविशिष्टैरग्रे वक्ष्यमाणैर्ज्ञानांतरितत्वात् जडैश्चेति सूत्राभिप्रायः॥ १२३॥ एवं जीवपदार्थव्याख्यानोपसंहारः तथैवाजीवव्याख्यानप्रारंभ इत्येकसूत्रेण षष्ठस्थलं गतं।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण "जीवाजीवा भावा" इत्यादि नवपदार्थानां नामकथनरूपेण स्वतंत्रगाथासू-

त्मेकं, तदनंतरं जीवादिपदार्थव्याख्यानेन षट्स्थलैः पंचदशसूत्राणीति समुदायेन षोडशगाथाभिर्नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये "द्वितीयांतराधिकारः" समाप्तः ।

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे पहली आधी गाथासे जीवाधिकारके व्याख्यानको संकोच करते हैं तथा आगे आधी गाथासे अजीवाधिकारका प्रारंभ करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(एवम्) इस ही प्रकार (अण्णेहिं वि) दूसरी भी (बहुगेहिं) बहुतसी (पज्जएहिं) पर्यायोंके द्वारा (जीवं) इस जीवको (अभिगम्य) समझ करके (णाणंतरिदेहिं) ज्ञानसे भिन्न जड़पना आदि (लिंगेहिं) चिन्होंसे (अज्जीवं) अजीव तत्वको (अभिगच्छदु) जानो ।

विशेषार्थ—पूर्वमें जो एकेंद्रिय आदि भेद कहे हैं उनके द्वारा जीवके भेदोंको समझ कर फिर व्यवहारनयसे जो संसारी जीवोंके गुणस्थान जीवस्थान तथा मार्गणारूपसे भेद हैं व नामकर्मके उदय आदिसे उत्पन्न जो जीवोंके अपने अपने मनुष्य आदि शरीरोंके संस्थान व संहनन आदि बाहरी आकार रूप भेद हैं व अशुद्ध निश्चयनयसे जो राग, द्वेष, मोहरूप अशुद्ध भावोंकी अपेक्षा भेद हैं तथा शुद्धनिश्चयनयसे जीवोंमें वीतराग व विकल्प रहित चिदानन्दमई एक स्वभावरूप आत्म—पदार्थके ज्ञानसे जो परमानन्दमें भलेप्रकार स्थिति रूप सुखामृत रसका अनुभव होता है व उस अनुभवसे समरसी भाव होता है इत्यादि शुद्ध परिणमन रूप भेद हैं इन सबके द्वारा जीवोंको समझो । उसके पीछे अजीव पदार्थोंको ज्ञानसे अतिरिक्त जड़रूप गुणोंके द्वारा जानो जिनका स्वरूप आगे कहेंगे ऐसा सूत्रका अभिप्राय है ॥ १२३ ॥

इस तरह जीव पदार्थके व्याख्यानका संकोच व अजीव पदार्थके व्याख्यानके प्रारम्भकी सूचनारूप एक सूत्रसे छठा स्थल पूर्ण हुआ । पहले जैसा कह चुके हैं " जीवाजीवा भावा " इत्यादि नौ पदार्थोंके नामको कहते हुए स्वतंत्र गाथा सूत्र एक है फिर जीव पदार्थका व्याख्यान करते हुए छः स्थलोंसे १५ सूत्रोंके द्वारा कथन है । इस तरह १६ गाथाओंमें नव पदार्थोंको कहनेवाले दूसरे महा अधिकारमें दूसरा अंतर अधिकार पूर्ण हुआ ।

अथ अजीवपदार्थ व्याख्यानम्

आकाशादीनामेवाजीवत्वे हेतूपन्यासोऽयम् ।

आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा ।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥ १२४ ॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु न सन्ति जीवगुणाः ।
तेषामचेतनत्वं भणितं जीवस्य चेतनता ॥ १२४ ॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु चैतन्यविशेषरूपा जीवगुणा नो विद्यन्ते, आकाशादीनां तेषामचेतनत्वसामान्यत्वात् । अचेतनत्वसामान्यञ्चाकाशादीनामेव, जीवस्यैव चेतनत्वसामान्यादिति ॥ १२४ ॥

अब, अजीव पदार्थका व्याख्यान है ।

अन्वयार्थः—(आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु) आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्ममें (जीवगुणाः न सन्ति) जीवके गुण नहीं हैं, (क्योंकि) [तेषाम् अचेतनत्वं भणितम्] उनके अचेतनपना कहा है, (जीवस्य चेतनता) जीवके चेतना कही है ।

टीका:—यह, आकाशादिका ही अजीवपना दर्शानेके लिये हेतुका कथन है ।

आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्ममें चैतन्यविशेषरूप जीवगुण विद्यमान नहीं है, क्योंकि उन आकाशादिके अचेतनत्वसामान्य है । और अचेतनत्वसामान्य आकाशादिके ही है, क्योंकि जीवके ही चेतनत्वसामान्य है ॥ १२४ ॥

सं०ता०-अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायरहितः केवलज्ञानाद्यनंतगुणस्वरूपो जीवादिनवपदार्थांतर्गतो भूतार्थपरमार्थरूपः शुद्धसमयसाराभिधान उपादेयभूतो योऽसौ शुद्धजीवपदार्थस्तस्मात्सकाशाद्विलक्षणस्वरूपस्याजीवपदार्थस्य गाथाचतुष्टयेन व्याख्यानं क्रियते । तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये अजीवत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन "आयासकाल" इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं भेदभावनार्थं देहगतशुद्धजीवप्रतिपादनमुख्यत्वेन "अरसमरूवं" इत्यादि सूत्रमेकं, एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेनाजीवाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । अथाकाशादीनामजीवत्वे कारणं प्रतिपादयति,-आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेष्वनंतज्ञानदर्शनादयो जीवगुणाः न सन्ति, ततः कारणात्तेषामचेतनत्वं भणितं । कस्मात् तेषां जीवगुणा न संतीति चेत् ? युगपज्जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थपरिच्छेदकत्वेन जीवस्यैव चेतकत्वादिति सूत्राभिप्रायः ॥ १२४ ॥

पीठिका-आगे भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म तथा मतिज्ञान आदि विभावगुण व नर नारक आदि विभावपर्यायोंसे रहित व केवलज्ञानादि अनन्तगुणस्वरूप तथा जीव आदि नौ पदार्थोंके भीतर प्राप्त यथार्थ निश्चयरूप शुद्ध समयसार नामधारी व ग्रहण करने योग्य जो शुद्ध जीव पदार्थ है उससे विलक्षण जो अजीव पदार्थ है उसका व्याख्यान चार गाथाओंसे करते हैं । इन चार गाथाओंके मध्यमें अजीव तत्त्वके कहनेकी मुख्यतासे 'आयासकाल' इत्यादि पाठ क्रमसे गाथाएं तीन हैं । फिर भेदकी भावनाके लिये देहमें प्राप्त शुद्ध जीवका कथन करते हुए " अरसमरूवं " इत्यादि सूत्र एक है । इस तरह चार गाथाओंके दो स्थलोंके द्वारा अजीव तत्त्वके अधिकारमें व्याख्यान करते हुए समुदायपातनिका पूर्ण हुई ।

हिन्दी ता०-उत्थानिका- आगे बताते हैं कि आकाश आदि द्रव्य अजीव क्यों हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु) आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मास्तिकाय द्रव्य, अधर्मास्तिकाय द्रव्य इन पांच प्रकारके अजीव द्रव्योंमें (जीवगुणा) जीवोंके विशेष गुण (णत्थि) नहीं हैं (तेसिं) इनमें (अचेदणत्तं) अचेतनपना (भणिदं) कहा गया है (जीवस्स) जीवका गुण (चेदणदा) चैतन्य है।

विशेषार्थ—एक समयमें तीन जगत तीन कालके सर्व पदार्थोंको जानना यह जीवका चेतनपना स्वभाव है। यह स्वभाव इन अजीव द्रव्योंमें नहीं है इसीसे ये सब अचेतन हैं, मात्र जीव ही चेतन है। यह इस गाथा का अभिप्राय है ॥ १२४ ॥

आकाशादीनामचेतनत्वसामान्ये पुनरनुमानमेतत् ।

सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं ।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ॥ १२५ ॥

सुखदुःखज्ञानं वा हितपरिकर्म चाहितभीरुत्वम् ।
यस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा विंदंत्यजीवम् ॥ १२५ ॥

सुखदुःखज्ञानस्य हितपरिकर्मणोऽहितभीरुत्वस्य चेति चैतन्यविशेषाणां नित्यमनुपलब्धेरविद्यमानचैतन्यसामान्या एवाकाशादयोऽजीवा इति ॥ १२५ ॥

अन्वयार्थः—(सुखदुःखज्ञानं वा) सुखदुःखका ज्ञान, (हितपरिकर्म) हितका उद्यम (च) और (अहितभीरुत्वम्) अहितका भय-(यस्य नित्यं न विद्यते) यह जिसके कभी नहीं होते, (तम्) उसको [श्रमणाः] श्रमण (अजीवम् विंदंति) अजीव कहते हैं।

टीकाः—यह पुनश्च, आकाशादिका अचेतनत्वसामान्य निश्चित करनेके लिये अनुमान है।

आकाशादिको सुखदुःखका ज्ञान, हितका उद्यम और अहितका भय—इन चैतन्यविशेषोंकी सदा अनुपलब्धि है, इसलिये (ऐसा निश्चित होता है कि) चैतन्यसामान्यके विद्यमान नहीं होने से आकाशादि अजीव हैं ॥ १२५ ॥

सं०ता०—अथाकाशादीनामेवाचेतनत्वे साध्ये पुनरपि कारणं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति,—सुखदुःखज्ञातृता वा हितपरिकर्म च तथैवाहितभीरुत्वं यस्य पदार्थस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा ब्रुवंत्यजीवमिति। तदेव कथ्यते। अज्ञानिनां हितं स्रग्वनिता चंदनादि तत्कारणं दानपूजादि, अहितमहिविषकंटकादि। संज्ञानिनां पुनरक्षयानंतसुखं तत्कारणभूतं निश्चयरत्नत्रयपरिणतं परमात्मद्रव्यं च हितमहितं पुनराकुलत्वोत्पादकं दुःखं तत्कारणभूतं मिथ्यात्वरागादिपरिणतमात्मद्रव्यं च एवं हिताहितादिपरीक्षारूपचैतन्यविशेषाणामभावादचेतना आकाशादयः पंचेति भावार्थः ॥ १२५ ॥

हिन्दी ता०-उत्थानिका-आगे आकाश आदिके अचेतनपना सिद्ध करते हुए फिर भी उन अचेतनपनाका कारण बताएंगे ऐसा अभिप्राय मनमें धारण करके सूत्र कहते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जस्स) जिस द्रव्यमें (सुहदुक्खजाणणा) सुख तथा दुःखका जानपना (वा) या (हिदपरियम्मं) अपनी भलाईकी प्रवृत्ति (च) और (अहिदभीरुत्तं) अपने अहितसे भयपना (णिच्चं) सदैव (ण विज्जदि) नहीं पाया जाता है (तं) उसको (समणा) श्रमण या मुनिगण (अज्जीवं) अजीव (बिंदंति) कहते हैं।

विशेषार्थ-अज्ञानी जीव फूलकी माला, स्त्री चंदन आदिको हितकारी मानते हैं तथा उसहीके कारण दान पूजा आदि करते हैं तथा वे ही अज्ञानी जीव सर्प विष व कंटक आदिको अहितकारी मानते हैं परन्तु सम्यग्ज्ञानी जीव अक्षय तथा अनन्तसुखको और उसके कारण रूप निश्चय रत्नत्रयमई परमात्म तत्त्वको हितकारी जानते हैं तथा आकुलताके उत्पन्न करनेवाले दुःखको और उसके कारणरूप मिथ्यादर्शन व रागादि भावोंमें परिणमन करते हुए आत्मद्रव्यको अहितकारी जानते हैं इसतरह हित तथा अहितकी परीक्षा रूप चैतन्यकी अवस्थाओंके नित्य अभाव होनेसे ये आकाश आदि पांच द्रव्य अचेतन हैं यह भाव है ॥ १२५ ॥

जीवपुद्गलयोः संयोगेऽपि भेदनिबंधनस्वरूपाख्यानमेतत्।

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहु ॥ १२६ ॥
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ १२७ ॥

संस्थानानि संघाताः वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाश्च।
पुद्गलद्रव्यप्रभवा भवन्ति गुणाः पर्यायाश्च बहवः ॥ १२६ ॥
अरसमरूपमगंधमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम्।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानम् ॥ १२७ ॥

यत्खलु शरीरशरीरिसंयोगे स्पर्शरसगंधवर्णगुणत्वात्सशब्दत्वात्संस्थानसंघातादिपर्यायपरिणतत्वाच्च इन्द्रियग्रहणयोग्यं, तत्पुद्गलद्रव्यम्। यत्पुनरस्पर्शरसगंधवर्णगुणत्वादशब्दत्वादनिर्दिष्टसंस्थानत्वादव्यक्तत्वादिपर्यायैः परिणतत्वाच्च नेन्द्रियग्रहणयोग्यं, तच्चेतनागुणत्वात् रूपिभ्योऽरूपिभ्यश्चाजीवेभ्यो विशिष्टं जीवद्रव्यम्। एवमिह जीवाजीवयोर्वास्तवो भेदः सम्यग्ज्ञानिनां मार्गप्रसिद्ध्यर्थं प्रतिपादित इति ॥ १२६-१२७ ॥

इति अजीवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

अन्वयार्थ:—(संस्थानानि) [समचतुरस्रादि) संस्थान, (संघाता:) संघात, (वर्णरसस्पर्शगंधशब्दा: च) वर्ण, रस, स्पर्श, गंध और शब्द—(बहव: गुणा: पर्याया: च) ऐसे जो बहु गुण और पर्यायें हैं, (पुद्गलद्रव्यप्रभवा: भवन्ति) वे पुद्गलद्रव्यनिष्पन्न हैं।

(अरसम् अरूपम् अगंधम्) जो अरस, अरूप तथा अगंध है, [अव्यक्तम्] अव्यक्त है, (अशब्दम्) अशब्द है, (अनिर्दिष्टसंस्थानम्) अनिर्दिष्टसंस्थान है (अर्थात् जिसका कोई संस्थान नहीं कहा ऐसा है); (चेतनागुणम्) चेतनागुणवाला है और (अलिङ्गग्रहणम्) इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य है, (जीवं जानीहि) उसे जीव जानो।

टीका:—जीव-पुद्गलके संयोगमें भी, उनके भेदके कारणभूत स्वरूपका यह कथन है।

शरीर और शरीरीके (आत्माके) संयोगमें, (१) जो वास्तवमें स्पर्श—रस-गंध—वर्णगुणवाला होनेके कारण, सशब्द होनेके कारण तथा संस्थान-संघातादि पर्यायोंरूपसे परिणत होनेके कारण इन्द्रियग्रहणयोग्य है, वह पुद्गलद्रव्य है, और (२) जो स्पर्श-रस-गंध-वर्ण गुणरहित होनेके कारण, अनिर्दिष्टसंस्थान होनेके कारण तथा अव्यक्तत्वादि (अप्रगट) पर्यायोंरूपसे परिणत होनेके कारण इन्द्रियग्रहणयोग्य नहीं है, वह चेतनागुणमयपनेके कारण रूपी तथा अरूपी अजीवोंसे विशिष्ट (भिन्न) ऐसा जीवद्रव्य है।

इस प्रकार यहां जीव और अजीवका वास्तविक भेद सम्यग्ज्ञानियोंके मार्गकी प्रसिद्धिके हेतु प्रतिपादित किया गया ॥ १२६-१२७ ॥

इस प्रकार अजीव पदार्थका व्याख्यान समाप्त हुआ।

सं०ता०—अथ संस्थानादिपुद्गलपर्याया जीवेन सह क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठंत्यपि निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति भेदज्ञानं दर्शयति,—समचतुरस्रादिषट्संस्थानानि औदारिकादिशरीरसंबंधिन: पंचसंघाता: वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाश्च संस्थानादिपुद्गलविकाररहितात्केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयसहितात्परमात्मपदार्थान्निश्चयेन भिन्नत्वादेते सर्वे च पुद्गलद्रव्यप्रभवा:। एतेषु मध्ये के गुणा: के पर्याया इति प्रश्ने सति प्रत्युत्तरमाह—वर्णरसस्पर्शगंधा गुणा भवन्ति संस्थानादयस्तु पर्यायास्ते च प्रत्येकं बहव इति सूत्राभिप्राय: ॥ १२६ ॥ एवं पुद्गलादिपंचद्रव्याणामजीवत्वकथनमुख्यतया गाथात्रयेण प्रथमस्थलं गतं।

सं०ता०—अथ यदि संस्थानादयो जीवस्वरूपं न भवन्ति तर्हि किं जीवस्वरूपमिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह, अरसं रसगुणसहितपुद्गलद्रव्यरूपो न भवति रसगुणमात्रो वा न भवति रसग्राहकपौद्गलिकजिह्वाभिधानद्रव्येन्द्रियरूपो न भवति तेनैव जिह्वाद्रव्येन्द्रियेण करणभूतेन परेषां स्वस्य वा रसवत्परिच्छेद्यो ग्राह्यो न भवति निश्चयेन येन स्वयं द्रव्येन्द्रियेण रसग्राहको न भवतीति। निश्चयेन य: ग्राहको न भवतीति सर्वत्र संबंधनीय:। तथा रसास्वादपरिच्छेदकं क्षायोपशमिकं यद्भावेन्द्रियं तद्रूपो न भवति तेनैव भावेन्द्रियेण करणभूतेन परेषां स्वस्य वा रसवत्परिच्छेद्यो न भवति पुनस्तेनैव भावेन्द्रियेण रसपरिच्छेदको न भवति। तथैव सकलग्राहकाखंडैकप्रतिभासमयं यत्केवलज्ञानं तद्रूपत्वात् पूर्वोक्तं रसास्वादकं यद्भावेन्द्रियं तस्मात्कारणभूतादुत्पन्नं यत्कार्यभूतं रसपरिच्छित्तिमात्रं खंडज्ञानं तद्रूपो न भवति तथैव च रसं जानाति

रसरूपेण तन्मयो न भवतीत्यरसः। अनेन प्रकारेण यथासंभवं रूपगंधशब्दविषयेषु तथा चाध्याहारं कृत्वा स्पर्शविषये च योजनीयं।

अव्वत्तं-यथा क्रोधादिकषायचक्रं मिथ्यात्वरागादिपरिणतमनसां निर्मलस्वरूपोपलब्धिरहितानां व्यक्तिमायाति तथा परमात्मा नायातीत्यव्यक्तः। असंठाणं-वृत्त चतुरस्रादिसकलसंस्थानरहिताखण्डैकप्रतिभासमयपरमात्मरूपत्वात् पौद्गलिककर्मोदयजनितसमचतुरस्रादिषट्संस्थानरहितत्वादसंस्थानं। अलिंगग्गहणं यद्यप्यनुमानेन लक्षणेन परोक्षज्ञानेन व्यवहारनयेन धूमादग्निवदशुद्धात्मा ज्ञायते तथापि रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानसमुत्पन्नपरमानंदरूपानाकुलत्वसुस्थितवास्तवसुखामृतजलेन पूर्णकलशवत्सर्वप्रदेशेषु भरितावस्थानां परमयोगिनां यथा शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति तथेतरासां न भवतीत्यलिंगग्रहणः। चेदणागुणं "यत्सर्वाणि चराचराणि विविधद्रव्याणि तेषां गुणान् , पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा। जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते, सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः" इति वृत्तकथितलक्षणेन केवलज्ञानसंज्ञेन शुद्धचेतनागुणेन युक्तत्वाच्चेतनागुणश्च यः। जाण जीवं-हे शिष्य तमेवं गुणविशिष्टं शुद्धजीवपदार्थं जानीहीति भावार्थः॥ १२७॥ एवं भेदभावनार्थसर्वप्रकारोपादेयशुद्धजीवकथनरूपेणैकसूत्रेण द्वितीयस्थलं गतं। इति गाथा चतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये तृतीयांतराधिकारः समाप्तः।

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे कहते हैं कि संस्थान आदि पुद्गलकी पर्याय जीवके साथ दूध पानीकी तरह मिली हुई होरही हैं तौभी वे पर्यायें निश्चयसे जीवका स्वरूप नहीं हैं ऐसे भेदज्ञानको दर्शाते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(संठाणा) समचतुरस्र आदि छः संस्थान (संघादा) औदारिक आदि पांच शरीरोंके मिलाप रूप स्कंध (वण्णरसफासगंधसद्दा य) पांच वर्ण, पांच रस, आठ स्पर्श, दो गंध तथा सात शब्द (पोग्गलदव्वप्पभवा) पुद्गल द्रव्यसे उत्पन्न (वहू) बहुत से (गुणा) गुण (य) तथा (पज्जया) अवस्थाविशेष (होंति) हैं।

विशेषार्थ-इनमें वर्ण, रस, स्पर्श ,गंध, तो पुद्गलद्रव्यके गुण हैं तथा संस्थान, संघातादि व शब्दके भेद या वर्णादिके भेद पुद्गल द्रव्यकी अनेक पर्यायें हैं। ये सब पुद्गलके गुण और पर्याय निश्चयनयसे उस परमात्मस्वरूप आत्म पदार्थसे भिन्न हैं जो पुद्गलोंके विकारसे रहित है व केवलज्ञान आदि अनंतचतुष्टय सहित है॥ १२६॥

इस तरह पुद्गल आदि पांच द्रव्य अजीव हैं इस कथनकी मुख्यतासे तीन गाथाओंके द्वारा पहला स्थल पूर्ण हुआ।

हिंदी ता०-उत्थानिका-शिष्यने प्रश्न किया कि जब संस्थान आदि जीवका स्वरूप नहीं है तब जीवका स्वरूप क्या है? इसका उत्तर आचार्य कहते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जीवम्) इस जीवको [अरसम्] रसगुण रहित, [अरूपम्]

वर्णगुण रहित, [अगंधं] गंध गुणरहित (अव्वत्तं) अप्रगट, (असद्दं) शब्द पर्याय रहित [चेदणागुणम्] चेतनागुण सहित (अलिंगग्गहणं) इन्द्रियादि चिन्होंसे नहीं ग्रहणे योग्य तथा [अणिद्दिट्ठसंठाणं] पुद्गलमई किसी विशेप आकारसे रहित (जाण) जानो।

विशेषार्थ—यह जीव न तो रसगुण सहित पुद्गल द्रव्य है, न रस गुण मात्र है न रसको ग्रहण करनेवाली पुद्गलमई जिह्वा नामकी द्रव्य इंद्रियरूप है और न यह जिह्वा इंद्रियके द्वारा अपनेको व दूसरोंको रस ग्रहणके समान ग्रहण योग्य या जानने योग्य है—अर्थात् जैसे जिह्वासे रसको जान सक्ते हैं वैसे आत्माको नहीं जान सक्ते हैं और न यह आत्मा निश्चयनयसे द्रव्य इन्द्रियके द्वारा स्वयं रसको जानता है। भावार्थ—निश्चयनयसे आत्मा स्वयं विना किसीकी सहायताके स्वपर द्रव्यको जाननेवाला है। द्रव्येन्द्रियके द्वारा परोक्ष ज्ञान है सो कर्म बन्धरूप अशुद्ध विभाव अवस्थाकी अपेक्षासे है। इसी ही प्रकार यह जीव रसके आस्वादको जाननेवाली क्षयोपशम रूप जो भाव इन्द्रिय है उस रूप भी निश्चयसे नही है तथा जैसे भावेन्द्रियके द्वारा अपनेको या दूसरेको रसका ज्ञान होता है वैसा आत्माका ज्ञान नहीं होसक्ता है और न यह भावेन्द्रियके द्वारा ही निश्चयसे रसका जाननेवाला है तथा यह जीव सम्पूर्ण पदार्थोंको ग्रहण करनेवाले अखंड एकरूप प्रकाशमान जो केवलज्ञान उस स्वरूप है इसलिये निश्चयसे यह उस खंड ज्ञानरूप नहीं है जो ज्ञानरसको आस्वादन करनेवाली भावेन्द्रियके द्वारा कार्यरूप, रसका ज्ञानमात्र रूप उत्पन्न होता है, तैसे ही यह आत्मा अपनी ज्ञानशक्तिसे रसको जानता है परन्तु उस रस रूप ज्ञेयसे तन्मय नहीं होता है। इत्यादि हेतुओंसे यह जीव अरस है। इसी ही तरह यह जीव वर्ण, गंध, शब्द, स्पर्शसे रहित है। इनमें भी रसकी तरह सर्व व्याख्यान समझना योग्य है। तथा जैसे क्रोध, मान, माया, लोभके चतुष्टय, मिथ्यात्व व रागादिमें परिणमन करनेवाले तथा निर्मल आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसे रहित जीवोंको प्रगट झलकते हैं वैसे उनको यह परमात्मस्वरूप जीव नही झलकता है इसलिये यह अव्यक्त है। यह जीव निश्चयसे समचतुरस्र आदि छः शरीरके संस्थान या आकारोंसे रहित अखंड एक प्रकाशमान परमात्मरूप है इसलिये इसमें पुद्गलकर्मोंके उदयसे प्राप्त समचतुरस्र आदि छः संस्थान नही हैं। इसलिये यह जीव संस्थानरहित है तथा जैसे अशुद्ध आत्मा यह अनुमान स्वरूप परोक्ष ज्ञानके द्वारा व्यवहारनयसे उसीतरह पहचान लिया जाता है जिस तरह धूमसे अग्निका अनुमान करते हैं। वैसे यह शुद्धात्मा यद्यपि रागादि विकल्पोंसे रहित स्वसंवेदन ज्ञानसे उत्पन्न परमानंदमई अनाकुलतामें भले प्रकार स्थित सच्चे सुखामृत जलसे पूर्ण कलशकी तरह भरे हुए परम योगियोंको प्रत्यक्ष है तथापि जो ऐसे योगी नहीं हैं उनको प्रत्यक्ष अनुभवमें नहीं आता है इसलिये यह जीव 'अलिंगग्रहण' है तथा यह जीव केवलज्ञान मई शुद्ध चेतना गुणसहित है इसलिये चेतनारूप है जैसा कि श्लोकमें कहा है—

"जो सर्व चर अचर नानाप्रकार द्रव्योंको उनके गुणोंको, उनकी भूत, भविष्यत् व वर्तमान सर्व पर्यायोंको सर्व प्रकारसे सदा ही एकसाथ हरएक क्षण जानता रहता है वह सर्वज्ञ कहा जाता है। उस सर्वज्ञ, जिनेश्वर तथा महान् वीर भगवानको नमस्कार हो" हे शिष्य ! इस प्रकार श्लोक में कथित लक्षण के द्वारा केवलज्ञान नामक शुद्ध चेतना गुण से संयुक्त होनेके कारण जो चेतना गुणवाला है इन गुणोंसे विशिष्ट उस शुद्ध जीव पदार्थको जानो, यह भाव है ॥१२७॥

इस तरह भेद भावनाके लिये सर्व प्रकारसे ग्रहण करने योग्य जो शुद्ध जीव है उसका कथन करते हुए एक सूत्रसे दूसरा स्थल पूर्ण हुआ इस तरह चार गाथा तक दो स्थलोंमें नव पदार्थोंको बतलानेवाले दूसरे महा अधिकारके मध्यमें तीसरा अन्तर अधिकार पूर्ण हुआ।

उक्तौ मूलपदार्थौ। अथ संयोगपरिणामनिर्वृत्तेतरसप्तपदार्थानामुपोद्घातार्थं जीवपुद्गलकर्मचक्रमनुवर्ण्यते-

दो मूलपदार्थ कह दिये गये। अब (उनके) संयोगपरिणामसे निष्पन्न होनेवाले अन्य सात पदार्थोंके उपोद्घातके हेतु जीव पुद्गलकर्मके चक्रका वर्णन किया जाता है।

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मा कम्मादो होदि गदिसु गदी॥ १२८॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥ १२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा॥१३०॥

यः खलु संसारस्थो जीवस्ततस्तु भवति परिणामः।
परिणामात्कर्म कर्मणो भवति गतिषु गतिः॥ १२८॥
गतिमधिगतस्य देहो देहादिन्द्रियाणि जायन्ते।
तैस्तु विषयग्रहणं ततो रागो वा द्वेषो वा॥ १२९॥
जायते जीवस्यैवं भावः संसारचक्रवाले।
इति जिनवरैर्भणितोऽनादिनिधनः सनिधनो वा॥ १३०॥

इह हि संसारिणो जीवादनादिबंधनोपाधिवशेन स्निग्धः परिणामो भवति। परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म कर्मणो नारकादिगतिषु गतिः। गत्यधिगमनाद्देहः। देहादिन्द्रियाणि। इन्द्रियेभ्यो विषयग्रहणम्। विषयग्रहणाद्रागद्वेषौ। रागद्वेषाभ्यां पुनः स्निग्धः परिणामः। परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म। कर्मणः पुनर्नारकादिगतिषु

गतिः । गत्यधिगमनात्पुनर्देहः । देहात्पुनरिन्द्रियाणि । इन्द्रियेभ्यः पुनर्विषयग्रहणं, विषयग्रहणात्पुना रागद्वेषौ । रागद्वेषाभ्यां पुनरपि स्निग्धः परिणामः । एवमिदमन्योन्यकार्यकारणभूतजीवपुद्गलपरिणामात्मकं कर्मजालं संसारचक्रे जीवस्यानाद्यनिधनं अनादिसनिधनं वा चक्रवत्परिवर्तते । तदत्र पुद्गलपरिणामनिमित्तो जीवपरिणामो जीवपरिणामनिमित्तः पुद्गलपरिणामश्च वक्ष्यमाणपदार्थबीजत्वेन संप्रधारणीय इति ।। १२८–१३० ।।

अन्वयार्थः–(यः) जो (खलु) वास्तवमें (संसारस्थः जीवः) संसारस्थित जीव है, [ततः तु परिणामः भवति] उससे परिणाम होता है (अर्थात् उसे रागादिरूप स्निग्ध परिणाम होता है); (परिणामात् कर्म) परिणामसे कर्म और [कर्मणः] कर्मसे [गतिषु गतिः भवति] गतियोंमें गमन होता है।

[गतिम् अधिगतस्य देहः] गतिप्राप्तको देह होती है, [देहात् इन्द्रियाणि जायंते] देहसे इन्द्रियां होती हैं, [तैः तु विषयग्रहणं] इन्द्रियोंसे विषयग्रहण और (ततः रागः वा द्वेषः वा) विषयग्रहणसे राग अथवा द्वेष होता है।

[एवं भावः] ऐसे भाव, [संसारचक्रवाले] संसारचक्रमें (जीवस्य) जीवको (अनादिनिधनः सनिधनः वा) अनादि-अनंत अथवा अनादि-सांत (जायते) होते रहते हैं–[इति जिनवरैः भणितम्] ऐसा जिनवरोंने कहा है।

टीका:–इस लोकमें संसारी जीवसे अनादि बंधनरूप उपाधिके वशसे स्निग्ध परिणाम होता है, परिणामसे पुद्गलपरिणामात्मक कर्म, कर्मसे नरकादि गतियोंमें गमन, गतिकी प्राप्तिसे देह, देहसे इन्द्रियां, इन्द्रियोंसे विषयग्रहण, विषयग्रहणसे रागद्वेष, रागद्वेषसे फिर स्निग्ध परिणाम, परिणामसे फिर पुद्गलपरिणामात्मक कर्म, कर्मसे फिर नरकादि गतियोंमें गमन, गतिकी प्राप्तिसे फिर देह, देहसे फिर इन्द्रियां इन्द्रियोंसे फिर विषयग्रहण, विषयग्रहणसे फिर रागद्वेष, रागद्वेषसे स्निग्ध परिणाम। इस प्रकार यह अन्योन्य कार्य कारणभूत जीवपरिणामात्मक और पुद्गलपरिणामात्मक कर्मजाल संसारचक्रमें जीवको अनादि-अनंतरूपसे अथवा अनादि-सांतरूपसे चक्रकी भांति पुनः पुनः होते रहते हैं।

इस प्रकार यहां (ऐसा कहा कि), पुद्गलपरिणाम जिनका निमित्त है ऐसे जीवपरिणाम और जीवपरिणाम जिनका निमित्त है ऐसे पुद्गलपरिणाम अब कहे जानेवाले [पुण्यादि सात] पदार्थोंके बीजरूप अवधारना ।। १२८-१३० ।।

सं०ता०–अथ द्रव्यस्य सर्वथा तन्मयपरिणामित्वे सति एक एव पदार्थो जीवपुद्गलसंयोगपरिणतिरूपः, अथवा सर्वप्रकारेणापरिणामित्वे सति द्वावेव पदार्थौ जीवपुद्गलौ शुद्धौ । न च पुण्यपापादिघटना, ततश्च किंदूषणं ? बंधमोक्षाभावः तद्दूषणनिराकरणार्थमेकांतेन परिणामित्वापरिणामित्वयोर्निषेधः तस्मिन्निषेधे सति कथंचित्परिणामित्वमिति ततश्च सप्तपदार्थानां घटना भवतीति । अत्राह शिष्यः । यद्यपि कथंचित्परिणामित्वे सति पुण्यादिसप्तपदार्था घटंते तथापि तैः प्रयोजनं जीवाजीवाभ्यामेव पूर्यते यतस्तेपि तयोरेव पर्याया इति । परिहारमाह–भव्यानां हेयोपादेयतत्त्वदर्शनार्थं तेषां कथनं । तदेव कथ्यते । दुःखं हेयतत्त्वं तस्य कारणं

संसारः । संसारकारणमास्रवबंधपदार्थौ, तयोश्च कारणं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति, सुखमुपादेयं तस्य कारणं मोक्षः मोक्षस्य कारणं संवरनिर्जरापदार्थद्वयं । तयोश्च कारणं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति । एवं पूर्वोक्तं जीवाजीवपदार्थद्वयं वक्ष्यमाणं पुण्यादिसप्तपदार्थसप्तकं चेत्युभयसमुदायेन नवपदार्था युज्यंते इति नवपदार्थस्थापनप्रकरणं गतं ।

इत ऊर्ध्वं य एव पूर्वं कथंचित्परिणामित्वबलेन जीवपुद्गलयोः संयोगपरिणामः स्थापितः स एव वक्ष्यमाणपुण्यादिसप्तपदार्थानां कारणं बीजं ज्ञातव्यमिति चतुर्थान्तराधिकारे पातनिका,—यः खलु संसारस्थो जीवः ततः परिणामो भवति परिणामादभिनवं कर्म भवति कर्मणः सकाशाद् गतिषु गतिर्भवति इति प्रथमगाथा । गतिमधिगतस्य देहो भवति, देहादिन्द्रियाणि जायंते तेभ्यो विषयग्रहणं भवतीति ततो रागद्वेषौ चेति द्वितीयगाथा । जायते जीवस्यैवं भ्रमः परिभ्रमणं । क्व । संसारचक्रवाले । स च किंविशिष्टः ? जिनवरैर्भणितः । पुनरपि किं विशिष्टः । अभव्यभव्यजीवापेक्षयानादिनिधनसनिधनश्चेति तृतीयगाथा । तद्यथा—यद्यपि शुद्धनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावोऽयं जीवस्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशादात्मसंवित्तिलक्षणमशुद्धपरिणामं करोति ततः परिणामात्कर्मातीतानंतज्ञानादिगुणात्मस्वभावप्रच्छादकं पौद्गलिकं ज्ञानावरणादिकर्म बध्नाति कर्मोदयादात्मोपलब्धिलक्षणपंचमगतिसुखविलक्षणासु सुरनरनारकादिचतुर्गतिषु गमनं भवति ततश्च शरीररहितचिदानंदैकस्वभावात्मविपरीतो देहो भवति ततोतीन्द्रियामूर्तपरमात्मस्वरूपात्प्रतिपक्षभूतानीन्द्रियाणि समुत्पद्यंते तेभ्योपि निर्विषयशुद्धात्मध्यानोत्थवीतरागपरमानंदैकस्वरूपसुखविपरीतं पंचेन्द्रियविषयसुखपरिणमनं भवति ततो रागादिदोषरहितानंतज्ञानादिगुणास्पदात्मतत्त्वविलक्षणौ रागद्वेषौ समुत्पद्येते । रागद्वेषपरिणामात्कारणभूतात्पूर्ववत् पुनरपि कार्यभूतं कर्म भवतीति रागादिपरिणामाना कर्मणश्च योसौ परस्परं कार्यकारणभावः स एव वक्ष्यमाणपुण्यादिपदार्थानां कारणमिति ज्ञात्वा पूर्वोक्तसंसारचक्रविनाशार्थमव्याबाधानंतसुखादिगुणानां चक्रभूते समूहरूपे निजात्मस्वरूपे रागादिविकल्पपरिहारेण भावना कर्तव्येति । किं च कथंचित्परिणामित्वे सत्यज्ञानी जीवो निर्विकारस्वसंवित्त्यभावे सति पापपदार्थस्यास्रवबंधपदार्थयोश्च कर्ता भवति कदाचिन्मंदमिथ्यात्वोदयेन दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन भाविकाले पापानुबन्धिपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवति, यस्तु ज्ञानी जीवः स निर्विकारात्मतत्त्वविषये या रुचिस्तथा परिच्छित्तिर्निश्चलानुभूतिरित्यभेदरत्नत्रयपरिणामेन संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां कर्ता भवति, यदा पुनः पूर्वोक्तनिश्चयरत्नत्रये स्थातुं न शक्नोति तदा निर्दोषिपरमात्मस्वरूपार्हत्सिद्धानां तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूनां च निर्भरासाधारणभक्तिरूपं संसारविच्छित्तिकारणं परंपरया मुक्तिकारणं च तीर्थंकरप्रकृत्यादिपुण्यानुबंधिविशिष्टपुण्यरूपमनीहितवृत्त्या निदानरहितपरिणामेन पुण्यपदार्थं च करोतीत्यनेन प्रकारेणाज्ञानी जीवः पापादिपदार्थचतुष्टयस्य कर्ता ज्ञानी तु संवरादिपदार्थत्रयस्येति भावार्थः ॥ १२८ । १२९ । १३० ॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसंयोगवियोगपरिणामेन निर्वृत्ता इति कथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थांतराधिकारः समाप्तः ।

पीठिका—आगे कोई शंका करे कि जीव द्रव्यके साथ पुद्गल सर्व प्रकारसे तन्मई होरहा है इसलिये जीव पुद्गलकी संयोग रूप परिणतिमई एक ही पदार्थ है, अथवा अन्य कोई शंका करे

कि दोनों पदार्थ जीव और पुद्गल शुद्ध हैं तथा वे सर्वप्रकारसे परिणमन रहित हैं इसलिये, पुण्य पाप आदि पदार्थ ही सिद्ध नही होते हैं, तब यह दोष होगा कि न जीवके बंध सिद्ध होगा न मोक्ष। इस दोषके दूर करनेके लिये यह बात जाननी चाहिये कि एकांतसे ये जीव और पुद्गल दोनों द्रव्य न परिणामी हैं और न अपरिणामी हैं इसलिये किसी अपेक्षासे ये दोनों परिणमनशील हैं। परिणमनशील मानते हुए ही आश्रव आदि सात पदार्थोंकी सिद्धि होसक्ती है। तब फिर शिष्यने कहा—यद्यपि इन दोनोंके किसी अपेक्षासे परिणमनशील होते हुए पुण्य पाप आदि सात पदार्थोंकी सिद्धि होजाती है तथापि इन सात पदार्थोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है। जीव, अजीवसे ही काम पूरा होजाता है क्योंकि वे सात पदार्थ इन जीव और पुद्गलकी ही पर्यायें हैं। इसका समाधान आचार्य करते हैं कि भव्य जीवोंको त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्य तत्त्वका स्वरूप दिखानेके लिये इन सात पदार्थोंका कथन है, सो ही दिखाते हैं। दुःख त्यागने योग्य तत्त्व है, दुःखका कारण संसार है, संसारके कारण आस्रव और बंध पदार्थ हैं। इन आस्रव और बन्धका कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीन हैं। सुख ग्रहण करने योग्य तत्त्व है, उसका कारण मोक्ष है। मोक्षके कारण संवर और निर्जरा दो पदार्थ हैं। इन दोनोंके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं। इस तरह पूर्वमें कहे हुए जीव और अजीव दो पदार्थोंको लेकर आगे कहने योग्य पुण्य पाप आदि सात पदार्थोंके साथ दोनों मिलकर समुदायसे नौ पदार्थ होजाते हैं। इस तरह नव पदार्थोंकी स्थापनाका प्रकरण समाप्त हुआ।

हिन्दी ता०—उत्थानिका--इसके आगे जो किसी अपेक्षासे जीव और पुद्गलको परिणमन शक्तिधारी कहकर उनका संयोग भाव सिद्ध किया गया है यही संयोग आगे कहने योग्य पुण्य पाप आदि सात पदार्थोंका कारण या बीज है ऐसा जानना चाहिये। इनको तीन गाथाओंमे बताते हैं--

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(खलु) वास्तवमें (जो) जो कोई (संसारत्थो) संसारमें भ्रमण करनेवाला (जीवो) अशुद्ध आत्मा है (तत्तो) उससे (दु) ही (परिणामो) अशुद्ध भाव (होदि) होता है (परिणामादो) अशुद्ध भावसे (कम्मं) कर्मोंका बंध होता है (कम्मादो) उन कर्मोंके उदयसे (गदिसु गदी) चारगतियोंमेंसे कोई गति (होदि) होती है। (गदिम्) गतिको (अधिगदस्स) प्राप्त होनेवाले जीवके (देहो) स्थूल शरीर होता है (देहादो) देहके सम्बन्धसे (इंदियाणि) इंद्रियें (जायंते) पैदा होती है। (तेहिं दु) उनही इंद्रियोंसे ही (विषयग्गहणं) उनके योग्य स्पर्शनादि विषयोंका ग्रहण होता है (तत्तो) उस विषयके ग्रहणसे (रागो व दोसो वा) राग या द्वेषभाव होता है। (एवं) इस ही प्रकार (संसारचक्कवालम्मि) इस

संसाररूपी चक्रके भ्रमणमें (जीवस्स) जीवकी (भावो) अवस्था (जायदे) होती रहती है (इदि) ऐसा (जिणवरेहिं) जिनेन्द्रदेवोंने (भणिदो) कहा है। यह अवस्था (अणादिणिधणो) अभव्योंकी अपेक्षा अनादिसे अनंतकाल तक रहती है (सणिधणो वा) तथा भव्योंकी अपेक्षा यह अनादि होकर भी अन्त सहित है ।

विशेषार्थ—यद्यपि यह जीव शुद्ध निश्चयनयसे विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावका धारी है तथापि व्यवहारनयसे अनादिकालसे कर्म बन्धमें होनेके कारण यह जीव अपने ही अनुभवगोचर अशुद्ध भाव करता है। इस अशुद्ध भावसे कर्मोंसे रहित व अनन्तज्ञानादि गुणमई आत्माके स्वभावको ढकनेवाले पुद्गलमई ज्ञानावरण आदि कर्मोंको बांधता है। इन कर्मोंके उदयसे आत्माकी प्राप्ति रूप पंचमगति-मोक्षके सुखसे विलक्षण देव, मनुष्य, नरक, तिर्यंच इन चार गतियोंमेंसे किसीमें गमन करता है। वहां शरीररहित चिदानंदमई एक स्वभावरूप आत्मासे विपरीत किसी स्थूल शरीरकी प्राप्ति होती है। उस शरीरके द्वारा अमूर्त्त अतींद्रिय परमात्म स्वरूपसे विरोधी इंद्रियें पैदा होती हैं। इन इंद्रियोंसे ही पंचेंद्रियोंके विषयोंसे रहित शुद्ध आत्माके ध्यानसे उत्पन्न जो वीतराग परमानंदमई एक स्वरूप सुख है उससे विपरीत पंचेंद्रियोंके विषय सुखमें परिणमन होता है। इसीके द्वारा रागादि दोष रहित व अनन्त ज्ञानादि गुणोंके स्थानभूत आत्म तत्त्वसे विलक्षण राग और द्वेष पैदा होते हैं। रागद्वेष रूप परिणामोंके निमित्तसे फिर पूर्वके समान कर्मोंका बंध होता है। इस तरह रागादि परिणामोंका और कर्मोंके बन्धका जो परस्पर कार्य-कारण भाव है वही आगे कहे जानेवाले पुण्य पाप आदि पदार्थोंका कारण है ऐसा जानकर पूर्वमें कहे हुए संसार-चक्रके विनाश करनेके लिये अव्याबाध अनन्त सुख आदि गुणोंका समूह अपने आत्माके स्वभावमें रागादि विकल्पोंको त्यागकर भावना करनी योग्य है। यह जीव किसी अपेक्षा परिणमनशील है इसलिये अज्ञानी जीव विकाररहित स्वसंवेदन ज्ञानको न पाकर पाप पदार्थका, आस्रव और बंधका कर्ता होजाता है, कभी मंद मिथ्यात्वके उदयसे देखे सुने अनुभव किये हुए भोगोंकी इच्छा रूप निदान बंधसे परम्पराय पापको लानेवाले पुण्य पदार्थका भी कर्ता होजाता है। किन्तु जो ज्ञानी जीव है वह विकाररहित आत्मतत्त्वमें रुचि रूप तथा उसके ज्ञानरूप और उसीमें निश्चल अनुभव रूप ऐसे रत्नत्रयमई भावके द्वारा संवर, निर्जरा तथा मोक्ष पदार्थोंका कर्ता होता है और जब पूर्वमें कहे हुए अभेद या निश्चय रत्नत्रयमें ठहरनेको असमर्थ होता है तब निर्दोष परमात्मस्वरूप अर्हंत व सिद्ध तथा उनके आराधक आचार्य, उपाध्याय व साधु इनकी पूर्ण व विशेष भक्ति करता है जिससे वह संसारके नाशके कारण व परम्परासे मुक्तिके कारण तीर्थंकर प्रकृति आदि विशेष पुण्य प्रकृतियोंको विना इच्छाके व निदान परिणामके बांध लेता है। इन प्रकृतियोंका बंध भविष्यमें भी पुण्य बंधका

कारण है इसतरह वह पुण्य पदार्थका कर्ता होता है। इस प्रकारसे अज्ञानी जीव पाप, पुण्य, आस्रव व बन्ध इन चार पदार्थोंका कर्ता है तथा ज्ञानी जीव संवर, निर्जरा, व मोक्ष इन तीन पदार्थोंका मुख्यपने कर्ता है ऐसा भाव है ॥ १२८-१२९-१३० ॥

इस तरह नव पदार्थोंके बतानेवाले दूसरे महाअधिकारके मध्यमें पुण्य पाप आदि सात पदार्थ जीव और पुद्गलके संयोग तथा वियोगरूप परिणतिसे उत्पन्न हुए हैं इस कथनकी मुख्यता करके तीन गाथाओंके द्वारा चौथा अन्तर अधिकार समाप्त हुआ।

अथ पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम्।

पुण्यपापयोग्यभावस्वभावाख्यापनमेतत्।

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥ १३१ ॥

मोहो रागो द्वेषश्चित्तप्रसादः वा यस्य भावे।
विद्यते तस्य शुभो वा अशुभो वा भवति परिणामः ॥ १३१ ॥

इह हि दर्शनमोहनीयविपाककलुषपरिणामता मोहः। विचित्रचारित्रमोहनीयविपाकप्रत्यये प्रीत्यप्रीती रागद्वेषौ। तस्यैव मंदोदये विशुद्धपरिणामता चित्तप्रसादपरिणामः। एवमिमे यस्य भावे भवन्ति, तस्यावश्यं भवति शुभोऽशुभो वा परिणामः। तत्र यत्र प्रशस्तरागश्चित्तप्रसादश्च तत्र शुभः परिणामः, यत्र तु मोहद्वेषावप्रशस्तरागश्च तत्राऽशुभ इति ॥ १३१ ॥

अब पुण्य-पापपदार्थका व्याख्यान है।

अन्वयार्थः-(यस्य भावे) जिसके भावमें (मोहः) मोह, (रागः) राग, (द्वेषः) द्वेष (वा) अथवा (चित्तप्रसादः) चित्तप्रसन्नता (विद्यते) है, (तस्य) उसके (शुभः वा अशुभः वा) शुभ अथवा अशुभ (परिणामः) परिणाम (भवति) होते हैं।

टीकाः-यह, पुण्य-पापके योग्य भावके स्वभावका (-स्वरूपका) कथन है।

यहां, दर्शनमोहनीयके विपाकसे जो कलुषित परिणाम वह मोह है, विचित्र (-अनेक प्रकारके) चारित्रमोहनीयका विपाक जिसका आश्रय (-निमित्त) है ऐसी प्रीति-अप्रीति वह राग-द्वेष है, उसीके (-चारित्रमोहनीयके ही) मंद उदयसे होनेवाले जो विशुद्ध परिणाम वह चित्तप्रसादपरिणाम (-मनकी निर्मलतारूप परिणाम) है। इस प्रकार यह (मोह, राग, द्वेष अथवा चित्तप्रसाद) जिसके भावमें है उसके अवश्य शुभ अथवा अशुभ परिणाम है। उसमें, जहां प्रशस्त राग तथा चित्तप्रसाद है वहां शुभ परिणाम है और जहां मोह, द्वेष तथा अप्रशस्त राग है वहां अशुभ परिणाम है ॥ १३१ ॥

सं०ता०-अथ पुण्यपापाधिकारे गाथाचतुष्टयं भवति तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये प्रथमं तावत्परमानंदैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य भावपुण्यपापयोग्यपरिणामस्य सूचनमुख्यत्वेन "मोहो व रागदोसो"

इत्यादिगाथासूत्रमेकं । अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य हेयस्वरूपस्य द्रव्यभावपुण्यपापद्वयस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन "सुहपरिणामो" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ नैयायिकमतनिराकरणार्थं पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेण "जह्मा कम्मस्स फलं" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ चिरंतनागंतुकयोर्मूर्तयोः कर्मणोः स्पृष्टत्वबद्धत्वस्थापनार्थं शुद्धस्वनिश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्यानादिबंधसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन मूर्तत्वं मूर्तजीवेन सह मूर्तकर्मणो बंधप्रतिपादनार्थं च "मुत्तो पासदि" इत्यादि सूत्रमेकमिति गाथाचतुष्टयेन पंचमांतराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा–

अथ पुण्यपापयोग्यभावस्वरूपं कथ्यते,—मोहो वा रागो वा द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य जीवस्य भावे मनसि विद्यते तस्य शुभोऽशुभो वा भवति परिणाम इति । इतो विशेषः—दर्शनमोहोदये सति निश्चयशुद्धात्मरुचिरहितस्य व्यवहाररत्नत्रयतत्त्वार्थरुचिरहितस्य वा योसौ विपरीताभिनिवेशपरिणामः स दर्शनमोहस्तस्यैवात्मनो विचित्रचारित्रमोहोदये सति निश्चयवीतरागचारित्ररहितस्य व्यवहारव्रतादिपरिणामरहितस्य इष्टानिष्टविषये प्रीत्यप्रीतिपरिणामौ रागद्वेषौ भण्येते । तस्यैव मोहस्य मंदोदये सति चित्तस्य विशुद्धिश्चित्तप्रसादो भण्यते । अत्र मोहद्वेषावशुभौ विषयाद्यप्रशस्तरागश्च, दानपूजाव्रतशीलादिरूपः शुभरागश्चित्तप्रसादपरिणामश्च शुभ इति सूत्राभिप्रायः ॥ १३१ ॥ एवं शुभाशुभपरिणामकथनरूपेणैकसूत्रेण प्रथमस्थलं गतं ।

पीठिका–आगे पुण्य व पापके अधिकारमें चार गाथाएं हैं । इन चार गाथाओंके मध्यमें पहले यह कथन है कि जो भाव पुण्य या भाव पापके योग्य भाव होते हैं वे परमानन्दमई एक स्वभावरूप शुद्ध आत्मासे भिन्न हैं इस सूचनाकी मुख्यतासे " मोहो व रागदोसो " इत्यादि गाथासूत्र एक है फिर इस व्याख्यानकी मुख्यतासे कि शुद्ध बुद्ध एक स्वभावरूप शुद्ध आत्मासे भिन्न व त्यागने योग्य ये द्रव्य या भावरूप पुण्य तथा पाप हैं "सुहपरिणामो" इत्यादि सूत्र एक है । फिर नैयायिकके मतको निराकरण करते हुए पुण्य तथा पाप दोनोंको मूर्तीक समर्थन करते हुए " जम्हा कम्मस्स फलं " इत्यादि सूत्र एक है । फिर अनादिकालसे साथ आए हुए जीव और कर्मोंके मूर्तिकपना है इसलिये इन दोनोंमें स्पर्शपना और बंधपना स्थापित करनेके लिये तथा यद्यपि शुद्ध निश्चय नयसे यह जीव अमूर्तीक है तथापि जीवके साथ अनादिकालसे बंधकी परिपाटी चली आरही है इस अपेक्षासे व्यवहारनयसे मूर्तीक है ऐसा कहकर मूर्तीक जीवके साथ मूर्तीक कर्मोंका बंध होता है यह बतानेके लिये " मुत्तो पासदि " इत्यादि सूत्र एक है । इस तरह चार गाथाओंसे पंचम अन्तर अधिकारमें समुदाय पातनिका पूर्ण हुई ।

हिन्दी ता०–उत्थानिका–आगे पुण्य तथा पापके योग्य भावोंका स्वरूप कहते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(जस्स) जिस जीवके (भावम्मि) भावमें (मोहो) मिथ्यात्वरूप भाव (रागो) रागभाव (दोसो) द्वेषरूप भाव (य) और (चित्तपसादो) चित्तका आल्हादरूप भाव (विज्जदि) पाया जाता है (तस्स) उस जीवके (सुहो) शुभ (वा) तथा (असुहो) अशुभ (वा) ऐसा (परिणामो) भाव (होदि) होता है ।

विशेषार्थ—दर्शन मोह कर्मके उदय होते हुए निश्चयसे शुद्धात्माकी रुचि रूप सम्यक्त्व नहीं होता और न व्यवहार रत्नत्रय रूपी तत्त्वार्थकी रुचि ही होती है ऐसे बहिरात्मा जीवके भीतर जो विपरीत अभिप्रायरूप परिणाम होता है वह दर्शनमोह या मोह है। उसी ही आत्माके नाना प्रकार चारित्र मोहका उदय होते हुए, न निश्चय वीतराग चारित्र होता है और न व्यवहार व्रत आदिके परिणाम होते हैं ऐसे जीवके भीतर जो इष्ट पदार्थोंमें प्रीतिभाव सो राग है और अनिष्ट पदार्थोंमें अप्रीति भाव सो द्वेष है। उस ही मोहके मंद उदयसे जो मनकी विशुद्धि होना उसको चित्तप्रसाद कहते हैं। यहां मोह व द्वेष तथा विषयादिमें अशुभराग सो अशुभ भाव है तथा दान पूजा व्रत शील आदि रूप जो शुभ राग या चित्तका आल्हाद होना है सो शुभ भाव है यह सूत्रका अभिप्राय है ॥ १३१ ॥

इसतरह शुभ तथा अशुभ परिणामको कहते हुए एक सूत्रसे प्रथम स्थल पूर्ण हुआ।

पुण्यपापस्वरूपाख्यानमेतत्।

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति हवदि जीवस्स।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो ॥ १३२ ॥

शुभपरिणामः पुण्यमशुभः पापमिति भवति जीवस्य।
द्वयोः पुद्गलमात्रो भावः कर्मत्वं प्राप्तः ॥ १३२ ॥

जीवस्य कर्तुः निश्चयकर्मतामापन्नः शुभपरिणामो द्रव्यपुण्यस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भवति भावपुण्यम्। एवं जीवस्य कर्तुर्निश्चयकर्मतामापन्नोऽशुभपरिणामो द्रव्यपापस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापम्। पुद्गलस्य कर्तुर्निश्चयकर्मतामापन्नो विशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपुण्यम्। पुद्गलस्य कर्तुर्निश्चयकर्मतामापन्नो विशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवाशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपापम्। एवं व्यवहारनिश्चयाभ्यामात्मनो मूर्तममूर्तञ्च कर्म प्रज्ञापितमिति ॥ १३२ ॥

अन्वयार्थः—(जीवस्य) जीवके (शुभपरिणामः) शुभपरिणाम (पुण्यम्) पुण्य हैं और (अशुभः) अशुभ परिणाम (पापम् इति भवति) पाप हैं (द्वयोः) उन दोनोंके द्वारा (पुद्गलमात्रः भावः) पुद्गलमात्र भाव (कर्मत्वं प्राप्तः) कर्मपनेको प्राप्त होते हैं।

टीकाः—यह, पुण्य-पापके स्वरूपका कथन है।

जीवरूप कर्ताके निश्चयकर्मभूत शुभपरिणाम द्रव्यपुण्यको निमित्तमात्ररूपसे कारणभूत हैं इसलिये 'द्रव्यपुण्यास्रवके' पूर्व वे शुभपरिणाम 'भावपुण्य' होते हैं। इसी प्रकार जीवरूप कर्ताके निश्चयकर्मभूत अशुभपरिणाम द्रव्यपापको निमित्तमात्ररूपसे कारणभूत हैं इसलिये द्रव्यपापास्रवके, वे अशुभ पूर्व परिणाम 'भावपाप' होते हैं।

पुद्गलरूप कर्ताके निश्चयकर्मभूत विशिष्टप्रकृतिरूप परिणाम (-सातावेदनीयादि मुख्य प्रकृतिरूप परिणाम)-कि जिनमें जीवके शुभपरिणाम निमित्त हैं वे-द्रव्यपुण्य हैं। पुद्गलरूप कर्ताके निश्चयकर्मभूत विशिष्टप्रकृतिरूप परिणाम (-असातावेदनीयादि विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम)-कि जिनमें जीवके अशुभ-परिणाम निमित्त हैं वे-द्रव्यपाप हैं।

इस प्रकार व्यवहार तथा निश्चय द्वारा आत्माके मूर्त तथा अमूर्त कर्म दर्शाया गया ॥ १३२ ॥

सं०ता०-अथ गाथापूर्वार्धेन भावपुण्यपापद्वयमपरार्धेन तु द्रव्यपुण्यपापद्वयं चेति प्रतिपादयति,-सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति होदि-शुभपरिणामः पुण्यं, अशुभः पापमिति भवति। कस्य परिणामः? जीवस्स -जीवस्य, दोण्हं-द्वाभ्यां पूर्वोक्तशुभाशुभजीवपरिणामाभ्यां निमित्तभूताभ्यां सकाशात्, भावो-भावः ज्ञानावरणादिपर्यायः। किंविशिष्टः। पोग्गलमेत्तो-पुद्गलमात्रः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिण्डरूपः। कम्मत्तणं पत्तो -कर्मत्वं द्रव्यकर्मपर्यायं प्राप्त इति। तथाहि-यद्यपि अशुद्धनिश्चयेन जीवेनोपादानकारणभूतेन जनितौ शुभाशुभपरिणामौ तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण नवतरद्रव्यपुण्यपापद्वयस्य कारणभूतौ यतस्ततः कारणाद्भावपुण्यपापपदार्थौ भण्येते, यद्यपि निश्चयेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिण्डजनितौ तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण जीवेन शुभाशभपरिणामेन जनितौ सद्वेद्यासद्वेद्यादिद्रव्यप्रकृतिरूपपुद्गलपिण्डौ द्रव्यपुण्यपापपदार्थौ भण्येते चेति सूत्रार्थः ॥ १३२ ॥ एवं शद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य हेयरूपस्य द्रव्यभावपुण्यपापद्वयस्य व्याख्यानेनैकसूत्रेण द्वितीयस्थलं गतं।

हिन्दी ता०--उत्थानिका-आगे आधी गाथासे भावपुण्य तथा भावपापको तथा उसके आगेकी आधी गाथासे द्रव्य पुण्य और द्रव्य पाप दोनोंको बताते हैं--

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जीवस्स) जीवका (सुहपरिणामो) शुभ भाव (पुण्णं) पुण्यभाव है। (असुहो) अशुभ भाव (पावं ति) पाप भाव (हवदि) है। (दोण्हं) इन दोनों शुभ तथा अशुभ परिणामोंके निमित्तसे (पोग्गलमेत्तो) कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल पिंडरूप (भावो) ज्ञानावरण आदि अवस्था (कम्मत्तणं) द्रव्यकर्मपनेको (पत्तो) प्राप्त होती है।

विशेषार्थ-यद्यपि यह शुभ या अशुभ परिणाम अशुद्ध निश्चयनयसे जीवके उपादान कारण या मूल कारणसे उत्पन्न हुए हैं तथापि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे नवीन द्रव्य पुण्य और द्रव्य पापके कारण हैं। इसीलिये इन भावोंको भावपुण्य और भाव पाप कहा गया है। इसी तरह यद्यपि निश्चयनयसे ये द्रव्य पुण्य और द्रव्य पाप कर्मवर्गणाके योग्य पुद्गल पिंडसे पैदा हुए हैं तथापि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे जीवके शुभ तथा अशुभ परिणामोंके निमित्तसे हुए हैं। इनमें साता वेदनीय आदि द्रव्य प्रकृतिरूप व असाता वेदनीय आदि द्रव्य पापरूप पुद्गल पिंड हैं। इनहीको द्रव्यपुण्य और द्रव्यपाप पदार्थ कहते हैं। यह सूत्रका भाव है ॥ १३२ ॥

इस तरह शुद्ध बुद्ध स्वभाववाले शुद्धात्मासे भिन्न जो त्यागने योग्य द्रव्य या भावरूप पुण्य तथा पाप हैं उनका व्याख्यान करते हुए एक सूत्रसे दूसरा स्थल समाप्त हुआ।

मूर्तकर्मसमर्थनमेतत् ।

जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं ।
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥ १३३ ॥

यस्मात्कर्मणः फलं विषयः स्पर्शैर्भुज्यते नियतम् ।
जीवेन सुखं दुःखं तस्मात्कर्माणि मूर्तानि ॥ १३३ ॥

यतो हि कर्मणां फलभूतः सुखदुःखहेतुविषयो मूर्तो मूर्तैरिन्द्रियैर्जीवेन नियतं भुज्यते, ततः कर्मणां मूर्तत्वमनुमीयते । तथा हि–मूर्तं कर्म, मूर्तसंबंधेनानुभूयमानमूर्तफलत्वादाखुविषवदिति ॥ १३३ ॥

अन्वयार्थः—(यस्मात्) क्योंकि (कर्मणः फलं) कर्मका फल (विषयः) जो (मूर्त) विषय वे (नियतम्) नियमसे (स्पर्शैः) (मूर्त ऐसी) स्पर्शनादि इन्द्रियोंसे (जीवेन) जीव द्वारा (सुखं दुःखं) सुख रूपसे अथवा दुःखरूपसे (भुज्यते) भोगे जाते हैं, (तस्मात्) इसलिये (कर्माणि) कर्म (मूर्तानि) मूर्त हैं

टीका:–यह, मूर्त कर्मका समर्थन है ।

कर्मके फलभूत और सुख-दुःखके हेतुरूप जो विषय वे नियमसे मूर्त हैं और मूर्त इन्द्रियों द्वारा जीवसे भोगे जाते हैं, इसलिये कर्मोंके मूर्तपनेका अनुमान किया जाता है । वह इस प्रकारः–जिस प्रकार मूषक विष मूर्त है उसी प्रकार कर्म मूर्त है, क्योंकि (मूषकविषके फलकी भांति) मूर्तके सम्बन्ध द्वारा अनुभवमें आनेवाला ऐसा मूर्त उसका फल है ॥ १३३ ॥

सं०ता–अथ कर्मणां मूर्तत्वं व्यवस्थापयति, जह्मा—यस्मात्कारणात् कम्मस्स फलं—उदयागतकर्मणः फलं । तत्कथंभूतं । विसयं—मूर्तपंचेन्द्रियविषयरूपं, भुंजदे—भुज्यते णियदं—निश्चितं । केन कर्तृभूतेन । जीवेन विषयातीतपरमात्मभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादच्युतेन जीवेन । कैः कारणभूतैः । फासेहिं–स्पर्शनेन्द्रियादिरहितामूर्तशुद्धात्मतत्त्वविपरीतैः स्पर्शनादिमूर्तेन्द्रियैः । पुनरपि कथंभूतं तत्पंचेन्द्रियविषयरूपं कर्मफलं । सुहदुक्खं—सुखदुःखं यद्यपि शुद्धनिश्चयेनामूर्तं तथापि अशुद्धनिश्चयेन पारमार्थिकामूर्तपरमाह्लादैकलक्षणनिश्चयसुखाद्विपरीतत्वाद्धर्षविषादरूपं मूर्तं सुखदुःखं । तह्मा मुत्ताणि कम्माणि—यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेण स्पर्शादिमूर्तपंचेन्द्रियरूपं मूर्तेन्द्रियैर्भुज्यते स्वयं च मूर्तं सुखदुःखादिरूपं कर्म कार्यं दृश्यते, तस्मात्कारणसदृशं कार्यं भवतीति मत्वा कार्यानुमानेन ज्ञायते मूर्तानि कर्माणि इति सूत्रार्थः ॥ १३३ ॥ एवं नैयायिकमताश्रितशिष्यसंबोधनार्थं नयविभागेन पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेणैकसूत्रेण तृतीयस्थलं गतं ।

हिन्दी ता०–उत्थानिका–आगे यह सिद्ध करते हैं कि इन द्रव्यकर्मोंमें मूर्तीकपना है–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(जम्हा) क्योंकि [जीवेण] इस जीवके द्वारा [कम्मस्स फलं] कर्मोंका फल, [सुह दुक्खं] सुख और दुःख [विसयं] जो पांच इन्द्रियोंका विषय रूप है सो

[णियदं] निश्चितरूपसे [फासेहिं] स्पर्शनादि इन्द्रियोंके निमित्तसे [भुंजदे] भोगा जाता है [तम्हा] इसलिये [कम्माणि] द्रव्यकर्म [मुत्ताणि] मूर्तीक हैं।

विशेषार्थ—जो जीव विपर्योंसे रहित परमात्माकी भावनासे पैदा होनेवाले सुखमई अमृतके स्वादसे गिरा हुआ है, वह जीव उदयमें आकर प्राप्त हुए कर्मोंका फल भोगता है। वह कर्मफल मूर्तीक पंच इन्द्रियोंके विषयरूप है तथा हर्ष विषादरूप सुखदुःखमई है। यद्यपि शुद्ध निश्चयनयसे अमूर्तीक हैं तथापि अशुद्ध निश्चयनयसे परमार्थरूप व अमूर्तीक परम आह्लादमई लक्षणधारी निश्चयसुखके विपरीत होनेके कारणसे यह विषयोंका सुख दुःख हर्ष विषादरूप मूर्तीक है क्योंकि निश्चयपूर्वक स्पर्शनादि पांच इन्द्रियोंसे रहित अमूर्तीक शुद्ध आत्म-तत्त्वसे विपरीत जो स्पर्शनादि मूर्तीक इन्द्रियें हैं उनके द्वारा ही भोगा जाता है। अतएव कर्म, जिनके ये सुख दुःख कार्य हैं वे भी मूर्तीक हैं क्योंकि कारणके सदृश ही कार्य होता है। मूर्तीक कार्यरूप अनुमानसे उनका कारण भी मूर्तिक जाना जाता है। पांचों इन्द्रियोंके स्पर्शादि विषय मूर्तीक हैं। तथा वे मूर्तीक इन्द्रियोंसे भोगे जाते हैं उनसे सुख दुःख होता है वह भी स्वयं मूर्तीक है इस तरह कर्मको मूर्तीक सिद्ध किया गया, यह सूत्रका अर्थ है ॥ १३३ ॥

इस तरह नैयायिक मतको आश्रय करनेवाले शिष्यको समझानेके लिये नयविभागसे पुण्य व पाप दोनों प्रकारके द्रव्यकर्मोंको मूर्तीक सिद्ध करते हुए एक सूत्रसे तीसरा स्थल पूर्ण हुआ।

मूर्तकर्मणोरमूर्तजीवमूर्तकर्मणोश्च बंधप्रकारसूचनेयम्।

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि।

जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि ॥ १३४ ॥

मूर्तः स्पृशति मूर्तं मूर्तो मूर्तेन बंधमनुभवति।

जीवो मूर्तिविरहितो गाहति तानि तैरवगाह्यते ॥ १३४ ॥

इह हि संसारिणि जीवेऽनादिसंतानेन प्रवृत्तमास्ते मूर्तं कर्म। तत्स्पर्शादिमत्त्वादागामि मूर्तं-कर्म स्पृशति, ततस्तन्मूर्तं तेन सह स्नेहगुणवशाद् बंधमनुभवति। एष मूर्तयोः कर्मणोर्बंधप्रकारः अथ निश्चयनयेनामूर्तो जीवोऽनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन् विशिष्टतया मूर्तानि कर्माण्यवगाहते, तत्परिणामनिमित्तलब्धात्मपरिणामैः मूर्तकर्मभिरपि विशिष्टतयाऽव-गाह्यते च। अयं त्वन्योन्यावगाहात्मको जीवमूर्तकर्मणोर्बंधप्रकारः। एवममूर्तस्यापि जीवस्य मूर्तेन पुण्यपापकर्मणा कथञ्चिद् बंधो न विरुद्ध्यते ॥ १३४ ॥

—इति पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम्।

अन्वयार्थः—[मूर्तः मूर्तं स्पृशति] मूर्त मूर्तको स्पर्श करता है, (मूर्तः मूर्तेन) मूर्त मूर्तके

साथ (बंधम् अनुभवति) बंधको प्राप्त होता है, (मूर्तिविरहितः जीवः) मूर्तत्वरहित जीव (तानि गाहति) मूर्तकर्मोंको अवगाह देता है और (तैः अवगाह्यते) मूर्तकर्म जीवको अवगाह देते हैं (अर्थात् दोनों एक दूसरेमें प्रवेशानुप्रवेश को प्राप्त करते हैं)।

टीकाः—यह, मूर्तकर्मका मूर्तकर्मके साथ जो बंधप्रकार तथा अमूर्त जीवका मूर्तकर्मके साथ जो बंधप्रकार उसकी सूचना है।

यहां (इस लोकमें), संसारी जीवमें अादि संततिसे (-प्रवाहसे) प्रवर्तता हुआ मूर्तकर्म विद्यमान है। वह स्पर्शादिवाला होनेके कारण, आगामी मूर्तकर्मको स्पर्श करता है; इसलिये मूर्त ऐसा उसके साथ, स्निग्धत्वगुणके वश बंधको प्राप्त होता है। यह, मूर्तकर्मके साथ बंधप्रकार है।

पुनश्च, निश्चयनयसे जो अमूर्त है ऐसा जीव, अनादि मूर्तकर्म जिसका निमित्त है ऐसे रागादिपरिणाम द्वारा स्निग्ध वर्तता हुआ, मूर्तकर्मोंको विशिष्टरूपसे अवगाहता है (अर्थात् एक-दूसरेको परिणाममें निमित्त हों ऐसे सम्बन्धविशेष सहित मूर्तकर्मोंके क्षेत्रमें से एकक्षेत्रावगाही होता है) और उस रागादिपरिणामके निमित्तसे जो अपने (ज्ञानावरणादि) परिणामको प्राप्त होते हैं ऐसे मूर्तकर्म भी जीवको विशिष्टरूपसे अवगाहते हैं यह, जीव और मूर्तकर्मका अन्योन्य अवगाहस्वरूप बंधप्रकार है। इस प्रकार अमूर्त ऐसे जीवका भी मूर्त पुण्यपापकर्मके साथ कथंचित् बंध विरोधको प्राप्त नहीं होता ॥ १३४ ॥

इस प्रकार पुण्य-पापपदार्थका व्याख्यान समाप्त हुआ।

सं०ता०—अथ चिरंतनाभिनवमूर्तकर्मणोस्तथैवामूर्तजीवमूर्तकर्मणोश्च नयविभागेन बंधप्रकारं कथयंति। अथवा मूर्तरहितो जीवो मूर्तकर्माणि कथं बध्नातीति नैयायिकादिमतानुसारिणा शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति नयविभागेन परिहारं ददाति,—

मुत्तो—निर्विकारशुद्धात्मसंवित्त्यभावेनोपार्जितमनादिसंतानेनागतं मूर्तं कर्म तावदास्ते जीवे। तच्च किंकरोति। फासदि मुत्तं—स्वयं स्पर्शादिमत्त्वेन मूर्तत्वादभिनवं स्पर्शादिमत्संयोगमात्रेण मूर्तं कर्म स्पृशति। न केवलं स्पृशति। मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि—अमूर्तातीन्द्रियनिर्मलात्मानुभूतिविपरीतं जीवस्य मिथ्यात्वरागादिपरिणामं निमित्तं लब्ध्वा पूर्वोक्तं मूर्तं कर्म नवतरमूर्तकर्मणा सह स्वकीयस्निग्धरूक्षपरिणत्युपादानकारणेन संश्लेषरूपं बंधमनुभवति इति मूर्तकर्मणोर्बंधप्रकारो ज्ञातव्यः। इदानीं पुनरपि मूर्तजीवमूर्तकर्मणोर्बंधः कथ्यते। जीवो मुत्तिविरहिदो—शुद्धनिश्चयेन जीवो मूर्तिविरहितोपि व्यवहारेण अनादिकर्मबंधवशान्मूर्तः सन्। किं करोति। गाहदि ते—अमूर्तातीन्द्रियनिर्विकारसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादविपरीतेन मिथ्यात्वरागादिपरिणामेन परिणतः सन् तान् कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलान् गाहते परस्परानुप्रवेशरूपेण बध्नाति। तेहिं उग्गहदि—निर्मलानुभूतिविपरीतेन जीवस्य रागादिपरिणामेन कर्मत्वपरिणतैस्तैः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कंधैः कर्तृभूतैर्जीवोप्यवगाह्यते बध्यत इति। अत्र निश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्य व्यवहारेण मूर्तत्वे सति बंधः संभवतीति सूत्रार्थः। तथा चोक्तं। "बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो होदि तस्स णाणत्तं। तम्हा अमुत्तिभावो णेगंतो होदि जीवस्स" ॥ १३४ ॥ इति सूत्रचतुष्टयस्थलं गतं। एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यपापव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयेन पंचमोंतराधिकारः समाप्तः।

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे कहते हैं कि—प्राचीन बंधे हुए मूर्तीक कर्मोंके साथ नए मूर्तीक कर्मोंका तथा अमूर्तीक जीवके साथ मूर्तीक कर्मोंका बन्ध किस प्रकारसे है अथवा नैयायिक मतानुसार शिष्यने यह पूर्व पक्ष किया कि अमूर्तीक जीव मूर्तीक कर्मोंको किस तरह बांधता है उसका समाधान आचार्य नयविभाग द्वारा करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—[मुत्तो] मूर्तीक कर्मपुद्गल [मुत्तं] मूर्तीक कर्मोंको (फासदि) स्पर्श करता है। [मुत्तो] मूर्तीक कर्मपुद्गल [मुत्तेण] पहलेके बंधे हुए मूर्तीक कर्मके साथ [बंधम्] बंधको [अणुहवदि] प्राप्त होजाता है। [मुत्तिविरहिदो] अमूर्तीक जीव [ते] उनको [गाहदि] अवकाश देता है व [तेहिं] उन कर्मोंसे [उग्गहदि] अवकाशरूप होजाता है।

विशेषार्थ—विकाररहित शुद्ध आत्माके अनुभवको न पाकर इस जीवने जो अनादि संतानद्वारा कर्म बांध रक्खे हैं जो मूर्तीक कर्म जीवकी सत्तामें तिष्ठ रहे हैं, ये ही कर्म स्वयं स्पर्शादिवान होनेके कारण मूर्तीक होते हुए नवीन आए हुए मूर्तीक स्पर्शादिवान कर्मोंको संयोगरूप स्पर्श करते हैं इतना ही नहीं वे ही मूर्तीक कर्म अमूर्तीक व अतीन्द्रिय निर्मल आत्मानुभवसे विपरीत जीवके मिथ्यादर्शन व रागद्वेषादि परिणामका निमित्त पाकर आए हुए नवीन मूर्तीक कर्मोंके साथ अपने ही स्निग्ध रूक्ष परिणतिके उपादान कारणसे एकमेक होनेरूप बन्धको प्राप्त होजाते हैं। इस तरह मूर्तीक कर्मोंके परस्पर बंधकी विधि बताई। अब इस मूर्तीक जीवका मूर्तीक कर्मोंके साथ बन्ध क्या है उसे कहते हैं। शुद्ध निश्चयनयसे यह जीव अमूर्तीक है तथापि व्यवहारनयसे अनादि कर्मबंधकी संतान चली आनेसे मूर्तीक होरहा है—अमूर्तीक और अतीन्द्रिय विकार रहित व सदा आनंदमई एक लक्षणधारी सुखरसके स्वादसे विपरीत जो मिथ्यादर्शन व रागद्वेषादि परिणाम हैं इन भावोंसे परिणमन करता हुआ यही कर्मबन्ध सहित मूर्तीक जीव उन कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलोंको अपने प्रदेशोंमें अवकाश देता है। इस हीका अर्थ यह है कि उनको बांधता है। अर्थात् यह जीव ही अपनी निर्मल आत्मानुभूतिसे विपरीत रागादि परिणाम द्वारा कर्मभावमें परिणत हुए कर्मवर्गणा योग्य पुद्गलकी वर्गणाओंसे अवगाह पाता है अर्थात् उनसे बंध जाता है। यहां यह भाव है कि जीव निश्चयसे अमूर्तीक है तथापि व्यवहारसे मूर्तीक है। इसहीसे जीवमें कर्मबंध संभव है। ऐसा ही कहा है—

कर्मबन्धकी अपेक्षा जीवके साथ पुद्गलका एकमेक सम्बन्ध है, परन्तु लक्षणकी अपेक्षा दोनोमें भिन्न भिन्न पना है इसलिये एकान्तसे जीवके अमूर्तीक भाव नहीं है ॥ १३४ ॥

इस तरह चौथा स्थल पूर्ण हुआ—इस प्रकार नव पदार्थको बतानेवाले दूसरे महा अधिकार में पुण्य व पापके व्याख्यानकी मुख्यतासे चार गाथाओंके द्वारा पांचमा अन्तर अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आस्रव पदार्थव्याख्यानम्

अब आस्रवपदार्थका व्याख्यान है।

पुण्यास्रवस्वरूपाख्यानमेतत् ।

राणो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो ।
चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥ १३५ ॥

रागो यस्य प्रशस्तोऽनुकम्पासंश्रितश्च परिणामः ।
चित्ते नास्ति कालुष्यं पुण्यं जीवस्यास्रवति ॥ १३५ ॥

प्रशस्तरागोऽनुकम्पापरिणतिः चित्तस्याकलुषत्वञ्चेति त्रयः शुभा भावाः द्रव्यपुण्यास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपुण्यास्रवः । तन्निमित्तः शुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपुण्यास्रव इति ॥ १३५ ॥

अन्वयार्थः—(यस्य) जिस जीवको (प्रशस्तः रागः) प्रशस्त राग है, (अनुकम्पासंश्रितः परिणामः) अनुकम्पायुक्त परिणाम है (च) और (चित्ते कालुष्यं न अस्ति) चित्तमें कलुषताका अभाव है (जीवस्य) उस जीवको (पुण्यम् आस्रवति) पुण्य का आस्रव होता है।

टीकाः—यह, पुण्यास्रवके स्वरूपका कथन है।

प्रशस्त राग, अनुकम्पापरिणति और चित्तकी अकलुषता—यह तीन शुभ भाव द्रव्यपुण्यास्रवको निमित्तमात्ररूपसे कारणभूत हैं इसलिये द्रव्यपुण्यास्रवके पूर्व भावपुण्यास्रव होते हैं और वे [शुभ भाव] जिनका निमित्त हैं ऐसे जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलोंके शुभकर्मपरिणाम वे द्रव्यपुण्यास्रव हैं ३५

सं०ता०–अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायैः शून्यात् शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानंदसमरसीभावेन पूर्णकलशवद्भरितावस्थात्परमात्मनः सकाशाद्भिन्ने शुभाशुभास्रवाधिकारे गाथा षट्कं भवति तत्र गाथाषट्कमध्ये प्रथमं तावत्पुण्यास्रवकथनमुख्यत्वेन "रागो जस्स पसत्थो" इत्यादिपाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं पापास्रवे "चरिया पमादबहुला" इत्यादि गाथाद्वयं, इति पुण्यपापास्रवव्याख्याने समुदायपातनिका तद्यथा।

अथ निरास्रवशुद्धात्मपदार्थप्रतिपक्षभूतं शुभास्रवमाख्याति,—रागो जस्स पसत्थो–रागो यस्य प्रशस्तः वीतरागपरमात्मद्रव्याद्विलक्षणः पंचपरमेष्ठिनिर्भरगुणानुरागरूपः प्रशस्तधर्मानुरागः। अणुकंपासंसिदो य परिणामो—अनुकंपासंश्रितश्च परिणामः दयासहितो मनोवचनकायव्यापाररूपः शुभपरिणामः। चित्तह्मि णत्थि कलुसो—चित्ते नास्ति कालुष्यं मनसि क्रोधादिकलुषपरिणामो नास्ति। पुण्णं जीवस्स आसवदि—यस्यैते पूर्वोक्ता त्रयः शुभपरिणामाः संति तस्य जीवस्य द्रव्यपुण्यास्रवकारणभूतं भावपुण्यमास्रवतीति सूत्राभिप्रायः ॥ १३५ ॥ एवं शुभास्रवे सूत्रगाथा गता।

पीठिका—आगे यह आत्मा निश्चयसे परमात्मा स्वरूप है। यह भाव कर्म, द्रव्य कर्म, व नोकर्म तथा मतिज्ञानादि विभावगुण व नर नारक आदि विभाव पर्याय इन सबसे शून्य है तथा शुद्ध आत्माके भले प्रकार श्रद्धान, व भलेप्रकार ज्ञान व भलेप्रकार आचरण रूप अभेद रत्नत्रयमई विकल्परहित समाधि भावसे उत्पन्न होनेवाले समता रसके भावसे पूर्ण कलशकी तरह भरा हुआ है। इस आत्मासे भिन्न जो शुभ व अशुभ आस्रवका अधिकार है, उसमें छः गाथाएं हैं। पहले पुण्याश्रवके कहनेकी मुख्यतासे "रागो जस्स पसत्थो" इत्यादि पाठक्रमसे चार गाथाएं हैं। फिर पापास्रवको कहते हुए—"चरिया पमादबहुला" इत्यादि गाथाएं दो हैं। इस तरह पुण्य व पापके आस्रवके व्याख्यानमें समुदायपातनिका है।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे आस्रवरहित शुद्ध आत्मपदार्थसे प्रतिकूल जो शुभ आस्रव है उसका वर्णन करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जस्स) जिस जीवके (पसत्थो) प्रशस्त या भला (रागो) राग है (य) और (अणुकंपासंसिदो) दयासे भीजा हुआ (परिणामो) भाव है, तथा (चित्ते) चित्तमें (कालुस्सं) कालुसपना या मैलापन (णत्थि) नहीं है (जीवस्स) उस जीवके (पुण्णं) पुण्य कर्म (आसवदि) आता है।

विशेषार्थ—वीतराग परमात्म द्रव्यसे विलक्षण अरहंत सिद्ध आदि पांच परमेष्ठियोंमें पूर्ण गुणानुराग सो प्रशस्त धर्मानुराग है। दया सहित मन, वचन, कायका व्यापार सो अनुकंपाके आश्रय परिणमन है। क्रोधादि कषायको कलुपता कहते हैं। जिस जीवके भावोंमें धर्म-प्रेम है व दया है तथा कषायकी तीव्रताका मैल नहीं है उसजीवके इन शुभ परिणामोंसे द्रव्य पुण्य कर्मके आस्रवमें कारणभूत भावपुण्यका आस्रव होता है, यहां सूत्रमें भावपुण्यास्रवका स्वरूप कहा है १२५

इस तरह शुभ आस्रवको कहते हुए गाथा पूर्ण हुई।

प्रशस्तरागस्वरूपाख्यानमेतत्।

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा।
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥ १३६ ॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे या च खलु चेष्टा।
अनुगमनमपि गुरूणां प्रशस्तराग इति ब्रुवन्ति ॥ १३६ ॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिः, धर्मे व्यवहारचारित्रानुष्ठाने वासनाप्रधाना चेष्टा, गुरूणामाचार्यादीनां रसिकत्वेनानुगमनम् एषः प्रशस्तो रागः प्रशस्तविषयत्वात्। अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं

तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥ १३६ ॥

अन्वयार्थः—(अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिः) अर्हंत-सिद्ध-साधुओंके प्रति भक्ति, (धर्मे या च खलु चेष्टा) धर्ममें यथार्थतया चेष्टा (अपि गुरूणाम् अनुगमनम्) और गुरुओंका अनुगमन, (प्रशस्तरागः इति ब्रुवन्ति) वह 'प्रशस्त राग' कहलाता है ।

टीका:-यह, प्रशस्त रागके स्वरूपका कथन है ।

अर्हंत-सिद्ध-साधुओंके प्रति भक्ति, धर्ममें-व्यवहारचारित्रके अनुष्ठानमें-भावनाप्रधान चेष्टा और गुरुओंका-आचार्यादिका-रसिकरूपसे (भक्तिपूर्वक) अनुगमन, वह 'प्रशस्त राग' है क्योंकि उसका विषय प्रशस्त है ।

यह (प्रशस्त राग) जो स्थूल दृष्टि से (स्थूलताकर) मात्र भक्तिप्रधान है ऐसे अज्ञानीको होता है, उच्च भूमिकामें (-ऊपरके गुणस्थानोंमें) स्थिति—स्थिरता प्राप्त न की हो तब, अस्थानका राग रोकनेके हेतु अथवा तीव्र रागज्वर मिटानेके हेतु, कदाचित् ज्ञानीको भी होता है ॥ १३६ ॥

अथ प्रशस्तरागस्वरूपमावेदयति,—

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिः । धम्मम्हि जा च खलु चेट्ठा–धर्मे शुभरागचारित्रे या खलु चेष्टा, अणुगमणंपि अनुगमनमनुव्रजनं तुकूलवृत्तिरित्यर्थः । केषां । गुरूणं-गुरूणां, पसत्थरागोत्ति उच्चंति-एते सर्वे पूर्वोक्ताः शुभभावाः परिणामाः प्रशस्तराग इत्युच्यंते तथाहि–निर्दोषपरमात्मनः प्रतिपक्षभूतं यदार्त्त रौद्ररूपध्यान-द्वयं तेनोपार्जिता या ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतयस्तासां रागादिविकल्परहितधर्मध्यानशुक्लध्यानद्वयेन विनाशं कृत्वा क्षुधाद्यष्टादशदोषरहिताः केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयसहिताश्च जाता ये तेऽर्हंतो भण्यंते । लौकिकांजनसिद्धादिविलक्षणा ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माभावेन सम्यक्त्वाद्यष्टगुणलक्षणा लोकाग्रनिवासिनश्च ये ते सिद्धा भवंति । विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वविषये या निश्चयरुचिस्तथा परिच्छित्तिस्तथैव निश्चलानुभूतिः परद्रव्येच्छापरिहारेण तत्रैवात्मद्रव्ये प्रतपनं तपश्चरणं स्वशक्त्यनवगूहनेनानुष्ठानमिति निश्चयपंचाचारः तथैवाचारादिशास्त्रकथितक्रमेण तत्साधकव्यवहारपंचाचारः इत्युभयमाचारं स्वयमाचरंत्यन्यानाचारयंति ये ते भवंत्याचार्याः । पंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु मध्ये जीवास्तिकायं शुद्धजीवद्रव्यं शुद्धजीवतत्त्वं शुद्धजीवपदार्थं च निश्चयनयेनोपादेयं कथयंति तथैव भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणं मोक्षमार्गं प्रतिपादयंति स्वयं भावयंति च ये ते भवंत्युपाध्यायाः । निश्चयचतुर्विधाराधनया ये शुद्धात्मस्वरूपं साधयंति ते भवंति साधव इति । एवं पूर्वोक्तलक्षणयोर्जिनसिद्धयोस्तथा साधुशब्दवाच्येष्वाचार्योपाध्यायसाधुषु च या बाह्याभ्यंतरा भक्तिः सा प्रशस्तरागो भण्यते । तं प्रशस्तरागं अज्ञानी जीवो भोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन करोति । ज्ञानी पुनर्निर्विकल्पसमाध्यभावे विषयकषायरूपाशुभरागविनाशार्थं करोतीति भावार्थः ॥ १३६ ॥

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे प्रशस्त रागका स्वरूप कहते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(अरहंतसिद्धसाहुसु) अरहंत, सिद्ध, व साधुओंमें (भत्ती) भक्ति (य) और (धम्मम्मि) शुभ रागरूप चारित्रमें (जा खलु चेट्ठा) जो निश्चय करके उद्योग

करना व (गुरूणं पि अणुगमणं) गुरुओंके अनुकूल चलना (पसत्थरागो त्ति) यह प्रशस्तराग है ऐसा (वुच्चंति) आचार्य कहते हैं।

विशेषार्थ—दोषरहित परमात्माके ध्यानके विरोधी जो आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान दो खोटे ध्यान हैं उनसे ज्ञानावरणादि आठमूल व उनके भेदरूप उत्तर प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इन ही कर्मप्रकृतियोंको रागादि विकल्पोंसे रहित धर्मध्यान और शुक्लध्यानोंके बलसे नाश करके जो क्षुधा तृषा आदि अठारह दोषोंसे रहित हो केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टयके धारी हैं वे अर्हंत कहे जाते हैं। जिन्होंने ज्ञानावरण आदि आठों कर्मोंका नाश करके सम्यग्दर्शन आदि गुणोंको प्रगट करके लोकके अग्रभागमें निवास प्राप्त करलिया है वे लौकिक अञ्जनसिद्ध आदिसे विलक्षण, सिद्ध हैं। विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावमई आत्मतत्त्वमें जो रुचि वह निश्चय सम्यक्त्व है, उसहीका ज्ञान सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है व उसहीमें निश्चल होकर अनुभव करना सो निश्चय सम्यक्चारित्र है। परद्रव्यकी इच्छाको त्याग करके उस ही आत्मद्रव्यमें विशेषपने तपना सो निश्चय तप है तथा अपने वीर्यको न छिपाकर साधन करना सो निश्चय वीर्य है। इस निश्चय पंच प्रकार आचारको तथा आचार आदि शास्त्रमें कथित क्रमसे इस ही निश्चय पंचाचारके साधनेवाले व्यवहार पंचाचारको इस तरह दोनोंको जो स्वयं आचरण करते हैं और दूसरोंसे आचरण कराते हैं वे आचार्य है। जो पांच अस्तिकायमें शुद्ध जीवास्तिकायको, छः द्रव्योंमें शुद्ध जीवद्रव्यको, सात तत्त्वोंमें शुद्ध जीवतत्त्वको, नव पदार्थोंमें शुद्ध जीव पदार्थको निश्चयनयसे ग्रहण करने योग्य कहते हैं, तैसे ही निश्चय व्यवहाररूप रत्नत्रय लक्षणमई मोक्षमार्गको जो बताते हैं व स्वयं जिसकी भावना करते हैं वे उपाध्याय हैं। जो निश्चयरूप चार तरहकी आराधनासे शुद्ध आत्मस्वरूपका साधन करते हैं वे साधु हैं। इस तरह पहले कहे हुए लक्षणोंके धारी जिनेन्द्रोंमें व साधु शब्दसे कहने योग्य आचार्य, उपाध्याय और साधुओंमें जो बाहर और भीतरसे भक्ति करना सो प्रशस्त राग कहाजाता है। इस शुभ रागको अज्ञानी जीव भोगोंकी इच्छारूप निदान भावसे करता है परन्तु ज्ञानी निर्विकल्प समाधिको न पाकर विषय या कषायरूप अशुभ रागोंके नाश करनेके लिये करता है, यह भावार्थ है ॥ १३६ ॥

अनुकम्पास्वरूपाख्यानमेतत्।

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥ १३७ ॥

तृषितं बुभुक्षितं वा दुःखितं दृष्ट्वा यस्तु दुःखितमनाः।
प्रतिपद्यते तं कृपया तस्यैषा भवत्यनुकम्पा ॥ १३७ ॥

कञ्चिदुदन्यादिदुःखप्लुतमवलोक्य करुणया तत्प्रतिचिकीर्षाकुलितचित्तत्वमज्ञानिनोऽनुकंपा. ज्ञानिनस्त्वधस्तनभूमिकासु विहरमाणस्य जन्मार्णवनिमग्नजगदवलोकनान्मनाग्मनःखेद इति ॥ १३७ ॥

अन्वयार्थः–(तृषितं) तृषातुर, (बुभुक्षितं) क्षुधातुर (वा) अथवा (दुःखितं) दुःखीको (दृष्ट्वा) देखकर (यः तु) जो जीव (दुःखितमनाः) मनमें दुःख पाता हुआ [तं कृपया प्रतिपद्यते] उसके प्रति करुणासे वर्तता है, (तस्य एषा अनुकम्पा भवति) उसकी वह अनुकम्पा है।

टीका:–यह, अनुकम्पाके स्वरूपका कथन है।

किसी तृषादिदुःखसे पीडित प्राणीको देखकर करुणाके कारण उसका प्रतिकार (–उपाय) करनेकी इच्छासे चित्तमें आकुलता होना वह अज्ञानीकी अनुकम्पा है। ज्ञानीकी अनुकम्पा तो, निचली भूमिकामें बिहरते हुए (–स्वयं निचले गुणस्थानोंमें वर्तता हो तब), जन्मार्णवमें निमग्न जगतके अवलोकनसे (अर्थात् संसारसागरमें डूबे हुए जगतको देखनेसे) मनमें किंचित् खेद होना वह है ॥ १३७ ॥

सं०ता०–अथानुकंपास्वरूपं कथयति,–तृषितं वा बुभुक्षितं वा दुःखितं वा कमपि प्राणिनं दृष्ट्वा, जो हि दुहिदमणो–यः खलु दुःखितमनाः सन्, पडिवज्जदि तं किवया–प्रतिपद्यति स्वीकरोति तं प्राणिनं कृपया, तस्सेसा होदि अणुकंपा–तस्यैषा भवत्यनुकंपेति । तथाहि—तीव्रतृष्णातीव्रक्षुधातीव्ररोगादिना पीडितमवलोक्याज्ञानी जीवः केनाप्युपायेन प्रतीकारं करोमीति व्याकुलो भूत्वानुकंपां करोति, ज्ञानी तु स्वस्य भावनामलभमानः सन् संक्लेशपरित्यागेन यथासंभवं प्रतीकारं करोति तं दुःखितं दृष्ट्वा विशेषसंवेगवैराग्यभावनां च करोतीति सूत्रतात्पर्यं ॥ १३७ ॥

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे अनुकम्पाका स्वरूप कहते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(जो दु) जो कोई (तिसिदं) प्यासे, (बुभुक्खिदं) भूखे [वा] तथा (दुहिदं) दुःखीको (दट्ठूण) देखकर (दुहिदमणो) अपने मनमें दुःखी होता हुआ [तं] उसको [किवया] दयाभावसे [पडिवज्जदि] स्वीकार करता है अर्थात् उसका दुःख दूर करता है [तस्स] उस दयावानके [एसा] यह [अणुकंपा] दया [होदि] होती है।

विशेषार्थ–अज्ञानी जीव किसीको तीव्र प्यास, भूख व तीव्र रोगसे पीडित देखकर किस तरह इसका यत्न करूं ऐसा सोचकर व्याकुल होता हुआ दयाभाव करता है किन्तु सम्यग्ज्ञानी अपने आत्माकी भावनाको न प्राप्त करता हुआ संक्लेश परिणाम न करके उसका यथासंभव उपाय करता है–उसे दुःखी देखकर विशेष संवेग तथा वैराग्यकी भावना भाता है, यह सूत्रका भाव है ॥ १३७ ॥

चित्तकलुषत्वस्वरूपाख्यानमेतत्।

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति॥ १३८॥

क्रोधो वा यदा मानो माया लोभो वा चित्तमासाद्य।
जीवस्य करोति क्षोभं कालुष्यमिति च तं बुधा वदन्ति॥ १३८॥

क्रोधमानमायालोभानां तीव्रोदये चित्तस्य क्षोभः कालुष्यम्। तेषामेव मंदोदये तस्य प्रसादोऽकालुष्यम्। तत् कादाचित्कविशिष्टकषायक्षयोपशमे सत्यज्ञानिनो भवति। कषायोदयानुवृत्तेरसमग्रव्यावर्तितोपयोगस्यावांतरभूमिकासु कदाचित् ज्ञानिनोऽपि भवतीति॥ १३८॥

अन्वयार्थः—(यदा) जब (क्रोधः वा) क्रोध, (मानः) मान, (माया) माया (वा) अथवा (लोभः) लोभ (चित्तम् आसाद्य) चित्तका आश्रय पाकर (जीवस्य) जीवको (क्षोभं करोति) क्षोभ करते हैं, तब (तं) उसे (बुधाः) ज्ञानी (कालुष्यम् इति च वदन्ति) 'कलुषता' कहते हैं।

टीकाः—यह, चित्तकी कलुषताके स्वरूपका कथन है।

क्रोध, मान, माया और लोभके तीव्र उदयसे चित्तका क्षोभ सो कलुषता है। उन्हींके (-क्रोधादिके ही) मंद उदयसे चित्तकी प्रसन्नता सो अकलुषता है। वह अकलुषता, कदाचित् कषायका विशिष्ट (-विशेष प्रकारका) क्षयोपशम होने पर, अज्ञानीको होती है, कषायके उदयका अनुसरण करनेवाली परिणतिमेंसे उपयोगको असमग्ररूपसे (अपूर्णरूपसे) विमुख किया हो तब, मध्यम भूमिकाओंमें (-मध्यम गुणस्थानोंमें), कदाचित् ज्ञानीको भी होती है॥ १३८॥

सं०ता०-अथ चित्तकलुषतास्वरूपं प्रतिपादयति, कोधो व-उत्तमक्षमापरिणतिरूपशुद्धात्मतत्त्वसंवित्तेः प्रतिपक्षरूपभूतक्रोधादयो वा, जदा माणो-निरहंकारशुद्धात्मोपलब्धेः प्रतिकूलो यदा काले मानो, वा माया-निःप्रपंचात्मोपलंभविपरीता माया वा लोहो व-शुद्धात्मभावनोत्थतृप्तेः प्रतिबंधको लोभो वा-चित्तमासेज्ज-चित्तमाश्रित्य, जीवस्स कुणदि खोहं-अक्षुभितशुद्धात्मानुभूतेर्विपरीतं जीवस्य क्षोभं चित्तवैकल्यं करोति कलुसोत्ति य तं बुधा वेंति-तत्क्रोधादिजनितं चित्तवैकल्यं कालुष्यमिति बुधा विदंति कथयंतीति। तद्यथा तस्य कालुष्यस्य विपरीतमकालुष्यं भण्यते तच्चाकालुष्यं पुण्यास्रवकारणभूतं कदाचिदनंतानुबंधिकषायमंदोदये सत्यज्ञानिनो भवति, कदाचित्पुनर्निर्विकारस्वसंवित्त्यभावे सति दुर्ध्यानवंचनार्थं ज्ञानिनोपि भवतीत्यभिप्रायः॥ १३८॥ एवं गाथाचतुष्टयेन पुण्यास्रवप्रकरणं गतं।

हिंदी ता०-उत्थानिका-आगे चित्तकी कलुषताका स्वरूप कहते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-[जदा] जिस समय [कोधो] क्रोध [व] तथा [माणो] मान, [माया] माया [व] तथा [लोभो] लोभ [चित्तं) चित्तमें या उपयोगमें [आसेज्ज] प्राप्त होकर [जीवस्स] आत्माके भीतर [खोहं] क्षोभ या आकुलता या घबड़ाहट [कुणदि]

पैदा कर देता है। [बुधा] ज्ञानीजन [तं] उस क्षोभको [कलुसोत्ति य] कलुषता या संक्लेशपना ऐसा [वेंति] कहते हैं।

विशेषार्थ—उत्तम क्षमामें परिणतरूप शुद्धात्मतत्त्वके अनुभवसे प्रतिकूल क्रोध है। अहंकार रहित शुद्धात्माकी प्राप्तिसे विरुद्ध मान है। प्रपंचरहित आत्माके लाभसे विपरीत माया है। शुद्ध आत्माकी भावनासे उत्पन्न होनेवाली तृप्तिको रोकनेवाला लोभ है। क्षोभरहित शुद्ध आत्माके अनुभवसे विपरीत आकुलित भावको चित्तक्षोभ कहते हैं। इन क्रोधादि कषायोंकी तीव्रतासे जो चित्तमें क्षोभ होता है उसको कलुषता कहते हैं। इस कलुषतासे विपरीत भावको अकलुषता या मंदकषायरूप शुभ राग कहते हैं यही भाव पुण्यकर्मके आस्रवका कारण है—यह भाव कभी अज्ञानी मिथ्यादृष्टीको भी अनंतानुबन्धी कषायके मंद उदय होनेपर होजाता है तथा ज्ञानीके भी यह शुभ भाव तब होता है जब उसको विकार रहित स्वानुभवका लाभ नहीं होता व ज्ञानी खोटे ध्यानसे बचनेकेलिये इस चित्तकी प्रसन्नतारूप भावको संतोष, दयाभाव, क्षमा आदिके रूपसे करता है॥ १३८ ॥ इस तरह चार गाथाओंसे पुण्यास्रवके कारणोंको बताया।

पापास्रवस्वरूपाख्यानमेतत्—

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।
परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि॥ १३९ ॥

चर्या प्रमादबहुला कालुष्यं लोलता च विषयेषु।
परपरितापापवादः पापस्य चास्रवं करोति॥ १३९ ॥

प्रमादबहुलचर्या परिणतिः, कालुष्यपरिणतिः, विषयलौल्यपरिणतिः, परपरितापपरिणतिः, परापवादपरिणतिश्चेति पञ्चाशुभा भावा द्रव्यपापास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापास्रवः। तन्निमित्तोऽशुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपापास्रव इति॥ १३९ ॥

अन्वयार्थः—(प्रमादबहुला चर्या) बहुत प्रमादवाली चर्या, (कालुष्यं) कलुषता, (विषयेषु च लोलता) विषयोंके प्रति लोलुपता, (परपरितापापवादः) परको परिताप करना तथा परके अपवाद बोलना—वह (पापस्य च आस्रवं करोति) पापका आस्रव करता है।

टीकाः—यह, पापास्रवके स्वरूपका कथन है।

बहुत प्रमादवाली चर्यारूप परिणति, विषयलोलुपतारूप परिणति, परपरितापरूप परिणति (-परको दुःख देनेरूप परिणति) और परके अपवादरूप परिणति—यह पांच अशुभ भाव द्रव्यपापास्रवको निमित्तमात्ररूपसे कारणभूत हैं इसलिये 'द्रव्यपापास्रवके' पूर्व भावपापास्रव हैं और वे [अशुभ भाव] जिनका निमित्त हैं ऐसे जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलोंके अशुभकर्मपरिणाम वे द्रव्यपापास्रव हैं॥ १३९ ॥

सं०ता०-अथ गाथाद्वयेन पापास्रवस्वरूपं निरूपयति,-चरिया पमादबहुला-निःप्रमादचिच्चमत्कारपरिणतेः प्रतिबंधिनी प्रमादबहुला चर्या परिणतिश्चारित्रपरिणतिः, कालुस्सं-अकलुषचैतन्यचमत्कारमात्राद्विपरीता कालुष्यपरिणतिः । लोलदा य विसयेसु-विषयातीतात्मसुखसंवित्तेः प्रतिकूला विषयलौल्यपरिणतिः, परपरिदाव-परपरितापरहितशुद्धात्मानुभूतेर्विलक्षणा परपरितापपरिणतिः, अपवादो—निरपवादस्वसंवित्तेर्विपरीता परापवादपरिणतिश्चेति, पापस्स य आसवं कुणदि-इयं पंचप्रकारा परिणतिर्द्रव्यपापास्रवकारणभूता भावपापास्रवो भण्यते । भावपापास्रवनिमित्तेन मनोवचनकाययोगद्वारेणागतं द्रव्यकर्म द्रव्यपापास्रव इति सूत्रार्थः ॥ १३९ ॥

हिन्दी ता०—उत्थानिका-अब दो गाथाओंसे पापास्रवका स्वरूप कहते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-[पमादबहुला] प्रमादसे भरी हुई [चरिया] क्रिया [कालुस्सं] चित्तका मलीनपना [य] और (विसयेसु) इन्द्रियोंके विषयोंमें (लोलदा) लोलुपता [य] तथा (परपरितावपवादो) दूसरोंको दुःखी करना व उनकी निन्दा करनी [पावस्स] पापकर्मका (आसवं) आस्रव (कुणदि) करते हैं ।

विशेषार्थ-प्रमादरहित चैतन्यके चमत्कारकी परिणतिको रोकनेवाली विषय कषायकी ओर झुकी हुई चारित्रकी परिणतिको प्रमादबहुला चर्या कहते हैं । मलीनता रहित चैतन्यके चमत्कारसे विपरीत भावको मलीन भाव या कलुषता कहते हैं । पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे दूरवर्ती आत्मसुखके अनुभवसे प्रतिकूल विषयोंमें अतिलोभके परिणामको विषयलोलुपता कहते हैं । दूसरोंको दुःख देनेसे रहित शुद्ध आत्मानुभवसे विलक्षण दूसरोंको कष्ट देनेरूप परिणामको परपरिताप कहते हैं । अपवादरहित स्वात्मानुभवसे विपरीत परकी निन्दा करने रूप भावको पर-अपवाद कहते हैं, इन पांच प्रकारके भावोंको भाव पापास्रव कहते हैं क्योंकि ये द्रव्य पापोंके आस्रवके कारण हैं । भाव पापोंके निमित्तसे मन, वचन, कायके योगों द्वारा आए हुए द्रव्यकर्मको द्रव्य पापास्रव कहते हैं, यह सूत्रका अर्थ है ॥ १३९ ॥

पापास्रवभूतभावप्रपञ्चाख्यानमेतत् ।

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अत्तरुद्दाणि ।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ॥ १४० ॥

संज्ञाश्च त्रिलेश्या इन्द्रियवशता चार्तरौद्रे ।
ज्ञानं च दुःप्रयुक्तं मोहः पापप्रदा भवन्ति ॥ १४० ॥

तीव्रमोहविपाकप्रभवा आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञाः, तीव्रकषायोदयानुरंजितयोगप्रवृत्तिरूपाः कृष्णनीलकापोतलेश्यास्तिस्रः, रागद्वेषोदयप्रकर्षादिन्द्रियाधीनत्वम्, रागद्वेषोद्रेकात्प्रियसंयोगा-

प्रियवियोगवेदनामोक्षणनिदानाकांक्षणरूपमार्तम्, कषायक्रूराशयत्वाद्धिंसाऽसत्यस्तेयविषय-संरक्षणानंदरूपं रौद्रम्, नैष्कर्म्यं तु शुभकर्मणश्चान्यत्र दुष्टतया प्रयुक्तं ज्ञानम्, सामान्येन दर्शन-चारित्रमोहनीयोदयोपजनिताविवेकरूपो मोहः,—एषः भावपापास्रवप्रपञ्चो द्रव्यपापास्रवप्रपंच-प्रदो भवतीति ॥ १४० ॥

इति आस्रवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

अन्वयार्थः—[संज्ञा च] (चारों) संज्ञाएं, (त्रिलेश्या) तीन (अशुभ लेश्याएं, (इन्द्रियव-शता च) इन्द्रियवशता, (आर्तरौद्रे) आर्त-रौद्रध्यान, (दुःप्रयुक्तं ज्ञानं) दुःप्रयुक्त ज्ञान (-दुष्टरूपसे अशुभ कार्यमें लगा हुआ ज्ञान) (च) और (मोहः) मोह—(पापप्रदाः भवन्ति) (यह भाव) पापप्रद हैं

टीकाः-यह, पापास्रवभूत भावोंके विस्तारका कथन है।

तीव्र मोहके विपाकसे उत्पन्न होनेवाली आहार-भय-मैथुन-परिग्रहसंज्ञाएं, तीव्र कषायके उदयसे अनुरंजित योगप्रवृत्तिरूप कृष्ण-नील कापोत नामकी तीन लेश्याएं, रागद्वेषके उदयके प्रकर्षके कारण वर्तता हुआ इन्द्रियाधीनपना, रागद्वेषके उद्रेकके कारण प्रियके संयोगकी, अप्रियके वियोगकी, वेदनासे छुटकारेकी तथा निदानकी इच्छारूप आर्तध्यान, कषाय द्वारा क्रूर ऐसे परिणामके कारण होनेवाला हिंसानन्द, असत्यानन्द, स्तेयानन्द एवं विषयसंरक्षणानन्दरूप रौद्रध्यान, निष्प्रयोजन [—व्यर्थ] शुभ कर्मसे अन्यत्र (-अशुभ कार्यमें) दुष्टरूपसे लगा हुआ ज्ञान, और सामान्यरूपसे दर्शनचारित्रमोहनीयके उदयसे उत्पन्न अविवेकरूप मोह,—यह, भावपापास्रवका विस्तार द्रव्यपापास्रवके विस्तारको प्रदान करनेवाला है ॥ १४० ॥

इस प्रकार आस्रवपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ।

अथ भावपापास्रवस्य विस्तरं कथयति, सण्णाओ—आहारादिसंज्ञारहितशुद्धचैतन्यपरिणतेर्भिन्ना-स्तस्र आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञा, तिलेस्सा कषाययोगद्वयाभावरूपविशुद्धचैतन्यप्रकाशात्पृथग्भूताः कषा-योदयरंजितयोगप्रवृत्तिलक्षणास्तिस्रः कृष्णनीलकापोतलेश्याः । इंदियवसदा य—स्वाधीनातीन्द्रियसुखास्वाद-परिणतेः प्रच्छादिका पंचेंद्रियविषयाधीनता । अट्टरुद्दाणि—समस्तविभावाकांक्षारहितशुद्धचैतन्यभावनायाः प्रतिबधकं इष्टसंयोगानिष्टवियोगव्याधिविनाशभोगनिदानकांक्षारूपेणोद्रेकभावप्रचुरं चतुर्विधमार्तध्यानं क्रोधावेशरहितशुद्धात्मानुभूतिभावनायाः पृथग्भूतं क्रूरचित्तोत्पन्नं हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणानंदरूपं चतुर्विधं रौद्रध्यानं च । णाणं च दुप्पउत्तं—शुभशुद्धोपयोगद्वयं विहाय मिथ्यात्वरागाद्यधीनत्वेनान्यत्र दुष्ट-भावे प्रवृत्तं दुःप्रयुक्तं ज्ञानं । मोहो—मोहोदयजनितममत्वादिविकल्पजालवर्जितस्वसंवित्तेर्विनाशको दर्शन-चारित्रमोहश्च इति विभावपरिणामप्रपंचः । पावप्पदो होदि—पापप्रदायको भवति । एवं द्रव्यपापास्रवकार-णभूतः पूर्वसूत्रोदितभावपापास्रवस्य विस्तरो ज्ञातव्य इत्यभिप्रायः ॥ १४० ॥ किं च । पुण्यपापद्वयं पूर्वं व्याख्यानं तेनैव पूर्यते, पुण्यपापास्रवव्याख्यानं किमर्थमिति प्रश्ने परिहारमाह । जलप्रवेशद्वारेण जलमिव

पुण्यपापद्वयमास्रवत्यागच्छत्यनेनेत्यास्रवः । अत्रागमनं मुख्यं तत्र तु पुण्यपापद्वयस्यागमनानंतरं स्थित्यनुभागवंधरूपेणावस्थानं मुख्यमित्येतावद्विशेषः । एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यपापास्रवव्याख्यानमुख्यतया गाथाषट्समुदायेन षष्ठोंतराधिकारः समाप्तः ।

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे पापास्रवका कथन विस्तारसे कहते हैं–

अन्वयसहित सामान्यार्थ–[सण्णाओ] चार संज्ञाएं [य] तथा [तिलेस्सा] तीन लेश्या (इन्दियवसदा) इन्द्रियोंके आधीन होजाना (य) और (अत्तरुद्दाणि) आर्त्त रौद्र ध्यान [दुप्पउत्तं णाणं] खोटे कार्योंमें लगाया हुआ ज्ञान (च) और (मोहो) मोहभाव ये सब (पावप्पदा) पापके देनेवाले (होंति) होते हैं ।

विशेषार्थ–आहार आदि संज्ञाओंसे रहित शुद्ध चैतन्यकी परिणतिसे भिन्न ये आहार, भय, मैथुन, परिग्रह चार संज्ञाएं हैं । कषाय और योग दोनोंसे रहित विशुद्ध चैतन्यके प्रकाशसे जुदी कषायके उदयसे रंगी हुई योगोंकी प्रवृत्ति लक्षणको रखनेवाली कृष्ण, नील, कापोत तीन अशुभ लेश्याएं हैं, स्वाधीन अतीन्द्रिय सुखके स्वादकी परिणतिको ढकनेवाली पांच इंद्रियोंके विषयोंकी आधीनता है, सर्व विभाव व इच्छाओंसे रहित शुद्ध चैतन्यकी भावनाके रोकनेवाले इष्टसंयोग, अनिष्ट वियोग, रोगविनाश व भोगोंकी इच्छा रूप निदान इन चार की आकांक्षासे भरे हुए तीव्रभावको चार प्रकार का आर्त्तध्यान कहते हैं क्रोधके वेगसे शून्य शुद्धात्मानुभवकी भावनासे दूरवर्ती दुष्ट चित्तसे पैदा होनेवाले हिंसा, झूठ, चोरी व परिग्रहके रक्षणमें आनंदरूप चार रौद्रध्यान हैं । शुभोपयोग व शुद्धोपयोग दोनोंको छोडकर मिथ्यादर्शन व रागादिभावोंके आधीन होकर अन्य किसी दुष्टभावमें वर्तन करनेवाले ज्ञानको दुःप्रयुक्तज्ञान कहते हैं । मोहके उदयसे पैदा होनेवाले ममत्व आदिके विकल्पजालोंसे रहित जो स्वानुभूति उसका नाश करनेवाला दर्शनमोह और चारित्र मोह कहा जाता है । इत्यादि विभाव भावोंका प्रपंच है । ये सब भाव पापकर्मके आस्रवके कारण हैं इस प्रकार द्रव्यपाप आस्रव के कारणभूत पूर्व सूत्र में कहेगये भाव पाप आस्रव का विस्तार जानना चाहिये । यह अभिप्राय है ॥ १४० ॥

यहां कोई प्रश्न करे कि पहले पुण्य तथा पाप दोनोंको कह चुके थे उसीसे पूर्णता होनी थी फिर पुण्य तथा पापके आश्रवका क्यों व्याख्यान किया ? आचार्य इसका समाधान करते हैं कि जैसे जलके आनेके द्वारसे जल आता है वैसे भावपाप या भावपुण्यके द्वारसे द्रव्यपाप व द्रव्यपुण्यका आस्रव होता है । यहांपर इनके आस्रव की मुख्यतासे कथन है वहां इन पुण्य पापके आनेके पीछे स्थिति व अनुभाग बन्धके रूपसे उनके ठहरनेकी मुख्यतासे कथन है, यह विशेषता है । इस तरह नव पदार्थके बतानेवाले दूसरे महाअधिकारमें पुण्य व पापके आस्रवके व्याख्यानकी मुख्यतासे छः गाथाओंके समुदायसे छठा अन्तर अधिकार पूर्ण हुआ ।

अथ संवरपदार्थ व्याख्यानम्

अनन्तरत्वात्पापस्यैव संवराख्यानमेतत् ।

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठु मग्गम्मि ।
जावत्तावत्तेहिं पिहियं पावासवच्छिद्दं ॥ १४१ ॥

इन्द्रियकषायसंज्ञा निगृहीता यैः सुष्ठु मार्गे ।
यावत्तावत्तेषां पिहितं पापास्रवच्छिद्रम् ॥ १४१ ॥

मार्गो हि संवरस्तन्निमित्तमिन्द्रियाणि कषायाः संज्ञाश्च यावतांशेन यावन्तं वा कालं निगृह्यन्ते तावतांशेन तावन्तं वा कालं पापास्रवद्वारं पिधीयते । इन्द्रियकषायसंज्ञाः भावपापास्रवो द्रव्यपापास्रवहेतुः पूर्वमुक्तः । इह तन्निरोधो भावपापसंवरो द्रव्यपापसंवरहेतुरवधारणीय इति ॥ १४१ ॥

अब, संवरपदार्थका व्याख्यान है ।

अन्वयार्थः—(यैः) जो (सुष्ठु मार्गे) सम्यग् मार्गमें [संवरमार्गमें] रहकर [इन्द्रियकषायसंज्ञाः] इन्द्रियां, कषाय और संज्ञाओंका (यावत् निगृहीताः) जितना निग्रह करते हैं, [तावत्] उतना (पापास्रवच्छिद्रम्) पापास्रवका छिद्र (तेषाम्) उनके (पिहितम्) बन्द होता है ।

टीकाः—पापके अनन्तर होनेसे, पापके ही संवरका यह कथन है ।

मार्ग वास्तवमें संवर है, उसके निमित्तसे (-उसके हेतुसे) इन्द्रियों, कषायों तथा संज्ञाओंका जितने अंशमें अथवा जितने काल निग्रह किया जाता है, उतने अंशमें अथवा उतने काल पापास्रवद्वार बन्द होता है ।

इन्द्रियों, कषायों और संज्ञाओं—भावपापास्रव-को द्रव्यपापास्रवका हेतु [-निमित्त] पहले [१४० वीं गाथामें) कहा है, यहां (इस गाथामें) उनका निरोध रूप भावपापसंवर-द्रव्यपापसंवरका हेतु अवधारना (-समझना) ॥ १४१ ॥

सं०ता०-अथ ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्पवर्जितशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणपरमोपेक्षासंयमसाध्ये संवरव्याख्याने "इंदियकसाय" इत्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका ॥

अथ पूर्वसूत्रकथितपापास्रवस्य संवरमाख्याति,—इन्द्रियकषायसंज्ञा णिग्गहिदा-निगृहीता निषिद्धा, जेहिं— यैः कर्तृभूतैः पुरुषैः सुट्ठु-सुष्ठु विशेषेण । किंकृत्वा । पूर्वं स्थित्वा । क्व ? मग्गम्हि-संवर-

कारणरत्नत्रयलक्षणे मोक्षमार्गे । कथं निग्रहीता: । यावत् यस्मिन् गुणस्थाने यावंतं कालं यावतांशेन "सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोछिण्णा । दुगतीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को" इति गाथाकथितत्रिभंगीक्रमेण तावत्तस्मिन् गुणस्थाने तावत्कालं तावतांशेन स्वकीयस्वकीयगुणस्थानपरिणामानुसारेण । तेसिं-तेषां पूर्वोक्तपुरुषाणां । पिहिदं—पिहितं प्रच्छादितं झंपितं भवति । किं ? पापासवच्छिद्द-पापास्रवछिद्रं पापागमनद्वारमिति । अत्र सूत्रे पूर्वगाथोदितद्रव्यपापास्रवकारणभूतस्य भावपापास्रवस्य निरोध: द्रव्यपापास्रवसंवरकारणभूतो भावपापास्रवसंवरो ज्ञातव्य इति सूत्रार्थ: ॥ १४१ ॥

पीठिका—आगे संवर तत्त्वका व्याख्यान करते हैं, जो संवर अपनी प्रसिद्धि, पूजा, लाभ व देखे सुने अनुभवे हुए भोगोंकी इच्छा रूप निदान बंध आदि सर्व शुभ व अशुभ संकल्पोंसे रहित शुद्धात्माके अनुभव रूप लक्षणमई परम उपेक्षा संयमके द्वारा सिद्ध किया जाता है । इस कथनमें " इन्दियकसाय " इत्यादि तीन गाथाओंसे समुदाय पातनिका है ।

हिन्दी ता०-उत्थानिका—आगे पहली गाथामें कहे हुए पापके आस्रवके संवरके लिये कहते हैं

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जेहिं) जिन्होंके द्वारा (सुट्ठुमग्गम्मि) उत्तम रत्नत्रय मार्गमें ठहरकर (जावत्) जबतक (इन्दियकसायसण्णा) इन्द्रिय, कषाय व चार आहारादि संज्ञाएं (णिग्गहिदा) रोक दिये जाते हैं (तावत्) तबतक (तेहिं) उन्होंके द्वारा (पावासव छिद्दं) पापके आनेका छेद (पिहियं) बन्द कर दिया जाता है ।

विशेषार्थ—यह जीव जिस गुणस्थानमें जाता है वहां जबतक ठहरता है उतने कालतक उन कर्म प्रकृतियोंका संवर रहता है, जिनका वहां बन्धका अभाव आगममें बताया गया है । गुणस्थानके परिणामोंके अनुसार ही कर्मका आस्रव रुकता है । कहा भी है—

नीचे लिखी गाथाके अनुसार कर्म प्रकृतियोंका आस्रव तथा बंध गुणस्थान गुणस्थान प्रति रुकता जाता है—

बंध योग्य १२० कर्मकी उत्तर प्रकृतियें हैं उनमें मिथ्यात्व गुणस्थानके आगे सोलहका, सासादनसे आगे पचीसका, चौथे अविरतिसे आगे दसका, पांचवें देशविरतिसे आगे चारका प्रमत्तविरत नामके छठेसे आगे छःका, सातवें अप्रमत्तसे आगे एकका, आठवें अपूर्वकरणसे आगे छत्तीसका, नौमें अनिवृत्तिकरणसे आगे पांचका, दसवें सूक्ष्मसांपरायसे आगे सोलहका, तेरहवें सयोग केवली गुणस्थानसे आगे एकका बंध रुक जाता है । ज्यों २ मोह कम होता जाता है, कषाय घटता जाता है त्यों २ कर्मप्रकृतियें रुकती जाती हैं । इस तरह १६+२५+१०+४+६+१×३६×५×१६×१×१२० एकसौबीस बंध योग्य प्रकृतियोंका धीरे २ संवर होता जाता है । पहले सूत्रमें द्रव्य आस्रवके कारणभूत भाव पापास्रवको कहा था यहां उनहीके रोकनेके लिये द्रव्य पापास्रवके रोकनेरूप द्रव्यसंवरके कारणरूप भाव आस्रवके रोकनेरूप भाव संवरका स्वरूप जानना चाहिये, यह सूत्रका अर्थ है ॥ १४१ ॥

सामान्यसंवरस्वरूपाख्यानमेतत् ।

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु ।
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥ १४२ ॥

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा सर्वद्रव्येषु ।
नास्रवति शुभमशुभं समसुखदुःखस्य भिक्षोः ॥ १४२ ॥

यस्य रागरूपो द्वेषरूपो मोहरूपो वा समग्रपरद्रव्येषु न हि विद्यते भावः तस्य निर्विकारचैतन्यत्वात्समसुखदुःखस्य भिक्षोः शुभमशुभञ्च कर्म नास्रवति, किन्तु संव्रियत एव । तदत्र मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो भावसंवरः । तन्निमित्तः शुभाशुभकर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यसंवर इति ॥ १४२ ॥

अन्वयार्थः—(यस्य) जिसे (सर्वद्रव्येषु) सर्व द्रव्योंके प्रति (रागः) राग, (द्वेषः) द्वेष (वा) या (मोहः) मोह (न विद्यते) नहीं है, (समसुखदुःखस्य भिक्षोः) उस समसुखदुःख भिक्षुको (-सुखदुःखके प्रति समभाववाले मुनिको) (शुभम् अशुभम् कर्म न आस्रवति) शुभ अशुभ कर्म आस्रवित नहीं होते ।

टीकाः—यह, सामान्यरूपसे संवरके स्वरूपका कथन है ।

जिसे समग्र परद्रव्योंके प्रति रागरूप, द्वेषरूप या मोहरूप भाव नहीं है, उस भिक्षुको—जो कि निर्विकारचैतन्यपनेके कारण समसुखदुःख है उसे—शुभ और अशुभ कर्मका आस्रव नहीं होता, किन्तु संवर ही होता है । इसलिये यहां (ऐसा समझना कि) मोहरागद्वेषपरिणामका निरोध सो भावसंवर है, और वह जिसका निमित्त है ऐसा जो योगद्वारा प्रविष्ट होनेवाले पुद्गलों के शुभाशुभकर्मपरिणामका निरोध, सो द्रव्यसंवर है ॥ १४२ ॥

सं०ता०—अथ सामान्येन पुण्यपापसंवरस्वरूपं कथयति:—जस्स ण विज्जदि—यस्य न विद्यते । स कः ? रागो दोसो मोहो व—जीवस्य शुद्धपरिणामात् परमधर्मलक्षणाद्विपरीतो रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा । केषु विषयेषु । सव्वदव्वेसु—शुभाशुभसर्वद्रव्येषु । णासवदि सुहं असुहं—नास्रवति शुभाशुभकर्म । कस्य ? भिक्खुस्स-तस्य रागादिरहितशुद्धोपयोगेन-तपोधनस्य । कथंभूतस्य । समसुहदुक्खस्स—समस्तशुभाशुभसंकल्परहितशुद्धात्मध्यानोत्पन्नपरमसुखामृततृप्तिरूपैकाकारसमरसीभावबलेन अनभिव्यक्तसुखदुःखरूपहर्षविषादविकारत्वात्समसुखदुःखस्येति । अत्र शुभाशुभसंवरसमर्थः शुद्धोपयोगो भावसंवरः भावसंवराधारेण नवतरकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति तात्पर्यार्थः ॥ १४२ ॥

हिन्दी ता०—उत्थानिका-आगे सामान्यसे पुण्य तथा पापके संवरका स्वरूप कहते हैं:—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जस्स) जिसके भीतर (सव्वदव्वेसु) सर्व द्रव्योंमें (रागो दोसो मोहो वा) राग, द्वेष, मोह (ण) नहीं (विज्जदि) मौजूद है उस (समसुहदुक्खस्स)

सुख न दुःखमें समान भावके धारी (भिक्खुस्स) साधुके (सुहं असुहं) शुभ या अशुभ कर्म (आसवदि) नहीं आते हैं।

विशेषार्थ—जीवके परमधर्म लक्षण स्वरूप शुद्धभावसे विपरीत राग द्वेष तथा मोह भाव हैं। जो साधु तपोधन राग द्वेष मोहसे रहित शुद्धोपयोगसे युक्त हैं वह सर्व शुभ तथा अशुभ संकल्पोंसे रहित शुद्ध आत्मध्यानसे पैदा होनेवाले सुखामृतमें तृप्तिरूप एक आकार समतारसमई भावके बलसे अपने भीतर सुख दुःख रूप हर्ष तथा विषादके विकारोंको नहीं होने देता है ऐसे सुख दुःखमें समभावके धारी साधुके शुभ अशुभ कर्मका आस्रव नहीं होता है। यहांपर शुभ अशुभ भावके रोकनेमें समर्थ शुद्धोपयोगको भावसंवर तथा भावसंवरके आधारसे नवीन कर्मोंका रुकना सो द्रव्यसंवर है। यह तात्पर्य है॥ १४२॥

विशेषेण संवरस्वरूपाख्यानमेतत्।

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स।
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स॥ १४३॥

यस्य यदा खलु पुण्यं योगे पापं च नास्ति विरतस्य।
संवरणं तस्य तदा शुभाशुभकृतस्य कर्मणः॥ १४३॥

यस्य योगिनो विरतस्य सर्वतो निवृत्तस्य योगे वाङ्मनःकायकर्मणि शुभपरिणामरूपं पुण्यमशुभपरिणामरूपं पापञ्च यदा न भवति तस्य तदा शुभाशुभभावकृतस्य द्रव्यकर्मणः संवरः स्वकारणाभावात्प्रसिद्धयति। तदत्र शुभाशुभपरिणामनिरोधो भावपुण्यपापसंवरो द्रव्यपुण्यपापसंवरस्य हेतुः प्रधानोऽवधारणीय इति॥ १४३॥

इति संवरपदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

अन्वयार्थः-(यस्य) जिस (विरतस्य) विरत (मुनि) के (योगे) योगमें (पुण्यं पापं च) पुण्य और पाप (यदा) जब (खलु) वास्तवमें (न अस्ति) नहीं होते, (तदा) तब (तस्य) उसके (शुभाशुभकृतस्य कर्मणः) शुभाशुभभावकृत कर्मका (संवरणम्) संवर होता है।

टीकाः-यह, विशेषरूपसे संवरके स्वरूपका कथन है।

जिस योगीको, विरत अर्थात् सर्वथा निवृत्त वर्तते हुए, योगमें—वचन, मन और कायसम्बन्धी क्रियामें—शभपरिणामरूप पुण्य और अशुभपरिणामरूप पाप जब नहीं होते, तब उसे शुभाशभभावकृत द्रव्यकर्मका स्वकारणके अभावके कारण, संवर होता है। इसलिये यहां (इस गाथामें) शुभाशुभ परिणामका निरोधरूप भावपुण्यपापसंवर द्रव्यपुण्यपापसंवरका प्रधान हेतु अवधारना (-समझना) चाहिये॥ १४३॥

इस प्रकार संवरपदार्थका व्याख्यान समाप्त हुआ।

सं०ता०—अथायोगिकेवलिजिनगुणस्थानापेक्षया निरवशेषेण पुण्यपापसंवरं प्रतिपादयति,—जस्स—यस्य योगिनः। कथंभूतस्य? विरदस्स—शुभाशुभसंकल्परहितस्य, णत्थि—नास्ति। जदा खलु—यदा काले खलु स्फुटं। किं नास्ति। पुण्णं पावं च—पुण्यपापद्वयं। क्व नास्ति। योगे—मनोवाक्कायकर्मणि। न केवलं पुण्यपापद्वयं नास्ति। वस्तुतस्तु योगोपि। संवरणं तस्स तदा—तस्य भगवतस्तदा संवरणं भवति। कस्य संबंधि। कम्मस्स पुण्यपापरहितानंतगुणस्वरूपपरमात्मनो विलक्षणस्य कर्मणः। पुनरपि किंविशिष्टस्य। सुहासुहकदस्स—शुभाशुभकृतस्येति। अत्र निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिर्भावसंवरस्तन्निमित्तद्रव्यकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति भावार्थः॥ १४३॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये संवरपदार्थव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण सप्तमोंतराधिकारः समाप्तः॥ अथ शुद्धात्मानुभूतिलक्षणशुद्धोपयोगसाध्ये निर्जराधिकारे 'संवर जोगेहिं जुदो' इत्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका।

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे अयोगिकेवलिजिनके गुणस्थानकी अपेक्षा पूर्ण प्रकारसे पुण्य पापका संवर होजाता है ऐसा कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जदा) जिस समय (जस्स विरदस्स) जिस साधुके (जोगे) योगोंमें (खलु) निश्चयकरके (पुण्णं च पावं) पुण्य और पाप भाव (णत्थि) नहीं होते हैं (तदा) तिस समय (तस्स) उस साधुके (सुहासुहकदस्स) शुभ या अशुभ द्वारा प्राप्त (कम्मस्स) कर्मबंधका (संवरणं) संवर होजाता है।

विशेषार्थ—जिसके शुभ और अशुभ सर्व संकल्प छूट जाते हैं उस भगवान परमात्माके वास्तवमें योगोंका ही संवर होजाता है इसलिये पुण्य और पापसे रहित अनंत गुण स्वरूप परमात्मासे विलक्षण कर्मोंका पूर्ण संवर होजाता है। यहां यह कहा है कि निर्विकार शुद्ध आत्माकी अनुभूति—भाव संवर है और द्रव्यकर्मोंके आस्रवका रुकना द्रव्यसंवर है॥ १४३॥

इस तरह नव पदार्थोंके कहनेवाले दूसरे महाअधिकारमें संवर पदार्थके व्याख्यानसे तीन गाथाएं पूर्ण हुईं। सातवां अन्तर अधिकार समाप्त हुआ।

अथ निर्जरापदार्थव्याख्यानम्

निर्जरास्वरूपाख्यानमेतत्।

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं।
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं॥ १४४॥

संवरयोगाभ्यां युक्तस्तपोभिर्यश्चेष्टते बहुविधैः।
कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स नियतम्॥ १४४॥

शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, शुद्धोपयोगो योगः। ताभ्यां युक्तस्तपोभिरनशनावमौद-

यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशादिभेदाद् बहिरङ्गैः प्रायश्चित्तविनय-वैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदादन्तरङ्गैश्च बहुविधैर्यश्चेष्टते स खलु बहूनां कर्मणां निर्जरणं करोति। तदत्र कर्मवीर्यशातनसमर्थो बहिरङ्गान्तरंगतपोभिर्वृंहितः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा, तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्‌गलानां द्रव्यनिर्जरेति ॥ १४४ ॥

अब निर्जरापदार्थका व्याख्यान है।

अन्वयार्थः-[संवरयोगाभ्याम् युक्तः] संवर और योगसे (शुद्धोपयोगसे) युक्त ऐसा (यः) जो जीव (बहुविधैः तपोभिः चेष्टते) बहुविध तपों सहित वर्तता है, (सः) वह [नियतम्] नियमसे (बहुकानाम् कर्मणाम्) अनेक कर्मोंकी [निर्जरणं करोति] निर्जरा करता है।

टीकाः—यह, निर्जराके स्वरूपका कथन है।

संवर अर्थात् शुभाशुभ परिणामका निरोध, और योग अर्थात् शुद्धोपयोग, उनसे (-संवर और योगसे) युक्त ऐसा जो (पुरुष), अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन तथा कायक्लेशादि भेदोंवाले बहिरंग तपों सहित और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग तथा ध्यान ऐसे भेदोंवाले अंतरंग तपों सहित—इस प्रकार बहुविध तपों सहित वर्तता है, वह (पुरुष) वास्तवमें अनेक कर्मोंकी निर्जरा करता है। इसलिये यहां [इस गाथामें ऐसा कहा कि], कर्मके वीर्यका (-कर्मकी शक्तिका) शातन (नष्ट) करनेमें समर्थ तथा बहिरंग अन्तरंग तपोंद्वारा वृद्धिको प्राप्त शुद्धोपयोग भावनिर्जरा है और उसके प्रभावसे नीरस हुए ऐसे समुपात्त-पहिलेके उपार्जित कर्मपुद्‌गलोंका एकदेश संक्षय सो द्रव्यनिर्जरा है ॥ १४४ ॥

सं०ता०-अथ निर्जरास्वरूपं कथयति,-संवर जोगेहिं जुदो-संवरयोगाभ्यां युक्तः निर्मलात्मानुभूतिबलेन शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, निर्विकल्पलक्षणध्यानशब्दवाच्यशुद्धोपयोगो योगस्ताभ्यां युक्तः। तवेहिं जो चेट्ठदे बहुविहेहिं-तपोभिर्यश्चेष्टते बहुविधैः अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदेन शुद्धात्मानुभूतिसहकारिकारणैर्बहिरंगषड्‌विधैस्तथैव प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्याय-व्युत्सर्गध्यानभेदेन सहजशुद्धस्वस्वरूपप्रतपनलक्षणैरभ्यंतरषड्‌विधैश्च तपोभिर्वर्तते यः। कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं-कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स पुरुषः निश्चितमिति। अत्र द्वादशविधतपसा वृद्धिं गतो वीतरागपरमानंदैकलक्षणः कर्मशक्तिनिर्मूलनसमर्थः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा। तस्य शुद्धोपयोगस्य सामर्थ्येन नीरसीभूतानां पूर्वोपार्जितकर्मपुद्‌गलानां संवरपूर्वकभावेनैकदेशसंक्षयो द्रव्यनिर्जरेति सूत्रार्थः ॥ १४४ ॥

हिन्दी ता०-उत्थानिका-आगे शुद्धात्माका अनुभव रूप शुद्धोपयोगसे साधनेयोग्य जो निर्जरा अधिकार है उसमें " संवर जोगेहिं जुदो " इत्यादि तीन गाथाओंसे समुदायपातनिका है। अब निर्जराका स्वरूप कहते हैं--

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(जो) जो साधु (संवर जोगेहिं जुदो) भावसंवर और योगाभ्यास या शुद्धोपयोग सहित है और (बहुविहेहिं तवेहिं) नानाप्रकार तपोंके द्वारा (चिट्ठदे) पुरुषार्थ करता है (सो) वह (बहुगाणं कम्माणं) बहुतसे कर्मोंकी (णिज्जरणं) निर्जरा (णियदं कुणदि) निश्चयसे कर देता है।

विशेषार्थ–निर्मल आत्माके अनुभवके बलसे शुभ तथा अशुभ भावोंका रुकना संवर है। निर्विकल्प लक्षणमई ध्यान शब्दसे कहने योग्य जो शुद्धोपयोग है सो योग है। शुद्धात्मानुभवके सहकारी कारण बाह्य छः प्रकारके तप–अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन व कायक्लेश हैं तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः तप स्वाभाविक शुद्ध अपने आत्माके स्वरूपमें तपने रूप अभ्यंतर तप हैं। जो साधु संवर और योगसे युक्त हो बारह प्रकार तपका अभ्यास करता है वह बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा अवश्य कर देता है। यहां यह भाव है कि बारह प्रकार तपके द्वारा वृद्धिको प्राप्त जो वीतराग परमानन्दमई एक शुद्धोपयोग सो भाव निर्जरा है। यही भाव द्रव्यकर्मोंको जड़मूलसे उखाडनेको समर्थ है। इस शुद्धोपयोगके बलसे पूर्वमें बांधे हुए कर्म पुद्गलोंका रस रहित होकर संवर पूर्वक एक देश झड जाना सो द्रव्यनिर्जरा है ॥ १४४ ॥

मुख्यनिर्जराकारणोपन्यासोऽयम्।

जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं।
मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं ॥ १४५ ॥

यः संवरेण युक्तः आत्मार्थप्रसाधको ह्यात्मानम्।
ज्ञात्वा ध्यायति नियतं ज्ञानं स संधुनोति कर्मरजः ॥ १४५ ॥

यो हि संवरेण शुभाशुभपरिणामपरमनिरोधेन युक्तः परिज्ञातवस्तुस्वरूपः परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्तबुद्धिः केवलं स्वप्रयोजनसाधनोद्यतमनाः आत्मानं स्वोपलम्भेनोपलभ्य गुणगुणिनोर्वस्तुत्वेनाभेदात्तदेव ज्ञानं स्वं स्वेनाविचलितमनास्संचेतयते स खलु नितान्तनिस्स्नेहः प्रहीणस्नेहाभ्यङ्गपरिष्वङ्गशुद्धस्फटिकस्तम्भवत् पूर्वोपात्तं कर्मरजः संधुनोति। एतेन निर्जरामुख्यत्वे हेतुत्वं ध्यानस्य द्योतितमिति ॥ १४५ ॥

अन्वयार्थः–(संवरेण युक्तः) संवरसे युक्त ऐसा (यः) जो जीव, (आत्मार्थप्रसाधकः हि) वास्तवमें आत्मार्थका प्रसाधक (स्वप्रयोजनका प्रकृष्ट साधक) वर्तता हुआ, [आत्मानम् ज्ञात्वा] आत्माको जानकर (-अनुभव करके) [ज्ञानं नियतं ध्यायति] ज्ञानको निश्चलरूपसे ध्याता है, (सः) वह (कर्मरजः) कर्मरजको (संधुनोति) खिरा देता है।

टीकाः–यह, निर्जराके मुख्य कारणका कथन है।

संवरसे अर्थात् शुभाशुभ परिणामके परम निरोधसे युक्त ऐसा जो जीव, वस्तुस्वरूपको (हेय उपादेय तत्त्वको) बराबर जानता हुआ परप्रयोजनसे जिसकी बुद्धि व्यावृत्त हुई और मात्र स्वप्रयोजन साधनेमें जिसका मन उद्यत हुआ है ऐसा वर्तता हुआ, आत्माको स्वोपलब्धिसे उपलब्ध करके (-अपने स्वानुभव द्वारा अनुभव करके), गुण-गुणीका वस्तुरूपसे अभेद होनेके कारण वही ज्ञानको-स्वको-स्व द्वारा अविचल परिणतिवाला होकर संचेतता है, वह जीव वास्तवमें अत्यन्त निःस्नेह वर्तता हुआ-जिसको स्नेहके लेपका संग प्रक्षीण हुआ है ऐसे शुद्ध स्फटिकके स्तम्भकी भांति-पूर्वोपार्जित कर्मरजको खिरा देता है।

इससे [-इस गाथासे] ऐसा दर्शाया कि—निर्जराका मुख्य हेतु ध्यान है॥ १४५॥

सं०ता०-अथात्मध्यानं मुख्यवृत्त्या निर्जराकारणमिति प्रकटयति,-जो संवरेण जुत्तो-यः संवरेण युक्तः यः कर्ता शुभाशुभरागाद्यास्रवनिरोधलक्षणसंवरेण युक्तः। अप्पट्ठपसाहगो हि-आत्मार्थप्रसाधकः हि स्फुटं हेयोपादेयतत्त्वं विज्ञाय परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्य शुद्धात्मानुभूतिलक्षणकेवलस्वकार्यप्रसाधकः, अप्पाणं-सर्वात्मप्रदेशेषु निर्विकारनित्यानन्दैकाकारपरिणतमात्मानं, मुणिदूण-मत्वा ज्ञात्वा रागादिविभावरहित-स्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा, झादि-निश्चलात्मोपलब्धिलक्षणनिर्विकल्पध्यानेन ध्यायति। णियदं-निश्चितं घोरो-पसर्गपरीषहप्रस्तावे निश्चलं यथा भवति। कथंभूतमात्मानं ? णाणं-निश्चयेन गुणगुणिनोरभेदाद्विशिष्टभे-दज्ञानपरिणतत्वादात्मापि ज्ञानं। सो-सः पूर्वोक्तलक्षणः परमात्मध्यानं ध्याता। किं करोति ? संधुणोदि कम्मरयं-संधुनोति कर्मरजो निर्जरयतीति। अत्र वस्तुवृत्त्या ध्यानं निर्जराकारणं व्याख्यातमिति सूत्रतात्पर्यं॥ १४५॥

हिन्दी ता०-उत्थानिका-आगे प्रगट करते हैं कि—आत्मध्यान ही मुख्यतासे कर्मोंकी निर्जराका कारण है-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जो) जो (संवरेण जुत्तो) संवरसे युक्त होकर (अप्पट्ठपसाधगो) आत्माके स्वभावका साधनेवाला (हि) निश्चयसे (अप्पाणं) आत्माको (मुणिऊण) ज्ञानकरके (णियदं) निश्चल होकर [णाणं] आत्माके ज्ञानको [झादि] ध्याता है (सो) वह [कम्मरयं] कर्मोंकी रजको [संधुणोदि] दूर करता है।

विशेषार्थ-जो कोई शुभ व अशुभ रागादिरूप आस्रव भावोंको रोकता हुआ संवर भावसे युक्त है तथा त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्य तत्त्वको समझकर अन्य प्रयोजनोंसे अपनेको हटा-कर शुद्धात्मानुभवरूप केवल अपने कार्यका साधनेवाला है व जो सर्व आत्माके प्रदेशोंमें निर्विकार नित्य, आनन्दमई एक आकारमें परिणमन करते हुए आत्माको रागादि विभाव भावोंसे रहित स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा जानकर निश्चल आत्माकी प्राप्तिरूप निर्विकल्प ध्यानसे निश्चयसे गुण गुणीके अभेदसे विशेष भेदज्ञानमें परिणमनस्वरूप ज्ञानमई आत्माको ध्याता है सो पर-मात्मध्यानका ध्यानेवाला कर्मरूप रजकी निर्जरा करता है। वास्तवमें ध्यान ही निर्जराका कारण है ऐसा इस सूत्रमें व्याख्यान किया गया है यह तात्पर्य है॥ १४५॥

ध्यानस्वरूपाभिधानमेतत् ।

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो ।
तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायए अगणी ॥ १४६ ॥

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा योगपरिकर्म ।
तस्य शुभाशुभदहनो ध्यानमयो जायते अग्निः ॥ १४६ ॥

शुद्धस्वरूपेऽविचलितचैतन्यवृत्तिर्हि ध्यानम् । अथास्यात्मलाभविधिरभिधीयते । यदा खलु योगी दर्शनचारित्रमोहनीयविपाकं पुद्गलकर्मत्वात् कर्मसु संहृत्य, तदनुवृत्तेः व्यावृत्त्योपयोगममुह्यन्तमरज्यन्तमद्विषन्तं चात्यन्तशुद्ध एवात्मनि निष्कम्पं निवेशयति, तदास्य निष्क्रियचैतन्यरूपस्वरूपविश्रान्तस्य वाङ्मनःकायानभावयतः स्वकर्मस्वव्यापारयतः सकलशुभाशुभकर्मेन्धनदहनसमर्थत्वात् अग्निकल्पं परमपुरुषार्थसिद्ध्युपायभूतं ध्यानं जायते इति । तथा चोक्तम्-"अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं । लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति' । "अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा । तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ ॥ १४६ ॥

इति निर्जरापदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

अन्वयार्थः-(यस्य) जिसे (मोहः रागः द्वेषः) मोह, राग और द्वेष (न विद्यते) नहीं है (वा) तथा (योगपरिकर्म) योगोंका सेवन नहीं है (अर्थात् मन-वचन-कायके प्रति उपेक्षा है), (तस्य) उसके (शुभाशुभदहनः) शुभाशुभको जलानेवाली (ध्यानमयः अग्निः) ध्यानमय अग्नि (जायते) प्रगट होती है।

टीकाः—यह, ध्यानके स्वरूपका कथन है ।

शुद्ध स्वरूपमें अविचलित चैतन्यपरिणति सो यथार्थ ध्यान है । इस ध्यान के प्रगट होनेकी विधि अब कही जाती है:-जब वास्तवमें योगी, दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयका विपाक पुद्गलकर्म होनेसे उस विपाकको (अपनेसे भिन्न ऐसे अचेतन) कर्मोंमें संकुचित करे, तदनुसार परिणतिसे उपयोगको व्यावृत्त करके (-उस विपाकके अनुरूप परिणमनमेंसे उपयोगका निवर्तन करके), मोही, रागी, और द्वेषी न होनेवाले ऐसे उस उपयोगको अत्यन्त शुद्ध आत्मामें ही निष्कंपरूपसे लीन करता है, तब उस योगीको—जो कि अपने निष्क्रिय चैतन्यरूप स्वरूपमें विश्रांत है, वचन-मन-कायको नही भाता (अनुभव करता) और स्वकर्मोंमें व्यापार नहीं कराता उसे—सकल शुभाशुभ कर्मरूप ईंधनको जलानेमें समर्थ होनेसे अग्निसमान ऐसा, परमपुरुषार्थ की सिद्धिका उपायभूत ध्यान प्रगट होता है ।

फिर कहा है किः—

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं । लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥
अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा । तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ ॥

इन दो उद्धृत गाथाओंमेंसे पहली गाथा श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत, मोक्षप्राभृतकी है।

अर्थः—इस समय भी रत्नत्रय से जीव आत्माका ध्यान करके इन्द्रपना तथा लौकांतिक-देवपना प्राप्त करते हैं और वहांसे चयकर (मनुष्यभव प्राप्त करके) निर्वाणको प्राप्त करते हैं।

श्रुतियोंका अंत नही है (-शास्त्रोंका पार नही है), काल अल्प है और हम दुर्मेध (अल्पबुद्धि) हैं, इसलिये वही मात्र सीखनेयोग्य है कि जो जरा-मरणका क्षय करे ॥ १४६ ॥

इस प्रकार निर्जरा पदार्थका व्याख्यान समाप्त हुआ।

सं०ता०-अथ पूर्वं यन्निर्जराकारणं भणितं ध्यानं तस्योत्पत्तिसामग्रीं लक्षणं च प्रतिपादयति, जस्स ण विज्जदि—यस्य न विद्यते। स कः। रागो दोसो मोहो व—दर्शनचारित्रमोहोदयजनितदेहादिममत्वरूपविकल्पजालविरहितनिर्मोहशुद्धात्मसंवित्त्यादिगुणसहितपरमात्मविलक्षणो रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा। पुनरपि किं नास्ति यस्य योगिनः। जोगपरिणामो—शुभाशुभकर्मकांडरहितनिःक्रियशुद्धचैतन्यपरिणतिरूपज्ञानकांडसहितपरमात्मपदार्थस्वभावाद्विपरीतो मनोवचनकायक्रियारूपव्यापारः। इयं ध्यानसामग्री कथिता। अथ ध्यानलक्षणं कथ्यते। तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायदे अगणी—तस्य निर्विकारनिःक्रियचैतन्यचमत्कारपरिणतस्य शुभाशुभकर्मेन्धनदहनसामर्थ्यलक्षणो ध्यानमयोऽग्निर्जायते इति। तथाहि। यथा स्तोकोप्यग्निः प्रचुरतृणकाष्ठराशिं स्तोककालेनैव दहति तथा मिथ्यात्वकषायादिविभावपरित्यागलक्षणेन महावातेन प्रज्वलितस्तथापूर्वाद्भुतपरमाह्लादैकसुखलक्षणेन घृतेन सिंचितो निश्चलात्मसंवित्तिलक्षणो ध्यानाग्निः मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं कर्मेंधनराशिं क्षणमात्रेण दहतीति। अत्राह शिष्यः। अद्य काले ध्यानं नास्ति। कस्मादिति चेत् ? दशचतुर्दशपूर्वश्रुताधारपुरुषाभावात्प्रथमसंहननाभावाच्च। परिहारमाह—अद्य काले शुक्लध्यानं नास्ति। तथा चोक्तं-श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवैरेव मोक्षप्राभृते—

"भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स। तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी'

"अज्जवि तियरणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहि इन्दत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति"।

अत्र युक्तिमाह। यद्यद्यकाले यथाख्यातसंज्ञं निश्चयचारित्रं नास्ति तर्हि सरागचारित्रसंज्ञमपहृतसंयममाचरंतु तपस्विनः। तथा चोक्तं तत्त्वानुशासनध्यानग्रंथे—

"चरितारो न संत्यद्य यथाख्यातस्य संप्रति। तत्किमन्ये यथाशक्तिमाचरंतु तपोधनाः"।

यच्चोक्तं सकलश्रुतधारिणां ध्यानं भवति तदुत्सर्गवचनं, अपवादव्याख्याने तु पंचसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकश्रुतिपरिज्ञानमात्रेणैव केवलज्ञानं जायते यद्येवं न भवति तर्हि "तुसमासं घोसंतो सिवभूदी केवली जादो" इत्यादि वचनं कथं घटते। तथा चोक्तं चारित्रसारादिग्रंथे पुलाकादिपंचनिर्ग्रंथव्याख्यानकाले। मुहूर्तादूर्ध्वं ये केवलज्ञानमुत्पादयंति ते निर्ग्रंथा भण्यंते क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनस्तेषामुत्कृष्टेन श्रुतं चतुर्दशपूर्वाणि जघन्येन पुनः पंचसमितित्रिगुप्तिसंज्ञा अष्टौ प्रवचनमातरः। यदप्युक्तं वज्रवृषभनाराचसंज्ञप्रथमसंहननेन ध्यानं भवति तदप्युत्सर्गवचनं अपवादव्याख्यानं पुनरपूर्वादिगुणस्थानवर्तिनां उपश-

मत्तपकश्रेण्योर्यच्छुक्लध्यानं तदपेक्षया स नियमः, अपूर्वादधस्तनगुणस्थानेषु धर्मध्याने निषेधकं न भवति। तदप्युक्तं तत्रैव तत्त्वानुशासने—

"यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः। श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्तान्निषेधकं॥"

एवं स्तोकश्रुतेनापि ध्यानं भवतीति ज्ञात्वा किमपि शुद्धात्मप्रतिपादकं संवरनिर्जराकरणं जरमरणहरं सारोपदेशं गृहीत्वा ध्यानं कर्तव्यमिति भावार्थः। उक्तं च

"अंतो णत्थि सुदीणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा।
तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ॥ १४६॥

एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये निर्जराप्रतिपादकमुख्यतया गाथात्रयेणाष्टमोंतराधिकारः समाप्तः॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे पहली गाथामें ध्यानको निर्जराका कारण बताया है उस ध्यानकी उत्पत्तिकी मुख्य सामग्री बताते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—[जस्स] जिस महात्माके भीतर (रागो) राग, (दोसो) द्वेष, (मोहो) मोह, (वा) तथा [जोगपरिकम्मो] मन, वचन, काय योगोंका वर्तन (ण) नहीं (विज्जदि) है। [तस्स] उसके अन्दर (सुहासुहडहणो) शुभ या अशुभ भावोंको जलानेवाली (झाणमओ) ध्यानमई (अगणी) अग्नि (जायए) पैदा होती है।

विशेषार्थ—दर्शनमोह और चारित्रमोह कर्मके उदयसे पैदा होनेवाला शरीर आदि पदार्थोंमें ममतारूप विकल्प जाल उससे रहित तथा मोहरहित शुद्ध आत्माके अनुभव आदि गुणोंसे पूर्ण जो उत्कृष्ट आत्मतत्त्व है उससे विलक्षण राग, द्वेष तथा मोहका परिणाम है। शुभ तथा अशुभ कर्मकांडसे रहित व क्रियारहित शुद्ध चैतन्यकी परिणतिरूप ज्ञानकांडसे पूर्ण परमात्म पदार्थसे विपरीत मन, वचन, कायके क्रियारूप व्यापारको योग परिणाम कहते हैं। जिस योगीके न ये रागद्वेष मोह हैं न ये योगोंके भाव हैं वही ध्याता है। उसके लिये यही ध्यानकी मुख्य सामग्री कही गई है। अब ध्यानका लक्षण कहते हैं। ध्यानकी वही अग्नि कहलाती है जो शुभ तथा अशुभ कर्मरूपी ईंधनको जलानेके लिये बलवती है जिसके यह ध्यानकी अग्नि पैदा होती है उस योगीकी परिणति विकाररहित व क्रियारहित चैतन्यके चमत्कारमें रमण करनेवाली होती है जैसे थोडीसी भी अग्नि बहुत अधिक तृण व काठके ढेरका थोडे ही कालमें जला देती है तैसे मिथ्यादर्शन व कषाय आदि विभावोंकी त्यागरूप महावायुसे बढती हुई तथा अपूर्व व अद्भुत परमानंदमई सुखरूपी घृतसे सींची हुई निश्चल आत्माकी अनुभूतिरूप ध्यानकी अग्नि मूल व उत्तर प्रकृतिके भेदोंसे अनेकरूप कर्मरूपी ईंधनके ढेरको क्षणमात्रमें जला देती है। यहां शिष्यने कहा—इस पंचमकालमें ध्यान नहीं हो सक्ता है क्योंकि न तो इस समय दस पूर्व व चौदह पूर्वके

धारी श्रुतज्ञानी पुरुष हैं, न प्रथम संहनन ही है। इस शंकाका समाधान आचार्य करते हैं-इस पंचमकालमें शुक्लध्यान नहीं है जैसा श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवने स्वयं मोक्षपाहुडमें कहा है:-

इस भरतक्षेत्रके पंचम दुःखमकालमें सम्यग्ज्ञानीके धर्मध्यान होसक्ता है सो आत्मस्वभावके ज्ञाताके होता है। जो ऐसा नहीं मानता है वह अज्ञानी है। अब भी मन, वचन, कायको शुद्ध रखनेवाले आत्माका ध्यान करके इंद्रपना तथा लौकान्तिक देवपना पासक्ते हैं। वहांसे आकर मोक्ष जा सक्ते हैं।

इसके लिये भी युक्ति कहते हैं। यदि इस कालमें यथाख्यात नामका निश्चयचारित्र नहीं होसक्ता है तो सरागचारित्र नामके अपहृत संयमको तपस्वीजन पालें। जैसा कि तत्त्वानुशासनमें कहा है-

यदि इस कालमें यथाख्यातचारित्रके धारी नहीं हैं तो क्या अन्य तपस्वी यथाशक्ति चारित्र न पालें?

यह जो कहा है कि सर्व श्रुतज्ञानके धारियोंके ध्यान होता है सो उत्सर्ग अर्थात् उत्कृष्ट वचन है-अपवाद रूप या मध्यम व्याख्यानमें कहा है कि पांच समिति और तीन गुप्तिके बतानेवाले श्रुत मात्रके ज्ञानसे ही केवलज्ञान होजाता है। यदि ऐसा नहीं होता तो यह बात कैसे सिद्ध होती है जैसा कि कहा है " तुस मासं घोसंतो सिवभूदो केवली जादो " अर्थात् जैसे तुष [छिलका] और माष [उरद] या दाल भिन्न हैं ऐसे ही आत्मा अनात्मासे भिन्न है ऐसा घोखते हुए शिवभूति मुनि केवलज्ञानी होगए।

ऐसा ही चारित्रसारादि ग्रंथोंमें पुलाक आदि पांच निर्ग्रंथ मुनियोंके व्याख्यानमें कहा गया है। जो मुहूर्त पीछे केवलज्ञान उत्पन्न कर सक्ते हैं उनको निर्ग्रंथ कहते हैं वे क्षीणकषाय नाम बारहवें गुणस्थानवर्ती होते हैं। उनको उत्कृष्ट श्रुत चौदहपूर्वका ज्ञान होता है व जघन्य पांच समिति व तीन गुप्तिका ज्ञान अर्थात् आठ प्रवचन मातृकाका ज्ञान होता है और यह जो कहा है कि वज्रवृषभ नाराच नामके पहिले संहननसे ध्यान होता है यह भी उत्सर्ग वचन है। अपवाद व्याख्यान यह है कि अपूर्व आदि गुणस्थानवर्ती उपशम तथा क्षपक श्रेणीमें शुक्लध्यान होता है उसकी अपेक्षा उत्तम संहननका नियम है। अपूर्व गुणस्थानसे नीचे अन्य संहननवालोंके धर्मध्यान होनेका निषेध नहीं है। ऐसा ही तत्त्वानुशासनमें कहा है-

जो यहां आगममें ध्यान वज्रकायवालेके कहा है वह श्रेणीके अपेक्षा शुक्लध्यानको लेकर कहा है, श्रेणीके नीचे ध्यानका निषेध नहीं है इस तरह थोडे श्रुतके ज्ञानसे भी ध्यान होता है ऐसा जानकर शुद्ध आत्माको बतानेवाले संवर तथा निर्जराके कारण जरा व मरणके हरनेवाले कुछ भी सार उपदेशको ग्रहण करके ध्यान करना योग्य है। यह भाव है। कहा भी है-

शास्त्रोंका पार नहीं है, आयुका काल थोडा है, हम लोगोंकी बुद्धि अल्प है इसलिये उसे ही सीखना चाहिये जिससे जरा व मरणका नाश होजावे ॥ १४६ ॥

इस तरह नव पदार्थके कहनेवाले दूसरे महा अधिकारमें निर्जराके कहनेकी मुख्यतासे तीनगाथाओंके द्वारा आठवां अंतर अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ बन्ध—पदार्थव्याख्यानम्

बन्धस्वरूपाख्यानमेतत्।

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेण हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण ॥ १४७ ॥

यं शुभमशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा।
स तेन भवति बद्धः पुद्गलकर्मणा विविधेन ॥ १४७ ॥

यदि खल्वयमात्मा परोपाश्रयेणानादिरक्तः कर्मोदयप्रभावत्वादुदीर्णं शुभमशुभं वा भावं करोति, तदा स आत्मा तेन निमित्तभूतेन भावेन पुद्गलकर्मणा विविधेन बद्धो भवति। तदत्र मोहरागद्वेषस्निग्धः शुभोऽशुभो वा परिणामो जीवस्य भावबन्धः, तन्निमित्तेन शुभाशुभकर्मत्वपरिणतानां जीवेन सहान्योन्यमूर्च्छनं पुद्गलानां द्रव्यबन्ध इति ॥ १४७ ॥

अब बंधपदार्थका व्याख्यान है।

अन्वयार्थः-(यदि) यदि (आत्मा) आत्मा (रक्तः) रक्त (विकारी) वर्तता हुआ (उदीर्णं) उदित (यत् शुभम् अशुभम् भावम्) शुभ या अशुभ भावको (करोति) करता है, तो (सः) वह आत्मा (तेन) उस भाव द्वारा (विविधेन पुद्गलकर्मणा) विविध पुद्गलकर्मोंसे (बद्धः भवति) बद्ध होता है।

टीकाः—यह, बंधके स्वरूपका कथन है।

यदि वास्तवमें यह आत्मा पर के आश्रय द्वारा अनादि कालसे रक्त (विकारी) रहकर कर्मोदय के प्रभाव से उदित [-प्रगट होनेवाले] शुभ या अशुभ भावको करता है, तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा विविध पुद्गलकर्मोंसे बद्ध होता है। इसलिये यहां (ऐसा कहा है कि), मोह राग द्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीवके शुभ या अशुभ परिणाम वह भावबंध है और उनके निमित्त से शुभाशुभ कर्मरूप परिणत पुद्गलोंका जीवके साथ अन्योन्य अवगाहनरूप द्रव्यबंध है ॥ १४७ ॥

सं०ता०-अथ निर्विकारपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयमोक्षमार्गाद्विलक्षणे बंधाधिकारे "जं सुह" मित्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका।

अथ बंधस्वरूपं कथयति,-जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा—यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा। यद्ययमात्मा निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावोपि व्यवहारेणानादिबंधनोपाधिव-

शाद्रक्तः सन् निर्मलज्ञानानंदादिगुणास्पदशुद्धात्मस्वरूपपरिणतेः पृथग्भूतमुदयागतं शुभमशुभं वा स्वसंवित्तेश्च्युतो भूत्वा भावं परिणामं करोति । सो तेण हवदि बंधो—तदा स आत्मा तेन रागपरिणामेन कर्तृभूतेन बंधो भवति । केन करणभूतेन । पोग्गलकम्मेण विविहेण—कर्मवर्गणारूपपुद्गलकर्मणा विविधेनेति । अत्र शुद्धात्मपरिणतेर्विपरीतः शुभाशुभपरिणामो भावबंधः तन्निमित्तेन तैलम्रक्षितानां मलबंध इव जीवेन सह कर्मपुद्गलानां संश्लेषो द्रव्यबंध इति सूत्राभिप्रायः ॥ १४७ ॥

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे निर्विकार परमात्माके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान तथा चारित्ररूप निश्चय मोक्षमार्गसे विलक्षण बंध पदार्थके अधिकारमें " जं सुहं " इत्यादि तीन गाथाओंके द्वारा समुदायपातनिका है—प्रथम ही बंधका स्वरूप कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जदि) जब (रत्तो) यह कर्मबंध सहित रागी (अप्पा) आत्मा (उदिण्णं) कर्मोंके उदयसे प्राप्त (जं) जिस (सुहम्) शुभ (असुहम्) अशुभ (भावं) भावको (करेदि) करता है (स) वही आत्मा (तेण) उस भावके निमित्तसे (विविहेण) नाना प्रकार (पोग्गलकम्मेण) पुद्गल कर्मोंसे (बंधो हवदि) बंध रूप होजाता है ।

विशेषार्थ—यह आत्मा यद्यपि निश्चयनयसे शुद्ध बुद्ध एक स्वभावका धारी है तथापि व्यवहारनयसे अनादि कर्मबंधनकी उपाधिके वशसे रागी होता हुआ निर्मल ज्ञान तथा आनंद आदि गुणोंका स्थान रूप जो शुद्ध आत्मा उसके स्वरूपमें परिणमन करनेसे भिन्न जो उदयमें प्राप्त शुभ या अशुभ भाव है उसको, अपनी आत्मानुभूतिसे गिरा हुआ करता है तब वही आत्मा उस रागादि परिणामके द्वारा नानाप्रकार कर्मवर्गणा योग्य पुद्गलकर्मोंसे बंध जाता है । यहां यह कहा है कि शुद्धात्माकी परिणतिसे विपरीत जो शुभ तथा अशुभ भाव है सो भावबंध है उसके निमित्तसे जैसे तैलसे लिप्त पुरुषोंके मलका बंध होता है वैसे इस अशुद्ध रागी जीवके साथ कर्मपुद्गलोंका सम्बन्ध हो जाता है, सो द्रव्यबन्ध है । यह सूत्रका अभिप्राय है ॥ १४७ ॥

बहिरङ्गान्तरङ्गबन्धकारणाख्यानमेतत् ।

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो ।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥ १४८ ॥

योगनिमित्तं ग्रहणं योगो मनोवचनकायसंभूतः ।
भावनिमित्तो बन्धो भावो रतिरागद्वेषमोहयुतः ॥ १४८ ॥

ग्रहणं हि कर्मपुद्गलानां जीवप्रदेशवर्तिकर्मस्कन्धानुप्रवेशः । तत् खलु योगनिमित्तम् । योगो वाङ्मनःकायकर्मवर्गणालम्बन आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः । बन्धस्तु कर्मपुद्गलानां विशिष्टशक्तिपरिणामेनावस्थानम् । स पुनर्जीवभावनिमित्तः । जीवभावः पुना रतिरागद्वेषमोहयुतः, मोहनीयविपाकसंपादितविकार इत्यर्थः । तदत्र पुद्गलानां ग्रहणहेतुत्वाद् बहिरङ्गकारणं योगः,

विशिष्टशक्तिस्थितिहेतुत्वादन्तरङ्गकारणं जीवभाव एवेति ॥ १४८ ॥

अन्वयार्थः-(योगनिमित्तं ग्रहणम्) ग्रहणका (-कर्मग्रहणका) निमित्त योग है. (योगः मनोवचनकायसंभूतः) योग मनवचनकायजनित (आत्मप्रदेशपरिस्पंदरूप) है। (भावनिमित्तः बंधः) बंधका निमित्त भाव है. (भावः रतिरागद्वेषमोहयुतः) भाव रतिरागद्वेषमोहसे युक्त (आत्मपरिणाम) है।

टीकाः-यह, बंधके बहिरंग कारण और अंतरंग कारणका कथन है।

ग्रहण अर्थात् कर्मपुद्गलोंका जीवप्रदेशवर्ती (-जीवके प्रदेशोंके साथ एक क्षेत्रमें स्थित) कर्मस्कन्धोंमें प्रवेश, उसका निमित्त योग है। योग अर्थात् वचनवर्गणा, मनोवर्गणा, कायवर्गणा और कर्मवर्गणाका जिसमें आलम्बन हो ऐसा आत्मप्रदेशोंका परिस्पंदरूप है।

बंध अर्थात् कर्मपुद्गलोंका विशिष्ट शक्तिरूप परिणाम सहित स्थित रहना, उसका निमित्त जीवभाव है। जीवभाव रति राग द्वेष मोहयुक्त (परिणाम) है अर्थात् मोहनीयके विपाकसे उत्पन्न होनेवाला विकार है।

इसलिये यहां (बंधमें), बहिरंग कारण (-निमित्त) योग है क्योंकि वह पुद्गलोंके ग्रहणका हेतु है, और अंतरंग कारण (-निमित्त) जीवभाव ही है क्योंकि वह (कर्मपुद्गलोंकी) विशिष्ट शक्ति तथा स्थितिका हेतु है ॥ १४८ ॥

सं०ता०-अथ बहिरंगांतरंगबंधकारणमुपदिशति,—योगनिमित्तेन ग्रहणं कर्मपुद्गलादानं भवति। योग इति कोऽर्थः। जोगो मणवयणकायसंभूदो—योगो मनोवचनकायसंभूतः निष्क्रियनिर्विकारचिज्ज्योतिपरिणामाद्भिन्नो मनोवचनकायवर्गणालंबनरूपो व्यापारः आत्मप्रदेशपरिस्पंदलक्षणो वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितः कर्मादानहेतुभूतो योगः। भावणिमित्तो बंधो-भावनिमित्तो भवति। स कः। स्थित्यनुभागबंधः। भावः कथ्यते। भावो रदिरागदोसमोहजुदो—रागादिदोषरहितचैतन्यप्रकाशपरिणतेः पृथग्भूतो मिथ्यात्वाद्दिकषायादिदर्शनचारित्रमोहनीयत्रीणि द्वादशभेदात् भावो रतिरागद्वेषमोहयुक्तः। अत्र रदिशब्देन हास्यादिनोकषायान्तर्भूता रतिर्ग्राह्या, रागशब्देन तु मायालोभरूपो रागपरिणाम इति, द्वेषशब्देन तु क्रोधमानारतिशोकभयजुगुप्सारूपो द्वेषपरिणामो षट्प्रकारो भवति. मोहशब्देन दर्शनमोहो गृह्यते इति। अत्र यतः कारणात्कर्मादानरूपेण प्रकृतिप्रदेशबंधहेतुस्ततः कारणाद्बहिरंगनिमित्तं योगः चिरकालस्थायित्वेन स्थित्यनुभागबंधहेतुत्वादभ्यंतरकारणं कषाया इति तात्पर्यं ॥ १४८ ॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे बहिरंग व अंतरंग बन्धके कारणका उपदेश करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जोगणिमित्तं) योगके निमित्तसे कर्म—पुद्गलोंका ग्रहण होता है (जोगो) योग (मणवयणकायसंभूदो) मन, वचन कायकी क्रियासे होता है। (बंधो) उनका बंध (भावणिमित्ता) भावोंके निमित्तसे होता है। (भावो) वह भाव (रदिरागदोसमोहजुदो) रति, राग, द्वेष व मोहसहित मलीन होना है।

विशेषार्थ—क्रियारहित निर्विकार चैतन्य ज्योतिरूप भावसे भिन्न मन, वचन, कायकी

वर्गणाके आलम्बनसे व्यापाररूप हुआ आत्मप्रदेशोंका हलनचलन रूप लक्षणधारी योग है जो वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमसे कर्मोंको ग्रहण करनेका हेतु होता है। रागादि दोषोंसे रहित चैतन्यके प्रकाशकी परिणतिसे भिन्न जो दर्शनमोह और चारित्रमोहसे उत्पन्न हुआ भाव सो रति राग द्वेष मोह युक्त भाव है यहां रति शब्दसे रतिके अविनाभावी हास्य, व स्त्री, पुं, नपुंसक वेदरूप नोकषायको लेना व राग शब्दसे माया व लोभरूप राग परिणामको लेना, द्वेष शब्दसे क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा रूप ऐसे छः प्रकार द्वेषभावको लेना तथा मोह शब्दसे दर्शनमोह वा मिथ्यादर्शन भावको लेना योग्य है। इन भावोंसे स्थिति तथा अनुभाग बंध होते हैं। यहां बंधका बाहरी कारण योग है क्योंकि इसीके कारणसे कर्मोंका ग्रहण होकर प्रकृति तथा प्रदेश बंध होते हैं। तथा कषायभाव, अंतरंग कारण है क्योंकि इसी कषायभावसे कर्मोंमें स्थिति तथा अनुभाग पड़ते हैं जिससे बहुत कालतक कर्मपुद्गल आत्माके साथ ठहर जाते हैं १४८

मिथ्यात्वादिद्रव्यपर्यायाणामपि बहिरङ्गकारणद्योतनमेतत्।

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति॥ १४६॥

हेतुश्चतुर्विकल्पोऽष्टविकल्पस्य कारणं भणितम्।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावे न बध्यन्ते॥ १४६॥

तन्त्रान्तरे किलाष्टविकल्पकर्मकारणत्वे बन्धहेतुर्द्रव्यहेतुरूपश्चतुर्विकल्पः प्रोक्तः मिथ्यात्वासंयमकषाययोगा इति। तेषामपि जीवभावभूता रागादयो बन्धहेतुत्वस्य हेतवः, यतो रागादिभावानामभावे द्रव्यमिथ्यात्वासंयमकषाययोगसद्भावेऽपि जीवा न बध्यन्ते। ततो रागादीनामन्तरंगत्वान्निश्चयेन बन्धहेतुत्वमवसेयमिति॥ १४६॥

इति बन्धपदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

अन्वयार्थः-(चतुर्विकल्पः हेतुः) (द्रव्यमिथ्यात्वादि) चार प्रकारके हेतु (अष्टविकल्पस्य कारणम्) आठ प्रकारके कर्मोंके कारण (भणितम्) कहे गये हैं, [तेषाम् अपि च] उनके भी (रागादयः) (जीवके) रागादिभाव कारण हैं, (तेषाम् अभावे) रागादिभावोंके अभावमें (न बध्यन्ते) जीव नहीं बंधते।

टीकाः—यह, मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायोंको (-द्रव्यमिथ्यात्वादि पुद्गलपर्यायोंको) भी (बंधके) बहिरंग-कारणपनेका प्रकाशन है।

ग्रन्थान्तरमें (अन्य शास्त्रमें) मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रकारके द्रव्य-हेतुओंको (द्रव्यप्रत्ययोंको) आठ प्रकारके कर्मोंके कारणरूपसे बंधहेतु कहे हैं। उनके भी बंधहेतुपनेके हेतु जीवभावभूत रागादिक हैं क्योंकि रागादिभावोंका अभाव होनेसे द्रव्यमिथ्यात्व, द्रव्य-असंयम, द्रव्यकषाय

और द्रव्ययोगके सद्भावमें भी जीव बंधते नहीं हैं, इसलिये रागादिभावोंको अंतरंग बंधहेतुपना होनेके कारण निश्चयसे बंधहेतुपना है ऐसा निर्णय करना ॥ १४६ ॥

इस प्रकार बंधपदार्थका व्याख्यान समाप्त हुआ।

सं०ता०—अथ न केवलं योगो बंधस्य बहिरंगनिमित्तं भवंति मिथ्यात्वादि द्रव्यत्वादि द्रव्यप्रत्यया अपि रागादिभावप्रत्ययापेक्षया बहिरंगनिमित्तमिति समर्थयति,—

हेदू हि-हेतुः कारणं हि स्फुटं । कतिसंख्योपेतः । चदुवियप्पो—उदयागतमिथ्यात्वाविरतिकषाययोगद्रव्यप्रत्ययरूपेण चतुर्विकल्पो भवति । कारणं भणियं-स च द्रव्यप्रत्ययरूपश्चतुर्विकल्पो हेतुः कारणं भणितः । कस्य । अट्ठवियप्पस्स-रागाद्युपाधिरहितसम्यक्त्वाद्यष्टगुणसहितपरमात्मस्वभावप्रच्छादकस्य नवतराष्टविधद्रव्यकर्मणः । तेसिं पि य रागादी-तेषामपि रागादयः तेषां पूर्वोक्तद्रव्यप्रत्ययानां रागादिविकल्परहितशुद्धात्मद्रव्यपरिणतेर्भिन्ना जीवगतरागादयः कारणा भवंति । कस्मादिति चेत् ? तेसिमभावे ण वज्झंते-यतः कारणात्तेषां जीवगतरागादिभावप्रत्ययानामभावे द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेष्वपि सर्वेष्टानिष्टविषयममत्वाभावपरिणता जीवा न बध्यंत इति । तथाहि-यदि जीवगतरागाद्यभावेपि द्रव्यप्रत्ययोदयमात्रेण बंधो भवति तर्हि सर्वदैव बंध एव । कस्मात् । संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वादिति । तस्माद् ज्ञायते नवतरद्रव्यकर्मबंधस्योदयागतद्रव्यप्रत्यया हेतवस्तेषां च जीवगतरागादयो हेतव इति । ततः स्थितं न केवलं योगा बहिरंगबंधकारणं द्रव्यप्रत्यया अपीति भावार्थः ॥ १४६ ॥

इति नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये बंधव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण "नवमोंतराधिकारः"

हिंदी ता० —उत्थानिका—आगे कहते हैं कि केवल योग ही बंधके बाहरी निमित्त कारण नहीं है किन्तु मिथ्यात्व आदि द्रव्यकर्म भी रागादि भावरूप कारणकी अपेक्षासे बाहरी निमित्त हैं

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(चदुव्वियप्पो) चार प्रकार मिथ्यात्वादि (हेदू) कारण (अट्ठवियप्पस्स) आठ प्रकार कर्मोंके (कारणं) बंधके कारण (भणिदं) कहे गए हैं । (तेसिंपि य) तथा उन द्रव्यकर्म मिथ्यात्वादिके भी कारण (रागादी) रागादिभाव हैं (तेसिम्) इन रागादि भावोंके (अभावे) न होनेपर (ण वज्झंति) जीव नहीं बंधते हैं ।

विशेषार्थ—उदयमें प्राप्त मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग, चार प्रकार द्रव्यकर्म, नवीन आठ प्रकार द्रव्यकर्मके बन्धके कारण कहे गए हैं । जो कर्म रागादिकी उपाधिसे रहित व सम्यक्त्व आदि आठ गुण सहित परमात्म स्वभावके ढकनेवाले हैं । इन द्रव्यकर्मरूप कारणके भी कारण रागादि विकल्पसे रहित शुद्ध आत्मद्रव्यकी परिणतिसे भिन्न जीवसम्बन्धी रागादिभाव हैं क्योंकि जीवसंबंधी रागादि भाव कारणोंके अभाव होनेपर उन चार द्रव्य प्रत्ययों या कारणोंके रहते हुए भी जो जीव इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें ममता भावसे रहित हैं वे बन्धको नहीं प्राप्त होते हैं । यदि जीवके रागादिभावोंके विना भी इन द्रव्य प्रत्ययोंके उदय मात्रसे बन्ध होजाता हो तो सदा जीवके बन्ध ही रहे क्योंकि संसारी जीवोंके सदा ही कर्मोंका उदय रहता है । इसलिये यह

जाना जाता है कि नवीन द्रव्य कर्मोंके बन्धके कारण उदय प्राप्त द्रव्य प्रत्यय हैं, उनके भी कारण जीवके रागादि भाव हैं। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि न केवल योग ही बंधके बाहरी कारण हैं किन्तु द्रव्य प्रत्यय भी बंधके बाहरी कारण हैं ॥ १४६ ॥

इस तरह नव पदार्थके कहनेवाले दूसरे महाअधिकारमें बंधके व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथाओंके द्वारा नवमा अन्तर अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ मोक्षपदार्थव्याख्यानम्।

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमसंवररूपेण भावमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत्।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो ॥ १५० ॥
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इन्दियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं ॥ १५१ ॥

हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणस्तु निरोधः ॥ १५० ॥
कर्मणामभावेन च सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
प्राप्नोतीन्द्रियरहितमव्याबाधं सुखमनन्तम् ॥ १५१ ॥

आस्रवहेतुर्हि जीवस्य मोहरागद्वेषरूपो भावः। तदभावो भवति ज्ञानिनः। तदभावे भवत्यास्रवभावाभावः। आस्रवभावाभावे भवति कर्माभावः। कर्माभावेन भवति सार्वज्ञं सर्वदर्शित्वमव्याबाधमिन्द्रियव्यापारातीतमनन्तसुखत्वञ्चेति। स एष जीवन्मुक्तिनामा भावमोक्षः। कथमिति चेत्? भावः खल्वत्र विवक्षितः कर्मावृतचैतन्यस्य क्रमप्रवर्तमानज्ञप्तिक्रियारूपः। स खलु संसारिणोऽनादिमोहनीयकर्मोदयानुवृत्तिवशादशुद्धो द्रव्यकर्मास्रवहेतुः। स तु ज्ञानिनो मोहरागद्वेषानुवृत्तिरूपेण प्रहीयते। ततोऽस्य आस्रवभावो निरुद्ध्यते। ततो निरुद्धास्रवभावस्यास्य मोहक्षयेणात्यन्तनिर्विकारमनादिमुद्रितानन्तचैतन्यवीर्यस्य शुद्धज्ञप्तिक्रियारूपेणान्तर्मुहूर्तमतिवाह्य युगपज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयेण कथञ्चित् कूटस्थज्ञानत्वमवाप्य ज्ञप्तिक्रियारूपे क्रमप्रवृत्त्यभावाद्भावकर्म विनश्यति। ततः कर्माभावे स हि भगवान्सर्वज्ञः सर्वदर्शी व्युपरतेन्द्रियव्यापाराव्याबाधानन्तसुखश्च नित्यमेवावतिष्ठते। इत्येष भावकर्ममोक्षप्रकारः द्रव्यकर्ममोक्षहेतुः परमसंवरप्रकारश्च ॥ १५०-१५१ ॥

अब मोक्षपदार्थका व्याख्यान है।

अन्वयार्थः-(हेत्वभावे) [मोहरागद्वेषरूप] हेतुका अभाव होनेसे (ज्ञानिनः) ज्ञानीको (नियमात्) नियमसे (आस्रवनिरोधः जायते) आस्रवका निरोध होता है (तु) और (आस्रवभावेन विना) आस्रवभावके अभावमें (कर्मणः निरोधः जायते) कर्मका निरोध होता है। (च) और (कर्मणाम् अभावेन) कर्मोंका अभाव होनेसे वह (सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च) सर्वज्ञ तथा सर्वलोकदर्शी होता हुआ (इन्द्रियरहितम्) इन्द्रिय रहित, (अव्याबाधम्) अव्याबाध, (अनन्तम् सुखम् प्राप्नोति) अनंत सुखको प्राप्त करता है।

टीकाः—यह, द्रव्यकर्ममोक्षके हेतुभूत परम-संवररूपसे भावमोक्षके स्वरूपका कथन है।

आस्रवका हेतु वास्तवमें जीवका मोहरागद्वेषरूप भाव है। ज्ञानीको उसका अभाव होता है। उसका अभाव होनेसे आस्रवभावका अभाव होता है। आस्रवभावका अभाव होनेसे कर्मका अभाव होता है। कर्मका अभाव होनेसे सर्वज्ञता, सर्वदर्शिता और अव्याबाध इन्द्रियव्यापारातीत अनंत सुख होता है। सो यह जीवन्मुक्ति नामका भावमोक्ष है। 'किसप्रकार ?' ऐसा प्रश्न किया जाये तो निम्नानुसार स्पष्टीकरण हैः-

यहां जो 'भाव' विवक्षित है वह कर्मावृत (कर्मसे आवृत हुए) चैतन्यकी क्रम से प्रवर्तनेवाली ज्ञप्तिक्रियारूप है। वह भाव वास्तवमें संसारीके अनादि कालसे मोहनीयकर्मके उदयके अनुसरणके वशसे अशुद्ध है तथा द्रव्यकर्मास्रवका हेतु है। परन्तु वही भाव ज्ञानीके मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूपसे प्रहानिको (प्रकृष्ट हानि को) प्राप्त होता है, इसलिये उसके आस्रवभावका निरोध होता है। इसलिये जिसके आस्रवभावका निरोध हुआ है ऐसे उस ज्ञानीको मोहक्षय द्वारा अत्यंत निर्विकारता प्राप्त होती है, फिर, जिसके अनादि कालसे अनंत चैतन्य और (अनंत) वीर्य मुंदा हुवा है ऐसे उस ज्ञानीको (क्षीणमोह गुणस्थानमें) शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूपसे अंतमुहूर्त व्यतीत होकर युगपद् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतरायका क्षय होनेसे कथंचित् कूटस्थ ज्ञान प्राप्त होता है और इस प्रकार उसे ज्ञप्तिक्रियाके रूपमें क्रमप्रवृत्तिका अभाव होनेसे भावकर्मका विनाश होता है। इसलिये कर्मका अभाव होने पर वह वास्तवमें भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा इन्द्रियव्यापारातीत—अव्याबाध—अनंतसुखवाला सदैव रहता है।

इस प्रकार यह भावकर्ममोक्षका प्रकार तथा द्रव्यकर्ममोक्षका हेतुभूत परम संवरका प्रकार है ॥ १५०—१५१ ॥

सं०ता०-अनंतरं शुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसाध्यागमभाषया रागादिविकल्परहितशुक्लध्यानसाध्ये वा मोक्षाधिकारे गाथाचतुष्टयं भवति। तत्र भावमोक्षः केवलज्ञानोत्पत्तिः जीवन्मुक्तोर्हत्पदमित्येकार्थः। तस्याभिधानचतुष्टययुक्तस्यैकदेशमोक्षस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन "हेदु अभावे" इत्यादि सूत्रद्वयं। तदनंतरमयोगिचरमसमये शेषाघातिद्रव्यकर्ममोक्षप्रतिपादनरूपेण 'दंसणणाणसमग्गं' इत्यादि सूत्रद्वयं। एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन मोक्षाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका।

सं०ता०-अथ घातिचतुष्टयद्रव्यकर्ममोक्षहेतुभूतं परमसंवररूपं च भावमोक्षमाह,—हेदु अभावे-द्रव्यप्रत्ययरूपहेत्वभावे सति, णियमा-निश्चयात् जायदि-जायते । कस्य । णाणिस्स-ज्ञानिनः । स कः । आसवणिरोधो—जीवाश्रितरागाद्यास्रवनिरोधः । आसवभावेण विणा-भावास्रवस्वरूपेण विना । जायदि कम्मस्स दु णिरोधो—मोहनीयादिघातिचतुष्टयरूपस्य कर्मणो जायते निरोधो विनाशः । इति प्रथमगाथा । कम्मस्साभावेण य-घातिकर्मचतुष्टयस्याभावेन च । सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य-सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च सन् । किं करोति । पावदि-प्राप्नोति । किं । सुहं-सुखं । किं विशिष्टं । इंदियरहिदं अव्वाबाहमणंतं-अतीन्द्रियमव्याबाधमनंतं चेति । इति संक्षेपेण भावमोक्षो ज्ञातव्यः । तद्यथा । कोसौ भावः कश्च मोक्षः इति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह-भावः स त्वत्र विवक्षितः कर्मावृतसंसारिजीवस्य क्षायोपशमिकज्ञानविकल्परूपः । स चानादिमोहोदयवशेन रागद्वेषमोहरूपेणाशुद्धो भवतीति । इदानीं तस्य भावस्य मोक्षः कथ्यते । यदायं जीवः आगमभाषया कालादिलब्धिरूपमध्यात्मभाषया शुद्धात्माभिमुखपरिणामरूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते तदा प्रथमतस्तावन्मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनामुपशमेन क्षयोपशमेन च सरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पंचपरमेष्ठिभक्त्यादिरूपेण पराश्रितधर्म्यध्यानबहिरंगसहकारित्वेनानंतज्ञानादिस्वरूपोऽहमित्यादिभावनास्वरूपमात्माश्रितं धर्म्यध्यानं प्राप्य आगमकथितक्रमेणासंयतसम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानचतुष्टयमध्ये क्वापि गुणस्थाने दर्शनमोहक्षयेण क्षायिकसम्यक्त्वं कृत्वा तदनंतरमपूर्वादिगुणस्थानेषु प्रकृतिपुरुषनिर्मलविवेकज्योतीरूपप्रथमशुक्लध्यानमनुभूय रागद्वेषरूपचारित्रमोहोदयाभावेन निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिरूपं चारित्रमोहविध्वंसनसमर्थं वीतरागचारित्रं प्राप्य मोहक्षपणं कृत्वा मोहक्षयानंतरं क्षीणकषायगुणस्थानेंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा द्वितीयशुक्लध्यानेन ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मत्रयं युगपदंत्यसमये निर्मूल्य केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयस्वरूपं भावमोक्षं प्राप्नोतीति भावार्थः ॥ १५० । १५१ ॥ एवं भावमोक्षस्वरूपकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं ।

हिंदी ता०पीठिका-आगे शुद्धात्मानुभवरूप निर्विकल्प समाधिसे साधने योग्य व आगम भाषासे रागादि विकल्पोंसे रहित शुक्लध्यानसे साधने योग्य मोक्षके अधिकारमें गाथाएं चार हैं। उनमेंसे भावमोक्ष, केवलज्ञानकी उत्पत्ति, जीवन्मुक्तपना तथा अरहंत पद इनका एक ही अर्थ है, इन चार नामोंसे युक्त एकदेश मोक्षके व्याख्यानकी मुख्यतासे "हेदु अभावे" इत्यादि सूत्र दो हैं। उसके पीछे अयोग केवलि गुणस्थानके अन्तिम समयमें शेष अघाति द्रव्यकर्मोंसे मोक्ष होती है ऐसा कहते हुए "दंसणणाणसमग्गं" इत्यादि सूत्र दो हैं। ऐसे चार गाथाओंके द्वारा दो स्थलोंमें मोक्षके अधिकारके व्याख्यानमें समुदायपातनिका है।

अन्वयसहित सामान्यार्थ-(हेदुमभावे) मिथ्यात्व आदि द्रव्य कर्मोंके उदय रूप कारणोंके न रहनेपर (णियमा) नियमसे (णाणिस्स) भेद विज्ञानी आत्माके (आसवणिरोधो) रागादि आस्रव भावोंका रुकना होता है। (आसवभावेण विणा) रागादि आस्रव भावोंके विना (कम्मस्स) नवीन द्रव्य कर्मोंका [दु] भी [णिरोधो] रुकना हो जाता है। [य] तथा [कम्मस्स अभावेण] चार घातियाकर्मोंके नाश होनेपर [सव्वण्हू] सर्वज्ञ [य] और [सव्वलोगदरसी]

सर्व लोकको देखनेवाला [इन्द्रियरहितं] इन्द्रियोंकी पराधीनतासे रहित [अव्वाबाहं] बाधा या विघ्न रहित व [अणंतं] अन्त रहित (सुहं) सुखको (पावदि) पा लेता है।

विशेषार्थ–भाव क्या है उससे मोक्ष होना क्या है–इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं–कर्मोंके आवरणमें प्राप्त संसारी जीवका जो क्षायोपशमिक विकल्परूप भाव है वह अनादिकालसे मोहके उदयके वश रागद्वेष मोहरूप परिणमता हुआ अशुद्ध होरहा है यही भाव है। अब इस भावसे मुक्त होना कैसे होता है सो कहते हैं। जब यह जीव आगमकी भाषासे काल आदि लब्धिको प्राप्त करता है तथा अध्यात्म भाषासे शुद्ध आत्माके सन्मुख परिणामरूप स्वसंवेदन ज्ञानको पाता है तब पहले मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियोंके उपशम होनेपर फिर उनका क्षयोपशम होनेपर सराग सम्यग्दृष्टि होजाता है। तब अर्हंत् आदि पंचपरमेष्ठीकी भक्ती आदिके द्वारा परके आश्रित धर्मध्यानरूप बाहरी सहकारी कारणके द्वारा मैं अनंत ज्ञानादि स्वरूप हूँ इत्यादि भावना स्वरूप आत्माके आश्रित धर्मध्यानको पाकर आगममें कहे हुए क्रमसे असंयत सम्यग्दृष्टिको आदि लेकर चार गुणस्थानोंमें मध्यमेंसे किसी भी गुणस्थानमें दर्शनमोहको क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होजाता है। फिर मुनि अवस्थामें अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें चढकर आत्मा सर्व कर्म प्रकृति आदिसे भिन्न है ऐसे निर्मल विवेकमई ज्योतिरूप प्रथम शुक्लध्यानका अनुभव करता है। फिर रागद्वेष रूप चारित्र मोहके उदयके अभाव होनेपर निर्विकार शुद्धात्मानुभव रूप वीतराग चारित्रको प्राप्त कर लेता है जो चारित्र मोहके नाश करनेमें समर्थ है। इस वीतराग चारित्रके द्वारा मोहकर्मका क्षय कर देता है–मोहके क्षयके पीछे क्षीण कषाय नाम बारहवें गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त काल ठहर कर दूसरे शुक्लध्यानको ध्याता है। इस ध्यानसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंको एक साथ इस गुणस्थानके अन्तमें जड मूलसे दूरकर केवलज्ञान आदि अनंतचतुष्टयस्वरूप भाव मोक्षको प्राप्त कर लेता है। यह भाव है ॥ १५०, १५१

इस प्रकार भावमोक्षका स्वरूप कहते हुए दो गाथाएं कहीं।

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमनिर्जराकारणध्यानाख्यानमेतत्।

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।

जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स ॥ १५२ ॥

दर्शनज्ञानसमग्रं ध्यानं नो अन्यद्रव्यसंयुक्तम्।

जायते निर्जराहेतुः स्वभावसहितस्य साधोः ॥ १५२ ॥

एवमस्य खलु भावमुक्तस्य भगवतः केवलिनः स्वरूपतृप्तत्वाद्विश्रान्तसुखदुःखकर्मविपाककृतविक्रियस्य प्रक्षीणावरणत्वादनन्तज्ञानदर्शनसंपूर्णशुद्धज्ञानचेतनामयत्वादतीन्द्रियत्वात्

चान्यद्रव्यसंयोगवियुक्तं शुद्धस्वरूपेऽविचलितचैतन्यवृत्तिरूपत्वात्कथञ्चिद्ध्यानव्यपदेशार्हमात्मनः स्वरूपं पूर्वसंचितकर्मणां शक्तिशातनं पतनं वा विलोक्य निर्जराहेतुत्वेनोपवर्ण्यत इति ॥ १५२ ॥

अन्वयार्थः—(स्वभावसहितस्य साधोः) स्वभावसहित साधुको (-स्वभाव परिणत केवलीभगवानको) (दर्शनज्ञानसमग्रं) दर्शनज्ञानसे सम्पूर्ण और (नो अन्यद्रव्यसंयुक्तम्) अन्यद्रव्यसे असंयुक्त ऐसा (ध्यानं) ध्यान (निर्जराहेतुः जायते) निर्जराका हेतु होता है।

टीका:—यह, द्रव्यकर्ममोक्षके हेतुभूत ऐसी परम निर्जराके कारणभूत ध्यानका कथन है।

इस प्रकार वास्तवमें इन (-पूर्वोक्त) भावमुक्त (-भावमोक्षवाले) भगवान केवलीको—कि जिन्हें स्वरूपतृप्तपनेके कारण कर्मविपाककृत सुखदुःखरूप विक्रिया नष्ट हो गई है उन्हें—आवरणके प्रक्षीणपनेके कारण, अनंत ज्ञानदर्शनसे सम्पूर्ण शुद्धज्ञानचेतनामयपनेके कारण तथा अतीन्द्रियपनेके कारण जो अन्यद्रव्यके संयोग से रहित है और शुद्ध स्वरूपमें अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप होनेके कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नामके योग्य है ऐसा आत्माका स्वरूप (-आत्माकी निज दशा) पूर्वसंचित कर्मोंकी शक्तिका शातन (क्षीणता) अथवा उनका पतन (नाश) देखकर, निर्जराके हेतुरूपसे वर्णन किया जाता है। ॥ १५२ ॥

सं०ता०—अथ वेदनीयादिशेषाघातिकर्मचतुष्टयविनाशरूपायाः सकलद्रव्यनिर्जरायाः कारणं ध्यानरूपं कथयति,—

"दंसण" इत्यादि पदखंडनरूपेण व्याख्यानं क्रियते। दंसण-णाण-दर्शनज्ञानाभ्यां कृत्वा, समग्गं-परिपूर्णं। किं ? झाणं-ध्यानं। पुनरपि किंविशिष्टं। णो अण्णदव्वसंजुत्तं-अन्यद्रव्यसंयुक्तं न भवति। इत्थंभूतं ध्यानं, जायदि णिज्जरहेदू-निर्जराहेतुर्जायते। कस्य। सहावसहिदस्स साहुस्स-शुद्धस्वभावसहितस्य साधोरिति। तथाहि। तस्य पूर्वोक्तभावमुक्तस्य केवलिनो निर्विकारपरमानंदैकलक्षणस्वात्मोत्थसुखतृप्तत्वाद्व्यावृत्तहर्षविषादरूपसांसारिकसुखदुःखविक्रियस्य केवलज्ञानदर्शनावरणविनाशादसहायकेवलज्ञानदर्शनसहितं सहजशुद्धचैतन्यपरिणतत्वादिन्द्रियव्यापारादिबहिर्द्रव्यालंबनाभावाच्च परद्रव्यसंयोगरहितं स्वरूपनिश्चलत्वादविचलितचैतन्यवृत्तिरूपं च यदात्मनः स्वरूपं तत्पूर्वसंचितकर्मणां ध्यानकार्यभूतं स्थितिविनाशं गलनं च दृष्ट्वा निर्जरारूपध्यानस्य कार्यकारणमुपचर्योपचारेण ध्यानं भण्यत इत्यभिप्रायः॥ अत्राह शिष्यः—इदं परद्रव्यालंबनरहितं ध्यानं केवलिनां भवतु। कस्मात् ? केवलिनामुपचारेण ध्यानमिति वचनात्। चारित्रसारादौ ग्रंथे भणितमास्ते 'छद्मस्थतपोधनाः द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वा ध्यात्वा केवलज्ञानमुत्पादयंति' तत्परद्रव्यालंबनरहितं कथं घटत इति। परिहारमाह—द्रव्यपरमाणुशब्देन द्रव्यसूक्ष्मत्वं ग्राह्यं, भावपरमाणुशब्देन च भावसूक्ष्मत्वं, न च पुद्गलपरमाणुः। इदं व्याख्यानं सर्वार्थसिद्धिटिप्पणके भणितमास्ते। अस्य संवादवाक्यस्य विवरणं क्रियते। द्रव्यशब्देनात्मद्रव्यं ग्राह्यं तस्य तु परमाणुः। परमाणुरिति कोर्थः ? रागाद्युपाधिरहिता सूक्ष्मावस्था। तस्याः सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत् ? निर्विकल्पसमाधिविषयादिति द्रव्यपरमाणुशब्दस्य व्याख्यानं। भावशब्देन तु तस्यैवात्मद्रव्यस्य स्वसंवेदनज्ञानपरिणामो

ग्राह्यः तस्य भावस्य परमाणुः। परमाणुरिति कोर्थः रागादिविकल्परहिता सूक्ष्मावस्था। तस्याः सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत्? इंद्रियमनोविकल्पाविषयत्वादिति भावपरमाणुशब्दस्य व्याख्यानं ज्ञातव्यं। अयमत्र भावार्थः प्राथमिकानां चित्तस्थिरीकरणार्थं विषयाभिलापरूपध्यानवंचनार्थं च परंपरया मुक्तिकारणं पंचपरमेष्ठ्यादिपरद्रव्यं ध्येयं भवति दृढतरध्यानाभ्यासेन चित्ते स्थिरे जाते सति निजशुद्धात्मस्वरूपमेव ध्येयं। तथा चोक्तं श्रीपूज्यपादस्वामिभिः निश्चयध्येयव्याख्यानं। "आत्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सन् स्वयंभूः प्रवृत्तः"। अस्य व्याख्यानं क्रियते। आत्मा कर्ता आत्मानं कर्मतापन्नं आत्मन्येवाधिकरणभूते आत्मना करणभूतेन असौ प्रत्यक्षीभूतात्मा क्षणमन्तमुहूर्तमुपजनयन् धारयन् सन् स्वयंभूः प्रवृत्तः सर्वज्ञो जात इत्यर्थः। इति परस्परसापेक्षनिश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकभावं ज्ञात्वा ध्येयविषये विवादो न कर्तव्यः॥ १५२॥

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे वेदनीय आदि शेष अघातिया कर्म चारके विनाशरूप जो सर्व द्रव्योंकी निर्जरा उसका कारण जो ध्यान है उसका स्वरूप कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(सभावसहिदस्स) शुद्ध स्वभावके धारी (साधुस्स) साधुके (णिज्जरहेदू) निर्जराका कारण (झाणं) जो ध्यान (जायदि) पैदा होता है वह (दंसणणाणसमग्गं) दर्शन और ज्ञानसे परिपूर्ण भरा है तथा (अण्णदव्वसंजुत्तं णो) वह अन्य द्रव्यसे मिला हुआ नहीं है।

विशेषार्थ—पूर्व गाथामें जिस भावमोक्षरूप केवलीभगवानका वर्णन किया गया है वे निर्विकार परमानंदमई अपने ही आत्मासे उत्पन्न सुखमें तृप्त हो जानेसे हर्ष विषाद रूप सांसारिक सुख तथा दुःखके विकारोंसे मुक्त हैं। केवलज्ञान व केवलदर्शनको रोकनेवाले आवरणोंके विनाशसे केवलज्ञान और केवलदर्शन सहित हैं, सहजशुद्ध चैतन्यभावमें परिणमन करनेसे तथा इन्द्रियोंके व्यापार आदि बाहरी द्रव्योंके आलम्बनके न रहनेसे वे परद्रव्यके संयोग रहित हैं, अपने स्वरूपमें निश्चल होनेसे स्थिर चैतन्य स्वभावके धारी हैं, उनके ऐसे आत्मस्वभावको तथा ध्यानके फल स्वरूप पूर्व संचित कर्मोंकी स्थितिके विनाश और उनके गलनेको देखकर केवली भगवानके उपचारसे ध्यान कहा गया है क्योंकि निर्जराका कारण ध्यान है और निर्जरा वहां पाई जाती है यह अभिप्राय है।

यहां शिष्यने प्रश्न किया कि केवलीभगवानके जो यह परद्रव्योंके आलम्बनरहित ध्यान कहा है सो रहे क्योंकि केवलियोंके ध्यान उपचारसे ही कहा है परन्तु चारित्रसार आदि ग्रन्थोंमें यह कहा गया है कि छद्मस्थ अर्थात् असर्वज्ञ तपस्वी द्रव्य परमाणु या भाव परमाणुको ध्यायकर केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं सो वह ध्यान परद्रव्यके आलंबनसे रहित कैसे घटता है? आचार्य इसीका समाधान करते हैं—द्रव्य परमाणु शब्दसे द्रव्यकी सूक्ष्मताको तथा भाव परमाणु शब्दसे भावकी सूक्ष्मताको लेना योग्य है, पुद्गल परमाणु हो लेना योग्य नहीं है। सर्वार्थसिद्धिकी

टिप्पणीमें यही व्याख्यान कहा गया है। यहां भी इस विवादमें पडे वाक्यका वर्णन किया जाता है। यहां द्रव्य शब्दसे आत्म द्रव्य लेना योग्य है तथा परमाणुका अर्थ है रागद्वेषादिकी उपाधिसे रहित सूक्ष्म अवस्था। आत्मद्रव्यकी सूक्ष्मताका नाम द्रव्य परमाणु है। यहां सूक्ष्मावस्था इसीलिये ली गई है कि यह निर्विकल्प समाधिका विषय है। ऐसा द्रव्य परमाणु शब्दका व्याख्यान जानना। भाव शब्दसे उस ही आत्मद्रव्यका स्वसंवेदन ज्ञान परिणाम लेना योग्य है। इस भावका परमाणु अर्थात् रागादि विकल्प रहित सूक्ष्म परिणाम सो भाव परमाणु है। इसमें सूक्ष्मपना इसीलिये है कि वह इन्द्रिय और मनके विकल्पोंका विषय नहीं है। ऐसा भाव परमाणुका व्याख्यान जानना योग्य है।

यहां यह भाव है कि प्रथम अवस्थाके शिष्योंके लिये अपने चित्तको स्थिर करनेके लिये, तथा विषयाभिलाप रूप ध्यानसे बचनेके लिये परम्परा मुक्तिके कारण ऐसे पंचपरमेष्ठी आदि परद्रव्य ध्यान करने योग्य होते हैं, परन्तु जब दृढतर ध्यानके अभ्याससे चित्त स्थिर होजाता है तब अपना शुद्ध आत्मस्वरूप ही ध्यान करनेके योग्य है। ऐसा ही श्री पूज्यपादस्वामीने निश्चय ध्येयका व्याख्यान किया है " आत्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन् सन् स्वयंभूः प्रवृत्तः " इस सूत्रका व्याख्यान यह है—जो आत्मा अपने ही आत्माको अपने ही आत्मामें, अपने ही आत्माके द्वारा क्षणमात्र भी—अर्थात् एक अन्तर्मुहूर्त भी प्रत्यक्ष रूपसे धारण करता है या अनुभव करता है, सो स्वयं सर्वज्ञ होजाता है।

इस तरह परस्पर अपेक्षा सहित निश्चय तथा व्यवहारनयसे साध्य व साधक भावको जानकर ध्येयके सम्बंधमें विवाद नहीं करना योग्य है ॥ १५२ ॥

द्रव्यमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत्।

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥ १५३ ॥

यः संवरेण युक्तो निर्जरयन्नथ सर्वकर्माणि।
व्यपगतवेद्यायुष्को मुञ्चति भवं तेन स मोक्षः ॥ १५३ ॥

अथ खलु भगवतः केवलिनो भावमोक्षे सति प्रसिद्धपरमसंवरस्योत्तरकर्मसन्ततौ निरुद्धायां परमनिर्जराकारणध्यानप्रसिद्धौ सत्यां पूर्वकर्मसंततौ कदाचित्स्वभावेनैव कदाचित्समुद्घातविधानेनायुःकर्मसमभूतस्थित्यामायुःकर्मानुसारेणैव निर्जीर्यमाणायामपुनर्भवाय तद्भवत्यागसमये वेदनीयायुर्नामगोत्ररूपाणां जीवेन सहात्यन्तविश्लेषः कर्मपुद्गलानां द्रव्यमोक्षः ॥ १५३ ॥

इति मोक्षपदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

समाप्तं च मोक्षमार्गावयवरूपसम्यग्दर्शनज्ञानविषयभूतनवपदार्थव्याख्यानम् ॥

अन्वयार्थः—(यः संवरेण युक्तः) जो संवरसे युक्त है ऐसा (केवलज्ञानप्राप्त) जीव (निर्जरयन् अथ सर्वकर्माणि) सर्व कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ [व्यपगतवेद्यायुष्कः] वेदनीय और आयु रहित होकर [भवं मुञ्चति] भवको (नामकर्म गोत्र कर्म को) छोडता है, [तेन] इसलिये (सः मोक्षः) वह मोक्ष है।

टीकाः-यह, द्रव्यमोक्षके स्वरूपका कथन है।

वास्तवमें केवलीभगवानको, भावमोक्ष होने पर, परम संवर सिद्ध होनेके कारण उत्तर कर्मसंतति निरोधको प्राप्त होकर और परम निर्जराका कारणभूत ध्यान सिद्ध होनेके कारण पूर्व कर्मसंतति कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभावसे ही आयुकर्मके जितनी होती है और कदाचित् समुद्घातविधानसे आयुकर्मके जितनी होती है-आयुकर्मके अनुसार ही निर्जरित होती हुई अपुनर्भव (सिद्धगति) केलिये भव छूटनेके समय होनेवाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलोंका जीवके साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग) है वह द्रव्यमोक्ष है॥ १५३ ॥

इस प्रकार मोक्षपदार्थका व्याख्यान समाप्त हुआ।

और मोक्षमार्गके अवयवरूप सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानके विषयभूत
नव पदार्थोंका व्याख्यान भी समाप्त हुआ।

सं०ता०-अथ सकलमोक्षसंज्ञं द्रव्यमोक्षमावेदयति, जो-यः कर्ता, संवरेण जुत्तो-परमसंवरेण युक्तः। किं कुर्वन्। णिज्जरमाणो य-निर्जरयंश्च। कानि। सव्वकम्माणि-सर्वकर्माणि। पुनः किंविशिष्टः। ववगदवेदाउस्सो-व्यपगतवेदनीयायुष्यसंज्ञकर्मद्वयः। एवंभूतः स किंकरोति? मुअदि भवं-त्यजति भवं येन कारणेन भवशब्दवाच्यं नामगोत्रसंज्ञं कर्मद्वयं मुंचति। तेण सो मोक्खो-तेन कारणेन स प्रसिद्धो मोक्षो भवति। अथवा स पुरुष एवाभेदेन मोक्षो भवतीत्यर्थः। तद्यथा। अथास्य केवलिनो भावमोक्षे सति निर्विकारसंवित्तिसाध्यं सकलसंवरं कुर्वतः पूर्वोक्तशुद्धात्मध्यानसाध्यां चिरसंचितकर्मणां सकलनिर्जरां चानुभवतोन्तर्मुहूर्तजीवितशेषे सति वेदनीयनामगोत्रसंज्ञकर्मत्रयस्यायुषः सकाशादधिकस्थितिकाले तत्कर्मत्रयाधिकस्थितिविनाशार्थं संसारस्थितिविनाशार्थं वा दंडकपाटप्रतरलोकपूर्णसंज्ञं केवलिसमुद्घातं कृत्वाथवायुष्यसहकर्मत्रयस्य संसारस्थितेर्वा समानस्थितिकाले पुनरकृत्वा च तदनन्तरं स्वशुद्धात्मनिश्चलवृत्तिरूपं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञमुपचारेण तृतीयशुक्लध्यानं कुर्वतः तदनंतरं सयोगिगुणस्थानमतिक्रम्य सर्वप्रदेशाह्लादैकाकारपरिणतपरमसमरसीभावलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तं समस्तशीलगुणनिधानं समुच्छिन्नक्रियासंज्ञं चतुर्थशुक्लध्यानाभिधानं परमयथाख्यातचारित्रं प्राप्तस्यायोगिद्विचरमसमये शरीरादिद्वासप्ततिप्रकृतिचरमसमये वेदनीयायुष्यनामगोत्रसंज्ञकर्मचतुष्करूपस्य त्रयोदशप्रकृतिपुद्गलपिंडस्य जीवेन सहात्यन्तविश्लेषो द्रव्यमोक्षो भवति। तदनंतरं किं करोति भगवान्? पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्चेति हेतुचतुष्टयात् रूपात् सकाशाद्यथासंख्येनाविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्चेति दृष्टांतचतुष्टयेनैकरूपेण लोकाग्रं गच्छति। परतो गतिकारणभूतधर्मास्तिकायाभावात्तत्रैव लोकाग्रे

स्थितः सन् विषयातीतमनश्वरं परमसुखमनंतकालमनुभवतीति भावार्थः ॥ १५३ ॥ इति द्रव्यमोक्षस्वरूपकथनरूपेण सूत्रद्वयं गतं। एवं भावमोक्षद्रव्यमोक्षप्रतिपादनमुख्यतया गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन दशमोऽन्तराधिकारः ॥

इति तात्पर्यवृत्तौ—प्रथमतस्तावत् "अभिवंदिऊण सिरसा" इमां गाथामादिं कृत्वा गाथाचतुष्टयं व्यवहारमोक्षमार्गकथनमुख्यत्वेन तदनंतरं षोडशगाथा जीवपदार्थप्रतिपादनेन तदनंतरं गाथाचतुष्टयमजीवपदार्थनिरूपणार्थं ततश्च गाथात्रयं पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपेण सूचनार्थं तदनन्तरं गाथाचतुष्टयं पुण्यपापपदार्थद्वयविवरणार्थं ततश्च गाथाषट्कं शुभाशुभास्रवव्याख्यानार्थं तदनन्तरं सूत्रत्रयं संवरपदार्थस्वरूपकथनार्थं ततश्च गाथात्रयं निर्जरापदार्थव्याख्यानेन निमित्तं तदनंतरं सूत्रत्रयं बंधपदार्थकथनार्थं तदनंतरं सूत्रचतुष्टयं मोक्षपदार्थव्याख्यानार्थं चेति दशभिरंतराधिकारैः पंचाशद्गाथाभिर्व्यवहारमोक्षमार्गावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतानां जीवादिनवपदार्थानां प्रतिपादकः द्वितीयमहाधिकारः समाप्तः ॥२॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे सर्वसे छूटना वही द्रव्यमोक्ष है ऐसा कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जो) जो कोई (संवरेण जुत्तो) परम संवर सहित होता हुआ (अध) और (सव्वकम्माणि) सर्व कर्मोंकी (णिज्जरमाणो) निर्जरा करता हुआ (ववगदवेदाउस्सो) वेदनीय कर्म और आयुकर्मको क्षय करता हुआ (भवं) नाम और गोत्र कर्मसे बने संसारको (मुयदि) त्याग देता है (तेण) इस कारणसे (सो) वही जीव (मोक्खो) मोक्ष स्वरूप होजाता है अथवा अभेद नयसे वही पुरुष मोक्ष है।

विशेषार्थ—तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान भावमोक्ष होजाने पर, निर्विकार स्वात्मानुभवसे साधने योग्य पूर्ण संवरको करते हुए तथा पूर्वमें कहे प्रमाण शुद्ध आत्मध्यानसे साधने योग्य चिरकालके संचित कर्मोंकी पूर्ण निर्जराका अनुभव करते हुए जब उनके जीवनमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाता है तब यदि वेदनीय, नाम, गोत्र, इन तीन कर्मोंकी स्थिति आयु कर्मकी स्थितिसे अधिक होती है तब उन तीन कर्मोंकी अधिक स्थितिको नाश करनेके लिये व संसारकी स्थितिको विनाश करनेके लिये दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूर्ण ऐसे चार रूपसे केवलीसमुद्घातको करके अथवा यदि उन तीन कर्मोंकी स्थिति आयु कर्मके समान ही होती है तो केवलीसमुद्घात न करके अपने शुद्ध आत्मामें निश्चल वर्तनरूप सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम तीसरे शुक्लध्यानको उपचारसे करते हैं। फिर सयोगिगुणस्थानको उल्लंघ कर अयोगिगुणस्थानमें आते हैं। यहां सर्व आत्माके प्रदेशोंमें आल्हादरूप एक आकारमें परिणमन करते हुए परम समरसीभावरूप सुखामृतरसके आस्वादसे तृप्त, सर्व शील और गुणके भण्डार समुच्छिन्नक्रिया चौथे शुक्लध्यान नामके परम यथाख्यात चारित्रको प्राप्त करते हैं। फिर इस गुणस्थानके अन्तिम दो समयमेंसे पहले समयमें शरीरादि बहत्तर प्रकृतियोंका व अन्त समयमें वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र इन चार कर्मोंकी तेरह प्रकृतियोंका जीवसे अत्यन्त वियोग होजाता है।

इसहीको द्रव्य मोक्ष कहते हैं। सब कर्मोंसे अलग होनेपर सिद्ध आत्मा एक समयमें लोकके अग्रभागमें जाकर विराजमान होजाते हैं। शरीरोंसे छूटनेपर सिद्ध आत्माकी गति घुमाए हुए कुम्हारके चाककी तरह पूर्वके प्रयोगसे, लेपसे रहित तुम्बीकी तरह कर्मोंकी संगति छूटनेसे, एरंडके बीजकी तरह बन्धके टूटनेसे व अग्निकी शिखाकी तरह ऊर्ध्वगमन स्वभावसे ऊपरको होती है। वे सिद्ध भगवान लोकके आगे, गमनमें कारणभूत धर्मास्तिकायके न होनेसे नहीं जाते हैं—लोकाग्रमें तिष्ठे हुए इन्द्रियके विषयोंसे अतीत अविनाशी परमसुखको अनंत कालतक भोगते रहते हैं॥ १५३॥

इसतरह द्रव्यमोक्षका स्वरूप दो सूत्रोंसे कहा गया। भावमोक्ष व द्रव्यमोक्षके कथनकी मुख्यतासे चार गाथाओंमें दो स्थलोंके द्वारा दशवां अन्तर अधिकार पूर्ण हुआ।

इस प्रकार इस तात्पर्यवृत्तिमें पहले ही "अभिवंदिऊण सिरसा" इस गाथाको आदि लेकर चार गाथाएं व्यवहार मोक्षमार्गके कथनकी मुख्यतासे हैं फिर सोलह गाथाओंमें जीव पदार्थका व्याख्यान है। फिर चार गाथाएं अजीव पदार्थके निरूपणमें हैं। फिर तीन गाथाओंमें पुण्य पाप आदि सात पदार्थोंकी पीठिकाकी सूचना है। फिर चार गाथाएं पुण्यपाप दो पदार्थोंके वर्णनके लिये तथा छः गाथाएं शुभ व अशुभ आस्रवके व्याख्यानके लिये हैं। पश्चात् तीन सूत्र संवर पदार्थके स्वरूप कथनके लिये, फिर तीन गाथाएं निर्जरा पदार्थके व्याख्यानमें फिर तीन सूत्र बंध पदार्थके कहनेके लिये, पश्चात् चार सूत्र मोक्षपदार्थके व्याख्यान करनेके लिये हैं। इस तरह दश अन्तर अधिकारोंके द्वारा पचास गाथाओंमें मोक्षमार्गके अंगरूप तथा दर्शन और ज्ञानके विषयरूप जीवादि नव पदार्थोंका कथन है। इस तरह इस कथनको प्रतिपादन करने वाला दूसरा महा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ मोक्षमार्गप्रपञ्चसूचिका चूलिका।

मोक्षमार्गस्वरूपाख्यानमेतत्।

जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं॥ १५४॥

जीवस्वभावं ज्ञानमप्रतिहतदर्शनमनन्यमयम्।
चारित्रं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिन्दितं भणितम्॥ १५४॥

जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्गः। जीवस्वभावो हि ज्ञानदर्शने अनन्यमयत्वं च तयो-विशेषसामान्यचैतन्यस्वभावजीवनिर्वृत्तत्वात्। अथ तयोर्जीवस्वरूपभूतयोर्ज्ञानदर्शनयोर्यन्नियत-मवस्थितमुत्पादव्ययध्रौव्यरूपवृत्तिमयमस्तित्वं रागादिपरिणत्यभावादनिन्दितं तच्चरितं, तदेव

मोक्षमार्ग इति । द्विविधं हि किल संसारिषु चरितं–स्वचरितं परचरितं च, स्वसमयपरसमयाविरयर्थः । तत्र स्वभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं स्वचरितं, परभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं परचरितम् यत्स्वभावावस्थितास्तित्वरूपं परभावावस्थितास्तित्वव्यावृत्तत्वेनात्यन्तमनिन्दितं तदत्र साक्षान्मोक्षमार्गत्वेनावधारणीयमिति ॥ १५४ ॥

अब मोक्षमार्गप्रपंचसूचक चूलिका है।

अन्वयार्थः—(जीवस्वभावं) जीवका स्वभाव (अप्रतिहत ज्ञानम्) अप्रतिहत ज्ञान और (दर्शनम्) दर्शन है–(अनन्यमयम्) जो कि (जीवसे) अनन्यमय हैं । (तयोः) उन ज्ञानदर्शनमें (नियतम्) नियतरूप (अस्तित्वम्) अस्तित्व–(अनिन्दितं) जो कि अनिंदित है–(चारित्रं च भणितम्) उसे (जिनेन्द्रोंने) चारित्र कहा है।

टीकाः—यह, मोक्षमार्गके स्वरूपका कथन है।

जीवस्वभावमें नियतरूप चारित्र वह मोक्षमार्ग है। जीवस्वभाव वास्तवमें ज्ञानदर्शन हैं क्योंकि वे [जीवसे] अनन्यमय हैं। ज्ञानदर्शनका (जीवसे) अनन्यमयपना होनेका कारण यह है कि विशेष और सामान्यरूप चैतन्य स्वभाव से जीव निष्पन्न हैं अब जो जीवके स्वरूपभूत ऐसे उन ज्ञानदर्शनमें नियत अवस्थित जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्तिमय अस्तित्व तथा रागादिपरिणामके अभावके कारण अनिंदित वह चारित्र है, वही मोक्षमार्ग है।

संसारियोंमें चारित्र वास्तवमें दो प्रकारका हैः—(१) स्वचारित्र और (२) परचारित्र, (१) स्वसमय और (२) परसमय ऐसा अर्थ है। वहां, स्वभावमें अवस्थित अस्तित्वस्वरूप (चारित्र) वह स्वचारित्र है और परभावमें अवस्थित अस्तित्वस्वरूप [चारित्र] वह परचारित्र है। उसमेंसे (अर्थात् दो प्रकारके चारित्रमेंसे), स्वभावमें अवस्थित अस्तित्वरूप चारित्र—जो कि परभावमें अवस्थित अस्तित्व से भिन्न होनेके कारण अत्यंत अनिंदित है वह–यहां, साक्षात् मोक्षमार्गरूप से अवधारना। ॥ १५४ ॥

सं०ता०—इत ऊर्ध्वं मोक्षावाप्तिपुरस्सरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाभिधाने विशेषव्याख्यानेन चूलिकारूपे तृतीयमहाधिकारे "जीवसहाओ णाणं" इत्यादिविंशतिगाथा भवंति। तत्र विंशतिगाथासु मध्ये केवलज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धजीवस्वरूपकथनेन जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्ग इति कथनेन च "जीवसहाओ णाणं" इत्यादि प्रथमस्थले सूत्रमेकं, तदनंतरं शुद्धात्माश्रितः स्वसमयो मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामाश्रितः परसमय इति प्रतिपादनरूपेण "जीवो सहावणियदो" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ शुद्धात्मश्रद्धानादिरूपस्वसमयविलक्षणस्य परसमयस्यैव विशेषविवरणमुख्यत्वेन 'जो परदव्वं हि' इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनस्वरूपस्य स्वसमयस्यैव पुनरपि विशेषविवरणमुख्यत्वेन 'जो सव्वसंग' इत्यादि गाथाद्वयं, अथ वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादिसम्यक्श्रद्धानज्ञानपंचमहाव्रताद्यनुष्ठानरूपस्य व्यवहारमोक्षमार्गस्य निरूपणमुख्यत्वेन "धम्मादी सद्दहणं" इत्यादि पंचमस्थले सूत्रमेकं, अथ व्यवहाररत्नत्रयेण साध्यस्याभेदरत्नत्रयस्वरूपनिश्चयमोक्षमार्गप्रतिपादनरूपेण "णिच्छयणयेण" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं

यस्यैव शुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमुपादेयं प्रतिभाति स एव भावसम्यग्दृष्टिरिति व्याख्यानमुख्यत्वेन "जेण विजाण" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाभ्यां क्रमेण मोक्षपुण्यबंधौ भवत इति प्रतिपादकमुख्यत्वेन "दंसणणाणचरित्ताणि" इत्याद्यष्टमस्थले सूत्रमेकं, अथ निर्विकल्पपरमसमाधिस्वरूप-सामायिकसंयमे स्थातुं समर्थोपि तत्त्यक्त्वा यद्येकान्तेन सरागचारित्रानुचरणं मोक्षकारणं मन्यते तदा स्थूलपरसमयो भण्यते यदि पुनस्तत्र स्थातुमीहमानोपि सामग्रीवैकल्येनाशुभवंचनार्थं शुभोपयोगं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयो भण्यत इति व्याख्यानरूपेण "अण्णाणादो णाणी" इत्यादि गाथापंचकं, तदनंतरं तीर्थंकरादिपुराणजीवादिनवपदार्थप्रतिपादकागमपरिज्ञानसहितस्य तद्भक्तियुक्तस्य च यद्यपि तत्काले पुण्या-स्रवपरिणामेन मोक्षो नास्ति तथापि तदाधारेण कालांतरे निरास्रवशुद्धोपयोगपरिणामसामग्रीप्रस्तावे भवतीति कथनमुख्यत्वेन "सपदत्थं" इत्यादि सूत्रद्वयं, अथास्य पंचास्तिकायप्राभृतशास्त्रस्य साक्षान्मोक्षका-रणभूतं वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति व्याख्यानरूपेण "तह्मा णिव्वुदिकामो" इत्यादिसूत्रमेकं, तदनंतरमु-पसंहाररूपेण शास्त्रपरिसमाप्त्यर्थं "मग्गप्पभावणट्ठं" इत्यादि गाथासूत्रमेकं । एवं द्वादशान्तरस्थलैर्मोक्ष-मोक्षमार्गविशिष्टव्याख्यानरूपे तृतीयमहाधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा-

सं०ता०-अथ गाथापूर्वार्द्धेन जीवस्वभावमपरार्द्धेन तु जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गो भवतीति च प्रतिपादयति । अथवा निश्चयज्ञानदर्शनचारित्राणि जीवस्वभावो भवतीत्युपदिशति, जीवसहाओ णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं—जीवस्वभावो भवति । किं कर्तृ । ज्ञानमप्रतिहतदर्शनं च । कथंभूतं । अन-न्यमयमभिन्नं इति पूर्वार्द्धेन जीवस्वभावः कथितः । चरियं य तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं—चरितं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिंदितं भणितं कथितं । किं । चरितं च । किं तत् । अस्तित्वं । किंविशिष्टं । तयोर्ज्ञा-नदर्शनयोर्नियतं स्थितं । पुनरपि किंविशिष्टं । रागाद्यभावादनिंदितं, इदमेव चरितं मोक्षमार्ग इति । अथवा द्वितीयव्याख्यानं । न केवलं केवलज्ञानदर्शनद्वयं जीवस्वभावो भवति किंतु पूर्वोक्तलक्षणं चरितं स्वरूपा-स्तित्वं चेति । इतो विस्तरः—समस्तवस्तुगतानंतधर्माणां युगपद्विशेषपरिच्छित्तिसमर्थं केवलज्ञानं तथा सामान्ययुगपत्परिच्छित्तिसमर्थं केवलदर्शनमिति जीवस्वभावः । कस्मादिति चेत् ? सहजशुद्धसामान्यविशे-षचैतन्यात्मकजीवास्तित्वात्सकाशात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि द्रव्यक्षेत्रकालभावैरभेदादिति पूर्वोक्तजीव-स्वभावादभिन्नमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिंद्रियव्यापाराभावान्निर्विकारमदूषितं चेत्येवं गुणविशिष्टस्वरूपास्तित्वं जीवस्वभावनियतचरितं भवति । तदपि कस्मात् ? स्वरूपे चरणं चारित्रमिति वचनात् । तच्च द्विविधं स्वयमनाचरतोपि परानुभूतेष्टकामभोगेषु स्मरणमपध्यानलक्षणमिति तदादि परभावपरिणमनं परचरितं तद्विपरीतं स्वचरितं । इदमेव चारित्रं परमार्थशब्दवाच्यस्य मोक्षस्य कारणं न चान्यदित्यजानतां मोक्षा-द्भिन्नस्यासारसंसारस्य कारणभूतेषु मिथ्यात्वरागादिषु निरतानामस्माकमेवानंतकालो गतः, एवं ज्ञात्वा तदेव जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षकारणभूतं निरंतरं भावनीयमिति सूत्रतात्पर्यं । तथा चोक्तं । "एमेव गओ कालो असारसंसारकारणरयाणं । परमट्ठकारणाणं कारण ण हु जाणियं किंपि" ॥ १५४ ॥ एवं जीवस्वभावकथनेन जीवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति कथनेन च प्रथमस्थले गाथा गता ।

पीठिका—इसके आगे मोक्षप्राप्तिके मुख्य कारण निश्चय व व्यवहार मोक्षमार्गमई चूलिका रूप विशेष व्याख्यान में तीसरा महा अधिकार है। जिसमें " जीवसहाओ णाणं " इत्यादि वीस गाथाएं हैं। इन वीस गाथाओंके मध्यमें केवलज्ञान, केवलदर्शन स्वभाव शुद्ध जीवका स्वरूप कथन करते हुए जीवके स्वभावमें स्थिरतारूप चारित्र है सो ही मोक्षमार्ग है, ऐसा कहते हुए " जीवसहाओ णाणं " इत्यादि प्रथम स्थलमें सूत्र एक, फिर शुद्धात्माके आश्रित स्वसमय है तथा मिथ्यात्व व रागादि विभाव परिणामोंके आश्रित परसमय है ऐसा कहते हुए "जीवसहाव णियदो" इत्यादि सूत्र एक है। फिर शुद्धात्माके श्रद्धान आदि रूप स्वसमय है उससे विलक्षण परसमय है उसीका ही विशेष वर्णन करनेकी मुख्यतासे "जो परदव्वेहिं " इत्यादि गाथा दो हैं, पश्चात् रागादि विकल्पोंसे रहित स्वसंवेदन स्वरूप स्वसमयका ही फिर भी विशेष खुलासा करनेकी मुख्यतासे " जो सव्वसंगं " इत्यादि गाथाएं दो हैं फिर वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए छः द्रव्यादिके सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान व पंच महाव्रत आदि चारित्ररूप व्यवहार मोक्षमार्गके निरूपणकी मुख्यतासे " धम्मादी सद्दहणं " इत्यादि पांचवे स्थलमें सूत्र एक है। फिर व्यवहार रत्नत्रय द्वारा साधने योग्य अभेद रत्नत्रय स्वरूप निश्चय मोक्षमार्गको कहते हुए " णिच्छय-णयेण " इत्यादि गाथाएं दो हैं। फिर जिसको शुद्ध आत्माकी भावनासे उत्पन्न अतींद्रिय सुख ही ग्रहण करनेयोग्य मालूम होता है वह ही भाव सम्यग्दृष्टी है। इस व्याख्यानकी मुख्यतासे " जेण विजाण " इत्यादि सूत्र एक है। आगे निश्चय रत्नत्रयमई मार्गसे मोक्ष तथा व्यवहार रत्नत्रयमई मार्गसे पुण्यबंध होता है इस कथनकी मुख्यतासे " दंसणणाणचरित्ताणि " इत्यादि आठवें स्थलमें सूत्र एक है। आगे निर्विकल्प परमसमाधि स्वरूप सामायिक नाम संयममें ठहर-नेको समर्थ होनेपर भी जो उसको छोडकर एकान्तसे सराग चारित्रके आचरण करनेको मोक्षका कारण मानता है वह तब स्थूल परसमय कहलाता है तथा जो उस समाधिरूप सामायिक संयम में तिष्ठना चाहकर भी उसके योग्य सामग्रीको न पाकर अशुभसे बचनेके लिये शुभोपयोगका आश्रय करता है वह सूक्ष्म परसमय कहा जाता है, इस व्याख्यानरूपसे " अण्णाणादो णाणी " इत्यादि गाथाएं पांच हैं। फिर तीर्थंकर आदिके पुराण व जीव आदि नव पदार्थके कहनेवाले आगमका ज्ञान प्राप्त करनेसे व उसमें भक्ति करनेसे यद्यपि उस कालमें पुण्याश्रव रूप परिणाम होनेसे मोक्ष नहीं होती है तथापि उसीके आधारसे कालांतरमें आस्रवरहित शुद्धोपयोग परिणाम की सामग्री प्राप्त होनेपर मोक्ष होती है इस कथनकी मुख्यतासे 'सपदत्थं' इत्यादि दो सूत्र हैं। फिर इस पंचास्तिकाय प्राभृत शास्त्रका तात्पर्य साक्षात् मोक्षका कारणरूप वीतरागता ही है, इस व्याख्यानको कहते हुए "तम्हा णिव्वुदिकामा" इत्यादि एक सूत्र है। पश्चात् संकोच करते हुए शास्त्रको पूर्ण करनेके लिये " मग्गप्पभावणट्ठं " इत्यादि गाथा सूत्र एक है। इस तरह बारह

स्थलोंके द्वारा मोक्षमार्गका विशेष व्याख्यान करनेके लिये तीसरे महाअधिकारमें समुदाय पातनिका है।

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे गाथाके पहले आधे भागसे जीवका स्वभाव व दूसरे आधे भागसे जीव स्वभावमें स्थिरतारूप चारित्र मोक्षमार्ग है ऐसा कहते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(जीवसहाओ) जीवका स्वभाव (अप्पडिहद) अखंडित (णाणं) ज्ञान तथा (दंसणं) दर्शन है ये दोनों (अणण्णमयं) जीवसे भिन्न नहीं हैं (च) और (तेसु) इन दोनों अखण्ड ज्ञानदर्शनमें (णियदं) निश्चल रूपसे (अत्थित्तम्) रहना सो (अणिंदियं) रागादि दोषोंसे रहित वीतराग (चरियं) चारित्र (भणियं) कहा गया है। यही चारित्र मोक्षमार्ग है।

विशेषार्थ–इस गाथाका दूसरा अर्थ यह है कि जैसे केवलज्ञान व केवलदर्शन जीवका स्वभाव है वैसे अपने स्वरूपमें स्थितिरूप वीतराग चारित्र भी जीवका स्वभाव है। सर्व वस्तुओंमें प्राप्त अनंत स्वभावोंको एक साथ विशेष रूप जाननेको समर्थ केवलज्ञान है तथा उनहीके सामान्य स्वरूपको एक साथ ग्रहण करनेको समर्थ केवलदर्शन है–ये दोनों ही जीवके स्वभाव हैं यद्यपि ये दोनों ज्ञान दर्शन स्वाभाविक शुद्ध सामान्य विशेष रूप चैतन्यमई जीवकी सत्तासे संज्ञा लक्षण व प्रयोजन आदिकी अपेक्षा भेदरूप हैं तथापि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा अभेद हैं व तैसे ही पूर्वमें कहे हुए जीव स्वभावसे अभिन्न यह चारित्र है जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप है–इन्द्रियोंका व्यापार न होनेसे विकाररहित व निर्दोष है। तथा जीवके स्वभावमें निश्चल स्थिति-रूप है क्योंकि कहा है–'स्वरूपे चरणं चारित्रम्' अर्थात् आत्मभावमें तन्मय होना चारित्र है। यह चारित्र दो प्रकारका है–एक परचरित, दूसरा स्वचरित। परचरित वह है कि जो स्वयं नहीं आचरण करके भी दूसरोंके द्वारा अनुभव किये हुये मनोज्ञ काम भोगोंका स्मरणरूप अपध्यान करना तथा आत्मभावसे विपरीत अन्य परभावोंमें आचरण करना। इससे विपरीत अपने स्वरूप में आचरण करना स्वचरित है। यही वास्तवमें चारित्र है, यही परमार्थ शब्दसे कहने योग्य मोक्षका कारण है–अन्य कोई कारण नहीं है। इस मोक्षमार्गको न जानकर हम लोगोंका भी अनंतकाल मोक्षसे भिन्न अनादि संसारके कारणरूप मिथ्यादर्शन तथा रागादि भावोंमें लीन होते हुए चला गया। ऐसा जानकर अब उस जीवके स्वभावमें निश्चल स्थितिरूप चारित्रकी ही भावना करनी योग्य है जो साक्षात् मोक्षका कारण है। जैसा कहा है–

इसी तरह योंही अनंतकाल उनका वीत गया जो संसारके कारणरूप भावोंमें लवलीन हैं क्योंकि उन्होंने मोक्षके कारणोंके साधनेको कुछ भी नही जाना ॥ १५४ ॥

इस तरह जीवके स्वभावको कह करके जीवके स्वभावमें निश्चल ठहरना ही मोक्षमार्ग है ऐसा कहते हुए प्रथम स्थलमें गाथा कही।

स्वसमयपरसमयोपादानव्युदासपुरस्सरकर्मक्षयद्वारेण जीवस्वभावनियतचरितस्य मोक्षमार्गत्वद्योतनमेतत्।

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥ १५५ ॥

जीवः स्वभावनियतः अनियतगुणपर्यायोऽथ परसमयः।
यदि कुरुते स्वकं समयं प्रभ्रस्यति कर्मबन्धात् ॥ १५५ ॥

संसारिणो हि जीवस्य ज्ञानदर्शनावस्थितत्वात् स्वभावनियतस्याप्यनादिमोहनीयोदयानुवृत्तिपरत्वेनोपरक्तोपयोगस्य सतः समुपात्तभाववैश्वरूप्यत्वादनियतगुणपर्यायत्वं परसमयः परचरितमिति यावत्। तस्यैवानादिमोहनीयोदयानुवृत्तिपरत्वमपास्यात्यन्तशुद्धोपयोगस्य सतः समुपात्तभावैक्यरूप्यत्वान्नियतगुणपर्यायत्वं स्वसमयः स्वचरितमिति यावत्। अथ खलु यदि कथञ्चनोद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिर्जीवः परसमयं व्युदस्य स्वसमयमुपादत्ते तदा कर्मबन्धादवश्यं भ्रश्यति। यतो हि जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्ग इति ॥ १५५ ॥

अन्वयार्थः-(जीवः) जीव, (स्वभावनियतः) (द्रव्य-अपेक्षासे) स्वभावनियत होने पर भी, (अनियतगुणपर्यायः अथ परसमयः) यदि अनियत गुणपर्यायवाला हो तो परसमय है। (यदि) यदि वह (स्वकं समयं कुरुते) (नियत गुणपर्यायसे परिणमित होकर) स्वसमयको करता है तो (कर्मबन्धात्) कर्मबन्धसे (प्रभ्रस्यति) छूटता है।

टीकाः—यहां (इस गाथामें) जीवस्वभावमें नियत चारित्र को स्वसमयके ग्रहण और परसमयके त्यागपूर्वक कर्मक्षय द्वारा मोक्षमार्गपना दर्शाया है। संसारी जीव, (द्रव्य-अपेक्षासे) ज्ञानदर्शनमें अवस्थित होनेके कारण स्वभावमें नियत (-निश्चलरूपसे स्थित) होने पर भी, जब अनादि मोहनीयके उदयका अनुसरण करके परिणति करनेके कारण उपरक्त उपयोगवाला (-अशुद्ध उपयोगवाला) होता है तब भावोंका विश्वरूपपना (-अनेकरूपपना) ग्रहण किया होनेके कारण उसके जो अनियतगुणपर्यायपना होता है वह परसमय अर्थात् परचारित्र है। वही (जीव) जब अनादि मोहनीयके उदयका अनुसरण करनेवाली परिणतिको छोडकर अत्यंत शुद्ध उपयोगवाला होता है तब भावका एकरूपपना ग्रहण किया होनेके कारण उसके जो नियतगुणपर्यायपना होता है वह स्वसमय अर्थात् स्वचारित्र है।

अब, वास्तवमें यदि किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके जीव परसमयको छोडकर स्वसमयको ग्रहण करता है तो कर्मबंधसे अवश्य छूटता है, इसलिये वास्तवमें जीवस्वभावमें नियत होना रूप चारित्र मोक्षमार्ग है ॥ १५५ ॥

सं०ता०—अथ स्वसमयोपादानेन कर्मक्षयो भवतीति हेतोर्जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्गो भवत्येवं भण्यते,—जीवो सहावणियदो—जीवो निश्चयेन स्वभावनियतोपि, अणियदगुणपज्जओ य परसमओ

-अनियतगुणपर्यायः सन्नथ परसमयो भवति । तथाहि । जीवः शुद्धनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावरतावत् पश्चाद्व्यवहारेण निर्मोहशुद्धात्मोपलब्धिप्रतिपक्षभूतेनानादिमोहोदयवशेन मतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायपरिणतः सन् परसमयरतः परचरितो भवति। यदा तु निर्मलविवेकज्योतिःसमुत्पादकेन परमात्मानुभूतिलक्षणेन परमकलानुभवेन शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं भावयति तदा स्वसमयः स्वचरितरतो भवति। जदि कुणदि सगं समयं—यदि चेत्करोति स्वकं समयं । एवं स्वसमयपरसमयस्वरूपं ज्ञात्वा यदि निर्विकारस्वसंवित्तिरूपस्वसमयं करोति परिणमति, पब्भस्सदि कम्मबंधादो-प्रभ्रष्टो भवति कर्मबंधात्, तदा केवलज्ञानाद्यनंतगुणव्यक्तिरूपान्मोक्षात्प्रतिपक्षभूतो योसौ बंधस्तस्माच्च्युतो भवति । ततो ज्ञायते स्वसंवित्तिलक्षणस्वसमयरूपं जीवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति भावार्थः ॥ १५५ ॥ एवं स्वसमयपरसमयभेदसूचनरूपेण गाथा गता ।

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे कहते हैं कि अपने आत्मा के शुद्ध स्वभावको ग्रहण करनेसे कर्मोंका क्षय होता है इसलिये जीवके स्वभावमें निश्चलतासे आचरण करना ही मोक्षमार्ग है।

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जीवो) यह जीव (सहावणियदो) निश्चयसे स्वभावमें तिष्ठनेवाला है (अथ) तथापि व्यवहारनयसे (अणियदगुणपज्जओ) अपने स्वभावसे विपरीत गुण व पर्यायोंमें परिणमन करता हुआ (परसमओ) परसमय या पर पदार्थमें रत होजाता है। (जदि) यदि वही जीव (सगं समयं) अपने आत्मीक आचरणको (कुणदि) करे तो (कम्मबंधादो)कर्मोंके बन्धनसे (पब्भस्सदि) छूट जाता है ।

विशेषार्थ—यह जीव शुद्ध निश्चयनयसे विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावका धारी है परन्तु व्यवहारनयसे मोहरहित शुद्धात्माकी प्राप्तिसे विपरीत अनादिकालसे मोहकर्मके उदयके वशसे मतिज्ञान आदि विभाव गुण व नर नारक आदि विभाव पर्यायोंमें परिणमन करता हुआ पर समय अर्थात् पर पदार्थोंमें रत होता हुआ परचरितवान होरहा है। जब यह जीव निर्मल विवेक ज्योतिसे उत्पन्न परमात्माकी अनुभूतिरूप आत्माकी भावना करता है तब स्वसमय रूप आत्माके चारित्रमें चलनेवाला या रत होनेवाला होता है। इस तरह स्वसमयका व पर समयका स्वरूप जानकर जो कोई जीव निर्विकार स्वसंवेदन रूप स्वसमयमें लीन होता है तब वह केवलज्ञान आदि अनन्त गुणोंकी प्रगटतारूप मोक्षसे विपरीत जो बंध है उससे छूट जाता है। इससे यह जाना जाता है कि स्वानुभव लक्षण स्वसमयरूप या जीवके स्वभावमें निश्चल चारित्ररूप ही मोक्षमार्ग है ॥ १५५ ॥

इस तरह स्वसमय और परसमयके भेदकी सूचना करते हुए गाथा पूर्ण हुई।

परचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत् ।

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं ।

सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो ॥ १५६ ॥

यः परद्रव्ये शुभमशुभं रागेण करोति यदि भावम् ।

स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरितचरो भवति जीवः ॥ १५६ ॥

यो हि मोहनीयोदयानुवृत्तिवशाद्रज्यमानोपयोगः सन् परद्रव्ये शुभमशुभं वा भावमादधाति स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरित्रचर इत्युपगीयते, यतो हि स्वद्रव्ये शुद्धोपयोगवृत्तिः स्वचरितं, परद्रव्ये सोपरागोपयोगवृत्तिः परचरितमिति ॥ १५६ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (रागेण) रागसे (परद्रव्ये) परद्रव्यमें (शुभम् अशुभम् भावम्) शुभ या अशुभ भाव (यदि करोति) करता है, (सः जीवः) वह जीव (स्वकचारित्रभ्रष्टः) स्वचारित्र-भ्रष्ट ऐसा (परचरितचरः भवति) परचारित्रका आचरण करनेवाला है।

टीकाः—यह, परचारित्रमें प्रवर्तन करनेवालेके स्वरूपका कथन है।

जो (जीव) वास्तवमें मोहनीयके उदयका अनुसरण करनेवाली परिणतिके वश रागरूप उपयोगवाला [उपरक्त-उपयोगवाला] होता हुआ परद्रव्यमें शुभ या अशुभ भावको धारण करता है, वह (जीव) स्वचारित्रसे भ्रष्ट परचारित्रका आचरण करनेवाला कहा जाता है, क्योंकि वास्तवमें स्वद्रव्यमें शुद्ध-उपयोगरूप परिणति वह स्वचारित्र है और परद्रव्यमें रागसहित-उपयोगरूप परिणति वह परचारित्र है ॥ १५६ ॥

सं०ता०-अथ परसमयपरिणतपुरुषस्वरूपं पुनरपि व्यक्तीकरोति, जो परदव्वह्मि सुहं असुहं रायेण कुणदि जदि भावं-यः परद्रव्ये शुभमशुभं वा रागेण करोति यदि भावं, सो सगचरित्तभट्ठो-सः स्वकचरित्रभ्रष्टः सन् परचरियचरो हवदि जीवो—परचरित्रचरो भवति जीव इति। तथाहि-यः कर्ता शुद्धगुणपर्यायपरिणतनिजशुद्धात्मद्रव्यात्परिभ्रष्टो भूत्वा निर्मलात्मतत्त्वविपरीतेन रागभावेन परिणम्य शुभाशुभपरद्रव्योपेक्षालक्षणाच्छुद्धोपयोगाद्विपरीतः समस्तपरद्रव्येषु शुभमशुभं वा भावं करोति स ज्ञानानंदैकस्वभावात्मा तत्त्वानुचरणलक्षणात्स्वकीयचारित्राद् भ्रष्टः सन् स्वसंवित्त्यनुष्ठानविलक्षणपरचरित्रचरो भवतीति सूत्राभिप्रायः ॥ १५६ ॥

हिन्दी ता०-उत्थानिका-आगे पर समयमें परिणमन करते हुए पुरुषका स्वरूप फिर भी प्रगट करते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(जदि) जब (जो) जो कोई (रागेण) रागभावसे (परदव्वम्मि) आत्माके सिवाय परद्रव्यमें (सुहं असुहं भावं) शुभ या अशुभ भावको (कुणदि) करता है (सो) तब वह (जीवो) जीव (सगचरित्तभट्ठो) आत्मीक चारित्रसे भ्रष्ट होकर (परचरियचरो) पर चरितमें चलनेवाला (हवदि) होजाता है।

विशेषार्थ-जो कोई शुद्ध गुण पर्यायोंमें परिणमनेवाले अपने शुद्ध आत्मद्रव्यसे भ्रष्ट होकर

निर्मल आत्मतत्त्वसे विपरीत रागभावसे परिणमन करके शुभ और अशुभ द्रव्योंमें उदासीनतारूप शुद्धोपयोगसे विपरीत सर्व परद्रव्योंके सम्बन्धमें शुभ या अशुभ भाव करता है सो ज्ञानानंदमई एक स्वभावरूप आत्माके तत्त्वमें चलनेरूप अपने ही चारित्रसे भ्रष्ट होकर स्वसंवेदनमें रमण क्रियासे विलक्षण परचारित्रमें चलनेवाला होजाता है, यह सूत्रका अभिप्राय है ॥ १५६ ॥

परचारितप्रवृत्तेर्बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिषेधनमेतत् ।

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण ।
सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवंति ॥ १५७ ॥

आस्रवति येन पुण्यं पापं वात्मनोऽथ भावेन ।
स तेन परचरित्रः भवतीति जिनाः प्ररूपयन्ति ॥ १५७ ॥

इह किल शुभोपरक्तो भावः पुण्यास्रवः, अशुभोपरक्तः पापास्रव इति । तत्र पुण्यं पापं वा येन भावेनास्रवति यस्य जीवस्य यदि स भावो भवति स जीवस्तदा तेन परचरित इति प्ररूप्यते । ततः परचरितप्रवृत्तिर्बन्धमार्ग एव, न मोक्षमार्ग इति ॥ १५७ ॥

अन्वयार्थः-(येन भावेन) जिस भावसे (आत्मनः) आत्माको [पुण्यं पापं वा] पुण्य अथवा पाप (अथ आस्रवति) आस्रवित होते हैं, (तेन) उस भाव द्वारा (सः) वह (जीव) (परचरित्रः भवति) परचारित्र होता है—(इति) ऐसा (जिनाः) जिन (प्ररूपयन्ति) प्ररूपित करते हैं ।

टीकाः—यहां, परचारित्रप्रवृत्ति बंधहेतुभूत होनेसे उसे मोक्षमार्गपनेका निषेध किया गया है

यहां वास्तवमें शुभोपरक्त भाव (-शुभरूप विकारी भाव) वह पुण्यास्रव है और और अशुभोपरक्त भाव (-अशुभरूप विकारी भाव) पापास्रव है । वहां, पुण्य अथवा पाप जिस भावसे आस्रवित होते हैं, वह भाव जब जिस जीवको हो तब वह जीव उस भाव द्वारा परचारित्र है-ऐसा (जिनेन्द्रों द्वारा) प्ररूपित किया जाता है । इसलिये परचारित्रमें प्रवृत्ति सो बंधमार्ग ही है, मोक्षमार्ग नहीं है ॥ १५७ ॥

सं०ता०—अथ परचरित्रपरिणतपुरुषस्य बंधं दृष्ट्वा मोक्षं निषेधयति । अथवा पूर्वोक्तमेव परसमयस्वरूपं वृद्धमतसंवादेन दृढयति, आसवदि जेण पुण्णं पावं वा—आस्रवति येन पुण्यं पापं वा येन निरास्रवपरमात्मतत्त्वविपरीतेन सम्यगास्रवति । किं । पुण्यं पापं वा । येन केन भावेन परिणामेन । कस्य भावेन ? अप्पणो—आत्मनः अथ—अहो सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवेंति—स जीवो यदि निरास्रवपरमात्मस्वभावाच्च्युतो भूत्वा तं पूर्वोक्तं सास्रवभावं करोति तदा स जीवस्तेन भावेन शुद्धात्मानुभूत्याचरणलक्षणस्वचरित्राद् भ्रष्टः सन् परचरित्रो भवतीति जिनाः प्ररूपयंति । ततः स्थितं सास्रवभावेन मोक्षो न भवतीति ॥ १५७ ॥ एवं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावाच्छुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपनिश्चयमोक्षमार्गविलक्षणस्य परसमयस्य विशेषविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं ।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे ऐसा कहते हैं कि जो परमें आचरण करते हैं उन पुरुषोंको बंध देखा जाता है—उनके मोक्ष नहीं होसक्ती है। अथवा उस ही पूर्वमें कहे हुए परसमयके स्वरूपको प्राचीन मतको कहते हुए दृढ करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(अध) तथा (जेण) जिस (अप्पणो भावेण) आत्माके भावसे (पुण्णं) पुण्य (वा) या (पावं) पाप (आसवदि) आता है (तेण) तिस भावके कारण (सो) यह जीव (परचरित्तो) परमें आचरण करनेवाला (हवदित्ति) होजाता है ऐसा (जिणा) जिनेन्द्र (परूवंति) कहते हैं।

विशेपार्थ—आस्रवरहित परमात्म–तत्त्वसे विपरीत भावके द्वारा परिणमन करके जब यह जीव पुण्य या पापका आस्रव करता है तब निरास्रव परमात्माके स्वभावसे छूटा हुआ शुद्धात्माके अनुभवमें आचरणरूप आत्माके चारित्रसे भ्रष्ट होकर परमें आचरण करनेवाला होजाता है इससे यह सिद्ध हुआ कि जिस भावसे पापादिका आस्रव होता है, उस भावसे मोक्ष नहीं होसक्ता ॥ १५७ ॥

इस प्रकार विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावमई शुद्ध आत्मतत्त्वका सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान व अनुभव रूप जो निश्चय मोक्षमार्ग है उससे विलक्षण पर–समयका विशेप वर्णन करते हुए दो गाथाएं पूर्ण हुईं।

स्वचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत् ।

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण ।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥ १५८ ॥

यः सर्वसङ्गमुक्तः अनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन।
जानाति पश्यति नियतं सः स्वकचरितं चरति जीवः ॥ १५८ ॥

यः खलु निरुपरागोपयोगत्वात्सर्वसङ्गमुक्तः परद्रव्यव्यावृत्तोपयोगत्वादनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन ज्ञानदर्शनरूपेण जानाति पश्यति नियतमवस्थितत्वेन, स खलु स्वकं चरितं चरति जीवः। यतो हि दृशिज्ञप्तिस्वरूपे पुरुपे तन्मात्रत्वेन वर्तनं स्वचरितमिति ॥ १५८ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (सर्वसङ्गमुक्तः) सर्वसंगमुक्त और (अनन्यमनाः) अनन्यमनवाला वर्तता हुआ (आत्मानं) आत्माको (स्वभावेन) (ज्ञानदर्शनरूप) स्वभाव द्वारा (नियतं) नियतरूपसे (-स्थिरतापूर्वक) (जानाति पश्यति) जानता—देखता है (सः जीवः) वह जीव (स्वकचरितं) स्वचारित्र (चरति) आचरता है।

टीका:—यह, स्वचारित्रमें प्रवर्तन करनेवालेके स्वरूपका कथन है।

जो (जीव) वास्तवमें अविकारी उपयोगवाला होनेके कारण सर्वसंगमुक्त वर्तता हुआ, परद्रव्यसे निवृत्त उपयोगवाला होनेके कारण अनन्यमनवाला वर्तता हुआ, आत्माको ज्ञानदर्शनरूप स्वभाव द्वारा नियतरूपसे अर्थात् अवस्थितरूपसे जानता–देखता है, वह जीव वास्तवमें स्वचारित्र आचरता है क्योंकि वास्तवमें दृशिज्ञप्तिस्वरूप पुरुषमें (–आत्मामें) तन्मात्ररूपसे वर्तना सो स्वचारित्र है ॥ १५८ ॥

अथ स्वचरितप्रवृत्तपुरुषस्वरूपं विशेषेण कथयति–"जो" इत्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यानं क्रियते सो–सः कर्ता, सगचरियं चरदि–निजशुद्धात्मसंवित्त्यनुचरणरूपं परमागमभाषया वीतरागपरमसामायिकसंज्ञं स्वचरितं चरति अनुभवति । स कः । जीवो–जीवः । कथंभूतः । जो सव्वसंगमुक्को—यः सर्वसंगमुक्तः जगत्त्रयकालत्रयेपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च कृत्वा समस्तबाह्याभ्यंतरपरिग्रहेण मुक्तो रहितः शून्योपि निस्संगपरमात्मभावनोत्पन्नसुन्दरानंदस्यंदिपरमानंदैकलक्षणसुखसुधारसास्वादेन पूर्णकलशवत्सर्वात्मप्रदेशेषु भरितावस्थः । पुनरपि किंविशिष्टः ? अणण्णमणो–अनन्यमनाः कपोतलेश्याप्रभृतिदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिसमस्तपरभावोत्पन्नविकल्पजालरहितत्वेनैकाग्रमनाः । पुनश्च किं करोति ? जाणदि–जानाति स्वपरपरिच्छित्त्याकारेणोपलभते । पस्सदि–पश्यति निर्विकल्परूपेणावलोकयति, णियदं –निश्चितं । कं । अप्पणं—निजात्मानं । केन कृत्वा । सहावेण—निर्विकारचैतन्यचमत्कारप्रकाशेनेति । ततः स्थितं विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणे जीवस्वभावे निश्चलावस्थानं मोक्षमार्ग इति ॥ १५८ ॥

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे स्वचरितमें प्रवर्तन करनेवाले पुरुषका स्वरूप विशेष करके कहते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(जो) जो (सव्वसंगमुक्को) सर्व परिग्रहसे रहित होकर (णण्णमणो) एकाग्र मन होता हुआ (अप्पाणं) आत्माको (सहावेण) स्वभाव रूपसे (णियदं) निश्चल होकर (जाणदि) जानता है (पस्सदि) देखता है (सो) वह (जीवो) जीव (सगचरियं) स्वचरित को (चरदि) आचरण करता है ।

विशेषार्थ–जो तीन लोककी व तीन कालकी सर्व बाहरी व भीतरी परिग्रहको मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदनासे त्यागता हुआ भी परिग्रहरहित परमात्माकी भावनासे पैदा होनेवाले सुन्दर आनंदसे भरे हुए परमानंदमई सुखरूपी अमृतके स्वादसे पूर्ण कलशकी तरह सर्व आत्माके प्रदेशोंमें भरा हुआ है और कपोतलेश्याको आदि लेकर देखे, सुने व अनुभव किये हुए भोगोंकी इच्छाको आदि लेकर सर्व परभावोंसे पैदा होनेवाले विकल्प जालोंसे रहित होजाने के कारण एकाग्रमन है तथा अपने आत्माको निर्विकार चैतन्यके चमत्कारसे प्रकाशरूप निश्चलपने ऐसा जानता है कि यह आप और परको जाननेवाला है व उसी ही आत्माको विकल्प रहित होकर देखता है अर्थात् अनुभव करता है वही जीव अपने शुद्ध आत्माके अनुभवरूप आचरणका व परमागमकी भाषासे वीतराग परम सामायिक नामके आत्मीक चारित्रका अनुभव करता है ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि विशुद्ध ज्ञान, दर्शन स्वरूप जीवके स्वभावमें निश्चलतासे ठहरना सोई मोक्षमार्ग है ॥ १५८ ॥

शुद्धस्वचरितप्रवृत्तिपथप्रतिपादनमेतत् ।

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा ।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥ १५९ ॥

चरितं चरति स्वकं स यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा ।
दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पं चरत्यात्मनः ॥ १५९ ॥

यो हि योगीन्द्रः समस्तमोहव्यूहबहिर्भूतत्वात्परद्रव्यस्वभावरहितात्मा सन्, स्वद्रव्यमेकमेवाभिमुख्येनानुवर्तमानः स्वस्वभावभूतं दर्शनज्ञानविकल्पमप्यात्मनोऽविकल्पत्वेन चरति, स खलु स्वकं चरितं चरति। एवं हि शुद्धद्रव्याश्रितमभिन्नसाध्यसाधनभावं निश्चयमाश्रित्य मोक्षमार्गप्ररूपणम् । यत्तु पूर्वमुद्दिष्टं तत्स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्य प्ररूपितम् । न चैतद्विप्रतिषिद्धं निश्चयव्यवहारयोः साध्यसाधनभावत्वात् सुवर्णसुवर्णपाषाणवत् । अत एवोभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थप्रवर्तनेति ॥ १५९ ॥

अन्वयार्थः-(यः) जो (परद्रव्यात्मभावरहितात्मा) परद्रव्यात्मक भावोंसे रहित स्वरूपवाला वर्तता हुआ, (दर्शनज्ञानविकल्पम्) (निजस्वभावभूत) दर्शनज्ञानरूप भेदको [आत्मनः अविकल्पं] आत्मासे अभेदरूप (चरति) आचरता है, (सः) वह (स्वकं चरितं चरति) स्वचारित्रको आचरता है।

टीकाः—यह, शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्तिके मार्गका कथन है।

जो योगीन्द्र, समस्त मोहव्यूहसे बहिर्भूत होनेके कारण परद्रव्यके स्वभावरूप भावोंसे रहित स्वरूपवाले वर्तते हुए, स्वद्रव्यको एकको ही अभिमुखरूपसे अनुसरते हुए निजस्वभावभूत दर्शनज्ञानभेदको भी आत्मासे अभेदरूप आचरते हैं, वे वास्तवमें स्वचरित्रको आचरते हैं।

इस प्रकार वास्तवमें शुद्धद्रव्यके आश्रित, अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनयके आश्रयसे मोक्षमार्गका प्ररूपण किया गया। और जो पहले (१०७ वीं गाथामें) दर्शाया गया था वह स्वपरहेतुक पर्यायके आश्रित, भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनयके आश्रयसे प्ररूपित किया गया था। इसमें परस्पर विरोध आता है ऐसा भी नहीं है, क्योंकि सुवर्ण और सुवर्णपाषाणकी भांति निश्चय-व्यवहारको साध्य-साधनपना है, इसीलिये पारमेश्वरी (-जिनभगवानकी) तीर्थप्रवर्तना दोनों नयोंके आधीन है ॥१५९॥

सं०ता०—अथ तमेव स्वसमयं प्रकारांतरेण व्यक्तीकरोति, चरदि—चरति । किं । चरियं-चरितं । कथंभूतं ? सगं—स्वकं, सो-स पुरुषः निरुपरागसदानंदैकलक्षणं निजात्मानुचरणरूपं जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखनिंदाप्रशंसादिसमताभावनानुकूलं स पुरुषः स्वकीयं चरितं चरति । यः किंविशिष्टः ? जो

परदव्वप्पभावरहिदप्पा—यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा पंचेन्द्रियविषयाभिलापममत्वप्रभृतिनिरवशेषविकल्प-जालरहितत्वात्समस्तवहिरंगपरद्रव्येषु ममत्वकारणभूतेषु स्वात्मभाव उपादेयवुद्धिरालंवनबुद्धिर्ध्येयबुद्धि-श्चेति तया रहित आत्मस्वभावो यस्य स भवति परद्रव्यात्मभावरहितात्मा योगी। पुनरपि किं करोति यः। दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो—दर्शनज्ञानविकल्पसविकल्पमभिन्नं चरत्यात्मनः सकाशादिति। तथाहि—पूर्वं सविकल्पावस्थायां ज्ञाताहं द्रष्टाहमिति यद्विकल्पद्वयं तन्निर्विकल्पसमाधिकालेऽनंतज्ञानानंदादि-गुणस्वभावादात्मनः सकाशादभिन्नं चरतीति सूत्रार्थः॥ १५९॥ एवं निर्विकल्पस्वसंवेदनस्वरूपस्य पुनरपि स्वसमयस्यैव विशेषव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतं।

हिन्दी—उत्थानिका—आगे इसी ही स्वसमयरूप तत्त्वको अन्य प्रकारसे प्रगट करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थः—(जो) जो (परदव्वप्पभावरहिदप्पा) परद्रव्योंमें आत्मापनेके भावसे रहित होकर (दंसणणाणवियप्पं) दर्शन और ज्ञानके भेदको (अप्पादो) अपने आत्मासे (अवियप्पं) अभिन्न या एकरूप (चरदि) आचरण करता है [सो] वही [सगं चरियं] स्वचारित्रको [चरदि] आचरण करता है।

विशेषार्थ—जो योगी पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी इच्छा और ममताभावको आदि ले सर्व विकल्प जालोंसे रहित होकर ममत्वके कारण भूत सर्व बाहरी परद्रव्योंमें अपनापना, उपादेयबुद्धि, आलंबनबुद्धि या ध्येयबुद्धिको छोड देता है तथा जो पहले विकल्प सहित अवस्थामें ऐसा ध्याता था कि मैं ज्ञाता हूं दृष्टा हूं, अब निर्विकल्पसमाधिके समयमें अनन्तज्ञान व अनन्त आनन्द आदि गुण और स्वभावमई आत्मासे उन ज्ञानदर्शन विकल्पको एक रूप करके अनुभव करता है सो ही महात्मा जीवन मरण, लाभ अलाभ, सुख दुःख, निन्दा प्रशंसा आदिमें समताभावके अनुकूल वीतराग सदा आनन्दमई अपने आत्मामें अनुभव रूप आत्मीक चारित्रका पालनेवाला होता है॥ १५९॥

इस तरह निर्विकल्प स्वसंवेदन रूप स्वसमयका ही पुनः विशेष व्याख्यान करते हुए दो गाथाएं पूर्ण हुईं।

निश्चयमोक्षमार्गसाधनभावेन पूर्वोद्दिष्टव्यवहारमोक्षमार्गनिर्देशोऽयम्।

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति॥ १६०॥

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमङ्गपूर्वगतम्।
चेष्टा तपसि चर्या व्यवहारो मोक्षमार्ग इति॥ १६०॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। तत्र धर्मादीनां द्रव्यपदार्थविकल्पवतां तत्त्वार्थ-श्रद्धानभावस्वभावं भावान्तरं श्रद्धानाख्यं सम्यक्त्वं, तत्त्वार्थश्रद्धाननिर्वृत्तौ सत्यामङ्गपूर्वगतार्थ-

परिच्छित्तिर्ज्ञानम्, आचारादिसूत्रप्रपञ्चितविचित्रयतिवृत्तसमस्तसमुदयरूपे तपसि चेष्टा चर्या इत्येषः स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो मोक्षमार्गः कार्तस्वरपाषाणार्पितदीप्तजातवेदोवत्समाहितान्तरङ्गस्य प्रतिपदमुपरितनशुद्धभूमिकासु परमरम्यासु विश्रान्तिमभिन्नां निष्पादयन्, जात्यकार्तस्वरस्येव शुद्धजीवस्य कथंचिद्भिन्नसाध्यसाधनभावाभावात्स्वयं शुद्धस्वभावेन विपरिणममानस्यापि, निश्चयमोक्षमार्गस्य साधनभावमापद्यत इति ॥ १६० ॥

अन्वयार्थः-(धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वम्) धर्मास्तिकाय आदिका श्रद्धान सो सम्यक्त्व, (अङ्गपूर्वगतम् ज्ञानम्) अंगपूर्वसम्बन्धी ज्ञान सो ज्ञान और (तपसि चेष्टा चर्या) तपमें चेष्टा (-प्रवृत्ति) सो चारित्र,-(इति) इस प्रकार (व्यवहारः मोक्षमार्गः) व्यवहारमोक्षमार्ग है।

टीकाः-निश्चयमोक्षमार्गके साधनरूपसे, पूर्वोद्दिष्ट (१०७ वीं गाथामें उल्लिखित) व्यवहारमोक्षमार्गका यह निर्देश है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सो मोक्षमार्ग है। वहां, (छह) द्रव्यरूप और (नव) पदार्थरूप जिनके भेद हैं ऐसे धर्मादिके तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव जिसका स्वभाव है ऐसा, 'श्रद्धान' नामका भावविशेष सो सम्यक्त्व, तत्त्वार्थश्रद्धानके सद्भावमें अंगपूर्वगत पदार्थोंका अवबोधन (-जानना) सो ज्ञान, आचारादि सूत्रों द्वारा भेद रूप कहे गये अनेकविध मुनि-आचारोंके समस्त समुदायरूप तपमें चेष्टा (प्रवर्तन) सो चारित्र,-ऐसा यह, स्वपरहेतुक पर्यायके आश्रित, भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनयके आश्रयसे अनुसरण किया जानेवाला मोक्षमार्ग, सुवर्णपाषाणको लगाई जानेवाली प्रदीप्त अग्निकी भांति, समाहित अंतरंगवाले जीवको (अन्तर आत्मा को) परम रम्य ऐसी ऊपर ऊपरकी प्रत्येक शुद्ध भूमिकाओंमें अभिन्न विश्रांति (-अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न कराता हुआ-यद्यपि उत्तम सुवर्णकी भांति शुद्ध जीव कथंचित् भिन्नसाध्यसाधनभावके अभावके कारण स्वयं (अपने आप) शुद्ध स्वभावसे परिणमित होता है तथापि— निश्चयमोक्षमार्गके साधनपनेको प्राप्त होता है ॥ १६० ॥

सं०ता०-अथ यद्यपि पूर्वं जीवादिनवपदार्थपीठिकाव्याख्यानप्रस्तावे "सम्मत्तं णाणजुदं" इत्यादि व्यवहारमोक्षमार्गो व्याख्यातः तथापि निश्चयमोक्षमार्गस्य साधकोयमिति ज्ञापनार्थं पुनरप्यभिधीयते, धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं भवति, तेषामधिगमो ज्ञानं, द्वादशविधे तपसि चेष्टा चारित्रमिति। इतो विस्तरः। वीतरागसर्वज्ञप्रणीतजीवादिपदार्थविषये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं चेत्युभयं गृहस्थतपोधनयोः समानं, चारित्रं तपोधनानामाचारादिचरणग्रंथविहितमार्गेण प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोग्यं पंचमहाव्रतपंचसमितित्रिगुप्तिषडावश्यकादिरूपं, गृहस्थानां पुनरुपासकाध्ययनग्रंथविहितमार्गेण पंचमगुणस्थानयोग्यं दानशीलपूजोपवासादिरूपं दार्शनिकव्रतिकाद्येकादशनिलयरूपं वा इति व्यवहारमोक्षमार्गलक्षणं। अयं व्यवहारमोक्षमार्गः स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो भव्यजीवस्य निश्चयनयेन भिन्नसाध्यसाधनभावाभावात्स्वयमेव निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यकश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण परिणममानस्यापि

सुवर्णपापाणस्याग्निरिव निश्चयमोक्षमार्गस्य बहिरंगसाधको भवतीति सूत्रार्थः ॥ १६० ॥ एवं निश्चयमोक्षमार्गसाधकव्यवहारमोक्षमार्गकथनरूपेण पंचमस्थले गाथा गता।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे यद्यपि पहले जीवादि नव पदार्थोंकी पीठिकाके व्याख्यानमें "सम्मत्तं णाणजुदं" इत्यादि व्यवहार मोक्षमार्गका व्याख्यान किया गया तथापि निश्चय मोक्षमार्गका यह व्यवहारमार्ग साधक है। ऐसा बतानेके लिये फिर भी कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—[धम्मादी] धर्म आदि छः द्रव्योंका [सद्दहणं] श्रद्धान करना [सम्मत्तं] सम्यक्त्व है। [अंगपुव्वगदं] ग्यारह अंग तथा चौदहपूर्वका जानना [णाणं] सम्यग्ज्ञान है। [तवम्हि] तपमें [चिट्ठा] उद्योग करना [चरिया] चारित्र है [ववहारो मोक्खमग्गोत्ति] यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

विशेषार्थ—वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए जीव आदि पदार्थोंके सम्बन्धमें भले प्रकार श्रद्धान करना तथा जानना ये दोनों सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान गृहस्थ और मुनियोंमें समान होते हैं परन्तु साधु तपस्वियोंका चारित्र आचारसार आदि चारित्र ग्रंथोंमें कहे हुए मार्गके अनुसार प्रमत्त और अप्रमत्त छठे सातवें गुणस्थानके योग्य पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति व छः आवश्यक आदि रूप होता है। गृहस्थोंका चारित्र उपासकाध्ययन शास्त्रमें कही हुई रीतिके अनुसार पंचम गुणस्थानके योग्य दान, शील, पूजा या उपवास आदि रूप या दर्शन, व्रत आदि ग्यारह स्थानरूप होता है। यह व्यवहार मोक्षमार्गका लक्षण है। यह व्यवहार मोक्षमार्ग अपने और दूसरेके परिणमनके आश्रय है—इसमें साधन और साध्य भिन्न २ होते हैं, इसका ज्ञान व्यवहारनयके आश्रयसे होता है। जैसे सुवर्णपाषाणमेंसे सुवर्ण निकालनेके लिये अग्नि बाहरी साधक है तैसे यह व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्गका बाहरी साधक है—जो भव्य जीव निश्चयनयके द्वारा भिन्न साधन और साध्यको छोडकर स्वयं ही अपने शुद्ध आत्मतत्त्वके भले प्रकार श्रद्धान, ज्ञान तथा अनुभवरूप अनुष्ठानमें परिणमन करता है वह निश्चयमोक्षमार्गका आश्रय करनेवाला है। उसके लिये भी यह व्यवहार मोक्षमार्ग बाहरी साधक है ॥ १६० ॥

इस तरह निश्चयमोक्षमार्गके साधक व्यवहार मोक्षमार्गको कहते हुए पांचवें स्थलमें गाथा पूर्ण हुई।

व्यवहारमोक्षमार्गसाध्यभावेन निश्चयमोक्षमार्गोपन्यासोऽयम्।

णिच्छयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति ॥१६१॥

निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिस्तैः समाहितः खलु यः आत्मा।

न करोति किंचिदप्यन्यन्न मुञ्चति स मोक्षमार्ग इति ॥ १६१ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहित आत्मैव जीवस्वभावनियतचरित्रत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्गः अथ खलु कथञ्चनानाद्यविद्याव्यपगमाद्व्यवहारमोक्षमार्गमनुप्रपन्नो धर्मादितत्त्वार्थाश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थाज्ञानातपश्चेष्टानां धर्मादितत्त्वार्थश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थज्ञानतपश्चेष्टानाञ्च त्यागोपादानाय प्रारब्धविविक्तभावव्यापारः, कुतश्चिदुपादेयत्यागे त्याज्योपादाने च पुनः प्रवर्तितप्रतिविधानाभिप्रायो, यस्मिन्यावति काले विशिष्टभावनासौष्ठववशात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैः स्वभावभूतैः सममङ्गाङ्गिभावपरिणत्या तत्समाहितो भूत्वा त्यागोपादानविकल्पशून्यत्वाद्विश्रान्तभावव्यापारः सुनिःप्रकम्पः अयमात्मावतिष्ठते, तस्मिन् तावति काले अयमेवात्मा जीवस्वभावनियतचरितत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्ग इत्युच्यते। अतो निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधनभावो नितरामुपपन्न इति ॥ १६१ ॥

अन्वयार्थः–(यः आत्मा) जो आत्मा (तैः त्रिभिः खलु समाहितः) इन तीन द्वारा वास्तवमें समाहित होता हुआ (अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र द्वारा वास्तवमें एकाग्र–अभेद होता हुआ) (अन्यत् किंचित् अपि) अन्य कुछ भी (न करोति न मुञ्चति) करता नहीं है या छोडता नहीं है, (सः) वह [निश्चयनयेन] निश्चयनयसे (मोक्षमार्गः इति भणितः) 'मोक्षमार्ग' कहा गया है।

टीकाः—व्यवहारमोक्षमार्गके साध्यरूपसे, निश्चयमोक्षमार्गका यह कथन है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ आत्मा ही जीवस्वभावमें नियत चारित्ररूप होनेके कारण निश्चयसे मोक्षमार्ग है।

यह आत्मा वास्तवमें कथंचित् (-किसी प्रकार) अनादि अविद्याके नाश द्वारा व्यवहारमोक्षमार्गको प्राप्त करता हुआ, धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थ अश्रद्धानके, अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी अज्ञानके और अतपमें चेष्टाके त्याग के अर्थ तथा धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थश्रद्धानके, अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी ज्ञानके और तपमें चेष्टाके ग्रहण के अर्थ विविक्त (भेद ज्ञान) भावरूप व्यापार करता हुआ, और किसी कारणसे ग्राह्यका त्याग हो जाने पर तथा त्याज्यका ग्रहण हो जाने पर उसके प्रतिविधानका (प्रतिकार की विधिका अर्थात् प्रायश्चित्त आदि का) अभिप्राय करता हुआ, जिस काल और जितने काल तक विशिष्ट भावनासौष्ठवके कारण स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके साथ अंग–अंगी भावसे परिणति द्वारा उनसे समाहित होकर, त्यागग्रहणके विकल्पसे शून्यपनेके कारण (भेदात्मक) भावरूप व्यापार विरामको प्राप्त होनेसे (रुक जानेसे) सुनिष्कंपरूपसे रहता है, उसकाल और उतनेकाल तक यही आत्मा जीवस्वभावमें नियत चारित्ररूप होनेके कारण निश्चयसे 'मोक्षमार्ग' कहलाता है। इसलिये, निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्गको साध्य–साधनपना अत्यन्त घटित होता है ॥ १६१ ॥

सं०ता०—अथ पूर्वं यद्यपि स्वसमयव्याख्यानकाले "जो सव्वसंगमुक्को" इत्यादि गाथाद्वयेन निश्चयमोक्षमार्गो व्याख्यातः तथापि पूर्वोक्तव्यवहारमोक्षमार्गेण साध्योयमिति प्रतीत्यर्थं पुनरप्युपदिश्यते, भणिदो-

भणितः कथितः । केन । णिच्छयणयेण—निश्चयनयेन । स कः । जो अप्पा—यः आत्मा । कथंभूतः । तिहि तेहिं समाहिदो य—त्रिभिस्तैर्दर्शनज्ञानचारित्रैः समाहित एकाग्रः । पुनरपि किं करोति यः । ण कुणदि किंचिवि अण्णं, ण मुयदि—न करोति किंचिदपिशब्दादात्मनोन्यत्र क्रोधादिकं, न च मुंचत्यात्माश्रितमनंतज्ञानादिगुणसमूहं । सो मोक्खमग्गोत्ति—स एवं गुणविशिष्टात्मा । कथंभूतो भणितः ? मोक्षमार्ग इति । तथाहि—निजशुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपो निश्चयमोक्षमार्गस्तावत् तत्साधकं कथंचित्स्वसंवित्तिलक्षणाविद्यावासनाविलयाद्भेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारमोक्षमार्गमनुप्रपन्नो गुणस्थानसोपानक्रमेण निजशुद्धात्मद्रव्यभावनोत्पन्ननित्यानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तिरूपपरमकलानुभवात् स्वशुद्धात्माश्रितनिश्चयदर्शनज्ञानचारित्रैरभेदेन परिणतो यदा भवति तदा निश्चयनयेन भिन्नसाध्यसाधनस्याभावादयमात्मैव मोक्षमार्ग इति ततः स्थितं सुवर्ण सुवर्णपापाणवन्निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधकभावो नितरां संभवतीति

हिन्दी ता०—उत्थानिका—आगे यद्यपि पहले स्वसमयके व्याख्यानके कालमें "जो सव्वसंगमुक्को" इत्यादि दो गाथाओंके द्वारा निश्चयमोक्षमार्गका व्याख्यान किया था तथापि यह निश्चयमोक्षमार्ग इसके पहली गाथामें कहे हुए व्यवहारमोक्षमार्गके द्वारा साधने योग्य है इस प्रतीतिके लिये फिर भी उपदेश करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जो अप्पा) जो आत्मा (हु) वास्तवमें (तेहिं) उन (तिहि) तीनोंसे एकताको प्राप्त करता हुआ (किंचिवि अण्णं) कुछ भी अन्य कामको (ण कुणदि) नहीं करता है (ण मुयदि) न कुछ छोडता है (सो) वह आत्मा (मोक्खमग्गोत्ति) मोक्षमार्ग है ऐसा (णिच्चयणयेण) निश्चयनयसे (भणिदो) कहा गया है।

विशेषार्थ—जो आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रसे एकाग्र होकर अपने आत्मिक भावके सिवाय क्रोधादि भावोंको नही करता है और न आत्माके आश्रयमें रहनेवाले अनंतज्ञान आदि गुणसमूहको त्यागता है वही निश्चयमोक्षमार्ग स्वरूप है। अपने ही शुद्ध आत्माकी रुचि निश्चय सम्यग्दर्शन है, उसी हीका ज्ञान निश्चय सम्यग्ज्ञान है तथा उसी ही शुद्ध आत्माका निश्चल अनुभव सो निश्चय सम्यक्‌चारित्र है। इन तीनोंकी एकता निश्चय मोक्षमार्ग है—इसीका साधक व्यवहार मोक्षमार्ग है जो किसी अपेक्षा अनुभवमें आनेवाले अज्ञानकी वासनाके विलय होनेसे भेद रत्नत्रय स्वरूप है। इस व्यवहार मोक्षमार्गका साधन करता हुआ गुणस्थानोंके चढनेके क्रमसे जब यह आत्मा अपने ही शुद्ध आत्मीक द्रव्यकी भावनासे उत्पन्न नित्य आनन्द स्वरूप सुखामृत रसके आस्वादसे तृप्तिरूप परम कलाका अनुभव करनेके द्वारा अपने ही शुद्धात्माके आश्रित निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्रमई हो एक रूपसे परिणमन करता है तब निश्चयनयसे भिन्न साध्य और भिन्न साधक भावके अभावसे यह आत्मा ही मोक्षमार्गरूप होजाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सुवर्ण—पाषाणके लिये अग्निकी तरह निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्गमें साध्य और साधकभाव भलेप्रकार सम्भव है ॥ १६१ ॥

आत्मनश्चारित्रज्ञानदर्शनत्वद्योतनमेतत् ।

जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं ।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि ॥ १६२ ॥

यश्चरति जानाति पश्यति आत्मानमात्मनानन्यमयम् ।
स चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति निश्चितो भवति ॥ १६२ ॥

यः खल्वात्मानमात्ममयत्वादनन्यमयमात्मना चरति—स्वभावनियतास्तित्वेनानुवर्तते, आत्मना जानाति—स्वपरप्रकाशकत्वेन चेतयते, आत्मना पश्यति—याथातथ्येनावलोकयते, स खल्वात्मैव चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति कर्तृकर्मकरणानामभेदान्निश्चितो भवति । अतश्चारित्रज्ञानदर्शनरूपत्वाज्जीवस्वभावनियतचरितत्वलक्षणं निश्चयमोक्षमार्गत्वमात्मनो नितरामुपपन्नमिति ॥ १६२ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (आत्मा) (आत्मानम्) आत्माको (आत्मना) आत्मासे (अनन्यमयम्) अनन्यमय (चरति) आचरता है, (जानाति) जानता है, (पश्यति) देखता है, (सः) वह (आत्मा ही) [चारित्रं] चारित्र है, (ज्ञानं) ज्ञान है, (दर्शनम्) दर्शन है (इति) ऐसा (निश्चितः भवति) निश्चित है।

टीकाः—यह, आत्माके चारित्र-ज्ञान-दर्शनपनेका प्रकाशन है ।

जो (आत्मा) वास्तवमें आत्माको—जो कि आत्ममय होनेसे अनन्यमय है उसे-आत्मासे आचरता है अर्थात् स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है, आत्मासे जानता है अर्थात् स्वपरप्रकाशक रूपसे चेतता है, आत्मासे देखता है अर्थात् जैसी है वैसी ही अवलोकता है, वह आत्मा ही वास्तवमें चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है—ऐसा कर्ता-कर्म-करणके अभेदके कारण निश्चित है । इसलिये, चारित्र-ज्ञान दर्शनरूप होनेके कारण आत्माको जीवस्वभावनियत चारित्र जिसका लक्षण है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्गपना अत्यन्त घटित होता है ॥ १६२ ॥

सं०ता०-अथाभेदेनात्मैव दर्शनज्ञानचारित्रं भवतीति कथनद्वारेण पूर्वोक्तमेव निश्चयमोक्षमार्गं दृढयति हवदि-भवति सो-सः कर्ता । किं भवति । चारित्त णाणं दंसणमिदि-चारित्रज्ञानदर्शनत्रितयमिति णिच्छिदो-निश्चितः । स कः । जो-यः कर्ता । किंकरोति । चरदि णादि पेच्छदि-चरति स्वसंवित्तिरूपेणानुभवति जानाति निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेन रागादिभ्यो भिन्नं परिछिनत्ति, पश्यति सत्तावलोकदर्शनेन निर्विकल्परूपेणावलोकयति अथवा विपरीताभिनिवेशरहितशुद्धात्मरुचिपरिणामेन श्रद्दधाति । कं । अप्पाणं निजशुद्धात्मानं । केन कृत्वा । अप्पणा-वीतरागस्वसंवेदनज्ञानपरिणतिलक्षणेनान्तरात्मना । कथंभूतं ? अणण्णमयं—नान्यमयं अनन्यमयं मिथ्यात्वरागादिमयं न भवति । अथवानन्यमयमभिन्नं । केभ्यः ? केवलज्ञानाद्यनंतगुणेभ्य इति । अत्र सूत्रे यतः कारणादभेदविवक्षायामात्मैव दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं भवति ततो ज्ञायते द्राक्षादिपानकवदनेकमप्यभेदविवक्षायामेकं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं जीवस्वभावनियतचरितं

मोक्षमार्गो भवतीति भावार्थः । तथाचोक्तमात्माश्रितनिश्चयरत्नत्रयलक्षणं 'दर्शनं निश्चयः पुन्सि बोधस्तद्बोध इष्यते । स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः ॥' १६२ ॥ इति मोक्षमार्गविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं ।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे अभेदनयसे यह आत्मा ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र स्वरूप है ऐसा कहते हुए पहले कहे हुए मोक्षमार्गको ही दृढ करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जो) जो कोई (अप्पणा) अपने आत्माके द्वारा (अणण्णमयं) आत्मा रूप ही (अप्पाणं) अपने आत्माको (पिच्छदि) श्रद्धान करता है, (णादि) जानता है, (चरदि) आचरता है (सो) वह (णिच्छिदो) निश्चयसे (दंसणं णाणं चारित्तं इदि होदि) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप हो जाता है ।

विशेषार्थ—जो कोई वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानमें परिणमन करता हुआ अपने अन्तरात्मपनेके भावसे मिथ्यात्व व रागादिभावोंसे रहित व केवलज्ञानादि अनन्तगुणोंसे एकतारूप अपने शुद्ध आत्माको सत्ता मात्र दर्शनरूपसे निर्विकल्प होकर देखता है या विपरीत अभिप्रायरहित शुद्धात्माकी रुचिरूप परिणतिसे श्रद्धान करता है, विकार रहित स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा उसे रागादिसे भिन्न जानता है तथा उसीमें तन्मय होकर अनुभव करता है वही निश्चय रत्नत्रय स्वरूप है । इस सूत्रमें अभेदनयकी अपेक्षासे आत्माको ही सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन रूप कहा है । इससे जाना जाता है कि जैसे द्राक्षा—दाख आदि वस्तुओंसे बना हुआ शरबत अनेक वस्तुओंका होकर भी एकरूप कहलाता है वैसे ही अभेदकी अपेक्षासे एक निश्चय रत्नत्रय स्वरूप जीवके स्वभावमें निश्चल आचरणरूप ही मोक्षमार्ग है यह भाव है । ऐसा ही अन्य ग्रन्थमें इस आत्माधीन निश्चय रत्नत्रयका लक्षण कहा है:—

आत्मामें रुचि सम्यग्दर्शन है—उसीके ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहा है तथा उसी आत्मामें ही स्थिरता पाना चारित्र है । यही मोक्षका कारण योगाभ्यास है ॥ १६२ ॥

इस तरह मोक्षमार्गके वर्णनकी मुख्यतासे दो गाथाएं पूर्ण हुईं ।

सर्वस्यात्मनः संसारिणो मोक्षमार्गार्हत्वनिरासोयम् ।

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि ।
इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥ १६३ ॥

येन विजानाति सर्वं पश्यति स तेन सौख्यमनुभवति ।
इति तज्जानाति भव्योऽभव्यसत्त्वो न श्रद्धत्ते ॥ १६३ ॥

इह हि स्वभावप्रातिकूल्याभावहेतुकं सौख्यम् । आत्मनो हि दृशि-ज्ञप्ती स्वभावः ।

तयोर्विषयप्रतिबन्धः प्रातिकूल्यम्। मोक्षे खल्वात्मनः सर्वं विजानतः पश्यतश्च तदभावः। ततस्तद्धेतुकस्यानाकुलत्वलक्षणस्य परमार्थसुखस्य मोक्षेऽनुभूतिरचलिताऽस्ति। इत्येतद्भव्य एव भावतो विजानाति, ततः स एव मोक्षमार्गार्हः। नैतदभव्यः श्रद्धत्ते, ततः स मोक्षमार्गानर्ह एवेति। अतः कतिपये एव संसारिणो मोक्षमार्गार्हा न सर्व एवेति ॥ १६३ ॥

अन्वयार्थः-(येन) जिससे (आत्मा मुक्त होने पर) [सर्वं विजानाति] सर्वको जानता है और (पश्यति) देखता है, (तेन) उससे (सः) वह (सौख्यम् अनुभवति) सौख्यका अनुभव करता है,-(इति तद्) ऐसा (भव्यः जानाति) भव्य जीव जानता है, (अभव्यसत्त्वः न श्रद्धत्ते) अभव्य जीव श्रद्धा नहीं करता।

टीकाः-यह, सर्व संसारी आत्माओं के मोक्षमार्गकी योग्यताका निराकरण (निषेध) है।

वास्तवमें सौख्यका कारण स्वभावकी प्रतिकूलताका अभाव है। आत्माका 'स्वभाव' वास्तवमें दृशि-ज्ञप्ति (दर्शन और ज्ञान) है। उन दोनोंके विषयमें रुकावट होना सो 'प्रतिकूलता' है मोक्षमें वास्तव में आत्मा सर्वको जानता और देखता होनेसे उसका (रुकावटका) अभाव है। इसलिये उसका अभाव जिसका कारण है ऐसे अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुखकी मोक्षमें अचलित अनुभूति होती है।-इस प्रकार भव्य जीव ही भावसे जानता है, इसलिये वही मोक्षमार्गके योग्य है, अभव्य जीव इस प्रकार श्रद्धा नही करता, इसलिये वह मोक्षमार्गके अयोग्य ही है।

इसलिये कुछ ही संसारी मोक्षमार्गके योग्य हैं, सर्वही नही ॥ १६३ ॥

अथ यस्य स्वाभाविकसुखे श्रद्धानमस्ति स सम्यग्दृष्टिर्भवतीति प्रतिपादयति, जेण-अयं जीवः कर्ता येन लोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानेन, विजाणदि-विशेषेण संशयविपर्ययानध्यवसायरहितत्वेन जानाति परिच्छिनत्ति। किं। सव्वं-सर्वं जगत्त्रयकालत्रयवर्ति वस्तुकदम्बकं। न केवलं जानाति। पेच्छदि-येनैव लोकालोकप्रकाशककेवलदर्शनेन सत्तावलोकेन पश्यति। सो तेण सोक्खमणुभवदि-स जीवस्तेनैव केवलज्ञानदर्शनद्वयेनानवरतं ताभ्यामभिन्नं सुखमनुभवति। इदि तं जाणदि भवियो-इति पूर्वोक्तप्रकारेण तदनंतसुखं जानात्युपादेयरूपेण श्रद्धाति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेणानुभवति च। स कः। भव्यः। अभविय सत्तो ण सद्दहदि-अभव्यजीवो न श्रद्धधाति। तद्यथा। मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनां यथासंभवं चारित्रमोहस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेण यद्यपि हेयबुद्ध्या विषयसुखमनुभवति भव्यजीवः तथापि निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमेवोपादेयं मन्यते न चाभव्यः। कस्मादिति चेत्? तस्य पूर्वोक्तदर्शनचारित्रमोहनीयोपशमादिकं न संभवति ततश्चैवाभव्य इति भावार्थः ॥ १६३ ॥ एवं भव्याभव्यस्वरूपकथनमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथा गता।

हिन्दी ता०—उत्थानिका-आगे यह दिखलाते हैं कि जिसका श्रद्धान स्वाभाविक सुखमें है वही सम्यग्दृष्टी है-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(सो) यह आत्मा (जेण) जिस केवलज्ञानसे (सव्वं) सबको

(विजाणदि) विशेषपने जानता है (पेच्छदि) देखता है (तेण) जिसहीसे (सोक्खम्) सुखको (अणुहवदि) भोगता है (भविओ) भव्य जीव (तं) उस सुखको (इदि) उसी प्रकार (जाणदि) जान लेता है (अभव्यसत्तो) अभव्य जीव (ण) नहीं (सद्दहदि) श्रद्धान करता है।

विशेषार्थ—यह जीव लोक अलोकको प्रकाश करनेवाले केवलज्ञानसे संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय रहित तीन लोकके तीन कालवर्ती वस्तुसमूहको जानता है तथा लोकालोक प्रकाशक केवलदर्शनसे सत्ता मात्र उन सबको एक साथ देखता है तथा उन्हीं केवलज्ञान, केवलदर्शनके द्वारा इन दोनोंसे अभिन्न सुखको निरंतर अनुभव करता है। जो इस तरहके अनन्त सुखको ग्रहण करने योग्य श्रद्धान करता है तथा अपने अपने गुणस्थानके अनुसार उसका अनुभव करता है वही भव्य जीव है। अभव्य जीवको ऐसा श्रद्धान नहीं होता है। मिथ्यादर्शन आदि सात प्रकृतियोंके उपशम, क्षयोपशम वा क्षयसे सम्यग्दृष्टी भव्य जीव चारित्रमोहके उपशम या क्षयोपशमके अनुसार यद्यपि अपने अपने गुणस्थानके अनुकूल विषयोंके सुखको त्यागने योग्य समझकर भोगता है तथापि अपने शुद्ध आत्माकी भावनासे पैदा होनेवाले अतींद्रिय सुखको ही उपादेय या ग्रहण योग्य मानता है—कारण इसका यही है कि उसके पूर्वमें कहे प्रमाण दर्शनमोह तथा चारित्रमोहका उपशम आदिका होना संभव नहीं है। इसीलिये उसको अभव्य कहते हैं यह भाव है ॥ १६३ ॥

इस तरह भव्य तथा अभव्यका स्वरूप कहनेकी मुख्यतासे सातवें स्थलमें गाथा पूर्ण हुई।

दर्शनज्ञानचारित्राणां कथंचिद्बन्धहेतुत्वोपदर्शनेन जीवस्वभावे नियतचरितस्य साक्षान्मोक्षहेतुत्वद्योतनमेतत्।

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहिं इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥ १६४ ॥

दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति सेवितव्यानि।
साधुभिरिदं भणितं तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ॥ १६४ ॥

अमूनि हि दर्शनज्ञानचारित्राणि कियन्मात्रयापि परसमयप्रवृत्त्या संवलितानि कृशानुसंवलितानीव घृतानि कथञ्चिद्विरुद्धकार्यकारणत्वरूढेर्बन्धकारणान्यपि यदा तु समस्तपरसमयप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपया स्वसमयप्रवृत्त्या सङ्गच्छंते तदा निवृत्तकृशानुसंवलनानीव घृतानि विरुद्धकार्यकारणभावाभावात्साक्षान्मोक्षकारणान्येव भवन्ति। ततः स्वसमयप्रवृत्तिनाम्नो जीवस्वभावनियतचरितस्य साक्षान्मोक्षमार्गत्वमुपपन्नमिति ॥ १६४ ॥

अन्वयार्थ—(दर्शनज्ञानचारित्राणि) दर्शन-ज्ञान—चारित्र (मोक्षमार्गः) मोक्षमार्ग है (इति) इसलिये (सेवितव्यानि) वे सेवनयोग्य हैं—(इदम् साधुभिः भणितम्) ऐसा साधुओंने कहा है, (तैः तु)

परन्तु उनसे (बंधः वा) बंध भी होता है और (मोक्षः वा) मोक्ष भी होता है।

टीकाः-यहां, दर्शन ज्ञान चारित्रका कथंचित् बंधहेतुपना दिखाने से जीवस्वभावमें नियत चारित्रका साक्षात् मोक्षहेतुपना प्रकाशित किया है।

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्तिके साथ मिलित हों तो, अग्निके साथ मिलित घृतकी भांति, कथंचित् विरुद्ध कार्यके कारणपनेकी व्याप्तिके कारण बंधकारण भी हैं। और जब (वे दर्शन-ज्ञान चारित्र), समस्त परसमयप्रवृत्तिसे निवृत्तिरूप स्वसमयप्रवृत्तिके साथ संयुक्त होते हैं तब, अग्निके मिलाप से निवृत्त घृतकी भांति, विरुद्ध कार्यके कारणभाव का अभाव होनेसे साक्षात् मोक्षकेकारण ही हैं। इसलिये 'स्वसमयप्रवृत्ति' नामका जो जीवस्वभावमें नियत चारित्र उसको साक्षात् मोक्षमार्गपना घटित होता है॥ १६४ ॥

सं०ता०-अथ दर्शनज्ञानचारित्रैः पराश्रितैर्बन्धः स्वाश्रितैर्मोक्षो भवतीति समर्थयतीति,-दंसणणाण-चरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि—दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गो भवतीति हेतोः सेवितव्यानि। इदं कैरुपदिष्टं। साधूहिं य इदि भणिदं-साधुभिरिदं भणितं कथितं। तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा-तैस्तु पराश्रितैर्बंधः स्वाश्रितैर्मोक्षो वेति विशेषः। शुद्धात्माश्रितानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षकारणानि भवन्ति पराश्रितानि बंधकारणानि भवन्ति च। केन दृष्टान्तेनेति चेत्! यथा घृतानि स्वभावेन शीतला-न्यपि पश्चादग्निसंयोगेन दाहकारणानि भवंति तथा तान्यपि स्वभावेन मुक्तिकारणान्यपि पंचपरमेष्ठ्या-दिप्रशस्तद्रव्याश्रितानि साक्षात्पुण्यबंधकारणानि भवन्ति मिथ्यात्वविषयकषायनिमित्तभूतपरद्रव्याश्रितानि पुनः पापबंधकारणान्यपि भवन्ति। तस्माद् ज्ञायते जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गः, इति ॥ १६४ ॥ एवं शुद्धाशुद्धरत्नत्रयाभ्यां यथाक्रमेण मोक्षपुण्यबन्धौ भवत इति कथनरूपेण गाथा गता।

हिंन्दी ता०-उत्थानिका-आगे यह समर्थन करते हैं कि श्रद्धान, ज्ञान तथा चारित्र यदि परद्रव्यके आश्रय सेवन किये जावें तो उनसे बंध होता है, वे ही यदि आत्माके आश्रित सेवन किये जावें तो उनसे मोक्षका लाभ होता है।

अन्वय सहित सामान्यार्थ-[दंसणणाणचरित्ताणि] दर्शन, ज्ञान, चारित्र (मोक्खमग्गोत्ति) मोक्षमार्ग है वे ही [सेविदव्वाणि] सेवन योग्य हैं [साधूहिं] साधुओंने [इदं भणिदं] ऐसा कहा है। [तेहिं दु] इनहीसे [बंधो व] कर्मबंध [वा] या [मोक्खो] मोक्ष होता है।

विशेषार्थ-ये सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जब शुद्धात्माके आश्रित होते हैं तब मोक्षके कारण होते हैं परन्तु जब ये शुद्धात्माके सिवाय अन्यके आश्रय होते हैं तब बंधके कारण होते हैं। इसपर दृष्टांत देते हैं-जैसे घृत आदि पदार्थ स्वभावसे ठंडे होनेपर भी अग्निके संयोगसे दाहके कारण होजाते हैं तैसे ही ये रत्नत्रय स्वभावसे मुक्तिके कारण हैं तौभी पंचपरमेष्ठी आदि शुभ द्रव्यके आश्रयमें होनेसे साक्षात् पुण्यबन्धके कारण होते हैं तथा ये ही श्रद्धान ज्ञान चारित्र जब मिथ्यादर्शन तथा विषय और कषायके कारण परद्रव्योंके आश्रयमें होते हैं तब पापबंधके कारण

भी होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवके स्वभावमें निश्चल आचरण करना मोक्षमार्ग है ॥ १६४ ॥

इस तरह शुद्ध रत्नत्रयसे मोक्ष व अशुद्ध रत्नत्रयसे पुण्यबंध होता है ऐसा कहते हुए गाथा पूर्ण हुई।

सूक्ष्मपरसमयस्वरूपाख्यानमेतद् ।

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो ।
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो ॥ १६५ ॥

अज्ञानात् ज्ञानी यदि मन्यते शुद्धसंप्रयोगात् ।
भवतीति दुःखमोक्षः परसमयरतो भवति जीवः ॥ १६५ ॥

अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्तिभावानुरञ्जिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसंप्रयोगः। अथ खल्वज्ञानलवावेशाद्यदि यावत् ज्ञानवानपि ततः शुद्धसंप्रयोगान्मोक्षो भवतीत्यभिप्रायेण खिद्यमानस्तत्र प्रवर्तते तदा तावत्सोऽपि रागलवसद्भावात्परसमयरत इत्युपगीयते अथ न किं पुनर्निरङ्कुशरागकलिकलङ्कितान्तरंगवृत्तिरितरो जन इति ॥ १६५ ॥

अन्वयार्थः—[शुद्धसंप्रयोगाद्] शुद्धसंप्रयोगसे (शुभ भक्तिभावसे) (दुःखमोक्षः भवति) दुःखमोक्ष होता है (इति) ऐसा (यदि) यदि (अज्ञानात्) अज्ञानके कारण (ज्ञानी) ज्ञानी (मन्यते) माने-तो वह (परसमयरतः जीवः) परसमयरत जीव (भवति) है।

टीकाः—यह, सूक्ष्म परसमयके स्वरूपका कथन है।

सिद्धिके साधनभूत ऐसे अर्हंतादि भगवन्तोंके प्रति भक्तिभावसे अनुरंजित चित्तवृत्ति यहां 'शुद्धसंप्रयोग' है। अज्ञानअंशके आवेशसे यदि ज्ञानवान भी 'उस शुद्धसम्प्रयोगसे मोक्ष होता है' ऐसे अभिप्राय द्वारा खेद प्राप्त करता हुआ उसमें (शुद्धसम्प्रयोगमें) प्रवर्ते, तो तब तक वह भी रागांशके सद्भावके कारण 'परसमयरत' कहलाता है। तो फिर निरंकुश रागरूप कालिमासे कलंकित ऐसी अंतरंग वृत्तिवाला इतरजन क्या परसमयरत नहीं कहलायेगा ? अवश्य कहलायेगा ही ॥ १६५ ॥

तदनंतरं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानसंबंधित्वेन गाथापंचकं भवति, तत्रैका सूत्रगाथा तस्य विवरणं गाथात्रयं ततश्चोपसंहारगाथैका चेति नवमस्थले समुदायपातनिका।

अथ सूक्ष्मपरसमयस्वरूपं कथयति, अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि-शुद्धात्मपरिच्छित्तिविलक्षणादज्ञानात्सकाशात् ज्ञानी कर्ता यदि मन्यते। किं ? हवदित्ति दुक्खमोक्खो—स्वस्वभावेनोत्पन्नसुखप्रतिकूलदुःखस्य मोक्षो विनाशो भवतीति। कस्मादिति तत् ? सुद्धसंपयोगादो-शुद्धेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावाराधकेषु चार्हदादिषु संप्रयोगो भक्तिः शुद्धसंप्रयोगस्तस्मात् शुद्धसंप्रयोगात्। तदा कथंभूतो

भवति ? परसमयरदो हवदि-तदा काले परसमयरतो भवति। जीवो-स पूर्वोक्तो ज्ञानी जीव इति। तद्यथा कश्चित्पुरुषो निर्विकारशुद्धात्मभावनालक्षणे परमोपेक्षासंयमे स्थातुमीहते, तत्राशक्तः सन् कामक्रोधाद्यशुद्धपरिणामवंचनार्थं संसारस्थितिच्छेदनार्थं वा यदा पंचपरमेष्ठिषु गुणस्तवनादिभक्तिं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयपरिणतः सन् सरागसम्यग्दृष्टिर्भवतीति, यदि पुनः शुद्धात्मभावनासमर्थोपि तां त्यक्त्वा शुभोपयोगादेव मोक्षो भवतीत्येकान्तेन मन्यते तदा स्थूलपरसमयपरिणामेनाज्ञानी मिथ्यादृष्टिर्भवति ततः स्थितं अज्ञानेन जीवो नश्यतीति। तथा चोक्तं। "केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः। केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैश्च नाशिताः" ॥ १६५ ॥

पीठिका–इसके पीछे सूक्ष्म परसमयका व्याख्यान करनेको पांच गाथाएं हैं। उनमें एक गाथामें उसका सूत्ररूप कथन है फिर तीन गाथाओंमें उसका विस्तार है। फिर एक गाथामें इसीका संकोच कथन है। ऐसे नवमें स्थलमें समुदायपातनिका है।

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे सूक्ष्म परसमयका स्वरूप कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ–[जदि] यदि [णाणी] शास्त्रोंको जाननेवाला कोई [अण्णाणादो] अज्ञानभावसे [सुद्धसंपओगादो] शुद्ध आत्माओंकी भक्तिसे [दुक्खमोक्खं] दुःखोंसे मुक्ति [हवदि त्ति मण्णदि] होजाती है ऐसा मानने लगे तो वह [जीवो] जीव [परसमयरदो] पर समय अर्थात् पर पदार्थमें रत [हवदि] है।

विशेषार्थ–जो कोई ज्ञानी होकर भी शुद्धात्माके अनुभवरूप ज्ञानसे विलक्षण अपने अज्ञान भावसे ऐसा श्रद्धान करलेवे कि शुद्ध बुद्ध एक स्वभावके धारी अर्हंतोंमें व उस शुद्ध बुद्ध स्वभावके आराधन करनेवाले साधुओंमें भक्ति करनेसे ही अपने आत्मस्वभावकी भावनासे उत्पन्न अतीन्द्रिय सुखसे प्रतिकूल जो दुःख उससे मुक्ति होजायगी तो वह जीव उसी समयसे परसमयरत होजाता है। यदि कोई पुरुष निर्विकार शुद्धात्माकी भावनारूप परम उपेक्षा संयममें ठहरना चाहता है परन्तु वहां स्थिर रहने की शक्ति न रखनेपर क्रोधादि अशुद्ध परिणामोंसे बचनेके लिये तथा संसारकी स्थिति छेदनेके लिये जब पंचपरमेष्ठीकी गुणस्तवन आदि रूप भक्ति करने लगता है तब वह सूक्ष्म पर पदार्थमें रत होनेके कारणसे सराग सम्यग्दृष्टी होजाता है तथा यदि कोई आत्माकी भावना करनेके लिये समर्थ है तोभी शुभोपयोगरूप भक्ति आदिके भावसे ही संसारसे मुक्तिका लाभ होता है ऐसा एकान्तसे मानने लगे तब वह सूक्ष्म परसमयरूप परिणामके कारण अज्ञानी तथा मिथ्यादृष्टी होजाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अज्ञानसे जीवका बुरा होता है। कहा है–

कितने जीव तो अज्ञानसे भ्रष्ट होजाते हैं, कितने प्रमादसे नष्ट होते हैं व कितने ज्ञानके स्पर्श मात्रसे अर्थात् अनुभव रहित ज्ञानसे अपना बुरा करते हैं व कितने जीव उनसे नाश किये जाते हैं जो स्वयं नष्ट भ्रष्ट हैं ॥ १६५ ॥

उक्तशुद्धसंप्रयोगस्य कथञ्चिद् बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिरासोऽयम् ।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो ।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥ १६६ ॥

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः ।
बध्नाति पुण्यं बहुशो न खलु स कर्मक्षयं करोति ॥ १६६ ॥

अर्हदादिभक्तिसंपन्नः कथञ्चिच्छुद्धसंप्रयोगोऽपि सन् जीवो जीवद्रागलवत्वाच्छुभोपयोगतामजहत् बहुशः पुण्यं बध्नाति, न खलु सकलकर्मक्षयमारभते । ततः सर्वत्र रागकणिकाऽपि परिहरणीया परसमयप्रवृत्तिनिबन्धनत्वादिति ॥ १६६ ॥

अन्वयार्थः- [अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः] अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (-अर्हंतादिकी प्रतिमा), प्रवचन (-शास्त्र), मुनिगण और ज्ञानके प्रति भक्तिसम्पन्न जीव (बहुशः पुण्यं बध्नाति) बहुत पुण्य बांधता है, (न खलु सः कर्मक्षयं करोति) परन्तु वास्तवमें वह कर्मका क्षय नहीं करता।

टीका:—यहां पूर्वोक्त शुद्धसम्प्रयोगको कथंचित् बंधहेतुपना होनेसे उसके मोक्षमार्गपनेका निषेध किया है।

अर्हंतादिके प्रति भक्तिसम्पन्न जीव, कथंचित् 'शुद्धसम्प्रयोगवाला' होने पर भी रागांश जीवित होनेसे 'शुभोपयोगीपने' को न छोडता हुआ, बहुत पुण्य बांधता है, परन्तु वास्तवमें सकल कर्मका क्षय नही करता। इसलिये परसमयप्रवृत्तिका कारण होनेसे सर्वत्र रागकी कणिका भी छोडने योग्य है, ॥१६६॥

सं० ता०-पूर्वोक्तशुद्धसंप्रयोगस्य पुण्यबंधं दृष्ट्वा मुख्यवृत्त्या मोक्षं निषेधयति,—अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानेषु भक्तिसंपन्नो जीवः बहुशः प्रचुरेण हु-स्फुटं पुण्यं बध्नाति सो-सः, ण कम्मक्खयं कुणदि-नैव कर्मक्षयं करोति । अत्र निरास्रवशुद्धनिजात्मसंवित्त्या मोक्षो भवतीति हेतोः पराश्रितपरिणामेन मोक्षो निषिद्ध इति सूत्रार्थः ॥ १६६ ॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे पूर्वमें कही हुई शुद्धात्माकी भक्तिसे पुण्यबंध होता है ऐसा दिखाकर उससे मुख्यतासे मोक्षका होना निषेध करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्ति—संपण्णो) अरहंत भगवान, सिद्ध परमात्मा, उनकी प्रतिमा, जैनसिद्धांत, मुनिसमूह तथा ज्ञानकी भक्ति करनेवाला (बहुशः) अधिकतर (पुण्णं) पुण्यकर्मको (बंधदि) बांधता है (दु) परन्तु (सो) वह (कम्मक्खयं) कर्मोंका क्षय (ण कुणदि) नहीं करता है।

विशेषार्थ—यहां यह सूत्रका भाव है कि आस्रव रहित शुद्ध अपने आत्माके अनुभवसे मोक्ष होता है। इस कारण पर वस्तुके आश्रित भावसे मोक्षका निषेध है ॥ १६६ ॥

स्वसमयोपलम्भाभावस्य रागैकहेतुत्वद्योतनमेतत् ।

जस्स हिदयेणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि ॥ १६७ ॥

यस्य हृदयेऽणुमात्रो वा परद्रव्ये विद्यते रागः ।
स न विजानाति समयं स्वकस्य सर्वागमधरोऽपि ॥ १६७ ॥

यस्य खलु रागरेणुकणिकाऽपि जीवति हृदये, न नाम स समस्तसिद्धान्तसिन्धुपारगोऽपि निरुपरागशुद्धस्वरूपं स्वसमयं चेतयते । ततः स्वसमयप्रसिद्धयर्थं पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायमधिदधताऽर्हदादिविषयोऽपि क्रमेण रागरेणुरपसारणीय इति ॥ १६७ ॥

अन्वयार्थः–(यस्य हृदये) जिसके हृदयमें (परद्रव्ये) परद्रव्यके प्रति (अणुमात्रः वा) अणुमात्र भी (लेशमात्र भी) [रागः] राग (विद्यते) वर्तता है (सः) वह, (सर्वागमधरः अपि) भले ही सर्व आगमधर हो तथापि, (स्वकस्य समयं न विजानाति) स्वकीय समयको नहीं जानता (-अनुभव नही करता) ।

टीकाः–यहां, स्वसमयकी उपलब्धिके अभावका, राग एक हेतु है ऐसा प्रकाशित किया है ।

जिसके हृदयमें रागरेणुकी कणिका भी जीवित है वह, भले ही समस्त सिद्धान्तसागरका पारंगत हो तथापि, निरुपराग-शुद्धस्वरूप स्वसमयको वास्तवमें नही चेतता [अनुभव नही करता] इसलिये, धुनकीसे चिपकी हुई रूईको दूर करनेके न्यायको धारण करते हुए, जीवको स्वसमयकी प्रसिद्धिके हेतु अर्हंतादिविषयक भी रागरेणु क्रमशः दूर करनेयोग्य है ॥ १६७ ॥

अथ शुद्धात्मोपलंभस्य परद्रव्य एव प्रतिबंध इति प्रज्ञापयति,—यस्य हृदये मनसि, अणुमेत्तं वा–परमाणुमात्रोपि परदव्वम्हि–शुभाशुभपरद्रव्ये हि–स्फुटं विज्जदे रागो–रागो विद्यते, सो–सः, ण विजाणदि–न जानाति । किं । समयं । कस्य । सगस्स–स्वकीयात्मनः । कथंभूतः । सव्वागमधरोवि–सर्वशास्त्रपारगोपि । तथाहि—निरुपरागपरमात्मनि विपरीतो रागो यस्य विद्यते स स्वकीयशुद्धात्मानुचरणरूपं स्वस्वरूपं न जानाति ततः कारणात्पूर्वं विषयानुरागं त्यक्त्वा तदनन्तरं गुणस्थानसोपानक्रमेण रागादिरहितनिजशुद्धात्मनि स्थित्वा चार्हदादिविषयेपि रागस्त्याज्य इत्यभिप्रायः ॥ १६७ ॥

हिंदी ता०–उत्थानिका–आगे कहते हैं कि शुद्धात्माके लाभ करनेवालेके परद्रव्य ही रुकावट या विघ्न है–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(जस्स) जिसके (हिदये) हृदयमें (परदव्वम्हि) परद्रव्यके भीतर (अणुमेत्तं वा) अणुमात्र भी (रागो) राग (विज्जदे) पाया जाता है (सो) वह (सव्वागमधरोवि) सर्व शास्त्रोंको जाननेवाला है तौभी (सगस्स समयं) अपने आत्मीक पदार्थको या स्वसमयको [ण विजाणादि] नहीं जानता है ।

विशेषार्थ–जिसके मनमें वीतराग परमात्मामें भी वीतरागतासे विपरीत रागभाव पाया जाता है वह अपने ही शुद्ध आत्मामें आचरणरूप अपने स्वरूपको नहीं जानता है इसलिये पहले ही विषयोंका अनुराग त्यागकर फिर गुणस्थानकी सीढीके क्रमसे रागादिसे रहित अपने शुद्धात्मामें ठहरकर अर्हत् सिद्ध आदिके सम्बंधमें भी रागभावको त्याग देना चाहिये, यह अभिप्राय है ॥ १६७ ॥

रागलवमूलदोषपरंपराख्यानमेतत् ।

धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं ।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥ १६८ ॥

धतुं यस्य न शक्यम् चित्तोद्भ्रामं विना त्वात्मानम् ।
रोधस्तस्य न विद्यते शुभाशुभकृतस्य कर्मणः ॥ १६८ ॥

इह खल्वर्हदादिभक्तिरपि न रागानुवृत्तिमन्तरेण भवति । रागाद्यनुवृत्तौ च सत्यां बुद्धिप्रसरमन्तरेणात्मा न तं कथंचनापि धारयितुं शक्यते । बुद्धिप्रसरे च सति शुभस्याशुभस्य वा कर्मणो न निरोधोऽस्ति । ततो रागकलिविलासमूल एवायमनर्थसन्तान इति ॥ १६८ ॥

अन्वयार्थः–(यस्य) जो [चित्तोद्भ्रामं विना तु] (रागके सद्भावके कारण) चित्तके भ्रमण विना (आत्मानम्) अपनेको (धतुम् न शक्यम्) नही रख सकता, (तस्य) उसके (शुभाशुभकृतस्य कर्मणः) शुभाशुभ कर्मका (रोधः न विद्यते) निरोध नही है ।

टीकाः—यह, रागांशमूलक दोषपरम्पराका निरूपण है ।

यहां (इस लोकमें) वास्तवमें अर्हतादि की भक्ति भी रागपरिणतिके बिना नही होती । रागादिपरिणति होनेसे, आत्मा विकल्पों के विस्तार से रहित अपनेको किसी प्रकार नही रख सकता, और विकल्पों के प्रसार होनेपर शुभ तथा अशुभ कर्मका निरोध नही होता । इसलिये, यह अनर्थसंततिका मूल रागरूप क्लेशका विलास ही है ॥ १६८ ॥

सं०ता०–अथ सर्वानर्थपरंपराणां राग एव मूल इत्युपदिशति,–धरिदुं धतुं जस्स–यस्य ण सक्को–न शक्यः कर्मतापन्नः, चित्तब्भामो–चित्तभ्रमः अथवा विचित्रभ्रमः आत्मनो भ्रान्तिः । कथं ? विणा दु अप्पाणं –आत्मानं विना निजशुद्धात्मभावनामंतरेण, रोधो तस्स ण विज्जदि–रोधः संवरः तस्य न विद्यते ? कस्य संबंधि । सुहासुहकदस्स कम्मस्स–शुभाशुभकृतस्य कर्मण इति । तद्यथा । योसौ नित्यानन्दैकस्वभावनिजात्मानं न भावयति तस्य मायामिथ्यानिदानशल्यत्रयप्रभृतिसमस्तविभावरूपो बुद्धिप्रसरो धतुं न याति निरोधाभावे च शुभाशुभकर्मणां संवरो नास्तीति । ततः स्थितं समस्तानर्थपरंपराणां रागादिविकल्पा एव मूलमिति ॥ १६८ ॥

हिन्दी ता०-उत्थानिका-आगे सर्व अनर्थोंकी परम्पराका राग ही मूल कारण है। ऐसा उपदेश करते हैं-

अन्वय सहित सामान्यार्थ-[दु] तथा [जस्स] जिसका चित्तका भ्रम या चंचलभाव [अप्पाणं विणा] अपनी शुद्ध आत्माकी भावनाके विना [धरिदुं ण सक्कं] रोका नहीं जासक्ता है [तस्स] उसके [सुहासुहकदस्स कम्मस्स] शुभ तथा अशुभ उपयोगसे किये हुए कर्मोंका [रोधो] रुकना [ण विज्जदि] नहीं संभव है।

विशेषार्थ-जो कोई नित्य आनन्दमई एक स्वभावरूप अपने आत्माकी भावना नहीं कर सक्ता है वह माया, मिथ्या, निदान इन शल्योंको आदि लेकर सर्व विभावरूप बुद्धिके फैलावको रोक नहीं सक्ता है। इस बुद्धिके न रुकनेपर उसके शुभ तथा अशुभ कर्मोंका संवर नहीं होता है। इससे सिद्ध हुआ कि सर्व अनर्थोंकी परम्पराके मूल कारण राग आदि विकल्प ही हैं १६८

रागक्लिनिःशेषीकरणस्य करणीयत्वाख्यानमेतत्।

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि ॥ १६९ ॥

तस्मान्निवृत्तिकामो निस्सङ्गो निर्ममश्च भूत्वा पुनः।
सिद्धेषु करोति भक्तिं निर्वाणं तेन प्राप्नोति ॥ १६९ ॥

यतो रागाद्यनुवृत्तौ चित्तोद्भ्रान्तिः, चित्तोद्भ्रान्तौ कर्मबन्ध इत्युक्तम्, ततः खलु मोक्षार्थिना कर्मबन्धमूलचित्तोद्भ्रान्तिमूलभूता रागाद्यनुवृत्तिरेकान्तेन निःशेषीकरणीया। निःशेषितायां तस्यां प्रसिद्धनैःसङ्ग्यनैर्मम्यः शुद्धात्मद्रव्यविश्रान्तिरूपां पारमार्थिकीं सिद्धभक्तिमनुबिभ्राणः प्रसिद्धस्वसमयप्रवृत्तिर्भवति। तेन कारणेन स एव निःशेषितकर्मबन्धः सिद्धिमवाप्नोतीति ॥ १६९ ॥

अन्वयार्थः-(तस्मात्) इसलिये (निवृत्तिकामः) मोक्षार्थी जीव (निस्सङ्गः) निःसंग (च) और (निर्ममः) निर्मम (भूत्वा पुनः) होकर (सिद्धेषु भक्तिं) सिद्धोंकी भक्ति (करोति) करता है, (तेन) इसलिये वह (निर्वाणं प्राप्नोति) निर्वाणको प्राप्त करता है।

टीकाः—यह, रागरूप क्लेशका निःशेषनाश करनेयोग्य होनेका निरूपण है।

रागादिपरिणति होनेसे चित्तका भ्रमण होता है और चित्तका भ्रमण होनेसे कर्मबंध होता है ऐसा (पहले) कहा गया, इसलिये मोक्षार्थीको कर्मबंधका मूल ऐसा जो चित्तका भ्रमण उसके मूलभूत रागादिपरिणतिका एकान्तसे निःशेष नाश करनेयोग्य है। उसको निःशेष नाश किया जानेसे, जिसे निःसंगता और निर्ममता प्रसिद्ध हुई है ऐसा वह जीव शुद्धात्मद्रव्यमें विश्रान्तिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति

धारण करता हुआ स्वसमयप्रवृत्तिकी प्रसिद्धिवाला होता है। उस कारणसे वह जीव कर्मबंधका निःशेष नाश करके सिद्धिको प्राप्त करता है ॥ १६६ ॥

ततस्तस्मान्मोक्षार्थिना पुरुषेण 'ग्रहणरहितत्वान्निःसंगता' आस्रवकारणभूतं रागादिविकल्पजालं निर्मूलनायेति सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुपसंहरति, तम्हा—तस्माच्चित्तगतरागादिविकल्पजालं 'अण्णाणादो णाणी' त्यादि गाथाचतुष्टयेनास्रवकारणं भणितं तस्मात्कारणात् णिव्वुदिकामो—निवृत्त्यभिलाषी पुरुषः णिस्संगो—निःसंगात्मतत्त्वविपरीतबाह्याभ्यन्तरपरिग्रहेण रहितत्वान्निःसंगः। णिम्ममो—रागाद्युपाधिरहितचैतन्यप्रकाशलक्षणात्मतत्त्वविपरीतमोहोदयोत्पन्नेन ममकाराहंकारादिरूपविकल्पजालेन रहितत्वात निर्मोहश्च निर्ममः, भविय—भूत्वा, पुणो—पुनः सिद्धेसु—सिद्धगुणसदृशानंतज्ञानात्मगुणेषु कुणदु—करोतु। कां। भत्तिं—पारमार्थिकस्वसंवित्तिरूपां सिद्धभक्ति। किंभवति? तेण—तेन सिद्धभक्तिपरिणामेन शुद्धात्मोपलब्धिरूपं, णिव्वाणं-निर्वाणं पप्पोदि-प्राप्नोतीति भावार्थः ॥ १६६ ॥ एवं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुख्यत्वेन नवमस्थले गाथापंचकं गतं।

हिन्दी ता०—उत्थानिका—मोक्षार्थी पुरुषको उचित है कि आस्रवके कारणभूत रागादि विकल्प जालको जडमूलसे नाशकरे इसीलिये आचार्य सूक्ष्मपरसमयके व्याख्यानको संकोच करते हैः— सा य मा

अन्वय सहित र्थ—[तम्हा] इसलिये [णिव्वुदिकामो] मोक्षका इच्छुक [णिस्संगो] परिग्रहरहित होकर [य] और [णिम्ममो] ममतारहित होकर [पुणो] फिर [सिद्धेसु] सिद्धोंमें [भत्ति] भक्ति [कुणदि] करता है [तेण] इसी रीतिसे वह [णिव्वाणं] मोक्षको [पप्पोदि] पाता है।

विशेषार्थ—" अण्णाणादो णाणी" इत्यादि चार गाथाओंके द्वारा रागादि विकल्पजालको आस्रवका कारण बताया है इसलिये जो पुरुष मोक्षका अभिलाषी हो उसको परिग्रहरहित आत्मतत्त्वसे विपरीत बाहरी व भीतरी परिग्रहसे रहित होकर और रागादि उपाधिसे रहित चैतन्य प्रकाशमई आत्मतत्त्वसे विपरीत मोहके उदयसे उत्पन्न ममकार और अहंकाररूप विकल्पजालसे रहित होकर सिद्धोंके समान मेरे आत्माके अनंतगुण हैं ऐसा मानकर अपने शुद्ध आत्मीक गुणोंमें परमार्थ स्वसंवेदन रूप सिद्ध भक्ति करनी चाहिये। इसीहीसे शुद्धात्माकी प्राप्ति रूप निर्वाणका लाभ होता है ॥ १६६ ॥

अर्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तेः साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेऽपि परम्परया मोक्षहेतुत्वसद्भावद्योतनमेतत्।

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपओत्तस्स ॥ १७० ॥

सपदार्थं तीर्थकरमभिगतबुद्धेः सूत्ररोचिनः ।
दूरतरं निर्वाणं संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य ॥ १७० ॥

यः खलु मोक्षार्थमुद्यतमनाः समुपार्जिताचिन्त्यसंयमतपोभारोऽप्यसंभावितपरमवैराग्यभूमिकाधिरोहणसमर्थप्रभुशक्तिः पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायेन नवपदार्थैः सहार्हदादिरुचिरूपां परसमयप्रवृत्तिं परित्यक्तुं नोत्सहते, स खलु न नाम साक्षान्मोक्षं लभते किन्तु सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिरूपया परम्परया तमवाप्नोति ॥ १७० ॥

अन्वयार्थः—(संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य) संयमतपसंयुक्त होने पर भी, (सपदार्थं तीर्थकरम्) नव पदार्थों तथा तीर्थंकरके प्रति (अभिगतबुद्धेः) जिसकी बुद्धिका झुकाव वर्तता है और (सूत्ररोचिनः) सूत्रोंके प्रति जिसे रुचि (प्रीति) वर्तती है, उस जीवको (निर्वाणं) निर्वाण (दूरतरं) दूरतर है।

टीकाः—यहां, अर्हंतादिकी भक्तिरूप परसमयप्रवृत्तिमें साक्षात् मोक्षहेतुपनेका अभाव होने पर भी परम्परासे मोक्षहेतुपनेका सद्भाव दर्शाया है।

जो जीव वास्तवमें मोक्षके हेतुसे उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ, अचिन्त्य संयमतपभार संप्राप्त किया होने पर भी परमवैराग्यभूमिकाका आरोहण करनेमें समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न न की होनेसे, 'धुनकीको चिपकी हुई रूई' के न्यायसे, नव पदार्थों तथा अर्हंतादिकी रुचिरूप (प्रीतिरूप) परसमयप्रवृत्तिका परित्याग नहीं कर सकता, वह जीव वास्तवमें साक्षात् मोक्षको प्राप्त नहीं करता किन्तु देवलोकादिके क्लेशकी प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है ॥ १७० ॥

सं०ता०—अथार्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तपुरुषस्य साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेपि परंपरया मोक्षहेतुत्वं द्योतयन् सन् पूर्वोक्तमेव सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानं प्रकारान्तरेण कथयति, दूरयरं णिव्वाणं—दूरतरं निर्वाणं भवति । कस्य । अभिगदबुद्धिस्स—अभिगतबुद्धेः तद्गतबुद्धेः कं । प्रति ? सपदत्थं तित्थयरं—जीवादिपदार्थसहिततीर्थकरं प्रति । पुनरपि किंविशिष्टस्य । सुत्तरोचिस्स—श्रुतरोचिन आगमरुचेः । पुनरपि कथंभूतस्य संजमतवसंपजुत्तस्स—संयमतपः संप्रयुक्तस्यापीति । इतो विस्तरः । बहिरंगेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेन रागाद्युपाधिरहितस्य ख्यातिपूजालाभनिमित्तानेकमनोरथरूपविकल्पजालज्वालावलिरहितत्वेन निर्विकल्पस्य च चित्तस्य निजशुद्धात्मनि संयमार्थं स्थितिकरणात्संयतोपि अनशनाद्यनेकविधबाह्यतपश्चरणबलेन समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणेनाभ्यन्तरतपसा च नित्यानन्दैकात्मस्वभावे प्रतपनाद्विजयनात्तपस्थोपि यदा विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावान्निरंतरं तत्र स्थातुं न शक्नोति तदा किंकरोति । क्वापि काले शुद्धात्मभावनानुकूलजीवादिपदार्थप्रतिपादकमागमं रोचते, कदाचित्पुनर्यथा कोपि रामदेवादिपुरुषो देशान्तरस्थसीतादिस्त्रीसमीपादागतानां पुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा मुक्तिश्रीवशीकरणार्थं निर्दोषिपरमात्मनां तीर्थकरपरमदेवानां तथैव गणधरदेवभरतसगररामपांडवादिमहापुरुषाणां चाशुभरागवंचनार्थं शुभधर्मानुरागेण चरितपुराणादिकं शृणोति भेदाभेदरत्नत्रयभावनारतानामाचार्योपाध्यायादीनां गृहस्थावस्थायां च पुनर्दा-

नपूजादिकं करोति च तेन कारणेन यद्यप्यनन्तसंसारस्थितिच्छेदं करोति कोप्यचरमदेहस्तद्भवे कर्मक्षयं न करोति तथापि पुण्यास्रवपरिणामसहितत्वात्तद्भवे निर्वाणं न लभते भवान्तरे पुनर्देवेन्द्रादिपदं लभते। तत्र विमानपरिवारादिविभूतिं तृणवद्गणयन् सन् पंचमहाविदेहेषु गत्वा समवशरणे वीतरागसर्वज्ञान् पश्यति निर्दोषपरमात्माराधारकगणधरदेवादीनां च तदनन्तरं विशेषेण दृढधर्मो भूत्वा चतुर्थगुणस्थानयोग्यमात्मभावनामपरित्यजन् सन् देवलोके कालं गमयति ततोपि जीवितान्ते स्वर्गादागत्य मनुष्यभवे चक्रवर्त्यादिविभूतिं लब्ध्वापि पूर्वभवभावितशुद्धात्मभावनाबलेन मोहं न करोति ततश्च विषयसुखं परिहृत्य जिनदीक्षां गृहीत्वा निर्विकल्पसमाधिविधानेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजशुद्धात्मनि स्थित्वा मोक्षं गच्छतीति भावार्थः॥ १७०॥

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे अरहंत आदिकी भक्तिरूप परसमयमें आचरण करनेवाले पुरुषके साक्षात् मोक्षके कारणका अभाव है तो भी यह भक्ति परम्परासे मोक्षका हेतु है ऐसा प्रकाश करते हुए जिसको पहले कह चुके हैं उसी सूक्ष्म परसमयके व्याख्यानको अन्य प्रकारसे कहते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ-(सुत्तरोइस्स) आगमको रोचक हो, (संजमतवसंपजुत्तस्स) संयम और तपका अभ्यासी हो परन्तु (सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिः) नव पदार्थ सहित तीर्थंकरकी भक्तिमें बुद्धिको लगानेवाला हो उसके (णिव्वाणं) मोक्ष (दूरतरं) बहुत दूर है।

विशेषार्थ -जो बाहरी इंद्रिय संयम तथा प्राणियोंकी रक्षा रूप प्राणि संयमके बलसे रागादि उपाधिसे रहित है, तथा अपनी प्रसिद्धि, पूजा, लाभ, व उसके मनोरथ रूप विकल्पोंके जालकी अग्निके विना निर्विकल्प चित्त करके संयमके लिये अपने शुद्ध आत्मामें ठहरनेके लिये संयमी मुनि होगया हैं व अनशनको आदि लेकर अनेक प्रकार बाहरी तपश्चरणके बलसे व सर्व परद्रव्यकी इच्छाको रोकने रूप आभ्यंतर तपके द्वारा नित्य आनन्दमई एक स्वभावमें तप करता है तप करते हुए भी जब विशेष संहनन आदि शक्तिके अभावसे निरंतर अपने स्वरूपमें ठहर नहीं सक्ता है तब कभी तो शुद्ध आत्माकी भावनाके अनुकूल जीवादि पदार्थोंके बतानेवाले आगमसे प्रेम करता है कभी जैसे रामचंद आदि पुरुष देशान्तरमें गई हुई सीता आदि स्त्रीके निकटसे आए हुए पुरुषोंका दान सन्मान आदि उस अपनी स्त्रीके प्रेमसे करते हैं वैसे मुक्तिरूपी स्त्रीके वश करनेके लिये निर्दोष परमात्मा तीर्थंकर परम देवोंके तथा गणधरदेव व भरत, सागर, राम, पांडवादि महापुरुषोंके चारित्र पुराणादि अशुभ रागसे बचने व शुभ धर्ममें अनुराग भावसे सुनता है तथा गृहस्थ अवस्थामें निश्चय व्यवहार रत्नत्रयकी भावनामें रत आचार्य उपाध्याय साधु आदिकोंकी दान पूजादि करता है। इस कारणसे यद्यपि अनंत संसारकी स्थितिको छेद डालता है तथा यदि चरमशरीरी नहीं है तो उसी जन्मसे सब कर्मोंका क्षय नहीं करसक्ता है तथापि पुण्यके आस्रवके परिणामसहित होनेसे उस भवसे निर्वाणको न पाकर अन्य भवमे देवे-

न्द्रादि पद पाता है वहां भी विमान, परिवार आदि विभूतिको तृणके समान गिनता हुआ पांच महाविदेहोंमें जाकर समवशरणमें वीतराग सर्वज्ञ अरहंत भगवानका दर्शन करता है तथा निर्दोष परमात्माके आराधक गणधर देवादिको नमस्कार करता है तब निर्दोष धर्ममें दृढ होकर चौथे गुणस्थानके योग्य आत्माकी भावनाको नहीं त्यागता ऐसा देवलोकमें काल गमाता है फिर आयुके अन्तमें स्वर्गसे आकर मनुष्यभवमें चक्रवर्ती आदिकी विभूतिको पाता है तौभी पूर्वभवोंमें आई हुई शुद्धात्माकी भावनाके बलसे उसमें मोह नहीं करता है फिर विषयसुखको छोडकर जिनदीक्षा लेलेता है व निर्विकल्प समाधिकी विधिसे विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावरूप अपने शुद्ध आत्मामें ठहरकर मोक्षको पालेता है यह भाव है ॥ १७० ॥

अर्हदादिभक्तिमात्ररागजनितसाक्षान्मोक्षस्यान्तरायद्योतनमेतत् ।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण ।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि ॥ १७१ ॥

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः परेण नियमेन ।
यः करोति तपःकर्म स सुरलोकं समादत्ते ॥ १७१ ॥

यः खल्वर्हदादिभक्तिविधेयबुद्धिः सन् परमसंयमप्रधानमतितीव्रं तपस्तप्यते, स तावन्मात्ररागकलिकलङ्कितस्वान्तः साक्षान्मोक्षस्यान्तरायीभूतं विषयविषद्रुमामोहितान्तरंगं स्वर्गलोकं समासाद्य, सुचिरं रागाङ्गारैः पच्यमानोऽन्तस्ताम्यतीति ॥ १७१ ॥

अन्वयार्थः-[यः] जो (जीव), [अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः] अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (-अर्हंतादिकी प्रतिमा) और प्रवचन (-शास्त्र) के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ, [परेण नियमेन] परम संयम सहित [तपःकर्म] तपकर्म [-तपरूप कार्य] [करोति] करता है, [सः] वह [सुरलोकं] देवलोकको [समादत्ते] सम्प्राप्त करता है।

टीकाः-यह, अर्हंतादिकी भक्ति मात्र रागसे उत्पन्न होनेवाला जो साक्षात् मोक्षका अंतराय उसका प्रकाशन है।

जो [जीव] वास्तवमें अर्हंतादिकी भक्तिके आधीन बुद्धिवाला वर्तता हुआ परमसंयमप्रधान अतितीव्र तप तपता है, वह [जीव], मात्र उतने रागरूप क्लेशसे जिसका निज अंतःकरण कलंकित (-मलिन) है ऐसा वर्तता हुआ, विषयविषवृक्षके आमोदसे जहां अंतरंग (-अंतःकरण) मोहित होता है ऐसे स्वर्गलोकको—जो कि साक्षात् मोक्षको अंतरायभूत है उसे—संप्राप्त करके, सुचिरकाल पर्यंत [-बहुत लम्बे काल तक] रागरूपी अंगारोंसे दह्यमान हुआ अंतरंगमें संतप्त [-दुःखी, व्यथित] होता है ॥ १७१ ॥

सं०ता०—अथ, पूर्वसूत्रे भणितं तद्भवे मोक्षं न लभते पुण्यबन्धमेव प्राप्नोतीति तमेवार्थं द्रढयति,—अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः सन् परेणोत्कृष्टेन यः कश्चित्करोति । किं ? तपःकर्म स नियमेन सुरलोकं समाददाति प्राप्नोतीत्यर्थः । अत्र सूत्रे यः कोपि शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा आगमभाषया मोक्षं वा व्रततपश्चरणादिकं करोति स निदानरहितपरिणामेन सम्यग्दृष्टिर्भवति तस्य तु संहननादिशक्त्यभावाच्छुद्धात्मस्वरूपे स्थातुमशक्यत्वाद्वर्तमानभवे पुण्यबंध एव, भवान्तरे तु परमात्मभावनास्थितत्वे सति नियमेन मोक्षो भवति तद्विपरीतस्य भवान्तरेपि मोक्षनियमो नास्तीति सूत्राभिप्रायः ॥ १७१ ॥ इत्यचरमदेहपुरुषव्याख्यानमुख्यत्वेन दशमस्थले गाथाद्वयं गतं ।

हिंदी ता०—उत्थानिका—आगे पहले सूत्रमें जो बात कही है कि जो तीर्थंकरादिकी भक्तिमें लीन है वह उसी भवसे मोक्षको नहीं पाता है, मात्र पुण्यबंध ही करता है । इसी ही अर्थको दृढ करते हैं—

अन्वय सहित सामान्यार्थ—(जो) जो (अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो) अर्हंत, सिद्ध, अर्हत्प्रतिमा व जिनवाणीका भक्त होता हुआ (परेण) उत्तम प्रकारसे (तवोकम्मं) तपके आचरणको (कुणदि) करता है (सो) वह (णियमेण) नियमसे (सुरलोगं) देवलोकको (समादियदि) प्राप्त करता है ।

विशेषार्थ—इस सूत्रका भाव यह है कि जो कोई शुद्धात्माको ग्रहण करने योग्य मानकर अथवा आगमकी भाषासे मोक्षको ग्रहण योग्य समझकर व्रत व तपश्चरण आदि करता है वह निदान रहित परिणामसे सम्यग्दृष्टि है—उसके यदि योग्य संहनन आदिकी शक्ति न हो तो वह शुद्धात्माके स्वरूपमें ठहरनेको असमर्थ होता हुआ वर्तमान भवमें पुण्यका बंध करता ही है दूसरे किसी भवमें परमात्माकी भावनाकी स्थिरता होने पर वह नियमसे मुक्त हो जाता है—परन्तु जो इसके विपरीत होता है उसको भवान्तरमें भी मोक्ष होनेका नियम नहीं है ॥ १७१ ॥

इस प्रकार जो चरम शरीरी नहीं है उस पुरुषके व्याख्यानकी मुख्यतासे दशवें स्थलमें दो गाथाएं पूर्ण हुईं ।

साक्षान्मोक्षमार्गसारसूचनद्वारेण शास्त्रतात्पर्योपसंहारोऽयम् ।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि ।
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि ॥ १७२ ॥

तस्मान्निर्वृत्तिकामो रागं सर्वत्र करोतु मा किञ्चित् ।
स तेन वीतरागो भव्यो भवसागरं तरति ॥ १७२ ॥

साक्षान्मोक्षमार्गपुरस्सरो हि वीतरागत्वम् । ततः खल्वर्हदादिगतमपि रागं चन्दनगसं-

गतमग्निमिव सुरलोकादिक्लेशप्राप्त्याऽत्यन्तमन्तर्दाहाय कल्पमानमाकलय्य साक्षान्मोक्षकामो महाजनः समस्तविषयमपि रागमुत्सृज्यात्यन्तवीतरागो भूत्वा समुच्छलज्ज्वलद्दुःखसौख्यकल्लोलं कर्माग्नितप्तकलकलोदभारप्राग्भारभयंकरं भवसागरमुत्तीर्य, शुद्धस्वरूपपरमामृतसमुद्रमध्यास्य सद्यो निर्वाति ॥

अलं विस्तरेण । स्वस्ति साक्षान्मोक्षमार्गसारत्वेन शास्त्रतात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति द्विविधं किल तात्पर्यम्—सूत्रतात्पर्यं शास्त्रतात्पर्यञ्चेति । तत्र सूत्रतात्पर्यं प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितम् । शास्त्रतात्पर्यं त्विदं प्रतिपाद्यते । अस्य खलु पारमेश्वरस्य शास्त्रस्य, सकलपुरुषार्थसारभूतमोक्षतत्त्वप्रतिपत्तिहेतोः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेनोपदर्शितसमस्तवस्तुस्वभावस्य, नवपदार्थप्रपञ्चसूचनाविष्कृतबन्धमोक्षसंबन्धिबन्धमोक्षायतनबन्धमोक्षविकल्पस्य, सम्यगावेदितनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गस्य, साक्षान्मोक्षकारणभूतपरमवीतरागत्वविश्रान्तसमस्तहृदयस्य, परमार्थतो वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति । तदिदं वीतरागत्वं व्यवहारनिश्चयाविरोधेनैवानुगम्यमानं भवति समीहितसिद्धये न पुनरन्यथा । व्यवहारनयेन भिन्नसाध्यसाधनभावमवलम्ब्यानादिभेदवासितबुद्धयः सुखेनैवावतरन्ति तीर्थं प्राथमिकाः । तथा हीदं श्रद्धेयमिदमश्रद्धेयमयं श्रद्धातेदं श्रद्धानमिदं ज्ञेयमिदमज्ञेयमयं ज्ञातेदं ज्ञानमिदं चरणीयमिदमचरणीयमयं चरितेदं चरणमिति कर्तव्याकर्तव्यकर्तृकर्मविभागावलोकनोल्लसितपेशलोत्साहाः शनैःशनैर्मोहमल्लमुन्मूलयन्तः, कदाचिदज्ञानान्मदप्रमादतन्त्रतया शिथिलितात्माधिकारस्यात्मनो न्याय्यपथप्रवर्तनाय प्रयुक्तप्रचण्डदण्डनीतयः, पुनः पुनः दोषानुसारेण दत्तप्रायश्चित्ताः सन्ततोद्यताः सन्तोऽथ तस्यैवात्मनो भिन्नविषयश्रद्धानज्ञानचारित्रैरधिरोप्यमाणसंस्कारस्य भिन्नसाध्यसाधनभावस्य रजकशिलातलस्फाल्यमानविमलसलिलाप्लुतविहितोपपरिष्वङ्गमलिनवासस इव मनाङ्मनाग्विशुद्धिमधिगम्य निश्चयनयस्य भिन्नसाध्यसाधनभावाभावाद्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहितत्वरूपे विश्रान्तसकलक्रियाकाण्डाडम्बरनिस्तरङ्गपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवत्यात्मनि विश्रान्तिमासूत्रयन्तः क्रमेण समुपजातसमरसीभावाः परमवीतरागभावमधिगम्य, साक्षान्मोक्षमनुभवन्तीति ॥

अथ ये तु केवलव्यवहारावलम्बिनस्ते खलु भिन्नसाध्यसाधनभावावलोकनेनाऽनवरतं नितरां खिद्यमाना मुहुर्मुहुर्धर्मादिश्रद्धानरूपाध्यवसायानुस्यूतचेतसः प्रभूतश्रुतसंस्काराधिरोपितविचित्रविकल्पजालकल्माषितचैतन्यवृत्तयः, समस्तयतिवृत्तसमुदायरूपतपःप्रवृत्तिरूपकर्मकाण्डोड्डमराचलिताः, कदाचित्किञ्चिद्रोचमानाः, कदाचित् किंचिद्विकल्पयन्तः, कदाचित्किञ्चिदाचरन्तः, दर्शनाचरणाय कदाचित्प्रशाम्यन्तः, कदाचित्संविजमानाः, कदाचिदनुकम्पमानाः, कदाचिदास्तिक्यमुद्वहन्तः, शंकाकाङ्क्षाविचिकित्सामूढदृष्टितानां व्युत्थापननिरोधाय नित्य-

बद्धपरिकराः, उपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनां भावयमाना वारंवारमभिवर्धितोत्साहा, ज्ञानाचरणाय स्वाध्यायमकालमवलोकयन्तो, बहुधा विनयं प्रपंचयन्तः, प्रविहितदुर्धरोपधानाः, सुष्ठु बहुमानमातन्वन्तो निह्नवापत्तिं नितरां निवारयन्तोऽर्थव्यञ्जनतदुभयशुद्धौ नितान्तसावधानाः, चारित्राचरणाय हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहसमस्तविरतिरूपेषु पञ्चमहाव्रतेषु तन्निष्ठवृत्तयः सम्यग्योगनिग्रहलक्षणासु गुप्तिषु नितान्तं गृहीतोद्योगा, ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपासु समितिष्वत्यन्तनिवेशितप्रयत्नाः, तपआचरणायानशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशेष्वभीक्ष्णमुत्सहमानाः, प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यव्युत्सर्गस्वाध्यायध्यानपरिकरांकुशितस्वान्ता, वीर्याचरणाय कर्मकाण्डे सर्वशक्त्या व्याप्रियमाणाः, कर्मचेतनाप्रधानत्वाद् दूरनिवारिताऽशुभकर्मप्रवृत्तयोऽपि समुपात्तशुभकर्मप्रवृत्तयः, सकलक्रियाकाण्डाडम्बरोत्तीर्णदर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपां ज्ञानचेतनां मनागप्यसंभावयन्तः, प्रभूतपुण्यभारमन्थरितचित्तवृत्तयः, सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिपरम्परया सुचिरं संसारसागरे भ्रमन्तीति। उक्तञ्च

"चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कवावारा।
चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति" ॥

येऽत्र केवलनिश्चयावलम्बिनः सकलक्रियाकर्मकाण्डाडम्बरविरक्तबुद्धयोऽर्धमीलितविलोचनपुटाः किमपि स्वबुद्ध्यावलोक्य यथासुखमासते, ते खल्ववधीरितभिन्नासाध्यसाधनभावा अभिन्नसाध्यसाधनभावमलभमाना अन्तराल एव प्रमादकादम्बरीमदभरालसचेतसो मत्ता इव, मूर्च्छिता इव, सुषुप्ता इव, प्रभूतघृतसितोपलपायसासादितसौहित्या इव, समुल्बणबलसञ्जनितजाड्या इव, दारुणमनोभ्रंशविहित मोहा इव, मुद्रितविशिष्टचैतन्या वनस्पतय इव, मौनीन्द्रीं कर्मचेतनां पुण्यबन्धभयेनानवलम्बमाना अनासादितपरमनैष्कर्म्यरूपज्ञानचेतनाविश्रान्तयो व्यक्ताव्यक्तप्रमादतन्त्रा अरमागतकर्मफलचेतनाप्रधानप्रवृत्तयो वनस्पतय इव केवलं पापमेव बध्नन्ति। उक्तञ्च—"णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता।
णासंति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई" ॥

ये तु पुनरपुनर्भवाय नित्यविहितोद्योगमहाभागा भगवन्तो निश्चयव्यवहारयोरन्यतरानवलम्बनेनात्यन्तमध्यस्थीभूताः शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्वविश्रान्तिविरचनोन्मुखाः प्रमादोदयानुवृत्तिनिवर्तिकां क्रियाकाण्डपरिणतिं माहात्म्यान्निवारयन्तोऽत्यन्तमुदासीना यथाशक्त्याऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मनि संचेतयमाना नित्योपयुक्ता निवसन्ति, ते खलु स्वतत्त्वविश्रान्त्यनुसारेण क्रमेण कर्माणि संन्यसन्तोऽत्यन्तनिष्प्रमादा नितान्तनिष्कम्पमूर्तयो वनस्पतिभिरुपमीयमाना अपि दूरनिरस्तकर्मफलानुभूतयः कर्मानुभूतिनिरुत्सुकाः केवलज्ञानानुभूतिसमुपजाततात्त्विकानन्दनिर्भरास्तरसा संसारसमुद्रमुत्तीर्य शब्दब्रह्मफलस्य शाश्वतस्य भोक्तारो भवन्तीति ॥ १७२ ॥

अन्वयार्थः—[तस्मात्] इसलिये [निर्वृत्तिकामः] मोक्षाभिलाषी जीव [सर्वत्र] सर्वत्र [कश्चित् रागं] किंचित् भी राग [मा करोतु] न करो [तेन] ऐसा करनेसे [सः भव्यः] वह भव्य जीव [वीतरागः] वीतराग होकर (भवसागरं तरति) भवसागरको तरता है।

टीकाः—यह, साक्षात्मोक्षमार्गके सार-सूचन द्वारा शास्त्रतात्पर्यरूप उपसंहार है।

साक्षात मोक्षमार्गमें अग्रसर वास्तवमें वीतरागपना है। इसलिये वास्तवमें अर्हंतादिगत रागको भी, चंदनवृक्षसंगत अग्निकी भांति, देवलोकादिके क्लेशकी प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अंतर्दाहका कारण समझ कर, साक्षात् मोक्षका अभिलाषी महाजन (महापुरुष) सबकी ओरके रागको छोड़कर, अत्यन्त वीतराग होकर, जिसमें उबलती हुई दुःखसुखकी कल्लोलें उछलती हैं और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त तथा खलबलाते हुए जलसमूहकी अतिशयतासे भयंकर है ऐसे भवसागरको पार उतरकर, शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्रको अवगाह कर, शीघ्र निर्वाणको प्राप्त करता है।

—विस्तारसे बस हो। जयवंत वर्ते वीतरागता जो कि साक्षात्मोक्षमार्गका सार होनेसे शास्त्रतात्पर्यभूत है।

तात्पर्य दो प्रकारका होता है:-सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य। उसमें, सूत्रतात्पर्य प्रत्येकसूत्रमें (प्रत्येकगाथामें) प्रतिपादित किया गया है, और शास्त्रतात्पर्य अब प्रतिपादित किया जाता है:-

सर्व पुरुषार्थोंमें साररभूत ऐसे मोक्षतत्त्वका प्रतिपादन करनेके हेतुसे जिसमें पंचास्तिकाय और षड्द्रव्यके स्वरूपके प्रतिपादन द्वारा समस्त वस्तुका स्वभाव दर्शाया गया है, नव पदार्थोंके विस्तृत कथन द्वारा जिसमें बंध-मोक्षके सम्बन्धी [स्वामी], बंध-मोक्षके आयतन [स्थान] और बंध-मोक्षके विकल्प [भेद] प्रगट किये गये हैं, निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्गका जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है तथा साक्षात् मोक्षके कारणभूत परमवीतरागपनेमें जिसका समस्त हृदय स्थित है-ऐसे इस यथार्थ पारमेश्वर शास्त्रका, परमार्थसे वीतरागपना ही तात्पर्य है।

सो इस वीतरागपनेका व्यवहार-निश्चयके अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाये तो इष्टसिद्धि होती है, परन्तु अन्य प्रकार नहीं।

(उपरोक्त बात विशेष समझाई जाती है:-)

अनादि कालसे भेदवासित बुद्धि होनेके कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनयसे भिन्नसाध्यसाधनभावका अवलम्बन लेकर सुखसे (सुगमरूपसे) तीर्थमें-मोक्षमार्गमें अवतरण करते हैं।

जैसे कि-"(१) यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है, (२) यह अश्रद्धेय है, (३) यह श्रद्धा करनेवाला है और (४) यह श्रद्धान है, (१) यह ज्ञेय (जाननेयोग्य) है, (२) यह अज्ञेय है, [३] यह ज्ञाता है और (४) यह ज्ञान है, (१) यह आचरणीय [आचरण करनेयोग्य] है, (२) यह अनाचरणीय है, (३) यह आचरण करनेवाला है और (४) यह आचरण है,"—इस प्रकार [१] कर्तव्य (करनेयोग्य) है, [२] अकर्तव्य है, (३) कर्ता है और (४) कर्म है, इस प्रकार विभागोंके अवलोकन

द्वारा जिनमें सुन्दर उत्साह उल्लसित होता जाता है ऐसे वे [प्राथमिक जीव] धीरे-धीरे मोहमल्लको (रागादिको) उखाड़ते जाते हैं, कदाचित् अज्ञानके कारण (पूर्ण ज्ञानके अभावके कारण) मद [कषाय] और प्रमादके वश होनेसे अपना आत्म-अधिकार (आत्मामें अधिकार) शिथिल हो जानेसे [अतीचार लगजानेसे) अपनेको न्यायमार्गमें प्रवर्तित करनेके लिये वे प्रचंड दंडनीतिका [प्रायश्चित्त विधिका] प्रयोग करते हैं, पुनः पुनः [अपने आत्माको] दोषानुसार प्रायश्चित्त देते हुए वे सतत उद्यमवंत वर्तते हैं, और भिन्नविषयवाले श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र द्वारा (-ऐसे भेदरत्नत्रय द्वारा) जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं ऐसे भिन्नसाध्यसाधनभाववाले अपने आत्मामें-धोबी द्वारा शिलाकी सतह पर पछाड़े जानेवाले, निर्मल जल द्वारा भिगोये जानेवाले और क्षार [साबुन] लगाये गये मलिन वस्त्रकी भांति-अल्प अल्प विशुद्धि (निर्मलता) प्राप्त करके, उसी अपने आत्माको निश्चयनयको भिन्नसाध्यसाधनभावके अभावके कारण, दर्शनज्ञानचारित्रका समाहितपना (अभेदपना) जिसका रूप है, सकल क्रियाकाण्डके आडम्बरकी निवृत्तिके कारण (-अभावके कारण) जो निस्तरंग परमचैतन्यशाली है तथा जो निर्भर आनन्दसे समृद्ध है ऐसे भगवान आत्मामें विश्रांति रचते हुए (स्थिरता करते हुए) क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है इसलिये परम वीतरागभावको प्राप्त करके साक्षात् मोक्षका अनुभव करते हैं।

[अब केवलव्यवहारावलम्बी [अज्ञानी] जीवोंका प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:—

परन्तु जो केवलव्यवहारावलम्बी हैं वे वास्तवमें भिन्नसाध्यसाधनभावके अवलोकन द्वारा निरंतर अत्यन्त खेद पाते हुए, (१) पुनः पुनः धर्मादिके श्रद्धानरूप अध्यवसानमें उनका चित्त लगता रहनेके कारण, [२] बहुत श्रुतके (द्रव्यश्रुतके) संस्कारोंसे उठनेवाले विचित्र [अनेक प्रकारके] विकल्पोंके जाल द्वारा उनकी चैतन्यवृत्ति चित्रविचित्र होती है इसलिये और (३) समस्त यति-आचारके समुदायरूप तपमें प्रवर्तनरूप कर्मकाण्डकी धमालमें [आडम्बर में] वे अचलित रहते हैं इसलिये वे कभी किसीकी (किसी विषयकी) रुचि करते हैं, कभी किसीके (किसी विषयके) विकल्प करते हैं कभी कुछ आचरण करते हैं, दर्शनाचरणके लिये कदाचित् प्रशमित होते हैं, कदाचित् संवेगको प्राप्त होते हैं, कदाचित् अनुकम्पित होते हैं, कदाचित् आस्तिक्यको धारण करते हैं, शंका, कांक्षा, विचिकित्सा और मूढदृष्टिताके उत्थानको रोकनेके हेतु नित्य कटिबद्ध रहते हैं, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावनाको भाते हुए बारम्बार उत्साहको बढाते हैं, ज्ञानाचरणके लिये स्वाध्यायकालका अवलोकन करते हैं, बहुत प्रकारसे विनयका विस्तार करते हैं दुर्धर उपधान करते हैं, भलीभांति बहुमानको प्रसरित करते हैं, निह्नवदोषको अत्यंत निवारते हैं, अर्थ, व्यंजन और तदुभयकी शुद्धिमें अत्यंत सावधान रहते हैं, चारित्राचरणके लिये—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रहकी सर्वविरतिरूप पंचमहाव्रतोंमें तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं, सम्यक् योगनिग्रह जिनका लक्षण है ऐसी गुप्तियोंमें अत्यंत उद्योग रखते हैं, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्गरूप समितियोंमें प्रयत्नको अत्यन्त युक्त करते हैं, तप आचरणके लिये-अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेशोंमें सतत

उत्साहित रहते हैं, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, व्युत्सर्ग, स्वाध्याय और ध्यानरूप परिकर द्वारा निज अन्तःकरणको अंकुशित रखते हैं, वीर्याचरणके लिये-कर्मकाण्डमें सर्व शक्ति द्वारा व्यापृत रहते हैं, ऐसा करते हुए कर्मचेतनाप्रधानपनेके कारण-यद्यपि अशुभकर्मप्रवृत्तिका उन्होंने अत्यंत निवारण किया है तथापि शुभकर्मप्रवृत्तिको जिन्होंने भलेप्रकार ग्रहण किया है ऐसे वे, सकल क्रियाकाण्डके आडम्बरसे पार उतरी हुई दर्शनज्ञानचारित्रकी ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतनाको किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए, बहुत पुण्यके भारसे (अंदर) मन्द हुई चित्तवृत्तिवाले वर्तते हुए, देवलोकादिके क्लेशकी प्राप्तिकी परम्परा द्वारा अत्यन्त दीर्घकाल तक संसारसागरमें भ्रमण करते हैं। कहा भी है कि-चरणकरणप्पहाणा समयपरमत्थमुक्कवावारा। चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति ॥ अर्थ-जो चरण करण प्रधान हैं और स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित हैं, वे चरण करण का सार जो निश्चयशुद्ध (आत्मा) उसका अनुभव नहीं करते।

(अब केवलनिश्चयावलम्बी (अज्ञानी) जीवोंका प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:-)

अब, जो केवलनिश्चयावलम्बी हैं, सकल क्रियाकर्मकाण्डके आडम्बरमें विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए, आंखोंको अधमुंदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धिसे अवलोक कर यथासुख रहते हैं (अर्थात् स्वमतिकल्पनासे कुछ भी कल्पना करके इच्छानुसार—जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे—रहते हैं), वे वास्तवमें भिन्नसाध्यसाधनभावको तिरस्कारते हुए, अभिन्नसाध्यसाधनभावको उपलब्ध न करते हुए, अंतरालमें ही (-शुभ तथा शुद्धके अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभदशामें ही), प्रमादमदिराके मदसे भरे हुए आलसी चित्तवाले वर्तते हुए, मत्त (उन्मत्त) जैसे, मूर्च्छित जैसे, सुषुप्त जैसे, बहुत घी-शक्कर-खीर खाकर तृप्तिको प्राप्त हुए (-तृप्त हुए) हों ऐसे, मोटे शरीरके कारण जडता (-मंदता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो ऐसे, दारुण बुद्धिभ्रंशसे मूढता हो गई हो ऐसे, जिसका विशिष्टचैतन्य मुंद गया है ऐसी वनस्पति जैसे, मुनीन्द्रकी कर्मचेतनाको पुण्यबंधके भयसे न अवलम्बते हुए और परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतनामें विश्रान्तिको प्राप्त न होते हुए, (मात्र) व्यक्त-अव्यक्त प्रमादके आधीन वर्तते हुए, प्राप्त हुए हलके (निकृष्ट) कर्मफलकी चेतनाके प्रधानपनेवाली प्रवृत्ति जिसके वर्तती है ऐसी वनस्पतिकी भांति, केवल पापको ही बांधते हैं। कहा भी है कि: "णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता। णासंति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई" निश्चयका अवलम्बन लेनेवाले परन्तु निश्चयसे (वास्तवमें) निश्चयको न जाननेवाले कुछ जीव बाह्य चरणमें आलसी वर्तते हुए चरणपरिणामका नाश करते हैं।

(अब निश्चय-व्यवहार दोनोंका सुमेल रहे इस प्रकार भूमिकानुसार प्रवर्तन करनेवाले ज्ञानी जीवोंका प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:—]

परन्तु जो, अपुनर्भवके (मोक्षके) लिये नित्य उद्योग करनेवाले महाभाग भगवन्त, निश्चय व्यवहारमेंसे किसी एकका ही अवलम्बन न लेनेसे(-केवलनिश्चयावलम्बी या केवलव्यवहारावलम्बी न होनेसे) अत्यन्त मध्यस्थ वर्तते हुए, शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्वमें विश्रान्तिके विरचनकी ओर अभिमुख (उन्मुख) वर्तते हुए, प्रमादके उदयको अनुसरण करती हुई वृत्तिका निवर्तनकरनेवाली (टालनेवाली) क्रियाकाण्डपरिणतिको माहात्म्यसे वारते हुए अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए, यथाशक्ति,

आत्माको आत्मासे आत्मामें संचेतते (अनुभवते) हुए नित्य–उपयुक्त रहते हैं, वे (-वे महाभाग भगवन्त) वास्तवमें स्वतत्त्वमें विश्रान्तिके अनुसार क्रमशः कर्मका संन्यास करते हुए (छोड़ते हुए), अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए, अत्यन्त निष्कंपमूर्ति होनेसे जिन्हें वनस्पतिकी उपमा दी जाती है तथापि जिन्होंने कर्मफलानुभूति अत्यन्त निरस्त (नष्ट) की है ऐसे, कर्मानुभूतिके प्रति निरुत्सुक वर्तते हुए, केवल ज्ञानानुभूतिसे उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्दसे अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए, शीघ्र संसारसमुद्रको पार कर, शब्दब्रह्मके शाश्वत फलके (-निर्वाणसुखके) भोक्ता होते हैं ॥ १७२ ॥

अथास्य पंचास्तिकायप्राभृतशास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति प्रतिपादयति, तम्हा–यस्मादत्र ग्रन्थे मोक्षमार्गविषये वीतरागत्वमेव दर्शितं तस्मात्कारणात् णिव्वुदिकामो–निर्वृत्त्यभिलाषी पुरुषः रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि–रागं सर्वत्र विषये करोतु मा किंचित् । सो तेण वीयरागो–स तेन रागाद्यभावेन वीतरागः सन् । भवियो–भव्यजीवः भवसायरं तरदि–भवसमुद्रं तरतीति । तद्यथा । यस्मादत्र शास्त्रे मोक्षमार्गव्याख्यानविषये निरुपाधिचैतन्यप्रकाशरूपं वीतरागत्वमेव दर्शितं तस्मात्केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपकार्यसमयसारशब्दाभिधानमोक्षाभिलाषी भव्योऽर्हदादिविषयेपि स्वसंवित्तिलक्षणरागं मा करोतु तेन निरुपरागचिज्जोतिर्भावेन वीतरागो भूत्वा अजरामरपदस्य विपरीतं जातिजरामरणादिरूपविविधजलचराकीर्णं वीतरागपरमानन्दैकरूपसुखरसास्वादप्रतिबन्धकनारकादिदुःखरूपक्षारनीरपूर्णं रागादिविकल्परहितपरमसमाधिविनाशकपंचेन्द्रियविषयकांक्षाप्रभृतिसमस्तशुभाशुभविकल्पजालरूपकल्लोलमालाविराजितमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखप्रतिपक्षभूताकुलत्वोत्पादकनानाप्रकारमानसदुःखरूपवडवानलशिखासंदीपिताभ्यंतरं च संसारसागरमुत्तीर्यानन्तज्ञानादिगुणलक्षणमोक्षं प्राप्नोतीति । अथैवं पूर्वोक्तप्रकारेणास्य प्राभृतस्य शास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यं ज्ञातव्यं तच्च वीतरागत्वं निश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकरूपेण परस्परसापेक्षाभ्यामेव भवति मुक्तिसिद्धये, न च पुनर्निरपेक्षाभ्यामिति वार्तिकं । तद्यथा । ये केचन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयमोक्षमार्गनिरपेक्षं केवलशुभानुष्ठानरूपं व्यवहारनयमेव मोक्षमार्गं मन्यन्ते तेन तु सुरलोकक्लेशपरंपरया संसारं परिभ्रमंतीति, यदि पुनः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निश्चयमोक्षमार्गं मन्यंते निश्चयमोक्षमार्गानुष्ठानशक्त्यभावान्निश्चयसाधकं शुभानुष्ठानं च कुर्वन्ति तर्हि सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परंपरया मोक्षं लभन्ते इति व्यवहारैकान्तनिराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतं । येपि केवलनिश्चयनयावलंबिनः संतोपि रागादिविकल्परहितं परमसमाधिरूपं शुद्धात्मानमलभमाना अपि तपोधनाचरणयोग्यं षडावश्यकाद्यनुष्ठानं श्रावकाचरणयोग्यं दानपूजाद्यनुष्ठानं च दूषयन्ते तेप्युभयभ्रष्टाः संतो निश्चयव्यवहारानुष्ठानयोग्यावस्थान्तरमजानन्तः पापमेव बध्नन्ति यदि पुनः शुद्धात्मानुष्ठानरूपं मोक्षमार्गं तत्साधकं व्यवहारमोक्षमार्गं मन्यन्ते तर्हि चारित्रमोहोदयात् शक्त्यभावेन शुभाशुभानुष्ठानरहिता अपि यद्यपि शुद्धात्मभावनासापेक्षशुभानुष्ठानरतपुरुषसदृशा न भवन्ति तथापि सरागसम्यक्त्वादिदानव्यवहारसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परंपरया मोक्षं च लभंते इति निश्चयैकान्त-

निराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतं। ततः स्थितमेतन्निश्चयव्यवहारपरस्परसाध्यसाधकभावेन रागादिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनैव मोक्षं लभंते ॥ १७२ ॥ इति शास्त्रतात्पर्योपसंहारवाक्यं। एवं वाक्यपंचकेन कथितार्थस्य विवरणमुख्यत्वेन एकादशस्थले गाथा गता।

हिन्दी ता०–उत्थानिका–आगे कहते हैं कि इस पंचास्तिकाय प्राभृतशास्त्रका तात्पर्य वीतरागता ही है–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(तम्हा) इसलिये (णिव्वुदिकामो) इच्छा रहित होकर जो (सव्वत्थ) सर्व पदार्थोंमें (किंचि) कुछ भी (रागं) राग (मा कुणदि) नहीं करता है (सो भवियो) वह भव्य जीव (तेण) इसी कारणसे (वीतरागो) वीतराग होता हुआ (भवसायरं) संसारसमुद्रको (तरदि) तर जाता है।

विशेषार्थ–क्योंकि इस शास्त्रमें मोक्षमार्गके व्याख्यानके सम्बन्धमें मोक्षका मार्ग उपाधि रहित चैतन्यके प्रकाशरूप वीतरागभावको ही दिखलाया है इसलिये केवलज्ञान आदि अनन्त-गुणोंकी प्रगटता रूप कार्य समयसारसे कहने योग्य मोक्षका चाहनेवाला भव्यजीव अरहंत आदि में भी स्वानुभवरूप राग भाव न करे–इस राग रहित चैतन्य ज्योतिमई भावसे वीतरागी होकर वह प्राणी संसारसागरको पार करके अनंतज्ञानादि गुण रूप मोक्षको प्राप्त कर लेता है। यह संसार सागर अजर अमर पदसे विपरीत है, जन्म, जरा मरण आदि रूप नानाप्रकार जलचर जीवोंसे भरा हुआ है, वीतराग परमानन्दमई एक सुख–रसके आस्वादको रोकनेवाले नारकादि दुःख रूप खारे जलसे पूर्ण है, रागादि विकल्पोंसे रहित परम समाधिके नाश करनेवाले पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी इच्छाको आदि लेकर सर्व शुभ तथा अशुभ विकल्प जाल रूप तरंगोंकी मालासे भरपूर है, व जिसके भीतर आकुलता रहित परमार्थ सुखसे विपरीत आकुलताको पैदा करनेवाली नानाप्रकार मानसिक दुःखरूप वडवानलकी शिखा जल रही है।

इस तरह पहले कहे प्रकारसे इस प्राभृत शास्त्रका तात्पर्य वीतरागताहीको जानना चाहिये वह वीतरागता निश्चय तथा व्यवहारनयसे साध्य व साधक रूपसे परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षासे ही होती है–विना अपेक्षाके एकान्तसे मुक्तिकी सिद्धि नहीं होसक्ती है। जिसका भाव यह है कि जो कोई विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावमय शुद्ध आत्मतत्त्वके भलेप्रकार श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र रूप निश्चय मोक्षमार्गकी अपेक्षा विना केवल शुभ चारित्ररूप व्यवहारनयको ही मोक्षमार्ग मान बैठते हैं वे इस भावसे मात्र देवलोक आदिके क्लेशको भोगते हुए परम्परासे इस संसारमें भ्रमण करते रहते हैं, परन्तु जो ऐसा मानते हैं कि शुद्धात्मानुभूति रूप मोक्षमार्ग है तथा जब उनमें निश्चय मोक्षमार्गके आचरणकी शक्ति नहीं होती है तब निश्चयके साधक शुभ चारित्रको पालते हैं तब वे सराग सम्यग्दृष्टी होते हैं फिर वे परम्परासे मोक्षको पाते हैं। इस तरह व्यवहारके

एकांत पक्षको खण्डन करनेकी मुख्यतासे दो वाक्य कहे गए। तथा जो एकांतसे निश्चयनयका आलंबन लेने हुए रागादि विकल्पोंसे रहित परम समाधिरूप शुद्धात्माका लाभ न पाते हुए भी तपस्वीके आचरणके योग्य सामायिकादि छः आवश्यक क्रियाके पालनका व श्रावकके आचरणके योग्य दान पूजा आदि क्रियाका खण्डन करते हैं वे निश्चय तथा व्यवहार दोनों मार्गोंसे भ्रष्ट होते हुए निश्चय तथा व्यवहार आचरणके योग्य अवस्थासे जो भिन्न कोई अवस्था उसको न जानते हुए पापको ही बांधते हैं तथा जो शुद्धात्माके अनुभवरूप निश्चय मोक्षमार्गको तथा उसके साधक व्यवहार मोक्षमार्गको मानते हैं परन्तु चारित्रमोहके उदयसे शक्ति न होनेपर यद्यपि शुभ व अशुभ चारित्रसे रहित शुद्धात्माकी भावनाकी अपेक्षा सहित शुद्ध चारित्रको पालनेवाले पुरुषोंके समान नहीं होते है तथापि सरागसम्यक्त्वको आदि लेकर दान पूजा आदि व्यवहारमें रत ऐसे सम्यग्दृष्टी होते हैं वे परम्परासे मोक्षको पा लेते हैं। इस तरह निश्चयके एकांतको खंडन करते हुए दो वाक्य कहे, इससे यह सिद्ध हुआ कि निश्चय तथा व्यवहार परस्पर साध्य साधक रूपसे माननेयोग्य हैं। इसीके द्वारा रागादि विकल्परहित परमसमाधिके बलसे ही मोक्षको ज्ञानी जीव पाते हैं ।। १७२ ।।

इस तरह शास्त्रके तात्पर्यको संकोच करते हुए वाक्य कहा। इसतरह पांच वाक्योंसे कहे हुए भावके विवरणकी मुख्यतासे ग्यारहवें स्थलमें गाथा कही।

कर्तुः प्रतिज्ञानिर्व्यूढिसूचिका समापनेयम्।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।

भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं।। १७३।।

मार्गप्रभावनार्थं प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया।

भणितं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकसंग्रहं सूत्रम् ।।१७३।।

मार्गो हि परमवैराग्यकरणप्रवणा पारमेश्वरी परमाज्ञा, तस्याः प्रभावनं प्रख्यापनद्वारेण प्रकृष्टपरिणतिद्वारेण वा समुद्योतनम्, तदर्थमेव परमागमानुरागप्रचलितमनसा संक्षेपतः समस्तवस्तुतत्त्वसूचकत्वादतिविस्तृतस्यापि प्रवचनस्य सारभूतं पञ्चास्तिकायसंग्रहाभिधानं भगवत्सर्वज्ञोपज्ञत्वात् सूत्रमिदमभिहितं मयेति। अथैवं शास्त्रकारः प्रारब्धस्यान्तमुपगम्यात्यन्तं कृतकृत्यो भूत्वा परमनैष्कर्म्यरूपे शुद्धस्वरूपे विश्रान्त इति श्रद्धीयते।। १७३ ।।

इति समयव्याख्यायां नवपदार्थपुरस्सरमोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनो

द्वितीयः श्रुतस्कंधः समाप्तः ।।

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥ ८ ॥

इति पञ्चास्तिकायसंग्रहाभिधानस्य समयस्य व्याख्या समाप्ता।

अन्वयार्थः—(प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया) प्रवचनकी भक्तिसे प्रेरित ऐसे मैंने (मार्गप्रभावनार्थं) मार्गकी प्रभावनाके हेतु (प्रवचनसारं) प्रवचनके सारभूत (पंचास्तिकसंग्रहं सूत्रम्) 'पंचास्तिकायसंग्रह' सूत्र (भणितम्) कहा।

टीकाः—यह, कर्ताकी प्रतिज्ञाकी पूर्णता सूचित करनेवाली समाप्ति है।

मार्ग–परम वैराग्य उत्पन्न कराने में प्रवण-कुशल पारमेश्वरी परम आज्ञाका नाम है, उसकी प्रभावना–प्रख्यापन द्वारा अथवा प्रकृष्ट परिणति द्वारा उसका समुद्योत करना है, उसके हेतु ही (–मार्गकी प्रभावनाके हेतु ही), परमागमकी ओरके अनुरागके वेगसे जिसका मन अति चलित होता था ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिकायसंग्रह' नामका सूत्र कहा–जो कि भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होनेसे (पहिली वार उपदिष्ट होनेसे) 'सूत्र' है, और जो संक्षेपसे समस्तवस्तुतत्त्वका (सर्व वस्तुओंके यथार्थ स्वरूपका) प्रतिपादन कर्ता होनेसे, अति विस्तृत भी प्रवचनका सारभूत है।

इस प्रकार शास्त्रकार (श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) प्रारम्भ किये हुए कार्यके अन्तको पाकर, अत्यन्त कृतकृत्य होकर, परमनैष्कर्म्यरूप शुद्धस्वरूपमें विश्रान्त हुए (स्थिर हुए)—ऐसे श्रद्धे जाते हैं (अर्थात् ऐसी हम श्रद्धा करते हैं) ॥ १७३ ॥

इस प्रकार समयव्याख्या नामकी टीकामें नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंचवर्णन नामका द्वितीय श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

(अब, 'यह टीका शब्दोंने की है, अमृतचन्द्रसूरिने नहीं' ऐसे अर्थका एक अन्तिम श्लोक कहकर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव टीकाकी पूर्णाहुति करते हैं :)

श्लोकार्थः–अपनी शक्तिसे जिन्होंने वस्तुका तत्त्व (–यथार्थ स्वरूप) भलीभांति कहा है ऐसे शब्दोंने यह समयकी व्याख्या (–अर्थसमयका व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रहशास्त्रकी टीका) की है, स्वरूपगुप्त (–अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूपमें गुप्त) अमृतचन्द्रसूरिका (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है। (८)

सं०ता०–अथ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवः स्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन् सन् ग्रन्थं समापयति, पंचास्तिकायसंग्रहं—सूत्रं। किंविशिष्टं। प्रवचनसारं। किमर्थं। मार्गप्रभावनार्थमिति। तथाहि—मोक्षमार्गो हि संसारशरीरभोगवैराग्यलक्षणो निर्मलात्मानुभूतिस्तस्याः प्रभावनं स्वयमनुभवनमन्येषां प्रकाशनं वा तदर्थमेव परमागमभक्तिप्रेरितेन मया कर्तृभूतेन पंचास्तिकायशास्त्रमिदं व्याख्यातं। किं लक्षणं। पंचास्तिकायषड्द्रव्यादिसंक्षेपेण व्याख्यानेन समस्तवस्तुप्रकाशकत्वात् द्वादशांगस्यापि प्रवचनस्य सारभूतमिति भावार्थः ॥ १७३ ॥ इति ग्रंथसमाप्तिरूपेण द्वादशस्थले गाथा गता।

एवं तृतीयमहाधिकारः समाप्तः ॥ ३ ॥

हिन्दी ता०—उत्थानिका–आगे कहते हैं कि श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेव अपनी प्रतिज्ञाको निबाहते हुए ग्रन्थको समाप्त करते हैं–

अन्वय सहित सामान्यार्थ–(मया) मुझ कुन्दकुन्दाचार्यने (पवयणभत्तिप्पचोदिदेण) आगमकी भक्तिकी प्रेरणासे (मग्गप्पभावणट्ठं) जिनधर्मकी प्रभावनाके लिये (पवयणसारं) आगमके सारके कहनेवाले (पंचत्थियसंगहं सुत्तं) पंचास्तिकायसंग्रह सूत्रको (भणियं) वर्णन किया है।

विशेषार्थ–मोक्षका मार्ग वास्तवमें संसार शरीर व भोगोंसे वैराग्य रूप है अथवा निर्मल आत्मानुभव रूप है, उसकी प्रभावना यह है कि उसे स्वयं अनुभव करे तथा दूसरोंको प्रकाश करे। ऐसी मोक्षमार्गकी प्रभावनाके लिये मैंने परमागमकी भक्तिसे प्रेरित होकर इस पंचास्तिकाय नामके शास्त्रको कहा है जिसमें पांच अस्तिकाय व छः द्रव्य आदिका संक्षेपसे व्याख्यान करके समस्त वस्तुको प्रकाशित किया गया है, इसीलिये यह ग्रन्थ द्वादशांग रूप आगमका सार है ॥ १७३ ॥

इस तरह ग्रन्थको समाप्त करते हुए बारहवें स्थलमें गाथा कही।

यहां तीसरा महा अधिकार पूर्ण हुआ।

सं०ता०–अथ यतः पूर्वं संक्षेपरुचिशिष्यसंबोधनार्थं पंचास्तिकायप्राभृतं कथितं ततो यदा काले शिक्षां गृह्णाति तदा शिष्यो भण्यते इति हेतोः शिष्यलक्षणकथनार्थं परमात्माराधकपुरुषाणां दीक्षाशिक्षाव्यवस्थाभेदाः प्रतिपाद्यन्ते। दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थभेदेन षट्काला भवन्ति। तद्यथा। यदा कोप्यासन्नभव्यो भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमाचार्यं प्राप्यात्माराधनार्थं बाह्याभ्यंतरपरिग्रहपरित्यागं कृत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति स दीक्षाकालः, दीक्षानंतरं निश्चयव्यवहाररत्नत्रयस्य परमात्मतत्त्वस्य च परिज्ञानार्थं तत्प्रतिपादकाध्यात्मशास्त्रेषु यदा शिक्षां गृह्णाति स शिक्षाकाल, शिक्षानंतरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गे स्थित्वा तदर्थिनां भव्यप्राणिगणानां परमात्मोपदेशेन यदा पोषणं करोति स च गणपोषणकालः, गणपोषणानन्तरं गणं त्यक्त्वा यदा निजपरमात्मनि शुद्धसंस्कारं करोति स आत्मसंस्कारकालः, आत्मसंस्कारानंतरं तदर्थमेव क्रोधादिकषायरहितानंतज्ञानादिगुणलक्षणपरमात्मपदार्थे स्थित्वा रागादिविकल्पानां सम्यग्लेखनं तनुकरणं भावसल्लेखना तदर्थं कायक्लेशानुष्ठानं द्रव्यसल्लेखना तदुभयाचरणं स सल्लेखनाकालः सल्लेखनानंतरं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानबहिर्द्रव्येच्छानिरोधलक्षणतपश्चरणरूपनिश्चयचतुर्विधाराधना या तु सा चरमदेहस्य तद्भवमोक्षयोग्या तद्विपरीतस्य भवांतरमोक्षयोग्या चेत्युभयमुत्तमार्थकालः। अत्र कालषट्कमध्ये केचन प्रथमकाले केचन द्वितीयकाले केचन तृतीयकालादौ केवलज्ञानमुत्पादयंतीति कालषट्कनियमो नास्ति। अथवा "ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं यत्र यस्य यदा यथा। इत्यष्टांगानि योगानां साधनानि भवंति च"। अस्य संक्षेपव्याख्यानं "गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यदा स्थितं। एकाग्रचिंतनं ध्यानं फलं संवरनिर्जरे" ॥ इत्यादि तत्त्वानुशासनध्यानग्रन्थादौ कथितमार्गेण

जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिधा ध्यातारो ध्यानानि च भवंति। तदपि कस्मात्? तत्रैवोक्तमास्ते द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपा ध्यानसामग्री जघन्यादिभेदेन त्रिधेति वचनात्। अथवातिसंक्षेपेण द्विधा ध्यातारो भवन्ति शुद्धात्मभावनाप्रारंभकाः पुरुषाः सूक्ष्मसविकल्पावस्थायां प्रारब्धयोगिनो भण्यन्ते निर्विकल्पशुद्धात्मावस्थायां पुनर्निष्पन्नयोगिन इति संक्षेपेणाध्यात्मभाषया ध्यातृध्यानध्येयानि संवरनिर्जरासाधकरागादिविकल्परहितपरमानंदैकलक्षणसुखवृद्धिनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानवृद्धिबुद्धयादिसमृद्धिरूपध्यानफलभेदा ज्ञातव्याः। किंच। शिक्षकप्रारंभककृताभ्यासनिष्पन्नरूपेण कैश्चिदन्यत्रापि यदुक्तं ध्यातृपुरुषलक्षणं तदत्रैवांतभूतं यथासंभवं द्रष्टव्यमिति। इदानीं पुनरागमभाषया षट्कालाः कथ्यंते। यदा कोपि चतुर्विधाराधनाभिमुखः सन् पंचाचारोपेतमाचार्यं प्राप्योभयपरिग्रहरहितो भूत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति तदा दीक्षानंतरं चतुर्विधाराधनापरिज्ञानार्थमाचाराराधनादिचरणकरणग्रंथशिक्षां गृह्णाति तदा शिक्षानंतरं चरणकरणकथितार्थानुष्ठानेन व्याख्यानेन च पंचभावनासहितः सन् शिष्यगणपोषणं करोति तदा गणपोषणकालः। भावनाः कथ्यंते—तपःश्रुतसत्त्वैकत्वसंतोषभेदेन भावनाः पंचविधा भवंति। तद्यथा। अनशनादिद्वादशविधनिर्मलतपश्चरणं तपोभावना, तस्याः फलं विषयकषायजयो भवति प्रथमानियोगचरणानियोगकरणानियोगद्रव्यानियोगभेदेन चतुर्विध आगमाभ्यासः श्रुतभावना। तथाहि—त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणव्याख्यानं प्रथमानियोगो भण्यते, उपासकाध्ययनाचाराराधनादिग्रंथैर्देशचारित्रसकलचारित्रव्याख्यानं चरणानियोगो भण्यते, जिनांतरत्रिलोकसारलोकविभागलोकानियोगादिव्याख्यानं करणानियोगो भण्यते, प्राभृततत्त्वार्थसिद्धान्तग्रंथैर्जीवादिषड्द्रव्यादीनां व्याख्यानं द्रव्यानियोग इति, तस्याः श्रुतभावनायाः फलं जीवादितत्त्वविषये सक्षेपेण हेयोपादेयतत्त्वविषये वा संशयविमोहविभ्रमरहितो निश्चलपरिणामो भवति। उक्तं च—"आत्महितास्था भावस्य संवरो नवनवश्च संवेगः निःकंपता तपोभावना परस्योपदेशनं ज्ञातुः" मूलोत्तरगुणाद्यनुष्ठानविषये निर्गहनवृत्तिः सत्त्वभावना, तस्याः फलं घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावेपि निगहनेन मोक्षं साधयति पांडवादिवत्। "एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो। सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥" इत्येकत्वभावना तस्याः फलं स्वजनपरजनादौ निर्मोहत्वं भवति। तथा चोक्त। "भगिनीं विडंब्यमानां यथा विलोक्यैकभावनाचतुरः। जिनकल्पितो न मूढः क्षपकोपि तथा न मुह्यते" ॥ मानापमानसमताबलेनाशनपानादौ यथालाभेन संतोषभावना तस्याः फलं रागाद्युपाधिरहितपरमानंदैकलक्षणात्मोत्थसुखतृप्त्या निदानबंधादिविषयसुखनिवृत्तिरिति, गणपोषणानंतरं स्वकीयगणं त्यक्त्वात्मभावनासंस्कारार्थी भूत्वा परगणं गच्छति तदात्मसंस्कारकालः, आत्मसंस्कारानंतरमाचाराराधनाकथितक्रमेण द्रव्यभावसल्लेखनां करोति तदा सल्लेखनाकालः, सल्लेखनानंतरं चतुर्विधाराधनाभावनया समाधिविधिना कालं करोति तदा स उत्तमार्थकालश्चेति। अत्रापि केचन प्रथमकालादावपि चतुर्विधाराधनां लभंते षट्कालनियमो नास्ति। अयमत्र भावार्थः "आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य। आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे" एवं प्रभृत्यागमसारार्थपदानामभेदरत्नत्रयप्रतिपादकानामनुकूलं यत्र व्याख्यानं क्रियते तदध्यात्मशास्त्रं भण्यते तदाश्रिताः षट्कालाः पूर्वं संक्षेपेण व्याख्याताः वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादिसम्यक्श्र-

द्धानव्रताद्यनुष्ठानभेदरत्नत्रयस्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते तदागमशास्त्रं भण्यते, तच्चाभेदरत्नत्रयात्मकस्याध्यात्मानुष्ठानस्य बहिरंगसाधनं भवति तदाश्रिता अपि षट्कालाः संक्षेपेण व्याख्याताः, विशेषेण पुनरुभयत्रापि षट्कालव्याख्यानं पूर्वाचार्यकथितक्रमेणान्यग्रंथेषु ज्ञातव्यं ॥

इति श्री जयसेनाचार्य-कृतायां तात्पर्यवृत्तौ प्रथमतस्तावदेकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टभिरंतराधिकारैः पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकनामा प्रथममहाधिकारः, तदनंतरं पंचाशद्गाथाभिर्दशभिरंतराधिकारैर्नवपदार्थप्रतिपादकाभिधानो द्वितीयो महाधिकारः, तदनंतरं विंशतिगाथाभिर्द्वादशस्थलैर्मोक्षस्वरूपमोक्षमार्गप्रतिपादकाभिधानस्तृतीयमहाधिकारश्चेत्यधिकारत्रयसमुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिः पंचास्तिकाय प्राभृतः समाप्तः ॥ विक्रमसंवत् १३६९ वर्षेराश्विनशुद्धिः १ भौमदिने ।

समाप्तेयं तात्पर्यवृत्तिः पंचास्तिकायस्य ।

अब यहां वृत्तिकार कहते हैं कि यह पंचास्तिकाय प्राभृतग्रन्थ संक्षेप रुचिधारी शिष्यको समझानेके लिये कहा गया है। जिस समय जो शिक्षा ग्रहण करता है उस समय उसको शिष्य कहते हैं इसलिये शिष्यका लक्षण कहनेके प्रयोजनसे परमात्माके आराधन करनेवाले पुरुषोंको दीक्षा या शिक्षाकी अवस्थाके भेद कहते हैं। दीक्षाकाल, शिक्षाकाल, गणपोषणकाल, आत्मसंस्कारकाल, सल्लेखनाकाल, उत्तमार्थकाल इसतरह छः प्रकारके काल होते हैं उन्हींको कहते हैं—

१—जिस समय कोई भी निकट भव्यजीव निश्चय व व्यवहार रत्नत्रयके धारी आचार्यके पास जाकर आराधनाके लिये बाहरी व भीतरी परिग्रहका त्याग करके जिनदीक्षा ग्रहण करता है वह दीक्षाकाल है।

२—दीक्षाके पीछे निश्चय व्यवहार रत्नत्रयके तथा परमात्म स्वरूपके विशेष ज्ञानके लिये उनके समझानेवाले अध्यात्म शास्त्रोंकी जब शिक्षा ग्रहण करता है वह शिक्षा काल है।

३—शिक्षाके पीछे निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्गमें ठहरकर मोक्षमार्गके अर्थी भव्य प्राणियोंको जब परमात्म तत्त्वका उपदेश देकर पुष्ट करता है तब गणपोषणकाल है।

४—गण पोषणके पीछे जब अपने गण या संघको त्यागकर अपने परमात्म स्वभावमें शुद्ध संस्कार करता है अर्थात् स्वभावमें रमण करता है वह आत्मसंस्कार काल है।

५—आत्म संस्कारके पीछे उसी हीके लिये क्रोध आदि कषायोंसे रहित व अनन्तज्ञान आदि लक्षण सहित परमात्म पदार्थमें ठहरकर रागादि भावोंको भलेप्रकार कम करनेवाली भाव सल्लेखना है इसहीलिये कायको क्लेश देकर कायको कृश करना सो द्रव्य सल्लेखना है। इन दोनोंके आचरणका जो काल है वह सल्लेखना काल है।

६–सल्लेखनाके पीछे विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावरूप आत्मद्रव्यका भलेप्रकार श्रद्धान, ज्ञान तथा उसीमें आचरण व बाहरी द्रव्योंमें इच्छाका निरोध रूप तपश्चरण इसप्रकार चार तरहकी आराधना करना सो चरमशरीरीके उसी भवसे मोक्षके लिये है तथा जो चरम शरीरी नहीं है उसके अन्यभवमें मोक्षकी योग्यताके लिये है सो उत्तमार्थ काल है।

इन छः कालोंके मध्यमें कोई पहले कालमें, कोई दूसरे कालमें, कोई तीसरे काल आदिमें केवलज्ञानको उत्पन्न करलेते हैं। छहों कालोंके होनेका नियम नहीं है।

अथवा ध्यानके आठ अंग हैं–

"ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं यत्र यस्य यदा यथा। इत्यष्टांगानि योगानां साधनानि भवंति च॥

अर्थात्–ध्यान करनेवाला, ध्यान, ध्यानका फल, किसका ध्यान किया जावे, कहां ध्यान करना, कब ध्यान करना, किस विधिसे ध्यान करना तथा यस्यका अर्थ आसन समझमें आता है। विशेष ज्ञानी सुधार लें। इसका संक्षेप व्याख्यान यह है–

गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यथास्थितं। एकाग्रचिंतनं ध्यानं फलं संवरनिर्जरे॥

अर्थात् इन्द्रिय और मनको वश रखनेवाला ध्याता होता है। वस्तुका यथार्थ स्वरूप ध्यान करने योग्य है, एकको मुख्य करके चिन्तवन करना ध्यान है, ध्यानका फल कर्मोंका संवर होना तथा निर्जरा होना है। इत्यादि कथन तत्त्वानुशासन नामके ध्यान ग्रन्थमें कहा गया है। वहां जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट भेदके तीन प्रकार ध्याता व तीन ही प्रकार ध्यान कहा गया है। इसका भी कारण वहीं कहा है कि ध्यान करनेकी सामग्री जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है सो भी तीन प्रकार है।

अथवा अति संक्षेपसे ध्यान करनेवाले दोप्रकारके होते हैं–एक तो शुद्ध आत्माकी भावनाको प्रारंभ करनेवाले सूक्ष्म विकल्प सहित अवस्थामें रहनेवाले प्रारब्धयोगी कहे जाते हैं। दूसरे विकल्प रहित शुद्ध आत्माकी अवस्थामें रहनेवाले निष्पन्न योगी होते हैं। इस तरह संक्षेपसे अध्यात्मभाषासे ध्याता, ध्यान, ध्येय व ध्यानके फल जानने चाहिये। वे फल संवर तथा निर्जरासे साधे जानेवाले रागादि विकल्प रहित परमानन्दमई सुखकी वृद्धि होना व निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानकी उन्नति होना व बुद्धि आदि सात प्रकार ऋद्धियोंकी प्राप्ति होना है।

अन्य ग्रन्थोंमें भी ध्याता तीन प्रकार बताए हैं। जैसे शिष्य प्रारम्भकर्ता, अभ्यासकर्ता व निष्पन्नयोगी, उनका भी वर्णन इसी कथनमें यथासंभव अन्तर्भूत जानना चाहिये।

अब आगमकी भाषासे छः काल कहे जाते हैं–

१–जब कोई सम्यग्दर्शन ज्ञान आदि चार प्रकार आराधनाके सन्मुख होकर पंच आचारके

पालक आचार्यके पास जाकर, अंतरंग बहिरंग परिग्रहको छोडकर जिन दीक्षा लेता है वह दीक्षाकाल है।

२--दीक्षाके पीछे चार प्रकार आराधनाके विशेष ज्ञान करनेके लिये व आचरणकी आराधनाके लिये चारित्रके सहायक ग्रन्थोंकी जब शिक्षा लेता है तब शिक्षाकाल है।

३--शिक्षाके पीछे आचरणके सहकारी कथनके अनुसार स्वयं पाल करके व उसका व्याख्यान करके पांच प्रकारकी भावना सहित होकर जब शिष्यगणोंको पुष्ट करता है तब गणपोषणकाल है

भावनाएं पांच तरहकी होती हैं--तप, श्रुत, सत्त्व, एकत्व और संतोष।

१--अनशन आदि बारह प्रकार निर्मल तप करना सो तपो भावना है--इस भावनाके फलसे विषय तथा कषायका विजय होता है।

२--प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग इन चार प्रकारके आगमका अभ्यास करना सो श्रुतभावना है। त्रेशठशलाका पुरुषोंके पुराणोंका व्याख्यान सो प्रथमानुयोग है, उपासकाध्ययन व आचार आराधना आदिके ग्रन्थोंके द्वारा देशचारित्र व सकलचारित्रका व्याख्यान सो चरणानुयोग कहा जाता है, जिनांतर, त्रिलोकसार लोक विभाग आदिके द्वारा लोकका कथन करना सो करणानुयोग है, प्राभृत अर्थात् समयप्राभृत आदि व तत्त्वार्थसूत्र आदि सिद्धांत ग्रन्थोंके द्वारा जीवादि छः द्रव्योंका व सप्ततत्त्वादिका व्याख्यान करना द्रव्यानुयोग है। इस शास्त्रकी भावनाका फल यह कि जीवादि तत्त्वोंके सम्बंधमें या हेय या उपादेय तत्त्वके सम्बंधमें संशय, विमोह, विभ्रम रहित निश्चल परिणाम होता है। इस शास्त्रकी भावनाका फल अन्य ग्रन्थमें कहा है।

आत्महितास्था भावस्य संवरो नवनवश्च संवेगः निःकंपता तपोभावना परस्योपदेशनं ज्ञातुः ॥

भावार्थ--जो शास्त्रका ज्ञाता होता है उसको छः लाभ होते हैं (१) आत्महितमें श्रद्धा जमती है (२) आश्रव भावका संवर होता है (३) नवीन नवीन धर्मानुराग बढता है (४) कंपरहित परिणाम होता है (५) तप साधनकी भावना होती है (६) परको उपदेश देसक्ता है

३--मूलगुण व उत्तरगुणोंके पालनके सम्बन्धमें भयरहित वर्तन करना सो सत्त्वभावना है। इसका फल यह है कि घोर उपसर्ग व परीषहके पडनेपर भी निर्भय होकर उत्साह पूर्वक मोक्षका साधन पांडवों आदिकी तरह होता है।

४--अपने आत्माको एक रूप अकेला विचार करना सो एकत्वभावना है जैसा इस गाथामें कहा है--

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो। सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥

भावार्थ–मेरा आत्मा एक अकेला, अविनाशी, ज्ञानदर्शन लक्षणका धारी है। इसके सिवाय जितने सर्व भाव परके संयोगसे होते हैं वे मुझसे बाहरके भाव हैं।

इस एकत्वभावनाका फल यह है कि स्वजन तथा परजनोंमें मोह न रहे, जैसा कहा है–

भगिनीं विडंवमानां यथा विलोक्यैकभावनाचतुरः। जिनकल्पितो न मूढः क्षपकोपि तथा न मुह्येत

भावार्थ–जो एकत्व भावनामें चतुर होता है वह अपने बहिनकी विडंबनाको देखकर भी मोह नहीं करता है वैसे जिनकल्पी साधु भी मोह नहीं करता है।

५–मान तथा अपमानमें समताभावके बलसे भोजनपान आदिमें जो कुछ लाभ हो उसमें संतोष रखना सो संतोषभावना है। इसका फल यह है कि रागादिक उपाधिसे रहित परमानंदमई आत्मीक सुखमें तृप्ति पानेसे निदान बंध आदि विषयोंके सुखसे चित्तका हट जाना।

४–गणपोषणके पीछे आत्माकी भावनाके संस्कारको चाहनेवाला अपने गणको छोडकर दूसरे गण या मुनिसंघमें जाकर रहता है सो आत्मसंस्कार काल है।

५–आत्मसंस्कारके पीछे आचार आराधना ग्रन्थमें कहे प्रमाण द्रव्य तथा भाव सल्लेखना करता है वह सल्लेखनाकाल है।

६–सल्लेखनाके पीछे चार प्रकार आराधनाकी भावनाके द्वारा समाधिकी विधिसे कालको पूर्ण करता है सो उत्तमार्थकाल है।

यहां भी कोई प्रथमकाल आदिमें ही चार प्रकार आराधनाको प्राप्त करलेते हैं छः कालका नियम नहीं है। यहां यह भावार्थ है कि नीचे लिखी गाथाके प्रमाण जहां आगमका सार लेकर निश्चय रत्नत्रयकी भावनाके अनुकूल अर्थ व पदोंसे व्याख्यान किया जाता है वह अध्यात्म-शास्त्र कहा जाता है–

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य। आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥

भावार्थ–मेरे ज्ञानमें आत्मा है–मेरे दर्शन व चारित्रमें आत्मा है, प्रत्याख्यान तथा त्यागमें भी आत्मा है–अर्थात् जहां आत्मामें स्थिति है वहां ये सब कुछ हैं।

अध्यात्म शास्त्रके आश्रित छः कालोंका वर्णन पहले ही संक्षेपसे किया गया है। जहां वीतराग सर्वज्ञद्वारा कहे हुए छः द्रव्य आदिका भलेप्रकार श्रद्धान, ज्ञान व आचरणरूप भेद या व्यवहार रत्नत्रयका स्वरूप वर्णन किया जाय वह आगमशास्त्र कहलाता है। यह कथन निश्चय रत्नत्रयमई आध्यात्मिक आचरणका बाहरी साधन होता है–इसके आश्रित भी छः काल संक्षेपसे कहे गए। विशेष जानना हो तो छः कालोंका व्याख्यान दोनों ही आगम व अध्यात्म रूपसे पूर्व आचार्योंके कहे हुए क्रमानुसार अन्य ग्रन्थोंसे जानना योग्य है।

इस तरह श्री जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्तिमें पहले एकसे एकसौ ग्यारह गाथाओंके द्वारा आठ अन्तर अधिकारोंसे पांच अस्तिकाय व छः द्रव्यको कहनेवाला प्रथम महाअधिकार कहा गया। उसके पीछे पचास गाथाओंके द्वारा दश अन्तर अधिकारोंसे नव पदार्थोंको कहनेवाला दूसरा महाअधिकार कहा गया। फिर बीस गाथाओंके द्वारा बारह स्थलोंसे मोक्षस्वरूप व मोक्षमार्गको कहनेवाला तीसरा महाअधिकार कहा गया। इस तरह तीन अधिकारोंसे एकसौ इक्यासी गाथाओंमें पंचास्तिकाय प्राभृत समाप्त हुआ। समय व्याख्यामें १७३ ही गाथाएं हैं,



पंचास्तिकाय प्राभृतकी गाथाओंकी अकारादि क्रमसे सूची

पंचास्तिकाय प्राभृतकी गाथाओं की अकारादिक्रमसे सूची